

# वायु-पुराणा ( दूसरा खण्ड )



सम्पादक —  
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद् पट दर्शन  
२० स्मृतियाँ और अठारह पुराणों के  
भाष्यकार



प्रकाशक :

संस्कृति-संस्थान, वरेली  
( उत्तर-प्रदेश )

प्रथम बार ] सन् १९६७ ई० [ मू० ७) रुपया

प्रकाशक :—

मंस्कृति-संस्थान  
वरेली ( उ० प्र० )

★

सम्पादक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

★

सर्वाधिकार सुरक्षित

सन् १९६७

★

मुद्रक

वृन्दावन शर्मा

जनजागरण प्रेस, मधुरा ।

★

मूल्य ७) रु०

## दो शब्द

'वायु पुराण' की विशेषताओं का वर्णन प्रथम भाग की भूमिका में विस्तारपूर्वक किया जा चुका है। इस दूसरे खण्ड में जो महत्त्वपूर्ण विषय पाठकों को मिलेंगे उनसे पूर्ववर्ती धारणाओं की ओर अधिक पुष्टि हो सकेगी। मृष्टि, प्रलय, जड-चेतन पदार्थों का प्रथम आविर्भाव, मानव-समाज का विकास, अनेकानेक राजवंशों तथा उनकी शाखाओं का वर्णन आदि जो पुराणों का मुख्य उद्देश्य माना गया है, वह इसमें पूर्ण रूप से पाया जाता है। पाठन जैसे-जैसे इस पुराण का अध्ययन करने जायगे उनकी यह प्रतीति होता चला जायगा कि वास्तव में इस दृष्टि से इस पुराण का स्थान अधिकांश पुराणों और उपपुराणों से बहुत ऊँचा है।

इन पुराण के प्रतिपादित विषय को अन्त तक देख जाने और विशेष कर इस दूसरे खण्ड के राज्य-वंशों के विस्तृत वर्णन और मृष्टि तथा प्रलय के बुद्धिमग्न विवेचन का पढ़ने पर हमको उन लोगों की बातों पर पुष्ट आश्चर्य होता है जो इस पुराण को अटारह पुराणों में न मानकर 'शिवपुराण' का एक अंश मात्र बतलाते हैं। हमारा तो इस पुराण को सम्पादन करने पर यह मान्य हुआ कि जहाँ अधिकांश पुराणों के बल्लेवर का एक बड़ा भाग साम्प्रदायिक दृष्टिकोण में निर्गो गई कथाओं अथवा तीर्थ, व्रत, दान आदि के विधानों से भरा पड़ा है वहीं 'वायु-पुराण' में इन बातों को कम से कम स्थान देकर उन बातों का ही दिग्दर्शन कराया है जो वास्तव में पुराणों के अर्थ सिद्ध माने गये हैं। मृष्टि, जगत और मानव ज्ञान के विकास पर विचार करना ही पुराण रचना का मुख्य उद्देश्य बतलाया गया

है और वह हमको 'वायु-पुराण' में अन्य पुराणों की अपेक्षा कहीं अधिक और समन्वयात्मक रूप से दिखाई पड़ता है।

यद्यपि सभी पुराणों में अलङ्कार, रूपक, उपमा, दृष्टान्त आदि की लेखन शैली पूर्ण मात्रा में अपनाई गई है, जिससे कथा के रूप में अपढ जनता को आकर्षित करके धर्म तत्वों की शिक्षा दी जासके, तो भी इस दृष्टि से विभिन्न पुराणों के स्तर में बहुत अन्तर दिखलाई पड़ता है। अन्य पुराणों ने जहाँ लोगों की रुचि और आकर्षण पर ही अधिक ध्यान दिया है 'वायुपुराण' में तथ्यों को प्रकट करने और प्राचीनता की एक प्रभावशाली भूलक पाठकों को दिखाने की चेष्टा की है। इसमें विभिन्न राजवंशों की वशावलियों का जितने विस्तार के साथ वर्णन किया गया है वह इतिहास की दृष्टि से भी बहुत कुछ महत्व रखता है और अनेक इतिहास लेखकों ने उसके आधार पर प्राचीन ऐतिहासिक युगों का निर्णय करने में पर्याप्त सहायता प्राप्त की है। इसी प्रकार लोक, परलोक, नर्क, स्वर्ग, भुवन आदि का वर्णन इसमें कथा और रूपकों के बजाय विवेचनात्मक ढङ्ग से ही किया है, जिससे इसकी गम्भीरता और प्रामाणिकता की वृद्धि ही हुई है। जो पाठक ध्यान पूर्वक इसका अध्ययन करेंगे वे, हमारा विश्वास है कि उपयुक्त निष्कर्षों पर पहुँचे बिना न रहेंगे।

--सम्पादक



## विषय-सूची

अध्याय	पृष्ठ संख्या
४३ प्रजापतिवश कीर्तन— सहितामो के निर्माता ऋणियों के नाम, मातृत्व का नवीन सहिता निर्माण, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्वशास्त्र, बर्षशास्त्र, और चौदह विद्याओं का विकास ।	६
४४. पृथ्वी दोहन— स्वायम्भुव, स्वारोचिष आदि-आदि १४ मन्वन्तरो का वरुण, राजा पृथु द्वारा अन्न की कृषि का आरम्भ ।	३५
४५ पृथुवरा कीर्तन— विभिन्न मन्वन्तरो में पृथ्वी का दाहन करने वाले मनुष्यों का वरुण, वक्ष प्रजापति द्वारा मृष्टि की वृद्धि ।	६७
४६ वैवस्वत-सर्ग वरुण— मरोचि, बश्यप से देवो तथा परमपियों की उत्पत्ति ।	७६
४७ प्रजापति वशानुकीर्तन— वैवस्वत-मन्वन्तर में देव, ऋषि, दानव, पितर, गन्धर्व, यक्ष आदि की मृष्टि और वृद्धि ।	८१
४८ ऋषि वशानुकीर्तन— द्विज, विश्वेदेव, प्रजापति, मरुत, दानव, यक्ष, राक्षस, पितृ, भूत, पशु, पक्षी, नाग, अक्षरा आदि के ऋषिपतियों का वरुण ।	१०५

अध्याय	पृष्ठ-संख्या
४६ गन्धर्व-मूर्च्छना लक्षण— नामान, क्षुप, करन्धम, मरुत राष्ट्रवधन, तृणवि दु, रैवत प्रादि राजाओं का वर्णन ।	११६
५० गीतालङ्कार निर्देश— वाक्य, अर्थ, आरोहण, अवहोरण, वाच्य प्रादि का परिचय ।	१२८
५१ वैवस्वत मनुवश वर्णन— राजा इक्ष्वाकु के वश म युवनाश मान्यता, अम्बरीष, पुरुकुत्स, मुचुकुन्द, हरिश्चन्द्र, सगर, विश्वीष प्रादि राजाओं का वर्णन ।	१३५
५२ सोमोत्पत्ति वर्णन— विभिन्न वंश के राजाओं का नाम 'जदव' कहा जाना । सोताजी के पिता शीरष्वज का उल्लेख । (२) चन्द्रमा द्वारा बुध की उत्पत्ति और महर्षि अत्रि द्वारा उनकी रोग मुक्ति प्रादि ।	१६७
५३ चन्द्रवशपीर्तन—(१) राजा पुरुवरु और उर्वशी की कथा । राजा एम द्वारा तीन अग्निश का विभाजन, जहनु का गद्दापान, विद्वामिष का वश । *	१७८
५४ रजियुद्ध वर्णन— धन्वतरि की उत्पत्ति, रजि द्वारा दानव का पराभव ।	१६५
५५ चन्द्रवशपीर्तन—(२) राजा मदन, नहुष, ययाति की कथा । पुत्र द्वारा ययाति की वृद्धावस्था सह्य करने का उपानयन ।	२१०

- १६ वार्त्तवीर्यं धनुर्न उत्पत्ति—  
 वार्त्तवीर्यं धनुर्न द्वारा गाना द्वीपा की विजय, रावण को  
 वीर्यगाना, धनुर्न द्वारा न प रिया जाना । २२६
- १७ जयामयं वृत्तं न तथैव—  
 वार्त्तवीर्यं जयं धना वा जयाना जयान । २२६
- १८ विष्णुवन्दन वर्णन —  
 स्वयन्वद वणि वा वया । श्रीरुद्रा वा वान वा वर्णन । २६१
- १९ धम्भुन्वद वर्णन —  
 श्रुतिया द्वारा विष्णु की विदयनाथा वा वरान धीर वृत्त धन-  
 नार मने नर धामनय । नृत्त वा वान की वया । धुम्भुन्वद धीर  
 नृत्तधामनय वा विसद । २७६
- २० विष्णु माहात्म्य वर्णन—  
 नृत्तधामनय धीर वदन्धी वा माहात्म्य नृत्तधामनय वा वरान वा  
 धीर नृत्तधामनय वदन्धी । धन धामनय वा वरान । २८६
- २१ धनुर्विदयानं वर्णन—

## अध्याय

## पृष्ठ-संख्या

## ६३ शिवपुर वर्णन—

भु भुव आदि सात लोकों का वर्णन, वाराजक कल्प वाले, असुत, कोटि, भ्रुवुंद निवुंद, आदि की गणना, महालोक, जन-लोक आदि का विवरण, नरक, वर्णन, चतुष्पद, द्विपद, तिर्यक आदि की गणना, शिवपुर का परम ऐश्वर्य ।

३६५

## ६४. प्रलयादि पुनः सृष्टि वर्णन

सप्त द्वीप, समुद्र, पर्वत आदि का नष्ट होकर पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आदि पञ्चतत्वों का एक-एक करके दूसरे में लीन होते जाना । धर्म प्रथम और तीनों गुणों की स्थिति ।

४४८५

## ६५ सृष्टि वर्णन—

प्रलय के पश्चात् सृष्टि का फिर से विकास वैसे होता है ? सम-विषय—व्यक्त अव्यक्त का कथन । ब्रह्मा की उत्पत्ति । वायु-पुराण का महत्व ।

४६८

## ६६ व्यास सशय वर्णन—

निराकार ब्रह्म प्रकृति तथा भक्ति-मार्ग और ज्ञान मार्ग का निरूपण । भक्षर ब्रह्म से परे और कोई नहीं है, वही सब कारणों का कारण है ।

४८०

## ६७ गया महात्म्य—

श्री सनःकुमार द्वारा गया तीर्थ की प्रशंसा और महात्म्य । गया आठ द्वारा पितरों के उद्धार की कथा ।

४९५





# वायु-पुराण

[ दूसरा खण्ड ]



॥ प्रकर्म ४३—प्रजापति वंश कीर्तन ॥

भारद्वाजी याज्ञवल्क्यो गातावि सालक्षिस्तथा ।  
धीमान् शतबलाकश्च नैगमश्च द्विजोत्तम ॥१॥  
वाष्पलिश्च भरद्वाजस्तिष्ठ प्रोवाच सहिता ।  
रथीतरो निरक्तञ्च पुनश्चक्र चतुर्थवम् ॥२॥  
अयस्तस्याभनञ्जिदस्या महात्मानो गुणान्विता ।  
धीमान्मन्दाप्रनीयश्च पन्नगारिश्च बुद्धिमान् ।  
तृतीयश्चार्यदस्त्रे च तपसा शमितव्रता ॥३॥  
वीतरागा महातेजा- सहितान्नानपारगा ।  
इत्येते बहू चा प्राक्ता सहिता यं प्रवर्तितता ॥४॥  
बैशम्पानगात्रोऽग्नौ मजुर्वेदं व्यवल्पयत् ।  
पडशीतिस्तु येनोक्ता महिता यजुषा शुभा ॥५॥  
शिष्येभ्य प्रददौ ताश्च जगृह्णस्ते विधानत ।  
एवस्तत्र परित्यक्तो याज्ञवल्क्यो महातपा ।  
पडशीतिश्च तस्यापि सहिताना विक्ल्पका ॥६॥  
सर्वेषामेव तेषा वै त्रिधा भेदा प्रसीतिता ।  
त्रिधा भेदास्तु ते प्रोक्ता भेदेऽस्मिन्नवमे गुणे ॥७॥

श्रुतिपो न कदा—भारद्वाज—याज्ञवल्क्य—गातावि—मानवि—धीमार् शत-  
बलाक—नैगम जो द्विजा म श्रेष्ठ थे—वाष्पनि—भारद्वाज- इनने तीन महिमा  
कही फिर रथीतर न चतुर्थं निरक्त विद्या वा ॥१॥२॥ उमके गुणो मे

तन्वाप्रतीय -पत्रगारि और बुद्धिमान् तृतीय प्राचाय था । वे तब से शसित व्रत वासे थे ॥३॥ ये सब वीतराग महान् तज से युक्त और सहिताओ क ज्ञान के पारगामी थे । ये सब वह वृष कहे गये हैं जिन्होंने सहिताओ का प्रवृत्त किया था ॥४॥ यह वैशम्पायन गोत्र वाला था जिसने यजुर्वेद की विशेष रत्नना की थी । जिसने यजुर्वेद की शुभ छयासी सहिताएँ कही थी ॥५॥ उनको शिष्यो के लिए दिया था और उहोने विधानपूर्वक उहे ग्रहण किया था । वही पर एक महा तपस्वी याज्ञवल्क्य परिपक्व थे । उसके भी छयासी सहिताओ के विकल्प थे ॥६॥ उन सबके तीन प्रकार के भेद प्रकाशित किए गए हैं । इस शुभ नवम भेद में तीन प्रकार के भेद कहे गये हैं ॥७॥

उदीच्या मध्यदेशाश्च प्राच्याश्चैव पृथग्विधा ।

श्यामायानरुदीच्याना प्रधान सम्वभूव ह ॥८

मध्यदेशप्रतिष्ठानामारुणि प्रथम स्तुत ।

आलम्बिरादि प्राच्यानान्त्रयोदद्यादपरस्तु त ॥९

इत्यते चरका प्रोक्ता सहितावादिनो द्विजा ।

ऋषयस्तद्वच श्रुत्वा सूत जिज्ञासवोऽनुवन् ॥१०

चरवाभ्यर्थय केन कारण ब्रूहि तत्त्वत ।

किञ्चीर्णं कस्य हेतोश्च वाचकत्वञ्च भेजिरे ।

इत्युक्त प्राह तेपा स चरकत्वमभूद्यथा ॥११

कार्यनासीदृषीणाञ्च किञ्चिद्ब्राह्मणसत्तमा ।

मेरुपृष्ठ समासाद्य तंस्तदा त्विति मयितम् ॥१२

यो नोऽत्र सप्तरात्रेण नागव्येद्द्विजसत्तमा ।

स कुर्याद्ब्रह्मवध्या वै सगयो न प्रकीर्तित ॥१३

ततस्त सगणा सर्वे वैशम्पाय नवर्जिता ।

प्रथमु सप्तरात्रेण यत्र सन्धि कृतोऽभवत् ॥१४

उदीच्या मध्यदेश और प्राच्य पृथक् विध थे । उदीच्या में श्यामायनि प्रधान हुआ था ॥८॥ मध्यदेश के प्रतिष्ठानों में अरुणि प्रथम कहा गया है ।

प्राच्यों भ आदि आलम्बि धे वे प्रयोदशी आदि धे ॥६॥ ये सब द्विज जो कि सहिनाथो के वादी धे चरक बहे गए धे । ऋषिया ने उनके वचन जो सुनकर मिनामृ होते हुये वे सूतजी स वाले ॥१०॥ चरक धोर आध्वयव किस से हुए ? इसका कारण तत्वपूर्वक बतलाइये । किसके हेतु ने क्या चीण और वाचकत्व का सेवन किया था ? इस प्रकार से बहे हुए उसने जैसे चरकत्व उनका हुआ था कहा । ॥११॥ श्री सूतजी ने कहा—हे ब्राह्मण धृष्टा ! ऋषिया का क्या काय था यह भेष के पृष्ठ पर जाकर उन्होंने मात्रणा की थी ॥१२॥ हे द्विज सत्तमा ! जो यहाँ सात दिन तक नहीं आवे वह ब्रह्मवध्या करे । इसका समय नहीं कहा गया है ॥१३॥ इसके पश्चात् गणो के साथ वे सब वैशम्पायन को छोड़ कर सात दिन में चने गये जहाँ कि भधि की हुई थी ॥१४॥

ब्राह्मणानां तु वचनाद्ब्रह्मवध्याञ्चकार स ।

शिष्यान्तथ ममानीय स वशम्पायनोऽप्रवीत् ॥१५॥

ब्रह्मवध्याञ्चरध्व वै भक्तुत द्विजसत्तमा ।

सर्वे यूय समागम्य ब्रूत ने तद्धित वच ॥१६॥

ग्रहमेव चरिष्यामि तिष्ठन्तु मुनयस्त्वमे ।

वनश्वोत्थापयिष्यामि तपसा स्वेन भावित ॥१७॥

एवमुक्तस्तत क्रुद्धा याज्ञवल्क्यमथाब्रवीत् ।

उवाच यस्वमाधीत सर्वं प्रत्यपयस्वमे ॥१८॥

एवमुक्त स रूपाणि यजू पि प्रददौ गुरो ।

रुधिरैश्च तयाक्तानि ह्यदित्वा ब्रह्मवित्तम ॥१९॥

तत स ध्यानमास्थाय सूर्यमाराधयद्द्विजा ।

सूर्यं ब्रह्म यदुच्छिन्नं च गत्वा प्रतितिष्ठति ॥२०॥

तती यानि गता-यूद्धं यजू प्यादित्यमण्डलम् ।

तानि तस्म ददौ तुष्ट सूर्यो वै ब्रह्मरीतय ।

अश्वरूपाय मार्तण्डो याज्ञवल्क्याय धीमते ॥२१॥

ब्राह्मणों के वचन में उसने ब्रह्मवध्या को किया था । इसके अनन्तर उस वैशम्पायन ने गिण्यों को लाकर कहा ॥१५॥ हे द्विज सत्तमा ! मरे निय

ब्रह्मवल्ग्या को करो घ्राप अथ लीग थाकर तद्वति वचन मुझे बोली ॥१६॥  
 याज्ञवल्क्य ने कहा—मैं ही करूँगा ये मुनिगण टहरे । अपन तप से भावित  
 होता हुआ मैं बल की उत्थापित करूँगा ॥१७॥ इस प्रकार से बड़े हुए वह  
 क्रुद्ध होकर याज्ञवल्क्य से बोले कि जो भी तुमने पडा है उस सबको मुझे अर्पण  
 कर दो—यह कहा ॥१८॥ इन प्रकार से बड़े जाने वाले ब्रह्मविद्वान् उसने  
 रुधिर घक्त रूप यजु को छदि वर के गुरु की दे दिया था ॥१९॥ इसके अन-  
 न्तर उसने हे द्विजा ! ध्यान में स्थित होकर सूर्य की आराधना की थी । जो  
 उच्छिद्य सूर्यब्रह्म था और आकाश में जाकर प्रतिष्ठित होता है । इसके पश्चात्  
 जो यजु ऊध्व भाग में गए थे और आदित्य मण्डल में स्थिति थे उनको मन्तुष्ट  
 होने वाले सूर्य ने ब्रह्म रीति के लिए उसे दे दिया था । भीमान् याज्ञवल्क्य उस  
 समय अश्व के रूप में थे । ऐसे याज्ञवल्क्य के लिए मातरुड ने यजु दिए थे  
 ॥२०॥२१॥

यजू ध्यधीयन्ते यानि ब्राह्मणा येन वेन च ।  
 अश्वरूपाय दत्तानि ततस्ते वाजिनोऽभवन् ॥२२॥  
 ब्रह्महत्या तु वैश्वीर्णा चरणाञ्चरका स्मृता ।  
 वैशम्पायशिष्यास्ते चरका समुदाहता ॥२३॥  
 इत्येते चरका प्रोक्ता वाजिनस्ताम्बिबोधत ।  
 याज्ञवल्क्य स्वशिष्यास्ते कण्वधैघेयशात्तित ॥२४॥  
 मध्यन्दिनश्च शापेयी विदिग्धश्चाप्य उद्वल ।  
 ताम्रायणश्च वात्स्यश्च तथा गालवसैश्विरी ।  
 आटवी च तथा पर्णी वीरणी सपरायण ॥२५॥  
 इत्येते वाजिन प्रोक्ता दश पञ्च च सम्मृता ।  
 शतमेकाधिक कृत्स्न यजुपा वै विकल्पका ॥२६॥  
 पुत्रमध्यापयाभास सुमन्तुमथ जंमिति ।  
 सुमन्तुश्चापि सुत्वान पुत्रमध्यापयत्प्रभु ।  
 सुकर्माण सुत सुत्वा पुत्रमध्यापयत्प्रभु ॥२७॥

स सहस्र मधीत्यागु मुकमप्यथ सहिता ।

प्रोवाचाय सहस्रस्य मुकर्मा सूर्यवर्चस ॥२८

जिस किमी के द्वारा आह्वान जिम यजु का अध्ययन करते हैं वे अश्व-  
रूप बाने के लिये किये हुये हैं इसमें वाजिन हुए और कहे भी जाते हैं ॥२२॥  
जिन्होंने चरण से ब्रह्महत्या की चीरण किया था वे चरक कहे गए हैं । वे वैश-  
भ्यायन के शिष्य हैं जो चरक कहे गये हैं ॥२३॥ इनके वे चरक कहे गये हैं  
अथ उन वाजिनो को जान लो । याज्ञवल्क्य के वे शिष्य है जो चरक वैशेषशाली  
हैं ॥२४॥ मध्यान्दिन-- शारिणी - विदिष - उहल -ताम्रायण-- वात्स-मालव-  
दक्षिणी-आटवी-पर्या-वीरणी-मयरायण--ये इन्ने वाजिन इम नाम से कहे गये  
हैं ये दश और पाँच कुल पन्द्रह होते हैं । यजुषो का पूर्ण विकल्प एकसौ एक  
है ॥२५॥२६॥ इसके अनन्तर जैमिनि ने मुमन्तु अपने पुत्र को पढ़ाया था ।  
मुमन्तु प्रभु ने भी अपने पुत्र गुत्वान को पढ़ाया था । मुत्वा ने अपने पुत्र  
मुकर्मा को पढ़ाया था ॥२७॥ इसके पश्चात् मुकर्मा ने भी शीघ्र एक सहस्र  
महितारो का अध्ययन कर के सूर्य वर्चस मुकर्मा ने सहस्र को बोला था ॥२८॥

अनध्यायेष्वधीयानास्ताञ्जघान सतक्रतु ।

प्रायोपवेशमकरोत्तनाऽमी शिष्यकारणात् ॥२९

क्रुद्ध दृष्ट्वा तन शक्रो वरमस्मै ददौ पुन ।

भाविनी ते महावीर्यो शिष्यावयलवर्चसो ॥३०

अधीयानो महाप्राज्ञो राहस्य रहिताबुभौ ।

एतौ गुरौ महाभागौ मा क्रुष्य द्विजसत्तम ॥३१

इत्युक्त्वा वासव श्रीमान्सुकर्माण यशस्विनम् ।

शान्तक्रोध द्विज दृष्ट्वा तत्रैवान्तर्धीयत ॥३२

तस्य शिष्यो भवेदोमान्पौष्यञ्जी द्विजसत्तमा ।

हिरण्यनाभ कौशिक्यो द्विजयोऽभून्नराधिप ॥३३

अध्यापयत् पौष्यञ्जी महश्चङ्गन्तु सहिता ।

तेनान्योदीच्यामामान्या शिष्या पौष्यञ्जिन शुभा ॥३४

शतानि पञ्च कौशिक्य सहितानाञ्च वीर्यवान् ।

शिष्या हिरण्यनाभस्य स्मृतास्ते प्राच्यसामगा ॥३५॥

अनघ्याय के दिन में अध्ययन करने वाले उनका शतक्रतु (इन्द्र) ने मार दिया था । इसके पश्चात् शिष्य के कारण से इतने प्रयोपवेश (भोजन वा त्याग) कर दिया था ॥३६॥ इसके पश्चात् फिर इसको क्रुद्ध देख कर इन्द्र ने वरदान दे दिया था कि ये अलन, वर्चस दोनों शिष्य महान् वीर्य वाले होंगे ॥३७॥ हे द्विज सत्तम ! महा प्राज्ञ पढने वाले सहस्र सहिता वाले ये दोनों गुरु महान् भाग्य वाले है आप क्रोध न करें ॥३८॥ यह यह कर श्रीमान् इन्द्रदेव यशस्वी और क्रोध के शान्त हो जाने वाले द्विज मुक्तर्मा को देख कर वहाँ पर ही अन्तर्धान हो गए थे ॥३९॥ हे द्विज सत्तमा ! उसका शिष्य बहुत ही बुद्धिमान् और पौष्यञ्जी हुआ—हिरण्यनाभ-कौशिक्य और दूसरा गरुधिप हुआ ॥३९॥ पौष्यञ्जी ने भाषा सहस्र सहिता का अध्ययन किया था । इससे अन्योदीच्य सामान्य पौष्यञ्जी के शुभ शिष्य हुए और महिताओं के पाँच सौ वीर्यवान् कौशिक्य हुये । हिरण्यनाभ के शिष्य प्राच्य सामग बहे गए हैं ॥३५॥

लोकाक्षी कुधुमिश्चैव कुशीती लाङ्गलिस्तथा ।

पौष्यञ्जिश्चिध्याश्चत्वारस्तेषां भेदान्निबोधत ॥३६॥

राणायनीय स हि तण्डिपुत्रस्तस्मादन्यो मूलचारी सुविद्वान् ।

सकतिपुत्र सहस्रायपुत्र एतान् भेदान् विरा लोवाक्षिणस्तु ॥३७॥

त्रयस्तु कुधुमे पुत्रा औरमो रसपात्तर ।

भागवित्तिश्च तेजस्वी त्रिविधा कौधुमा स्मृता ॥३८॥

शीरिद्यु शृङ्गिपुत्रश्चद्वावेती चरितव्रतो ।

राणायनीय सोमिन्निः सामवेदविशारदी ॥३९॥

प्रोवाच सहितास्तिल्ल शृङ्गिपुत्रो महातपाः ।

चैल प्राचीनयोगश्च सुरालञ्च द्विजोत्तमाः ॥४०॥

प्रोवाच सहिताः पठन्तु पाराशर्यस्तु वीथुमः ।

आमुरायणवेणाह्यो वेदवृद्धपरायणो ॥४१॥

प्राचीनयोगपुत्रश्च बुद्धिमाश्च पतञ्जलि ।

कौथुमस्य तु भेदास्ते पाराशर्यस्य पट् स्मृता ।

लाङ्गलि शालिहोत्रश्च पट् पट् प्रोवाच सहिता ॥४२

पौष्यञ्जी के चार गिष्य थे उनके नाम लोवाक्षी-कूथुमि-कुशीती और लाङ्गल थे । अब उनके भेद बतलाये जाते हैं उ हैं आप लोग समझ लें ॥३६॥ तरिड ना पुत्र वह राणायनीय था । उससे प्रन्व भूलचारी था जो कि बहुत अच्छा विद्वान् था । सकति पुत्र सहस्रात्य पुत्र थे लोवाक्षी के भेद जानो ॥३७॥ कूथुमि के तीन पुत्र औरस-रमपारस और भाग त्रिति ये तीन प्रकार वाले तेज-युक्त कौथुम कहे गये हैं ॥३८॥ शोरिद्यु-शृङ्गिपुत्र दो ये चरित व्रत वाले थे । राणायनीय और नामिषि ने दो दोनो सामवेद के परिदल थे ॥३९॥ महाद् तपस्वी शृङ्गिपुत्र ने तीन सहिता कही थी । हे द्विजोत्तमो ! शैल, प्राचीन योग, सुराल इनने छै सहिता बोवी थी, इनमे पाराशर्य और कौथुम भी हैं । भ्रानुराधण और वैश नाम वाले दोना वेद वृद्ध मे परायण थे ॥४१॥ प्राचीन-योग का पुत्र पतञ्जलि बडा बुद्धिमान था । कौथुम के ये भेद पाराशर्य के छै कहे गये हैं । लाङ्गलि और शालिहोत्र ने छै-छै सहिता बतलाई हैं ॥४२॥

भालुकि कामहानिश्च जैमिनिर्लोमगायिन ।

कण्डश्च बोनदृश्र्व पडेते लाङ्गला स्मृता ।

एते लाङ्गलिन. शिष्या सहिता यं प्रमाधिता ॥४३

ततो हिरण्यनाभस्य कृतशिष्यो नृपात्मज ।

सोऽङ्करोश्च चतुर्विंशत्सहिता द्विपदा पर ।

प्रोवाच चैव शिष्येभ्यो येभ्यस्ताश्च निबोधत ॥४४

राडश्च महवीयश्च पञ्चमो वाहनस्तथा ।

तालक पाण्डकश्चैव कालिको राजिवस्तथा ।

गौतमश्चाजबन्धश्च सोमराजापतत्तन ॥४५

पृष्टघ्न परिशृष्टश्च उलूखलक एव च ।

यवीयसश्च वेगानो घ गुलीयश्च कोशिक ॥४६

स.निमञ्जग्मित्यश्च वापीय कानिवश्च य ।

पराशरश्च धर्मात्मा इति क्रान्तास्तु सामगा ॥६७॥  
 सामगानान्तु सर्वेषां श्रेष्ठो द्वौ तु प्रकीर्तितौ ।  
 पौष्यञ्चिश्च कृतिश्चैव सहितौना विकल्पकौ ॥४८  
 अथर्वाणां द्विधा कृत्वा सुमन्तुरददद्विजा ।  
 कवन्धाय पुन कृत्स्न स च विद्याद्यथाक्रमम् ॥४९  
 कवन्धस्तु द्विधा कृत्वा पथ्यापैक पुनर्ददौ ।  
 द्वितीय वेदस्पर्शाय स चतुर्द्विकिरोत् पुन ॥५०

भालुकि, कामहानि, जमिनि, लोमगायिनि, वण्ड, कोलह ये छत्रं ताङ्गन  
 बहे गये हैं । ये लाङ्गलि के शिष्य हैं जिन्होंने सहिताए प्रसाधित की हैं ॥४३॥  
 इसके पश्चात् हिरण्यनाभ के कृत शिष्य नृपात्मज हुए । द्विपदो म श्रेष्ठ उसने  
 चौबीस सहिताए की हैं । और फिर उनको शिष्यों के लिये बोला था । जिन  
 शिष्यों को बोला था उन्हें आप मुझसे जानो ॥४४॥ राड, महावीर्य, पचम,  
 वाहन, तालक, पाण्डन, कानिक, राजिव, गौतम, ब्राह्मवस्त, मोम राजापान्,  
 पृष्ठन्, परिकृष्ट, उलूकलक, मवीयम, वंशाल, अगुलीय, वीरिक मानिम, जरि-  
 सत्य, वापीय, कानिक और धर्मात्मा पराशर ये सब सामगा परिक्रान्त हुए  
 हैं ॥४७॥ समस्त सामगो म दो अल्पन्त श्रेष्ठ प्रकीर्तित हुए हैं । सहितागो के  
 विकल्पक ये दोना पौष्यञ्चि और कृति हैं ॥४८॥ हे द्विजा ! सुमन्तु ने अथर्वा  
 को दो करके दिया था । फिर कवन्ध के लिये सम्पूर्ण दिया था और उसने  
 यथाक्रम उसे जाना है । कवन्ध ने भी दो प्रकार का करके उनसे स एक को  
 फिर पथ्य के लिये दिया था । दूसरा वेदस्पर्श के लिये दिया था और फिर  
 उसने उसे चार प्रकार का कर दिया था ॥४९॥५०॥

मोदो ब्रह्मवतश्चैव पिप्पलादस्तथैव च  
 शौववायनिश्च धर्मज्ञश्चतुर्थंस्तपन स्मृत ।  
 वेदस्पर्शस्य चत्वार शिष्यास्त्वेते दृढव्रता ॥५१  
 पुनश्चत्रिविध विद्धि पथ्यानां भेदमुत्तमम् ।  
 जाजलि बुमुदादिश्च तृतीय शौनव स्मृत ॥५२  
 शौनवस्तु द्विधा कृत्वा ददावेकन्तु धध्रवे ।



द्वितीया सहिता धीमान्सेन्धवायनसञ्जिते ॥१३  
 सैन्धवो मुहुकेशाय भिन्ना सा च द्विधा पुनः ।  
 नक्षत्र कल्पो वंशानस्तृतीय सहिताविधि ।  
 चतुर्थोऽङ्गिरस कल्प शान्तिकल्पश्च पञ्चम ॥१४  
 श्रेष्ठस्त्वथर्वणो ह्येते सहिताना विकल्पना ।  
 षटश कृत्वा मयाप्युक्त पुराणमृषिसत्तमा ॥१५  
 श्रावेष्य मुमतिर्धीमान्काश्यपो ह्यवृत्तव्रणः ।  
 भारद्वाजोऽग्निवर्चाश्च वसिष्ठो मित्रयुश्च यः ।  
 भार्वाणो सामदत्तिस्तु मुशर्मा शाशपायनः ॥१६  
 एते शिष्या मम ब्रह्मन् पुराणेषु दृढव्रता ।  
 त्रिभिस्तिह्य कृतास्तिह्य सहिता पुनरेव हि ॥१७

वेदस्पर्श के दृढ व्रत बाने चार शिष्य हुए थे । ब्रह्मवल वाला भोद, विष्णुलाह, धर्म का ज्ञाता शौक्वायनि और चौथा तपन ये चारों के नाम बताये गये हैं ॥१३॥ फिर पश्या के तीन प्रकार के उलग भेद जान लो । एक जाजलि दूसरा कुमुदादि और तीसरा गीनक कहा गया है ॥१४॥ गीनक से दो भेद करके उनमें से एक धधु के लिये दिया था । द्वितीय जो सहिता था उसे उग परम बुद्धिमान् ने सैन्धवायन नाम बाल को दिया था ॥१५॥ सैन्धव ने मुहुकेश के लिये दो फिर वह दो प्रकार की भेद वाली हुई थी । नक्षत्र कला, वंशान, तृतीय सहिता विधि, चतुर्थ अङ्गिरस कल्प, पञ्चम शान्ति कल्प होता है ॥१४॥ ये जो सहिताओं के विकल्पन हैं उनमें अथर्वण श्रेष्ठ होता है । हे ऋषि सत्तमा ! छँ प्रकार से करके मैंने भी पुराण को कहा है ॥१५॥ श्रावेष, मुमति, धीमान्, काश्यप, अवृत्तव्रण, भारद्वाज, अग्निवर्चा, वसिष्ठ, मित्रयु, भार्वाण, सामदत्ति, मुशर्मा, शाशपायन ये इतने पुराणा में दृढव्रत बाने मेरे शिष्य थे । फिर तीनों ने तीन सहिताओं के तीन दिये ॥१६॥१७॥

काश्यप सहितावर्त्ता सार्वणि शाशपायनः ।

सामिका च चतुर्थो स्यात्तमा चैरा पूर्वमहिता ॥१८

सर्वास्ताहि चतुष्पादा सर्वाश्चैकार्यवाचिका ।

पाठान्तरे पृथग्भूता वेदनाया यथा तथा ।

चतुसाहस्रिणा सर्वा शाशपायनिकाभृते ॥५६

लोमहर्षिणा मूलास्तत काश्यपिका परा ।

सार्वणिकास्तृतीयास्ता यजुर्वक्रियार्यपण्डिता ॥६०

शाशपायनिकाश्चान्या मोदनार्थविभूयिता ।

सहस्राणि ऋचामष्टी पट्शतानि तथैव च ॥६१

एता पचदशान्याश्च दशान्या दशभिस्तथा ।

बालखिल्या समप्रैषा (पा) मसावर्णा प्रकीर्तिता ॥६२

अष्टी सामसहस्राणि सामानि च बतुर्दश ।

आरष्यक सहोमच एताद्गायन्ति सामगा ॥६३

काश्यप, सार्वणि और शाशपायन संहिताकर्त्ता हैं और यह पूर्व संहिता चौथी मर्मिका होती है। वे सब चार पादा वाली हृषा करती हैं और सभी एकार्य की वाविका भी होती हैं। वेद की शाखाएँ यथा तथा पाठान्तर में पृथक् होती हैं। शाशपायनिका के बिना सब चार सहस्र वाली हैं ॥५८॥५९॥ मूल लोमहर्षिणा है, इसके पश्चात् काश्यपिका होती हैं। तृतीय सार्वणिका है वे यजु के वावयाच की परिदृष्ट होती हैं ॥६०॥ अथ जो शाशपायनिका शाखाएँ हैं वे मोदन के अर्थ से विभूयित होती हैं। ऐसे ये कुछ षाठ सहस्र हैं सौ ऋचाएँ हैं ॥६१॥ ये अथ पचदश हैं और दूनी दश के साथ दश हैं बालखिल्या जो हैं वे समप्रैषा समावर्णा कही गई हैं। ६२॥ आठ साम सहस्र और चौह साम हैं। सामगा लोग इसको आरष्यक और सहोम गाया करते हैं ॥६३॥

द्वादशैव सहस्राणि छन्द आध्वर्यव स्मृतम् ।

यजुषा ब्राह्मणानाञ्च यथा व्यासो व्यकल्पयत् ॥६४

सप्राम्यारष्यकन्तन्स्यात्समन्त्रकरण तथा ।

अत पर कथानान्तु पूर्वा इति विशेषणम् ॥६५

प्राम्यारष्यक समन्त्रच ऋम्ब्र ह्यणयजु स्मृतम् ।

तथा हारिद्रवीर्याणा खिलान्युपखिलानि च ।

तथैव तैत्तिरीयाणा परशुद्रा इति स्मृतम् ॥६६  
 द्वे सहस्रे शतन्युने वेदे वाजसनेयके ।  
 ऋग्गण परि सख्यातो ब्राह्मणन्तु चतुर्गुणम् ॥६७  
 अष्टौ महस्त्राणि शतानि चाष्टौ अशीतिरन्यान्यधिकश्च पाद ।  
 एतत्प्रमाण यजुषामृचाव मशुक्रिय मखिल याज्ञवल्क्यम् ॥६८  
 तथा चरणविद्याना प्रमाण सहिता शृणु ।  
 पट्साहस्रमृचामुक्तमृच पङ्क्तिव्यति पुनः ।  
 एतावदधिक तेषा यजु काम विवक्षति ॥६९  
 एकादश सहस्राणि दश चान्या दशोत्तरा ।  
 ऋचान्दश सहस्राणि अशीतित्रिशतानि च ॥७०  
 सहस्रमेक मन्त्राणामृचामुक्त प्रमाणत ।  
 एतावद्भृमुविस्तारमन्यद्वार्थविक बहु ॥७१

बारह सहस्र छन्द आध्वर्यव कहते गये हैं । यजु का और ब्राह्मणों का अर्थात् ब्राह्मण भागों का जिस तरह व्यास अर्थात् विस्तार कलित किया है ॥ ॥६४॥ वह सप्तम्यारण्यक तथा समन्त्रकरण होता है । इसमें आगे कथाओं का तो पूर्वा यह विशेषण होता है ॥६५॥ सप्तम्यारण्य और समन्त्र ऋक्-ब्राह्मण और यजु कहा गया है । इसी प्रकार से हारिद्वीपों के खिलामि एव उपखिलामि तथा तैत्तिरीयो के परशुद्रा कला गया है ॥६६॥ सौ कम दो हजार वाजसनेयक वेद में ऋक् गण की परिमख्या की गई है, ब्राह्मण भाग तो चौगुना होता है ॥६७॥ आठ सहस्र आठमौ अस्मि अन्यान्य और अधिक पाद होता है । यह प्रमाण यजु का और मशुक्रिया मखिल याज्ञवल्क्य ऋक् का है ॥६८॥ इसी प्रकार में चरण विद्याओं का प्रमाण एव महिना का अर्थण करो । छै सहस्र छन्दोंस ऋचाओं का कहा गया है । इतना अधिक उनका यजु है जो काम को कहता है ॥६९॥ ग्यारह हजार दशोत्तर और अन्य दश है । दस सहस्र तीन सौ अस्मि ऋक् है ॥७०॥ ऋचाओं, मन्त्रों का एक महस्र प्रमाण से कहा है । इतना ऋक् का विस्तार है और अन्य बहुत आर्याविक होता है ॥७१॥

प्रत्युप वा पुन क्वा गया है ॥८५॥ पर्यंत और नारद ये दोनों कश्यप के मात्मन हैं । ये दोनों जो ऋषि करते हैं इन्हीं कारण मे वे देवपि कह गये हैं ॥८५॥

मानवे वैपये द्रुणे ऐलवसे च ये नृपा ।

ऐला ऐशवाकनाभागा ज्ञेया राजर्षयस्तु ते ॥८६॥

ऋषयन्ति रञ्जनाद्यत्मात्प्रजा राजर्षयस्तत ।

ब्रह्मलोकप्रतिष्ठास्तु स्मृता ब्रह्मर्षयो मता ॥८७॥

देवलोकप्रतिष्ठाश्च ज्ञेया देवर्षय शुभा ।

इन्द्रलोकप्रतिष्ठास्तु सर्वे राजर्षयो मता ॥८८॥

अभिजात्या च तपसा मन्त्रव्याहरणस्तथा ।

एव ब्रह्मर्षयः प्रोक्ता दिव्या राजर्षयस्तु ये ॥८९॥

देवर्षयस्तथान्ये च तेषा वक्ष्यामि लक्षणम् ।

भूतभव्यभवज्ञान सत्याभिव्याहृत तथा ॥९०॥

सम्बुद्धास्तु स्वय ये तु सम्बुद्धा ये च वो स्वयम् ।

तपसेह प्रसिद्धा ये गर्भ्येश्च प्रणोदितम् ॥९१॥

मन्त्रव्याहारिणो ये च ऐश्वर्यात्सर्वगाश्च ये ।

इत्येते ऋषिभिर्भुक्ता देवद्विजनृपास्तु ये ॥९२॥

एतान् भावानधीयाना ये चेत ऋषियो मता ।

सप्तंते ममभिश्चैव गुरां सप्तर्षय स्मृता ॥९३॥

मानव वैपय वश मे और ऐल वश मे जो राजा हैं वे ऐल ऐशवाक और नाभाग राजर्षि जानने के योग्य ह ते हैं ॥८६॥ ऋषि करते हैं और प्रजापति का रञ्जन करते हैं इगलिये इन्हें राजर्षि कहा गया है । ब्रह्मा लोक प्रतिष्ठा वाले ब्रह्मर्षि माने गये हैं ॥८७॥ देवलोक मे प्रतिष्ठा वाले शुभ देवर्षि कहे गये हैं । इन्द्र लोक मे प्रतिष्ठा वाले सब राजर्षि माने गये हैं ॥८८॥ अभिजाति से और तप मे तथा मन्त्रों के व्याहरणों से इस प्रकार से ब्रह्मर्षि विग्य तथा राजर्षि कहे गये हैं ॥८९॥ जो अन्य देवर्षि हैं उनके लक्षण मैं बतलाऊँगा । भूत-भव्य भव का ज्ञान तथा सत्याभिव्याहृत भी बतलाया जायगा ॥९०॥ जो स्वय ही सम्बुद्ध हुए और जो स्वय सम्बुद्ध हैं, यहाँ जो तप से प्रसिद्ध हुए और जिन्होंने गर्भ मे

प्रणोदित किया, जो मन्त्रों के व्याहरण करने वाले हैं और जो ऐश्वर्य से सर्वत्र गमन करने वाले हैं, ये देव-द्विज और नृप ऋषियों से युक्त हैं। इन भावों का अध्ययन करते हुए और जो ये ऋषि माने गये हैं वे सप्त गुणों से युक्त सात ही हैं इसीलिए सप्तर्षि कहे गये हैं ॥६१॥६२॥६३॥

दीर्घायुषो मन्त्रकृत ईश्वरा दिव्यचक्षुष ।

बुद्धा प्रत्यक्षधर्माणो गोत्रप्रवर्तकाश्च ये ॥६४॥

पट्कर्माभिरता नित्य शालिनो गृहमेधिन ।

तुल्यैर्व्यवहरन्ति स्म अदृष्टै कर्महेतुभि ॥६५॥

अग्राम्यैर्वर्तयन्ति स्म रसंश्चैव स्वयकृते ।

कुटुम्बिन ऋद्धिमन्तो ब्राह्मन्तरनिवासिन ॥६६॥

कृतादिषु युगारूपेषु सर्वेष्वेव पुन पुन ।

वर्णा श्रमव्यवस्थान क्रियन्ते प्रथमन्तु वी ॥६७॥

प्राप्तं श्रेतायुगमुखे पुन राक्षस्यस्त्वह ।

प्रवर्तयन्ति ये वर्णा नाश्रमाश्च ॥ सर्वाश ॥

तेषामेवान्वये वीरा उत्पद्यन्ते पुन पुन ॥६८॥

दीर्घ आयु वाले—मन्त्रों के करने वाले—ईश्वर-दिव्य चक्षु वाले—गृह-प्रत्यक्ष धर्म वाले—और जो गोत्रों के प्रवर्तक हैं—वह कर्मों में रत रहने वाले नित्यशाली—गृहमेधी—अदृष्ट कर्मों के हेतुओं से तुल्य व्यवहार किया करते हैं। वे जो स्वयं कृत अग्राम्य रमा से वर्तन किया करते हैं वे—कुटुम्बी ऋद्धि वाले—ब्राह्म और अन्तर के निवास करने वाले कृतादिनाम वाले ममस्त युगों में बार-बार पहिने वर्यों और आश्रमों की व्यवस्था जिनके द्वारा की जाती है। श्रेता युग के मूल के प्राप्त होने पर यहाँ पर पुन ये सप्तर्षि गण सर्वत्र वर्गों और आश्रमों का प्रवर्तन करते हैं उन्हीं के वश में वीर बार-बार उत्पन्न होते हैं ॥६४॥ ॥६५॥६६॥६७॥६८॥

जायमानि पिता पुत्रे पुत्र पितरि चैव हि ।

एव समेत्याविच्छेदाद्वर्तयन्त्यायुगक्षयात् ।

अष्टाशीतिसहस्राणि प्रोक्तानि गृहमेधिनाम् ॥६९॥

अर्यम्णो दक्षिणा ये तु पितृयाण समाश्रिताः ।  
 दाराग्निहोत्रिणस्ते वै ये प्रजाहेतव स्मृताः ॥१००॥  
 गृहमेधिनाञ्च संख्येया इमशानान्याथयन्ति ते ।  
 अष्टाशीतिसहस्राणि निहिता उत्तरायणे ॥१०१॥  
 ये श्रूयन्ते दिवा प्राप्ता ऋषयो ह्यूर्ध्वरेतसः ।  
 मन्त्रब्राह्मणकर्तारो जायन्ते ह युगक्षये ॥१०२॥  
 एवमावर्त्तमानास्ते द्वापरेषु पुन पुन ।  
 कल्पाना भाष्यविद्याना नानाशास्त्रकृत क्षये ॥१०३॥  
 भविष्ये द्वापरे चैव द्रोणिर्द्वैपायन पुन ।  
 वेदव्यासो ह्यतीतेऽस्मिन् भविता मुमहातपा ॥१०४॥  
 भविष्यन्ति भविष्येषु शाखाप्रणयनानि तु ।  
 तस्मै तद्ब्रह्मण ब्रह्म तपसा प्राप्तमव्ययम् ॥१०५॥

पुत्र के उत्पन्न हो जाने, पिता और पिता के विषय में पुत्र इन प्रकार से  
 अविच्छेद से मिलकर युग के क्षय पर्वन्त वर्तन किया करते हैं । ये ऐसे गृहमेधी  
 ऋद्धासी हजार बने गए हैं ॥१००॥ अर्यमा के जो दक्षिण होते हैं वे पितृयाण में  
 समाश्रित होते हैं । वे दाराग्निहोत्री हैं और जो प्रजा के हेतु रूप बने गये हैं  
 ॥१००॥ जो गृहमेधी इमशानों का प्राश्रय लेते हैं उनकी मर्यादा करने के योग्य  
 है वे भी ऋद्धासी हजार उत्तरायण में निहित होते हैं ॥१०१॥ जो उर्ध्वरेता ऋषि  
 दिव्य लोक में प्राप्त हो गये हैं और ऐसे मुने जाते हैं वे मन्त्र और ब्राह्मण के  
 कर्ता युग के क्षय हो जाने पर उत्पन्न हुआ करते हैं ॥१०२॥ इन प्रकार से  
 द्वारों में पुन पुन आवर्त्तमान होते हैं और क्षय में कल्पों-भाष्य विद्याओं के  
 नाश प्रकार के शास्त्रों के करने वाले होते हैं ॥१०३॥ भविष्य द्वापर में फिर  
 द्रोणिर्द्वैपायन मुमहातपा वेदव्यास इनके अतीत हो जाने पर होंगे ॥१०४॥  
 भविष्यों में शाखा प्रणयन होंगे । उन्हें लिए उन ब्रह्मा के द्वारा तप से अत्य  
 ब्रह्म प्राप्त किया गया था ॥१०५॥

तपसा कर्म सम्प्राप्तं कर्मणा हि ततो यतः ।

यमया प्राप्य सत्य हि सत्येनातो हि चाव्यय ॥१०६॥

अव्ययादमृत शुक्रममृतात् सवमेव हि ।  
 ध्रुवमेवाक्षरमिद स्वात्मयेव व्यवस्थितम् ।  
 बृहन्वाद्बृ हृणाच्चैव तद्ब्रह्मैत्यभिधीयते ॥१०७॥  
 प्रणवाव स्थित भूयो भूर्भुव स्वरिति स्मृतम् ।  
 ऋग्यजु सामाथवरूपिणो ब्रह्मणो नम ॥१०८॥  
 जगत प्रलयोत्पत्तौ यत्तत्कारणसंज्ञितम् ।  
 महत परम गुह्य तस्मै सुब्रह्मणो नम ॥१०९॥  
 अगाधापरमक्षय्य जगत्सम्मोहनालयम् ।  
 सप्रकाशप्रवृत्तिभ्या पुरुषाथप्रयोजनम् ॥११०॥  
 साह्ययनानवता निष्ठा गति सङ्गदमात्मन ।  
 यत्तदव्यक्तममृत प्रकृतिब्रह्म नाश्रितम् ॥१११॥  
 प्रधानमात्मयोनिश्च गुह्य सत्त्वञ्च शब्दते ।  
 अविभागस्तथा शुक्रमक्षर बहु वाचकम् ।  
 परमब्रह्मणो तस्मै नित्यमेव नमो नम ॥११२॥

तपस कम सम्प्राप्त किया और कम के द्वारा फिर यग का लाभ हुआ ।  
 यग से त य को पाकर फिर उस सत्य से अव्यय को प्राप्त किया ॥१०६॥ अव्यय  
 से प्रमृत और प्रमृत से ममी शुक्र को प्राप्त किया । यह ध्रुव एवाक्षर अपनी  
 मामा म ही व्यवस्थित है । बृहत्त्व होने से और बृहण होने के कारण से ही  
 वह ब्रह्म ऐसे नाम से कहा जाया करता है ॥१०७॥ प्रणव के रूप में अवस्थित  
 फिर भूर्भुव स्व ऐसा कहा गया है । उस ऋक् यजु-साम और अथर्व के रूप  
 वाले ब्रह्म के लिए नमस्कार है ॥१०८॥ इन जगह की प्रलय और उत्पत्ति में  
 जो वह कारण की सजा वाला कहा गया है वह महत् का परम गुह्य है उस  
 सुब्रह्म के लिए नमस्कार है ॥१०९॥ यह जगत् अगाध-अपार अक्षय्य और  
 सम्मोहन का पर है । सप्रकाश प्रवृत्तियों से पुरुषाथ के प्रयोजन द्वारा होता  
 है ॥११०॥ साह्य के ज्ञान वाली की निष्ठा-गति-आत्मा का सङ्घट जो वह  
 अव्यक्त-प्रमृत प्रकृति ब्रह्म नाश्रित है वह प्रधान आत्मयोनि गुह्य और सत्त्व इन  
 दान्ते से कहा जाता है । अविभाग शुक्र है और अक्षर बहुत का वाचक होगा  
 है । उस परम ब्रह्म के लिये नित्य ही नमस्कार है ॥१११॥११२॥

वृत्ते पुनः क्रिया नास्ति कुत एवावृत्तक्रिया ।  
 सवृदेव वृत्तं सधं यद्वं मोवे वृत्तावृत्तम् ॥११३॥  
 श्रोत्र्ययं च श्रुतं वापि तथैवामाधुसाधुता ।  
 ज्ञानव्यञ्चाय मन्तव्यं स्पष्टव्य भोग्यमेव च ।  
 द्रष्टव्यञ्चाय श्रोत्र्यं ज्ञानव्य वाय विञ्चन ॥११४॥  
 दग्धित यदनेनैव ज्ञानं तद्वं सुरपिणाम् ।  
 यद्वं दग्धितवानेष पन्तदन्वेष्टुमहंति ।  
 सर्वाणि सर्वान्तर्वाञ्च भगवानेव सोऽग्रवीन् ॥११५॥  
 यदा यत्क्रियते येन तदा तत्सोऽभिमान्यते ।  
 येनेद क्रियते पूर्वं तदन्येन विभावितम् ॥११६॥  
 यदा तु क्रियते किञ्चित्त्वेनचिद्वाङ्मय क्वचिन् ।  
 तेनेव तत्कृतं पूर्वं वत्तं एा प्रतिभाति वं ॥११७॥  
 विरक्तञ्चातिरिक्तञ्च ज्ञानाज्ञाने प्रियाप्रिये ।  
 धर्माधर्मौ सुम दु म् मृत्युञ्चामृतमेव च ।  
 ऊर्द्धं न्तिर्यंगधोभागस्तस्मैवाट्टवारणम् ॥११८॥  
 स्वायम्भुवोऽय ज्येष्ठस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिन ।  
 प्रत्येकविद्यम्भवति भेतास्विह पुन पुनः ॥११९॥

वृत्त में क्रिया नहीं है फिर अवृत्त की क्रिया कित्ते हुई ? एक बार हो जो सब क्रिया गया है वह लोक में वृत्तावृत्त है ॥११३॥ श्रुत को सुनना चाहिए उमी प्रकार से असाधु साधुता है । जानना चाहिए—मानना चाहिए—स्पर्श के योग्य होना चाहिए—भोग करना चाहिए—देवता चाहिए—सुनना चाहिए—कुछ जानना चाहिए ॥११४॥ जो इसी के द्वारा देखा गया वह सुरपियों का ज्ञान है । जिसने यह देखा है वह बौद्ध है, वही बूढ़ने के योग्य होता है । सबको-सबको भगवान ही हैं ऐसा वह बोले ॥११५॥ जिस समय में जो जिसके द्वारा किया जाता है उस समय उसके द्वारा वह माना जाता है । जिसके द्वारा यह पहिले किया जाता है वह अय के द्वारा विभावित होता है ॥११६॥ जिस समय किसी के द्वारा कुछ वाङ्मय कही मर किया जाता है वह उगी के द्वारा, पहिले



किया हुआ करने वालों को प्रतिभान होता है ॥११७॥ ज्ञान और भ्रजान मे-  
प्रिय और अप्रिय में विरक्त और अनिरिक्त-धर्म एव अधर्म-सुख-दुःख-मृत्यु-  
अमृत-ऊर्ध्व-तिवङ्क् और अधोभाग ये सब उसी भ्रष्ट का कारण होता है  
॥११८॥ ज्येष्ठ परमेष्ठो ब्रह्मा का स्वायम्भुव यहाँ वेतामा मे पुन-पुन प्रत्येक  
विद्य वाला होता है ॥११९॥

व्यस्यते ह्येव विद्यन्तद्वापरेषु पुनः पुनः ।  
ब्रह्मा चंतदुवाचादी तस्मिन् वैवस्वतेऽन्तरे ॥१२०॥  
आवर्त्तमाना ऋषयो युगाख्यासु पुनः पुनः ।  
कुर्वन्ति सहिता ह्येते जायमानाः परस्परम् ॥१२१॥  
अष्टाशीतिसहस्राणि श्रुतर्षीणा स्मृतानि वै ।  
ता एव सहिता ह्येते आवर्त्तन्ते पुन पुनः ॥१२२॥  
श्रिता दक्षिणपन्थान ये दमसानानि भेजिरे ।  
युगे युगे तु ताः शाखा व्यस्यन्ते तैः पुन पुनः ॥१२३॥  
द्वापरेष्विव सर्वेषु सहिताश्च श्रुतर्षिभिः ।  
तेषा गोत्रेष्विमाः शाखा भवन्तीह पुनः पुन ।  
ताः शाखास्तत्र कर्त्तारो भवन्तीह युगक्षयात् ॥१२४॥  
एवमेव तु विज्ञेय व्यतीतानागतेष्विह ।  
मन्वन्तरेषु सर्वेषु शाखाप्रणयनानि वै ॥१२५॥  
अतीतेषु अतीतानि वर्त्तन्ते साम्प्रतेषु च ।  
भविष्याणि च यानि स्युर्वर्ण्यन्तेऽनागतेष्वपि ॥१२६॥

द्वापरो मे बार बार एक विद्य वाला व्यवस्यमान होता है । आदि मे  
वैवस्वत मन्वन्तर मे ब्रह्माजी ने यह बोला था ॥१२०॥ ऋषिगण बार-बार  
युगाख्यासो मे आवर्त्तमान होने हैं और परस्पर मे जायमान होते हुए इन  
सहितार्षी को किया करते हैं ॥१२१॥ अष्टासी हजार श्रुतर्षि कहे गए हैं और वे  
ही सहिताएँ बार-बार आवर्त्तमान हुआ करती हैं ॥१२२॥

दक्षिण मार्गों का प्राप्रय होने वाले जिहोंने दमसानों का सेवन किया  
या युग युग मे पुन पुन वे ही शाखासो को किया करते हैं ॥१२३॥ यहाँ सब

डाइरों के धूम्रानियों के द्वारा सहिताएँ और उनके गार्तों में ये सागाएँ बार-बार होती हैं। यहाँ पर सागाएँ वहाँ पर उभरे करने वाले युग के क्षय से होते हैं ॥१२४॥ इसी प्रकार से जो व्यतीत हो गये हैं उनमें और जो घागे होने वाले घन्तान्त हैं उनमें सब जान लेना चाहिए। सब मन्वन्तरों में सासाघा के प्रणयन भी जान लेने चाहिए ॥१२५॥ घन्तीता में घन्तीत होने हैं और माग्प्रतो म धर्मान् चर्मानाओं म और जो भविष्य है वे घनागतों में बलिष्ठ विवे जाते हैं ॥१२६॥

पूर्वग पश्चिम ज्ञेय यत्तमानेन चोभयम् ।

एतेन क्षमयोगेन मन्वन्तरविनिश्चय ॥१२७॥

एव देवाश्च पितर ऋषयो मनवश्च ये ।

मन्त्रं सहोद्धं गच्छन्ति ह्यावर्तन्ते च तैः सह ॥१२८॥

जनलोकात्पुरा सर्वे पशुफल्पात्पुन पुनः ।

पर्याप्तमाले सम्प्राप्ते सम्भूता नव नस्य (?) तु ॥१२९॥

अवश्यम्भाविनाथेन सम्बध्यन्ते तदा तु ते ।

ततस्ते दोषवज्जन्म पर्यन्ते रागपूर्वकम् ॥१३०॥

निवर्तते तदा वृत्तिस्तेषामादोषदर्शनात् ।

एव देव युगानीह दशकृत्वा निवर्तते ॥१३१॥

जनलोकः। तपोलोक गच्छन्तीह। निवर्तनम् ।

एव देवयुगानीह व्यतीतानि सहस्रशः ।

निधन ब्रह्मलोके वै गतानि मुनिभिस्सह ॥१३२॥

न शक्यमानुपूर्व्येण तेषा वक्तु सविस्तरान् ।

अनादित्वाच्च कालस्य असह्यथानाच्च सर्वशः ।

मन्वन्तराण्यतीतानि यानि कल्पं पुरा सह ॥१३३॥

पूर्व से पश्चिम जानना चाहिए और वर्धमान से पूर्व और पश्चिम दोनों को ही जान लेना चाहिए। इस क्रम के योग से मन्वन्तरों का विनिश्चय हुआ करता है ॥१२७॥ इसी प्रकार से देव पितर-ऋषि और मनुष्य ये सब मन्त्रों के सहित ऊर्ध्व भाग को चले जाया करते हैं और उनके साथ ही फिर आपर्त्त

मान होने रहते हैं ॥१२८॥ जननी से समस्त देवगण पशुवृत्त में धारदार-  
पर्याप्त बाल के सम्प्राप्त होने पर सम्भूत हुआ करते हैं और कभी नष्ट नहीं होने  
हैं ॥१२९॥ उस समय में वे अवश्यम्भावो प्रथम में सम्बद्ध रहा करते हैं । इससे  
वे राग पूर्वक दोष वाले जन्म को देखा करते हैं ॥१३०॥ उन समय में उनकी  
वृत्ति दोष दर्शन तक निवृत्त हो जाती है । इस प्रकार से यहाँ पर देव युग  
दस बार निवृत्त हुआ करते हैं ॥१३१॥ यहाँ पर अनिवर्तन जनलोक से तपो  
लोक को जाता है । इस प्रकार से यहाँ देवयुग सहस्रो व्यतीत होते हैं । मुनियों  
के साथ ब्रह्म लोक में निधन को गन होते हैं ॥१३१॥ आनुपूर्वी से उनके पूर्ण  
विस्तार का वर्णन नहीं किया जा सकता है क्योंकि इनका कारण उनका घनादि  
होना और बालका सब ओर से प्रसम्भान होना है । पहिले जो मन्वन्तर व्यतीत  
हो गये हैं और कल्प हो चुके हैं वह सब वर्णित नहीं किये जा सकते हैं ॥१३३॥

पितृभिर्मुनिभिर्देवैः साद्धं सप्तपिभिश्च वं ।

कालेन प्रतिमृष्टानां युगानाञ्च निवर्तनम् ॥१३४॥

एतेन कमयोगेन कल्पमन्वन्तराणि तु ।

सप्रजानि व्यतीतानि शतशोऽप्य सहस्रशः ॥१३५॥

मन्वन्तरान्ते सहारः सहारान्ते च सम्भव ।

देवतानामृषीणाञ्च मनो पितृगणस्य च ॥१३६॥

न शक्यमानुपूर्वेण वक्तुं वर्णयत्तरपि ।

विस्तरस्तु निमगंस्य सहारस्य च सर्वत ।

मन्वन्तरस्य सहस्रा तु मानुषेण निबोधत ॥१३७॥

देवतानामृषीणाञ्च सद्ब्रह्मचानार्थविशारदं ।

त्रिशतकोट्यस्तु सपूर्णाः सद्ब्रह्मचाना सद्ब्रह्मयया द्विजैः ॥१३८॥

सप्तपष्टिन्त धान्यानि नियुक्तानि च सद्ब्रह्मचया ।

विनातिश्च सहस्राणि कालोऽप्य सोधिरान् विना ॥१३९॥

मन्वन्तरस्य सद्ब्रह्मचया मानुषेण प्रकीर्तिता ।

वरा रेणैव दिव्येन प्रवक्ष्याम्यन्तरम्मनो ॥१४०॥

पितर मुनिगण देव जो कि गन्तवियों के साथ ही हैं—काल से प्रतिमृष्ट

घोर युगों का निवर्तन इस क्रम के योग से कल्प तथा मन्वन्तर प्रजापति के साथ सँकड़ो ही तथा हजारों ही व्यतीत हो चुके हैं ॥१३५॥ मन्वन्तर के अन्त में सहार और सहार के अन्त में जन्म देवों का-ऋषियों का-मनुका और विनृगण का होता रहता है ॥१३६॥ आनुपूर्वों से सौ वर्षों में भी इस निसर्ग का विस्तार और सब सहार बताया नहीं जा सकता है । मन्वन्तर की सख्या तो मानुष से जान लो ॥१३७॥ अर्ध-विशारदों ने देवों तथा ऋषियों की सरया तीस करोड़ सम्पूर्ण द्विजों के द्वारा सख्या से सख्यात की गई है ॥१३८॥ अधिको को छोड़ कर वह काल सख्या से सखसठ नियुक्त बीस सखस्र होता है ॥१३९॥ मन्वन्तर की यह सख्या मानुष के द्वारा कही गई है । भव दिव्य परस्पर से मनुका जो अन्तर् होता है उसे कहेंगा ॥१४०॥

अष्टौ शतसहस्राणि दिव्यया सहस्रयया स्मृतम् ।

द्विपञ्चाशतयान्यानि सहस्राण्यधिकानि तु ॥१४१॥

चतुर्दशगुणो ह्येष काल आहूतसप्तव ।

पूर्णा युगसहस्र स्यात्तदहर्ब्रह्माण स्मृतम् ॥१४२॥

तत्र सर्वाणि भूतानि दग्धान्यादित्यरश्मिभिः ।

ब्रह्माण मम्रत कृत्वा सह देवपिदानवैः ।

प्रविशन्ति सुरश्रेष्ठं देवदेव महेश्वरम् ॥१४३॥

स स्रष्टा सर्वभूतानि कल्पादिषु पुनः पुनः ।

इत्येष स्थितिकालो वै मनोर्देवपिभिः सह ॥१४४॥

सर्वमन्वन्तराणां वै प्रतिसन्धिः निबोधत ।

युगाख्या या समुद्दिष्टा प्रापेवास्मिन् मया तव ॥१४५॥

कृतप्रेतादिभ्युक्तं चतुर्गुणमिति स्मृतम् ।

तदेकसप्ततिगुणं परिवृत्तं तु माधिकम् ॥

मनोरेकमधीकारं प्रोवाच भगवान् प्रभुः ॥१४६॥

दिव्य सख्या से घाटमो महत्त्व बनाया गया है । तथा इनमें दो पंचायन् सहस्र अधिक होता है ॥१४१॥ आहूत सप्तव यह समय चौदह गुणा होता है ।

पूरा एक सहस्र युग ब्रह्मा का पूरा दिन हुआ करता है, ऐसा बताया गया

हे ॥१४२॥ वहाँ पर समस्त प्राणी सूर्य की किरणों से क्षय हो जाते हैं । ब्रह्मा को आने करके देव-ऋषि और दानवों के साथ देवों के देव और गुरों के ईश्वर महेश्वर में प्रवेश किया करते हैं ॥१४३॥ वह ही कल्पादि में बार-बार समस्त प्राणियों का सब होता है । यह ही देवर्षियों के साथ मनु की स्थिति का काल होता है ॥१४४॥ समस्त मन्वन्तरो की प्राप्ति सन्धि की समझलो । मैंने उसमें पहिले ही युगाख्या जो तुम्हारे सामने ममुद्दिष्ट की थी ॥१४५॥ वृत्तत्रेतादि मयुक्त चतुर्गुण कहा गया है । वह इत्तर गुणा परिवृत्त साधित मनु का एकाधिकार भगवान् प्रभु ने बतलाया था ॥१४६॥

एव मन्वन्तराणां तु सर्वेषामेव लक्षणम् ।

अतीतानागताना वै वर्तमानेन कीर्तितम् ॥१४७

इत्येव कीर्तितं सर्गो मनो स्वायम्भुवस्य ह ।

प्रति सन्धिन्तु वक्ष्यामि तस्य वै चापरस्य तु ॥१४८

मन्वन्तरं यथा पूरंमृगिभिर्देवतै सह ।

अवश्यम्भाविनाथेन यथा तद्वै निवर्तते ॥१४९

अस्मिन् मन्वन्तरे पूर्वं त्रैलोक्यस्येश्वरास्तु ये ।

सप्तर्षयश्च देवास्ते पितरो मनवस्तथा ।

मन्वन्तरस्य बाले तु सम्पूर्णं साधवास्तथा ॥१५०

धीणाधिवारा सवृत्ता बुद्धा पर्वयिमारमन ।

महर्षीवाप ते सर्वे उन्मुग्धा दधिरे गतिम् ॥१५१

ततो मन्वन्तरे तस्मिन् प्रशोणा देवतास्तु ता ।

गम्पूर्णं स्थितिबाले तु तिष्ठन्त्येव कृत युगम् ॥१५२

उत्पद्यन्ते भविष्याश्च यावन्मन्वन्तरेश्वरा ।

देवता पितरश्चैव ऋषयो मनुरेव च ॥१५३

इसो प्रकार ग मभी मन्वन्तरो का लक्षण होता है । अर्थात् धीरे धन्त-  
तो का पर्यायान के द्वारा किया गया है ॥१५७॥ यह स्वायम्भुव मनु का गर्ग बत-  
लाया गया है । अब उगरो तथा दूगरे की प्रति सन्धि बतनाईगा ॥१५८॥  
अब प्रकार से पहिले ऋषि और देवों के साथ मन्वन्तर अवश्यम्भावी ऋषयों के

जैसे वह निवृत्त होता है ॥१४६॥ इस मन्वन्तर में पहिले जो त्रैलोक्य के ईश्वर हैं—सप्तपि-देव-पितर तथा मनुष्य ये सभी सम्पूर्ण मन्वन्तर के समय में साधक होते हैं ॥१५०॥ क्षीण अधिकार वाले हुए धरते पर्याय (पारी) को जानकर वे सब महर्षीक के लिए उन्मुख होते हुए गति को धारण किया करते थे ॥१५१॥ इसके पश्चात् उस मन्वन्तर प्रक्षीण हुए वे सब देवता एक कृत युग में पूरे स्थिति के समय में उहारा करते हैं ॥१५२॥ जिसने मन्वन्तर के ईश्वर हैं जैसे—देवता—पितर—ऋषि लोग और मनु उत्पन्न होते हैं और प्राणि होने वाले होते हैं ॥१५३॥

मन्वन्तरे तु सम्पूर्णं यद्यन्यद्वा कला युगे ।

सम्पद्यते वृत्तं तेषु कलिशिष्टेषु च तदा ॥१५४

यथा कृतस्य सन्तानः कलिपूर्वं स्मृती बुधे ।

तथा मन्वन्तरान्तेषु आदिमन्वन्तरस्य च ॥१५५

क्षीणे मन्वन्तरे पूर्वं प्रवृत्ते चापरे पुनः ।

मुखे कृतयुगस्याथ तेषां शिष्टास्तु ये तदा ॥१५६

सप्तपंथो मनुश्चैव कालावेदास्तु ये स्थिताः ।

मन्वन्तर प्रतीक्षन्ते क्षीयन्ते तपसि स्थिता ॥१५७

मन्वन्तरव्यवस्थार्थं सन्त्यर्थञ्च सर्वग ।

पूर्ववत् सम्प्रवर्त्तन्ते प्रवृत्ते वृष्टिसर्जने ॥१५८

द्वन्द्वेषु सम्प्रवृत्तेषु उत्पत्तास्वोपधीषु च ।

प्रजासु च निकेतासु सस्थितासु क्वचित् क्वचित् ॥१५९

वार्त्तायान्तु प्रवृत्ताया सदमं ऋषिभाविते ।

निरानन्दे गते लोके नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥१६०

ग्रथामनगरे चैव वर्णाश्रमत्रिविजिते ।

पूर्वमन्वन्तरे शिष्टे ये भवन्तीह धार्मिकाः ।

सप्तपंथो मनुश्चैव संतानार्थं व्यवस्थिताः ॥१६१

सम्पूर्ण मन्वन्तर में यदि अन्य कलियुग में सम्पन्न होता है । कलियुग

में शिष्ट उनके होने पर उस समय कृत होता है ॥१५४॥ जिस प्रकार से बुधे

ने कृत की सन्तान बलिपूर्व बताई है उसी प्रकार में मन्वन्तरान्तो में मन्वन्तर का प्रावि हुषा करता है ॥१५५॥ पूर्व मन्वन्तर के क्षीण हो जाने पर और फिर दूसरे के प्रवृत्त होने पर वृत्तयुग के मुख में और इसके धनन्तर जो उनके निष्ट होते हैं वे उन समय में होने हैं ॥१५६॥ सप्तपियों का समुदाय और मनु जो वावापेश स्थित होते हैं वे मनु मन्वन्तर की प्रतीक्षा किया करते हैं और तप में स्थित क्षीण होते हैं ॥१५७॥ मन्वन्तर की व्यवस्था करने के लिए और सन्तति प्राप्त करने के वास्ते सब ओर में पूर्व की ही भाँति वृद्धि के सज्जन के प्रवृत्त हो जाने पर वे सम्प्रवृत्त हुषा करते हैं ॥१५८॥ इन्द्रो के सम्प्रवृत्त होने पर और औरियों के समुत्पन्न हो जाने पर और वही-कही पर प्रजाओ के विवेको से सत्सिक्त होने पर ॥१५९॥ वाताँ के प्रवृत्त हो जाने पर तथा गङ्गमं के ऋषियों के द्वारा भावित होने पर-समस्त इन्द्र लोक के आनन्द रहित हो जाने पर एव स्वावर (जड प्रचेतन) और जङ्गम (चिन्तन) के नष्ट हो जाने पर ॥१६०॥ क्रमो और नगरो से रहित लोग के हो जाने पर तथा चारो वरुँ और धात्रमों से एतदम भूय हो जाने पर पहिले मन्वन्तर के निष्ट रहने पर यहाँ पर जो भी धर्म के मानने वाले व्यक्ति होतेहैं वे सप्तपियों के समूह और मनु सन्तान की वृद्धि करने के लिए व्यवस्थित हुए थे ॥१६१॥

प्रजाय तपता तेषा तप परमदुश्चरम् ।

उत्पद्यतीह सर्वेषा निधनेष्विह सर्वेश ॥१६२

देवामुरा पितृगणा मुनयो मनवस्तथा ।

सर्पा भूता पिशाचाश्च गन्धर्वा यक्षाराक्षसा ॥१६३

ततरतेषा तु ये निष्ठा निष्ठाचारान् प्रचक्षते ।

सप्तप्यो मनुश्चैव आदौ मन्वन्तरस्य ह ।

प्रारम्भन्ते च कर्माणि मनुष्या देवतं सह ॥१६४

मन्वन्तरादौ प्रागेव त्रेतायुगमुने ततः ।

पूर्वं देवास्ततस्ते वं स्थिते धर्मो तु सर्वदाः ॥१६५

श्रीश्रीणा ब्रह्मक्षयैण गत्याऽऽनुपपन्तु ये ततः ।

पितृणा प्रमया चैव देशानामिज्जया तथा ॥१६६

शत वर्षमहलाणि धर्मो वर्णात्मके स्थिता ।

त्रयी वार्त्ता दम्डनीति धर्मान् वर्णाश्रमास्तथा ।

रथापयित्वाश्रमाश्चैव स्वर्गाय दधिरे मती ॥१६७

पूर्व देवेषु तेभ्येव स्वर्गाय प्रमुखेषु च ।

पूर्व देवास्ततस्ते वै स्थिता धर्मोऽण कृत्स्नशः ॥१६८

प्रजा की प्राप्ति करने के लिए तपश्चर्या करने वाले उनकी तपस्या श्रत्यन्त ही दुष्कर थी । यहाँ पर सब लोगो का निधन (मृत्यु) हो जाने पर सभी श्वोर उत्पन्न हुआ करते हैं ॥१६२॥ देव तथा अमुर-पितृगण-मुनि वृन्द तथा मनुगण-सर्प-भूत-पिशाच-गन्धर्व-यक्ष और राक्षस इसके पश्चात् उनमे जो शिष्ट थे वे शिष्टाचारो को किया करते हैं । मन्वन्तर आदि मे मत्तपियो का समुदाय और मनु तथा देवो के साथ ही मनुष्य वर्मो का प्रारम्भ किया करते हैं ॥१६३-१६४॥ मन्वन्तर के आदि मे पहिले ही त्रेतायुग के मुख मे पहिले देव होते हैं इसके पश्चात् सभी श्वोर से धर्म स्थित हो जाने पर ऋषियो के ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करने मे आनुष्य अर्थात् ऋण का चुकाया जाने को प्राप्त हुए फिर इसके अनन्तर सतान की समुराति करके उसके द्वारा पितृगण की अनृणता (ऋण का अभाव) प्राप्त की फिर इसके अनन्तर इज्या का यजन करने से देवो की अनृणता प्राप्त की थी ऋषि-ऋण पितृ-ऋण और देव-ऋण ये तीन ऋणो का भार सभी के ऊपर रहना है जोकि ब्रह्मचर्य-मन्तति और यज से क्रम से चुकाया जाया करता है ॥१६४-१६५-१६६॥ सो सहस्र वर्ष तक वर्णात्मक धर्म मे स्थित होते हुए उन्होने त्रयी-वार्त्ता-दण्ड नीति वरों तथा आश्रमो के धर्मो को स्थापित करके और ब्रह्मचर्य-गार्हस्थ्य-वानप्रस्थ और स्यास इन चारो आश्रमो की स्थापना करके फिर स्वर्ग के गमव करने की बुद्धि धारण की अर्थात् स्वर्ग मे चले गये थे ॥१६७॥ पहिले देवो के और फिर उनके स्वर्ग के लिए प्रमुख हो जाने पर पहिले देव और इसके पश्चात् वे सब पूर्णतया धम के साथ स्थित हुए थे ॥१६८॥

---ान्तरे परावृत्ते स्थानान्युत्सृज्य सर्वश ।

त्रै सहोर्ध्वं ज्जच्छन्ति महर्लोकमनामयम् ॥१६९



विनिवृत्तविकारास्ते मानसी सिद्धिमास्थिता ।  
 अवेक्षमाणा वशिनस्तिष्ठन्त्याभूतसप्लवम् ॥१७०॥  
 ततस्तेषु व्यतीतेषु सर्वेष्वेतेषु सर्वदा ।  
 दून्नेषु देवस्थानेषु त्रं लोकेषु तेषु सर्वदा ।  
 उपस्थिता इहैवान्ये देवा ये स्वर्गवासिनः ॥१७१॥  
 ततस्ते तपसा युक्ता स्थानान्यापूरयन्ति वै ।  
 सत्येन ब्रह्मचर्येण श्रुतेन च समन्विता ॥१७२॥  
 सप्तर्षीणा मनोश्च देवाना पितृभि सह ।  
 निधनानीह पूर्वेषामादिना च भविष्यता ॥१७३॥  
 तेषामत्यन्तविच्छेद इह मन्वन्तरक्षयात् ।  
 एषं पूर्वानुपूर्व्येण स्थितिरेषानवस्थिता ।  
 मन्वन्तरेषु सर्वेषु या वदाभूतसप्लवम् ॥१७४॥  
 एष मन्वन्तराणान्तु प्रतिसन्धानलक्षणम् ।  
 अतीतानागतानान्तु प्रोक्त स्वायम्भुवेन तु ॥१७५॥

मन्वन्तर के परावृत्त होने पर सब धोर से स्थानों का त्याग करके  
 मन्त्रों के माय धामय रहित ऊर्ध्व महर्षिों को चले जाया करते हैं ॥१६६॥  
 समस्त प्रवार के विकारों के विनोप रूप म निवृत्त हो जाने वाले ये धानमी  
 निद्धि मे आस्थित होने हुए अवेक्षमाण धोर धरने आपको वस में रखने वाले  
 भूत सप्लव पर्वन्त ठहरा करते हैं ॥१७०॥ इसके अनन्तर उन सबके व्यतीत  
 हो जान पर धोर सर्वदा इन सब दून्ने देवों के स्थानों में गौलोक्य में सभी  
 धोर से उनमें स्वर्ग में निवास करने वाले जो अग्य देव हैं वे सब यहाँ पर ही  
 उपस्थित होते हैं ॥१७१॥ इसके परन्तु वे सत्य व्रत के द्वारा-ब्रह्मचर्य के पूर्ण  
 प्रनिषानन के द्वारा धोर श्रुत के द्वारा पूरांतया सर्व समन्वित धोर तप मे  
 युक्त वे उन स्थानों को आगूणित किया करते हैं ॥१७२॥ सप्तर्षियों का-मनु का  
 धोर पितृपाल के माय देशों की यहाँ पर मृत्यु पूर्व में होने वानों की आदि मे  
 धोर भविष्यत् से होती है ॥१७३॥ उनका मत्यन्त विच्छेद दर्श पर मन्वन्तर के  
 क्षय से होता है । इस प्रकार से पूर्व की धानुपूर्वी से यह धनवस्थित स्थिति

होती है जो कि समस्त मन्वन्तरो में जब तक भूतो का सप्लव होता है हुआ करती है ॥१७४॥ इस प्रकार से मन्वन्तरो का प्रति मन्धान का लक्षण जोकि मन्वन्तर प्रतीत होगये या अनागत है स्वायम्भुव मनु ने कहा है ॥१७५॥

मन्वन्तरेष्वतीतेषु भविष्याणां तु साधनम् ।

एवमत्यन्तविच्छिन्नं भवत्याभूत्सप्तवात् ॥१७६॥

मन्वन्तराणां परिवर्त्तनानि एकान्ततस्मानि महर्गतानि ।

महर्जनश्चैव जनन्तपञ्च एकान्तगानि स्म भवन्ति सत्ये ॥१७७॥

तद्भाविना तत्र तु दर्शनेन नानात्वदृष्टेन च प्रत्ययेन ।

सत्ये स्थितानीह तदा तु तानि प्राप्ते विकारे प्रतिसर्गकाले ॥१७८॥

मन्वन्तराणां परिवर्त्तनानि मुञ्चन्ति सत्यन्तु ततोऽपरान्ते ।

ततोऽभियोगाद्विषमप्रमाणं विशन्ति नारायणमेव देवम् ॥१७९॥

मन्वन्तराणां परिवर्त्तनेषु चिरप्रवृत्तेषु विधिस्वभावात् ।

क्षणं रसं तिष्ठति जीवलोकः क्षयोदयाम्या परिवन्दमानः ॥१८०॥

इत्युत्तराभ्येवमृषिस्तुतानां धर्मात्मना दिव्यदृशा मनूनाम् ।

वायुप्रणीतान्युपलभ्य दृश्यं दिव्योजसा व्याससमासयोगैः ॥१८१॥

सर्वाणि राजपिभुर्गपिमन्ति ब्रह्मापिदेवोरगवन्ति चैव ।

सुरेशमस्रपिपितृप्रजेशैर्युक्तानि सम्यक् परिवर्त्तनानि ॥१८२॥

उदारवशाभिजनद्युतीनां प्रकृष्टमेघाभिसमेधितानाम् ।

कीर्तिद्युतिख्यातिभिरन्वितानां पुण्यं हि विख्यापनमीश्वराणाम् ॥१८३॥

जो मन्वन्तर प्रतीत हो चुके हैं उसमें घाने भविष्य में होने वाले मन्वन्तरो का साधन होना है । इस प्रकार से भूतो के मप्लव तक मन्वन्त विच्छिन्न हुआ करता है ॥१७६॥

मन्वन्तरो के परिवर्तन जो हुआ करते हैं वे एवान्त से महर्लोव में मत हुआ करते हैं । महर्लोव के पश्चात् जनलोक में जन के बाद तपो लोक में और फिर सत्य लोक में एवान्त में गये हुए हुआ करते हैं ॥१७७॥ वहाँ पर उमते होने वालों के दर्शन में और नानात्व के स्वरूप में देखे हुए प्रत्यय धर्मात् विदवाह से उस समय में सत्य लोक में स्थित के विदार स्वरूप प्रतिसर्ग का

के प्राप्त होने पर यही पर हुमा करते हैं ॥१७८॥ मन्वन्तरों के परिवर्तन इसके पश्चात् अपरान्त मे सत्यलोक को त्याग दिया करते हैं । इसके अनन्तर अभियोग से विषय प्रमाण नारायण देव मे ही प्रवेश किया करते हैं ॥१७९॥ मन्वन्तरो के चिरकाल से प्रवृत्त होने वाले परिवर्तनों मे विधि के स्वभाव से यह जीवो का लोक क्षय और उदय से परिवन्दमान होता हुआ क्षणमात्र को रस में स्थित हुमा करता है ॥१८०॥ इस प्रकार से ऋषियों के द्वारा स्तुति किये गये घर्मात्मा-दिव्य दृष्टि वाले मनुष्यो के वायुदेव के द्वारा वहे हुए इन उत्तरो को प्राप्त करके व्यास और समास अर्थात् विस्तार और संशेष के योगो के द्वारा दिव्य श्रौज वाले के द्वारा देखने के योग्य है ॥१८१॥ वे समस्त परिवर्तन, जोकि मन्वन्तरो के हुमा करते हैं, राजपि और मुरारिपियो से युक्त हैं । और वे प्रह्लापि-देव और उरुगो वाले हैं । मुरो के ईश-सप्तपि-पितृगण-प्रजा के ईगो से भी युक्त भली-भाँति हुमा करते हैं ॥१८२॥ उद्धार वन-अभिजन और द्युति से युक्त-प्रहृष्ट मेघ से चारों ओर मे समेधित होने वाले-नीलि द्युति और प्रसिद्धि से अन्वित ईश्वरो का परम पुण्यप्रद पवित्र विद्यापन होता है ॥१८३॥

स्वर्गीयमेतत् परम पवित्र पुत्रीयमेतच्च पर रहस्यम् ।

जप्य महत्पर्वसु चैत दन्य दुस्वप्नशान्ति परमायुषेयम् ॥१८४

प्रजेशदेवपिमनुप्रधानां पुण्यप्रसूति प्रथितामजस्य ।

ममापि विख्यापनसयमाय सिद्धि जुषध्व सुमहेशतत्त्वम् ॥१८५

इत्येतदन्तर प्रोक्त मनो स्वायम्भुवस्य तु ।

विस्तरेणानुपूर्व्या च भूय किं वर्णयाम्यहम् ॥१८६

यह उन ईश्वरो का विख्यापन स्वर्गीय अर्थात् स्वर्ग के समान मुलप्रद-परम पवित्र और पुत्रीय अर्थात् पुत्रीत्वान्ति प्रदान करने वाला एव अत्यन्त रहस्य अर्थात् गोपनीय है । यह महान् पर्वों के अपनरो पर जप करने के योग्य और सबसे श्रेष्ठ है । यह तुरे स्वप्नों की कान्ति करने वाला तथा परमायु प्रद होता है ॥१८४॥ जिसमे प्रजा के स्वामी—देवपि और मनु प्रधान होते हैं ऐसी यजन्मा की परम पुण्य प्रसूति को जोकि बहुत ही प्रसिद्ध है, विद्यापन के समय के लिए मेरी भी सिद्धि की और सुमहेश तत्त्व को सेवन करो ॥१८५॥ एत

प्रकार से यह स्वायम्भुव मनु का अन्तर विस्तारपूर्वक तथा भ्रानुपूर्वी से यह दिया है भव भागे फिर मैं क्या वर्णन करूँ ॥१८६॥

## ॥ प्रकरण ४४ पृथ्वी-दोहन ॥

ब्रह्म मन्वन्तराणान्तु ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वत ।  
 देवतानां च सर्वेषां ये च यस्यान्तरे मनो ॥१॥  
 मन्वन्तराणां यानि स्युरतीतानागतानि ह ।  
 समासाद्विस्तराच्चैव ब्रुवतो वै निबोधत ॥२॥  
 स्वायम्भुवो मनु पूर्वं मनु स्वरोचिपस्तथा ।  
 औत्तमस्तामसश्चैव तथा रवतचाक्षुषौ ।  
 पटेते मनवोज्जीता वक्ष्याम्यष्टादनागतान् ॥३॥  
 सावर्णा पञ्च रौच्यञ्च भौत्यो वैवस्वतस्तथा ।  
 वक्ष्याम्येतान् पुरस्तात्तमचोर्वैवस्वतस्य ह ॥४॥  
 मनव पञ्च येऽतीता मानवास्तान् निबोधत ।  
 मन्वन्तर मया चोक्तं क्रान्तं स्वायम्भुवस्य ह ॥५॥  
 अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि मनोः स्वरोचिपस्य ह ।  
 प्रजासर्गं समासेन द्वितीयस्य महात्मनः ॥६॥  
 आसन् वै तुपिता देवा मनुस्वरोचिपेऽन्तरे ।  
 पारावताश्च विद्वांसो द्वावेव तु गणौ रभृता ॥७॥

श्री शारापायन ने कहा—मैं मन्वन्तरो के क्रम को तत्त्व पूर्वक जानने की इच्छा करता हूँ और जिस मनु के अन्तर में जो सब देवत हुए हैं उनके क्रम को भी जानने की इच्छा रखता हूँ । ॥१॥ श्री सूतजी ने कहा—अतीत और भ्रानागत मन्वन्तरो के जो भी देवत होते हैं उनको सशेष में और विस्तार से बताने वाले मुझमें सब कुछ समझ लो ॥२॥ भव तक द्द मनु व्यतीत हुए हैं उनके क्रम से नाम ये हैं—सबमें पहला मनु स्वायम्भुव हुआ था उसके पश्चात्

स्वारोचिष मनु हुए फिर ओत्तम तामस—रैवत और घनत मे चाशुष मनु हुए हैं । ये इतने छै मनु तो अब तक व्यतीत हो चुके हैं । अब जो घनागत अर्थात् भविष्य मे होने वाले आठ मनु हैं उनको बताऊंगा ॥३॥ पाँच सावर्ण—रोच्य-भौत्य तथा रैवस्वत ये आठ हैं । रैवस्वत मनु के पहिले इनको बताऊंगा ॥४॥ जो पाँच मनु अतीत हो चुके है उन मानवो को आप लोग जान लो । स्वायम्भुव का क्रान्त मन्वन्तर मीने कह दिया है ॥५॥ इसके आगे जो स्वारोचिष मनु है उस द्वितीय महान् आत्मा वाले की प्रजा का सर्ग सरोप से बतलाऊंगा ॥६॥ स्वारोचिष मन्वन्तर मे तुपिता और विद्वान् पारावत देव हुए थे उस समय ये दो ही गण बहे गये है ॥७॥

तुपिताया समुत्पन्ना क्रतो पुत्रा स्वरोचिष ।  
 पारावताश्च शिष्टाश्च द्वादशीतो गणौ स्मृती ।  
 छन्दजाश्च चतुर्विंशद्देवास्ते वै तदा स्मृता ॥८  
 धेवस्यशोऽय वामान्यो गोपा देवायतस्तथा ।  
 अजश्च भगवान् देवो दुरोणश्च महाबल ॥९  
 आपश्चापि महाबाहुर्महोजाश्चापि वीर्यवान् ।  
 चिकित्वान् निभृतो यश्च अशोयश्चैव पठ्यते ।  
 इत्येते क्रतुपुत्रास्तु तदासन् सोमपायिन ॥१०  
 प्रचेताश्चैव यो देवा विश्वेदेवास्तथैव च ।  
 समञ्जो विधुतो यश्च अजिह्वाश्चारिमर्दन ॥११  
 अजिह्वानमहीयानो विद्यावन्तो तथैव च ।  
 अजोपौ च महाभागी यवीयश्च महाबल ॥१२  
 होता यज्या च इत्येते पराक्रान्ता परावता ।  
 इत्येता देवता ह्यासन्मनुस्वारोचिषेन्तरे ॥१३  
 सोमपास्तु तदा ह्येताश्चतुर्विंशतिदेवताः ।  
 तेषामिन्द्रस्तदा ह्यासीद्दंघश्च लोकविश्रुतः ॥१४

तुपिता म क्रतु के स्वारोचिष पुत्र उत्पन्न हुए । और शिष्ट पारावत उत्पन्न हुए ये द्वादश थे । ये दो गण कह गये हैं और छन्दज थे वे उस समय

मे चौबीस देव कहे गये हैं ॥८॥ धैवस्य-वामाग्न्य-गोपा-देवायन-मज-भगवान्  
 देव-दुरोण-महाबल-भाप-महाबाहु-महौजा-वीरवाद्-चिहिरवाद्-निभृत-  
 घणाय य सब पढ़े जाते हैं । ये सब अतु के पुत्र उस समय में सोमपायी हुए  
 थे ॥९॥१०॥ प्रचेता देव-विस्वेदेवा-विश्रुत-अजिह्न-अरिमर्दन-अजिहान-  
 महीयान ये विद्यावान् थे-दो भजोप जो महाभाग थे-यवीय-महाबल-होता  
 और मज्वा ये सब परावत पराक्रान्त हुए हैं । ये सब स्वरोचिप मन्वन्तर में  
 देवता थे ॥११॥१२॥१३॥ उस समय में ये चौबीस देवता सोमप थे । उस  
 समय में लोक विश्रुत वैद्य उनका छन्द था ॥१४॥

ऊर्जा वसिष्ठपुत्रस्तु स्तम्भः काश्यप एव च ।

भागवश्च तदा द्रोणो ऋषभोऽङ्गिरसस्तथा ॥१५

पीलस्त्यश्चैव दत्तात्रिरात्रेयो निश्चइस्तथा ।

पीलहस्य च धावास्तु एते सप्तर्षयः स्मृता ॥१६

चैत्रः कबिरुतश्चैव कृतान्तो विभृतो रविः ।

बृहद्गुहो नवश्चैव सुताश्चैते नव रगृताः ॥१७

मनोः स्वरोचिपस्येते पुत्रा वशकराः स्मृताः ।

पुराणे परिसङ्ख्याता द्वितीय चैतदन्तरम् ॥१८

सप्तर्षयो मनुदेवाः पितरश्च चतुष्टयम् ।

मूल मन्वन्तरस्येते तेषा चैवान्तरे प्रजाः ॥१९

ऋषीणा देवताः पुत्रा पितरो देवमूनवः ।

ऋषयो देवपुत्राश्च इति शास्त्रविनिश्चय ॥२०

मनो क्षत्र विशश्चैव सप्तर्षिम्यो द्विजातयः ।

एतन्मन्वन्तरं प्रोक्तं समागाम्नु विस्तरात् ॥२१

वसिष्ठ का पुत्र ऊर्जा-काश्यप का पुत्र स्तम्भ-भागव-द्रोण-आङ्गिरस-  
 ऋषभ-पीलस्त्य-दत्तात्रि भात्रेय-निभृत-पीलह का धावान् ये सप्तर्षि कहे गये  
 हैं ॥१५॥१६॥ चैत्र-कवि-उल-सकान्त-निभृत-रवि-बृहद्गुह-नव ये नौ पुत्र  
 कहे गये हैं ॥१७॥ ये स्वरोचिप मनु थे ये वश कर पुत्र कहे गये हैं । पुराण  
 में ये सब परिसंख्यात हैं । यह द्वितीय मन्तर होता है ॥१८॥ इसके मन्तर

मे प्रजा हैं ॥१९॥ ऋषियो के देवता पुत्र हैं और पितर देव पुत्र होते हैं । ये सब ऋषि और देव पुत्र ही है ऐसा शास्त्र का विनिश्चय होता है ॥२०॥ मनु से क्षत्र अर्थात् धत्रिय और वैश्य और सप्तर्षियो से द्विजाति हुए । यह मन्वन्तर सन्नेप स कह दिया गया है विस्तार नहीं कहा है ॥२१॥

स्वायम्भुवेन विस्तारो ज्ञेय स्वारोचिपस्य तु

न शक्यो विस्तरस्तस्य वक्तु वपशतैरपि ।

पुनरुक्तबहुत्वात्तु प्रजाना वं कुले-कुले ॥२२

तृतीयस्त्वथ पर्याय औत्तमस्यान्तरे मनो ।

पञ्च चैव गणा प्रोक्तास्तान् वक्ष्यामि निबोधत ॥२३

सुधामानश्च देवाश्च ये चान्ये वशवर्तिन ।

प्रतर्हना. शिवा सत्या गणा द्वादश वै स्मृता ॥२४

सत्यो धृतिदमो दान्त क्षम क्षामो धृति शुचि ।

ईषोर्जाश्च तथा ज्येष्ठो वपुष्माश्चैव द्वादश ।

इत्येते नामभि क्रान्ता सुधामानस्तु द्वादश ॥२५

सहस्रधारो विश्वात्मा शमितारो बृहद्भु ।

विश्वधा विश्वरर्मा च मनस्वन्तो विराड्यशा ॥२६

ज्योतिश्चैव विभाव्यश्च कीर्त्तिमान् वराकारिण ।

अन्यानाराधितो देवो वसुधिष्णो विवस्वसु ॥२७

दिनक्रनु सुधर्मा च धृतवर्मा यशस्विन ।

केतुमाश्चैव इत्येते कीर्त्तितास्तु प्रमह ना ॥२८

स्वायम्भुव से स्वारोचिप का विस्तार जान लेना चाहिए । वैसे उसका

पूरा विस्तार सो यहाँ मे भी बतलाया नहीं जा सकता है । कुल कुल मे पुनर्लक का बाहुल्य प्रजाओ का होता है ॥२२॥ तृतीय औत्तम मनु के अन्तर मे पर्याप्त होता है । इसमे पाँच गण कहे य उनको बतलाऊँगा उहे आप समझ लो ॥२३॥ सुधामान और देव जा अन्य वशवर्ती हैं-प्रथम-शिवा और सत्य ये बारह गण कहे गये है ॥२४॥ सत्य-दम-दान्त-क्षम-क्षाम-धृति-शुचि-ईषार्जा-ज्येष्ठ-और वपुष्मान् ये बारह हैं । ये सब नाम स कहे गये हैं और

सुधामान बारह है ॥२५॥ सहस्रघार-विश्वात्मा-शमितार-बृहदसु-विश्वधा  
विश्व कर्मा-यनस्वन्त-विराह्यशा-ज्योति-दिभाष्य-कीर्तिमान् से वशकारी है ।  
अन्यानाराधित-देव वसुधिष्णु-विचस्वगु-दिन ऋतु-सुधर्मा-घोर मृतवर्मा य  
सब यशस्वी हैं । केतुमान् ये प्रमदव कह गये हैं ॥२६॥२७॥२८॥

हसस्वरोऽहिहा चैव प्रतर्दनयशस्करौ ।

सुदानो वसुदानश्च सुमञ्जसविपायुभौ ॥२९

जन्तुवाहयतिश्चैव सुवित्तमुनयस्तथा ।

शिया ह्येते तु विज्ञेया यज्ञिया द्वादशापरा ॥३०

सत्यानामपि नामानि निबोधत यथामतम् ।

दिक्पतिर्वाक्पतिश्चैव विश्व सम्भ्रुस्तथैव च ॥३१

स्वमृडीकोऽधिपश्चैव वचोधा मुह्यसर्व्वश ।

वासवश्च सदाश्वश्च क्षेमानन्दो तथैव च ॥३२

सत्या ह्येते परिक्रान्ता यज्ञिया द्वादशापरा ।

इत्येते देवता ह्यासन्नोत्तमस्यान्तरे मनो ॥३३

अजश्च परशुश्चैव दिव्यो दिव्यौपधिर्त्रय ।

देवानुजश्चाप्रतिमो महोत्साहीशजस्तथा ॥३४

विनीतश्च मुकेतुश्च सुमित्र सुबल शुचि ।

श्रीत्तमस्य मनो पुत्रास्त्रयोदश महात्मन ।

एते क्षत्रप्रणेतास्त्वृतीय चैतदन्तरम् ॥३५

श्रीत्तमे परिसङ्ख्यात सगं स्वारोचिषेण तु ।

विस्तरेणानुपूर्व्या च तामसस्तानिबोधत ॥३६

चतुर्थे त्वथ पर्याये तामसस्यान्तरे मनो ।

सत्या स्वरूपा सुधियो हरयश्चतुरो गणा ॥३७

हम स्वर-अहिहा-प्रतर्दन-यशस्कर-सुदान-वसुदान-सुमञ्जस-विष  
दोना-जन्तुवाहयति-सुवित्त-मुनय-शिया य यज्ञिय द्वादश जलने चाहिए  
॥२९॥३०॥ अब सत्यो क नाम भी यथामत जान लो । दिक्पति-वाक्पति-  
विश्व-सम्भ्रु-स्वमृडीक अधिप वचोधा मुह्य सवग-वासव-सदाश्व क्षेम भीर



आत्मन्द् वे सब बाहूँ दूमरे यन्निय कहे गये हैं । श्रोतम मन्वन्तगे मे वे सब देवता थे । ॥३१॥३२॥३३॥ भज-परशु-दिष्य-दिष्योपधि-नप-देवानुज-अप्रतिम-महोत्साहो गिज-विनीत-मुकेनु-मुमित्र मुबल-रानि ये महान् आत्मा वाले श्रोतम मनु वे तेरह पुत्र हुए थे । इन्होंने ही क्षत्र का अर्थान् क्षत्रियो का प्रणयन किया था और यह तृतीय अन्तर है । इस श्रोतम मे स्वारोचिष के द्वारा यह सगं परिमण्यात हुआ है अब विस्तार मे और आनुपूर्वी से तामस आता है उनको जान लो । ॥३४॥३५॥३६॥ इसके अनन्तर चौथे तामस मन्वन्तर के पर्याय मे सत्य-स्वरूप-मुधिय-हरय ये चार गण हैं ॥३७॥

पुलस्त्यपुत्रस्य सुतास्तामसस्यान्तरे मनो ।  
 गणास्तु तेषा देवानामेकैव पञ्चविशक् ॥३८॥  
 इन्द्रियाणां शतं यदि मुनयः प्रतिजानते ।  
 सत्यप्राणास्तु शीर्ष्यास्तमदक्षेवाष्टमस्तथा ।  
 इन्द्रियाणि तदा देवा मनोस्तस्यान्तरे स्मृता ॥३९॥  
 तेषां च प्रभुदेवानां निविरिन्द्रं प्रतापवान् ।  
 समर्पयोऽन्तरे चैव तान्निबोधत सत्तमा ॥४०॥  
 काव्यो हर्षस्तथा चैव काश्यप पृथुरेव च ।  
 आग्नेयश्चाग्निरित्येव ज्योतिर्धामा च भार्गव ॥४१॥  
 पोलहो धनपोऽश्च गोत्रे वासिष्ठ एव च ।  
 चोत्रस्तथापि पोलस्त्य ऋषयस्तामसेऽन्तरे ॥४२॥  
 अनुवण्डस्तथा शान्तिर्नरं न्यातिर्भयस्तथा ।  
 प्रियभृत्यो ह्यवक्षिश्च पृष्टलोढो दृढोद्यतः ।  
 ऋतश्च ऋनवन्धुश्च तामसस्य मनो मुता ॥४३॥  
 पञ्चमे स्वयं पर्याये मनोश्चारिष्यवेऽन्तरे ।  
 गणास्तु सुसमाख्याता देवतानां निबोधत ॥४४॥  
 अमृता भाभूतरजोविदुष्ठा सगुमेधमः ।  
 चरिष्योस्तु शुभा पुत्रा वसिष्ठस्य प्रजापते ।  
 अनुदंशं च चत्वारो गणास्तेषान्नु भास्वरा ॥४५॥

स्वप्नविप्रोऽग्निभापश्च प्रत्येतिष्ठामृतस्तथा ।  
 सुमतिर्वाविगवश्च वाचिनोद स्रवस्तथा ॥४६॥  
 प्रविराशी च वादश्च प्राशश्चेति चतुर्दश ।  
 अमृताभा स्मृता ह्येते देवाश्चारिष्यवेऽन्तरे ॥४७॥

पुत्रस्य पुत्र के मुत तामन मन्वन्तर मे थे । उन देवों के गण एक-एक पत्नीस थे ॥३८॥ जो इन्द्रियों के सौ मुनि प्रति सात हैं, सत्यप्राण-शीर्षण तथा आठवाँ तम है । उस समय में इन्द्रिय उस मनु के अन्तर में देव बहे गये हैं ॥३९॥ उन प्रभु देवों का शिवि प्रताप वाला इन्द्र था । इस मन्वन्तर में जो सप्तपि ये, हे सत्तमा ! उनको अब प्राप लोच जान लो ॥४०॥ काव्य, हर्ष, काश्यप, पृषु, आशेय, अग्नि, ज्योतिर्धाना, भार्गव, पौलह, वनपीठ, गोत्र में वासिष्ठ, चैत्र, पौलस्त्य ये इस मन्वन्तर में ऋषि थे ॥४१॥४२॥ अनु चरह, क्षान्ति, नर, ख्याति, भय, प्रियभृत्य, अवशि, पृथुलोद, दंडोद्यत, श्रुत, श्रुतबन्धु, ये तामस मनु के पुत्र थे ॥४३॥ इसके अन्तर चारिष्यव मनु के पाँचवें अन्तर-पर्याय में जो देवताओं के गण बहे गये हैं, उन्हें अब जान लो ॥४४॥ अमृत, भाभून, रज, विबुरह, समुमेघस चरिष्यु के शुभ पुत्र थे । वसिष्ठ प्रजापति के चौदह भोर चार उनके भास्वर गण थे । स्वत विप्र, धन्विभान्न, प्रत्येतिष्ठामृत, सुमति, वारिराव, वाचिनोद, स्रव, प्रविराराशी, वाद, प्राश ये चौदह हैं । चारि-ष्यव मन्वन्तर में ये अमृताभ देव बहे गये हैं ॥४५॥४६॥४७॥

मतिश्च सुमतिश्चैव श्रुतगाल्यो तथैव च ।  
 धावृतिर्विवृत्तिश्चैव मदो विनय एव च ॥४८॥  
 जेता जिष्णु सहश्चैव द्युतिमान् न्रवसस्तथा ।  
 हस्येतानीह नामानि आभूतरजसा विदु ॥४९॥  
 वृषभेत्ता जयो भीम शुधिर्दान्तो यशो दम ।  
 नाथो विद्वानजेयश्च कृशो गौरो ध्रुवस्तथा ।  
 वीतितास्तु विबुण्डा धी सुमेघास्तु निदोषत ॥५०॥  
 मेघा मेघातिथिश्चैव सरयमेघास्तथैव च ।  
 पृथिनमेघात्पमेघाश्च भूपां मेघादय प्रभु ॥५१॥

दीप्तिमेघा यशोमेघा. स्थिरमेघास्तथैव च ।  
 सर्वमेघाश्वमेघाश्च प्रतिमेघाश्च य स्मृत ।  
 मेघावान् मेघहर्ता च कीर्तितास्तु सुमेधस ॥१२  
 विभुरिन्द्रस्तदा तेषामासीद्विक्रान्तपीरप ।  
 पोलस्तपो वेदवाहश्च यजुर्नामा च वाश्यप ॥१३  
 हिरण्यरोमाङ्गिरसो वेदश्रीश्चैव भागव ।  
 ऊर्ध्ववाहृश्च वासिष्ठ पञ्चन्यः पोलहस्तथा ।  
 सत्यनेनस्तथात्रेय ऋषयो रंबतान्तरे ॥१४  
 महापुराणसम्भाव्यः प्रत्यङ्गपरहा शुचि ।  
 बलबन्धुनिरामित्रः केतुभृद्भौ दृढव्रतः ।

चरिष्णवस्य पुत्रास्ते पञ्चमर्षतदन्तरम् ॥१५

मति, सुमति, ऋत, सत्य, आवृति, विवृति, मद, विनय, जेता, जिष्णु,  
 गह, शुनिमान, स्वयम, ये इत्ये नाम आमत रजो क जान लो ॥१५॥१६॥  
 वृषभेता, जय, भीम, शुचि, दान्त, यश, दम, नाय, विद्वान्, धर्मय, कृष्ण, गोर  
 तथा ध्रुव ये विबुएठ बहू गये हैं । श्व सुमेघा जान लो ॥१५॥ मेघा, मेघा-  
 तिधि, मत्स्यमेघा, पृथ्णमेघा, धन्यमेघा, भूयोमेघादय, प्रभु, दीप्तिमेघा, यशोमेघा,  
 स्थिरमेघा, तांबमेघा, श्वभमेघा, प्रतिमेघा, मेघावान्, मेघहर्ता ये सब सुमेधस  
 बहू गये हैं ॥१६॥१७॥ उनका विद्वान् पीरप वाला उम समय में विभु इन्द्र  
 था । पीरस्य, वेदवाहू, यजु नाम वाला पीर वाश्यप, हिरण्य रोमा, आङ्गि-  
 रस, वेदश्री, भागव, ऊर्ध्ववाहू, वासिष्ठ, पञ्चन्य, पोलह, सत्यनेन, दामेय ये  
 रैवण मन्वन्तर म ऋषि थे ॥१३॥१४॥ महापुराण सम्भाव्य, प्रत्यङ्ग परहा,  
 शुचि, बलबन्धु, निरामित्र, केतुभृद्भौ, दृढव्रत ये चरिष्णव के पुत्र थे । यह पंचम  
 मन्वन्तर है ॥१५॥

हवारोचिरोत्तमश्चैव तामनो रंयतमनया ।

प्रियत्रनान्वया ऋणे चरवारो मतवमनया ॥१६

पठे मलय गवर्षे देवा ये चाशुपेन्तरे ।

आथा प्रमूता भाभ्याश्च पृथुवाश्च दिवोकम ।

महानुभावसेखाश्च पञ्च देवगणा स्मृता ॥१७  
 दिवोकस सर्ग एष प्रोच्यते मातृनामभि ।  
 शत्रे पुनस्य नमर धारण्यस्य प्रजापते ।  
 गणाश्च तेषा देवानामेकैको ह्यष्टक स्मृत ॥१८  
 अन्तरिक्षो वसुहयो ह्यतिथिश्च प्रियव्रत ।  
 श्रोता मन्ता सुमन्ता च आद्या ह्येते प्रकीर्त्तिता ॥१९  
 स्येनभद्रस्तथा पश्य पथ्यनेत्रो महायशा ।  
 सुमनाश्च सुवेताश्च रैवत सुप्रचेतस ।  
 धृतिरश्नैव महासत्व प्रसूता परिकीर्त्तिता ॥२०  
 विजय मुजयदशैव मनोधानो तथैव च ।  
 सुमति मुपरिरश्नैव विजातोऽर्थपतिश्च य ।  
 भाष्या ह्येते स्मृता देवा पृथुकास्तु निबोधत ॥२१  
 अजिष्ट शाक्यनो देवो वानपृष्ठस्तथैव च ।  
 साङ्कर सत्यधृष्युश्च विध्युश्च विजयस्तथा ।  
 अजितश्च महाभाग पृथुकास्ते दिवोकस ॥२२  
 लेखास्तथा प्रवक्ष्यामि द्रुवतो मे निबोधत ।  
 मनोजय प्रघासस्तु प्रचेतास्तु महायशा ॥२३  
 वातो ध्रुवक्षिनिश्चैव अद्भुतश्नैव वीर्यवान् ।  
 अवनो बृहस्पतिरश्नैव लेखा सम्परिकीर्त्ताता ॥२४

स्वर्गोविप नम तामत तथा रैवत ये चारो मनु प्रियव्रत के अथय  
 रक्षि वष मे ॥१७॥ अथ ह्येते पर्याय म चाक्षुद मन्तर मे जो देव थे वे छात्र  
 मृत भाष्य पृषक निबोधन और महानुभाव लेख ये पाँच देवगणा कहे गये  
 हैं ॥१८॥ यह मातृ नामो के द्वारा दिवोकस सर्ग कहा जाता है । शत्रि के पुत्र  
 राजापति धारण्य के भानो हैं । उन देवों के गण एक एक अष्टक कहा गया  
 है ॥१९॥ अन्तरिक्ष वसुदय अतिथि प्रियव्रत श्रोता मन्ता सुमन्ता य घाट  
 हहे गये हैं ॥२०॥ स्येनभद्र पश्य पथ्यनेत्र महायशा सुमना सुवेता रैवत  
 सुप्रचेतस धृति महासत्व ये प्रसून कीर्त्तित किये गये हैं ॥२०॥ विजय मुजय

मनोद्यान, मुमति, सुपरि, विज्ञात, अर्धवति ये भाव्य देव कहे गये हैं, अब जो पृथुक हैं उनको समझ लो ॥६१॥ अजित, दाक्षपन, देव, वानपृष्ठ, शाङ्कर, सत्य-घृष्णु, विष्णु, विजय, अजित, महाभाग वे पृथुक दिवोकस अर्थात् देवता हैं । अब लेखो को बताऊंगा, आप बनाने वाले मुझसे उन्हे समझ लो । मनोजव, प्रजान, प्रचेता, महायजा, वात प्रवक्षति, अद्भुत, वीरवान्, अनन, बृहस्पति ये लेख कहे गये हैं ॥६२॥६३॥६४॥

मनोजवो महावीर्यस्तेपामिन्द्रस्तदाभवत् ।

उन्नतो भागंवश्चैव हविष्मानङ्गिर सुत ॥६५

सुधामा काश्यपश्चैव वासिष्ठो विरजस्तथा ।

अतिमानश्च पौनस्त्य सहिष्णु पौलहस्तथा ।

मधुरात्रेय इत्येते सप्त वै चाक्षुपेऽन्तरे ॥६६

ऊरु पूरु शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक् कृति ।

अग्निपुदतिरात्रश्च मुद्युम्नश्चेति ते नव ॥६७

अभिमन्युश्च दशमो नाद्वलेया मनो मुता ।

चाक्षुपस्य मुता ह्येते पृष्ठं चैव तदन्तरम् ॥६८

वैवस्वतेन सह्यजातस्तस्य सर्गो महात्मन ।

विस्तरेणानुरर्ध्या च वधितं वै मया द्विजा ॥६९

चाक्षुपस्य तु दायाद सम्भूत कश्यपान्वये ।

तस्यान्ववाये येऽप्यन्ये तन्नो ब्रूहि यथातयम् ॥७०

चाक्षुपस्य निसर्गन्तु समामाच्छ्रोतुमहं च ।

तस्यान्ववाये सम्भूत पृथुर्वैन्य प्रतापवान् ॥७१

प्रजाना पतयश्चान्ये दक्ष प्राचेतसस्तथा ।

उत्तानपाद जग्राह पुत्रमग्निं प्रजापति ॥७२

मनात्रव महावीर्य उनवा उस ममय म इन्द्र दृशा था । उन्नत, भागंव, हविष्मान्, अङ्गिर वा पुत्र सुधामा, काश्यप, वासिष्ठ, विरज, अतिमान, पौलस्त्य, सहिष्णु, पौलह, मधुरात्रेय ये सप्त चाक्षुप मन्वन्तरे मे ये ॥६५॥६६॥ ऊरु, पूरु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवाक्, कृति, अग्निपुद, अनिरात्र और मुद्युम्न

वे नो हैं ॥६७॥ धीर अभिमनु दण्ड पा । नाडतेष मनु के पुत्र धे । ये सब चाक्षुष के पुत्र धे धीर यह छट्वाँ मन्वन्तर है । उस महात्मा का यह सग दैव-स्वत ने परिसंख्यात किया है । हे द्विजो ! मैंने इसे विस्तार तथा भ्रानुपूर्वी से कह दिया है ॥६८॥६९॥ ऋषियो ने कहा—चाक्षुष का दामाद वश्यप के वग मे उत्पन्न हुआ था । उनसे अबवाय म धीर जो भी कोई दूसरे हो उन्हें यया तथा रूप से बतलाइये ॥७०॥ धीमूतजी ने कहा—आप भोग चाक्षुष का नितग जो है उसे मक्षेप से सुनने के योग्य होते हैं । उसके धन्ववाय मे प्रनापवान् वाँय पृथु हुआ था ॥७१॥ अय दक्ष और प्राचेतस प्रजाओं के पति थे । अत्रि प्रजा-पति ने उत्तानपाद को पुत्र ग्रहण किया था ॥७२॥

दक्षकस्य तु पुत्रोऽस्य राजा ह्यासीत् प्रजापते ।  
 स्वायम्भुवेन मनुना दत्तोऽप्रे कारण प्रति ॥७३॥  
 मन्वन्तरमथासाद्य भविष्य चाक्षुषस्य ह ।  
 ग३ तदनु वक्ष्यामि उपोद्धातेन वै द्विजा ॥७४॥  
 उत्तानपादाङ्गतुरा सूनृता वित्तभाविनी ।  
 उत्पन्ना चाधिधर्मेण ध्रुवस्य जननी शुभा ।  
 धमस्य पत्न्या लक्ष्म्या व उत्पन्ना सा शुचिस्मिता ॥७५॥  
 ध्रुवश्च कीर्त्तिमन्तञ्च अयस्मत्त वमु तथा ।  
 उत्तानपादोऽजनयत् वन्ये द्वे च शुचिस्मिते ।  
 मनस्विनी स्वराञ्च तयो पुत्रा प्रकीर्त्तिता ॥७६॥  
 ध्रुवो वपसहस्राणि दश दिव्यानि वीयवान् ।  
 तपस्तेषे निराहार प्राथयन् दिगुल यश ॥७७॥  
 त्रेतायुगे तु प्रथमे पौत्र स्वायम्भुवस्य स ।  
 आत्मान धारयन् यागात् प्राथयन् नुमहृद्यश ॥७८॥  
 तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीतो ज्योतिषा स्थानमुत्तमम् ।  
 आभूत्तप्तञ्च हृद्यमस्तोदयविर्जितम् ॥७९॥  
 तस्यातिमात्रामृद्धिं च महिमान निरीक्ष्य ह ।  
 देत्यामुराणामानाय शनोकमप्युशना जगौ । ८०

इस प्रजापति दक्ष का पुत्र राजा था । स्वायम्भुव मनु ने अग्नि के कारण के प्रति दिया था ॥७३॥ इसके प्रतन्तर चाक्षुष के भविष्य मन्वन्तर को प्राप्त करके हूँ द्विजो ! इसके पञ्चान् उपोद्धान के माय पष्ठ को दत्त-माजंगा ॥७४॥ उत्तानपाद से चतुर मुनूत और विस्तभाविनी शुभ अघिघमं से ध्रुव की माता हुई । शुचि स्मित वाली वह धर्म की पत्नी लक्ष्मी में उत्पन्न हुई थी ॥७४७५॥ उत्तानपाद ने ध्रुव-कीर्तिमान्-अपस्मान् तथा वनु को उत्पन्न किया था और शुचि स्मित वाली दो कन्याओं को जन्म दिया था । एक मन्-स्विनी और दूसरी स्वरा थी । उनके पुत्र कीर्तिमान् किये गये हैं ॥७६॥ वीर्य वाले ध्रुव ने निराहार रहते हुए विपुल यज्ञ को चाहते हुए दस हजार दिव्य वर्ष तक तप किया था ॥७७॥ प्रथम श्रेया युग में वह स्वायम्भुव मनु का पौत्र था त्रिमन योष में आत्मा को प्राण्य करने हुए भद्रान् यज्ञ की श्राधना की थी ॥७८॥ ब्रह्मात्री ने प्रसन्न होकर उद्योनिर्गंधा का उत्तम स्थान उमकी दिया था जो कि सप्तव पर्यन्त परम सुन्दर और अमृतोदय से रहित था ॥७९॥ उमकी अत्यधिक मात्रा वाली सृष्टि और महिमा को देखकर देवामुरो के प्राचार्य शुक्र ने भी इसने यज्ञ का वर्णन किया था ॥८०॥

अहोऽयं तपसो वीर्यमहो धृतमहो हृतम् ।  
 स्थिता सप्रपंथ वृन्दा यदेनमुपरि ध्रुवम् ।  
 ध्रुवे दिव ममासक्तमोश्वर स दिवम्पति ॥८१॥  
 ध्रुवानुष्टिञ्च भव्यञ्च भूमि मा मुपुवे नृपौ ।  
 स्वा छायामाह वं पुष्टिभव नागे तु ता विभु ॥८२॥  
 सत्याभिव्याहृते तस्य मय म्नी सामवत्तदा ।  
 दिव्यमहन नाच्छाया दिव्याभरणाभूयिता ॥८३॥  
 छायाया पुष्टिराधत्त वञ्च पुशानजन्मपान् ।  
 प्राचीनगर्भं नृपकं वृषञ्च नृबल धृतिम् ॥८४॥  
 पत्नी प्राचीनगर्भस्य भूदधी मुपुवे नृपम् ।  
 नाम्नोदारधियं पुत्रमिन्द्रो य पूरंजन्मनि ॥८५॥

सवत्सरसहस्रान्ते सकृदाहारमाहरत् ।

एव मन्वन्तर युक्तमिन्द्रत्व प्राप्तवान्विभु ॥८६

उदारधे सुत भद्राजनयत्सा दिवञ्जयम् ।

रिपुं रिपुञ्जयं जने वराङ्गी सा दिवञ्जयात् ॥८७

गुक्काचार्य ने कहा था—प्रहो ! इस ध्रुव के तप का पराक्रम कैसा अद्भुत है और इसका श्रुत तथा हुन भी कितना विलक्षण है कि इस ध्रुव को प्रपने से भी ऊपर करके सर्पिण्यण स्थित होते हैं । ध्रुव में समासक्त दिव है दिवस्पति ईश्वर है ॥८१॥ उम भूमि ने ध्रुव से भव्य और पुष्टि के नृपों का प्रसव किया था । विभु पुष्टि ने अपनी छाया से कहा कि नारी हो जाओ ॥८२॥ उनके सत्य अभिव्याहृत होने पर उम समय में वह तुरन्त ही स्त्री होगई थी जो कि छाया दिव्य सहनन से दिव्य भूषणों से विभूषित थी ॥८३॥ पुष्टि ने उम छाया में पति निष्पाप पुत्र उत्पन्न किये थे । जिनके नाम—प्राचीन गर्भ—वृषक—वृक—वृकन और धृनि थे ॥८४॥ प्राचीन गर्भ की पत्नी भूवर्चा न नृपको पुत्र उत्पन्न किया था जिसका नाम उदारधी था और जो पूर्व जन्म में इन्द्र था ॥८५॥ एक सहस्र वर्षों के अन्त में एकवार आहार ग्रहण किया था । इस प्रकार से विभु ने मन्वन्तर से युक्त इन्द्रत्व को प्राप्त किया था ॥८६॥ भद्रा उसने उदारधी के पुत्र दिवञ्जय को जन्म दिया था । वराङ्गी उसने रिपुञ्जय रिपु को उत्पन्न किया था ॥८७॥

रिपोराधत्त वृहती चाक्षुष सर्वंतेजसम् ।

व्यजीजनत् पुष्करिण्या वारुण्या चाक्षुषो मनुम् ।

प्रजापतेरात्मजायामरण्यस्य महार्त्तमन ॥८८

मनोरजायन्त दश नदलाया शुभा सुता ।

कन्याया वै महाभाष वैराजस्य प्रजापते ॥८९

ऊरु पूरु शतघ्नस्तपस्वी सत्यवाक् कवि ।

अग्निष्टुदतिरात्रश्च मुञ्चन्मश्चेति ते नव ।

अभिमन्युश्च दशमो नदलाया मनो सुता ॥९०

ऊरोरजनयत् पुत्रान् पडाग्नेयी महाप्रभात् ।



भङ्गं सुमनस स्वाति क्रतुमङ्गिरस शिवम् ॥६१  
 अङ्गात् सुतोषापत्य वेनमेक व्यजायत ।  
 अपचारेण वेनस्य प्रकोप मुमहानभूत् ॥६२  
 प्रजायंमृषयस्तस्य ममन्धुर्दक्षिणा करम् ।  
 वेनस्य पाणौ मथिते सम्बभूव महानृप ।  
 वैन्यो नाम महोपालो य पृथु परिवीक्षित ॥६३  
 स धन्वी क्वचो जातस्तेजसा प्रज्वलन्निव ।  
 पृथुर्वैन्य सर्वलोकान् ररक्ष क्षत्रपूर्वज ॥६४

रिपु से वृद्धती ने सर्व तेज वाले चाक्षुष को धारण किया था और  
 पुष्पिणी बारसी म चाक्षुष ने मनु को उत्पन्न किया था जो कि महारमा धरण्य  
 प्रजापति की धात्मजा थी ॥६०॥ मनु ने नदना मे दश शुभ पुत्र उत्पन्न किए थे  
 जो महाभाग प्रजापति वैराज की कन्या थी ॥६१॥ ऊरु-पूरु-शतद्युम्न-तपस्वी  
 गरुवाद्-कवि-प्रनिष्टुन-प्रतिरात्र और सुद्युम्न ये नौ हैं और दशम अभिमन्यु  
 नदना मे मनु के पुत्र हुए थे ॥६०॥ अग्नेयी ने ऊरु से महान् प्रभा वाले छै  
 पुत्रो को जन्म दिया था जिनके नाम—भङ्ग—सुमनस—स्वाति—क्रतु—प्राङ्गिरस  
 और शिव थे ॥६१॥ मुनीया न भङ्ग से एक मन्तान वेनको उत्पन्न किया था ।  
 वेन के अपचार के कारण न बडा भारी क्रोध उत्पन्न हुआ था ॥६२॥ ऋषियो  
 ने प्रजा के लिए उसके दाहिने हाथ का मन्थन किया । उस समय वेन के हाथ  
 के मन्थन किये जाने पर एक महान् नृप वैन्य नाम वाला महोपाल उत्पन्न हुआ  
 था जो कि पृथु इय नाम से कहा गया है ॥६३॥ यह धन्वी-क्वचधारी तेज ने  
 प्रभवित करता हुआ उत्पन्न हुआ । क्षत्र पूर्वज वैन्य पृथु ने ममस्त लोको की  
 रक्षा की थी ॥६४॥

राजगूयाभिषिक्तानामाद्य स वसुधाधिप ।  
 तस्य स्तवार्थमुदात्तौ निगृणी सूनमागधो ॥६५  
 तेनेग गीर्महारान्ना दुग्धा सस्यानि धीमता ।  
 प्रजाना नृस्तिरामाना देवोक्तं विगणो गह ॥६६

पितृभिर्दानैश्चैव गन्धर्वैरप्सररोगणै ।  
 सर्वे पुण्यजनैश्चैव बौहृद्भिः पर्वतैस्तथा ॥६७  
 तेषु तेषु तु पात्रेषु दुह्यमाना वसुन्धरा ।  
 प्रादाद्यथेप्सित क्षीर तेन लोकास्त्वधारयत् ॥६८  
 विस्तरेण पृथो जन्म कीर्त्तयस्व महामते ।  
 यथा महात्मना दुग्धा पूर्वं तेन वसुन्धरा ॥६९  
 यथा देवैश्च नागैश्च यथा ब्रह्मविभि सह ।  
 यथा यक्षैः सगन्धवरप्सररोभिर्यथा पुरा ॥१००  
 तेषा पात्रविशेषाश्च दोग्धार क्षीरमेव च ।  
 तथा वत्सविशेषाश्च तत्र प्रब्रूहि पृच्छताम् ॥१०१

राजमूय यज्ञ के द्वारा अभिषिक्त होने वाले राजाओं में वह बँव्य सबसे  
 पहले माघ वसुधा का स्वामी हुआ था । उसके स्तवन करने के लिए परम  
 निपुण सूत और मागध उतरा हुआ थे ॥६५॥ उस बुद्धिमान् महात् राजा ने  
 इस गौ से सस्यो का दोहन किया था । वृत्ति की कामना वाले प्रजाओं के देव  
 -ऋषि गणों के साथ-पितर-दानव-गन्धर्व-अप्सरारामों के गण-समस्त पुण्य  
 जन-विह्व और पर्वतों के साथ उन-उन पात्रों में दुह्य मान इस वसुन्धरा ने  
 इच्छा के अनुसार क्षीर दिया था उससे लोको को धारण किया था ॥६६॥६७  
 ॥६८॥ ऋषियों ने कहा—हे महामते ! विस्तार के साथ पृथु के जन्म का वर्णन  
 करिये । जिस प्रकार से उस महात्मा ने इस वसुन्धरा का दोहन किया था ।  
 ॥६९॥ पहिले जिस तरह से देव-नाग-ब्रह्मर्षि-यक्ष-गन्धर्व और अप्सरारामों के  
 साथ उनके पात्र विशेषों को दोग्धा को क्षीर क्षीर को तथा वत्स विशेषों को इन  
 सबको पूछने वाले हमको भली-भाँति बतलाइये ॥१००॥१०१॥

यस्मिंश्च वारणे पाणिवैनस्य मथित पुरा ।  
 कृद्धं भं हृषिभिः पूर्वं तत् सर्वं कथयस्व न ॥१०२  
 वर्णयिष्यामि वो विप्रा पृथो वैन्यस्य सम्भवम् ।  
 एकाग्रा प्रयताश्चंद शुश्रूषध्व द्विजोत्तमा ॥१०३

नागुचेर्नापि पापाय नाशिव्यायाहिताय च ।  
 बरययमिम पुण्य नाव्रताय कथञ्चन ॥१०४  
 स्वर्ग्यं पशस्यमायुध्य पुण्य वैर्क्षच सम्मितम् ।  
 रहस्यमृषिमि प्रोक्त श्रुत्युयाद्योऽनमूयक ॥१०५  
 यश्चेम थावयेन्मर्त्यं पृथोर्वैन्यस्य सम्भवम् ।  
 ब्राह्मणोऽप्यो नमस्कृत्य न स शोचेत् वृताकृतम् ।  
 गोप्ता धमस्य राजासो बभूवात्रिसम प्रभु ॥१०६  
 अत्रिवशसमुत्पन्नो ह्यङ्गो नाम प्रजापति ।  
 यस्य पुत्राऽभवद्वेनो नात्यर्थं धार्मिकस्तथा ॥१०७

जिस कारण के होने पर पहिले बेतवा हाथ मथा गया था और पहिले  
 मर्दगिया ने बहुत क्रुद्ध होकर उसके हाथ का मन्थन किया था वह सब हगको  
 बननाइए ॥१०२॥ श्री गूनाजी ने कहा—हे द्विचोत्तमो ! हे विषो ! मैं आपके  
 सामने अत्र वैन्व पृथु ने जन्म का कथन कर्लगा । आप लोग सब एकाग्र मन  
 बाले और प्रयत्न होत हुए धवण करो ॥१०३॥ जो मनुचि हो पापपुत्र—अहित  
 धरत एव धर्गिव्य हो उसने कभी भी इस परम पुण्य चरित्र का कथन नहीं  
 करना चाहिये ॥१०४॥ स्वर्ग देने वाला यग प्रदान करने वाला, आयु देने  
 वाला पुण्य और समस्त वेदो के द्वारा सम्मन यह श्रुतियों के द्वारा परम  
 रहस्य कहा गया है जो अमूया अर्थात् निन्दा न करने वाला हो, उस ही यह  
 धवण कराना चाहिये ॥१०५॥ जो मनुष्य वैय पृथु का जन्म चरित्र क हम  
 वृत्तान्त को गुनावे उसे ब्राह्मणो को नमस्कार करव ही गुनाना चाहिये और  
 फिर अपने वृत्त तथा अशुत्र का क्रुद्ध सोच नहीं करना चाहिये । यह राजा धर्म  
 की रक्षा करने वाला अत्रि के समान प्रभु हुआ था ॥१०६॥ अत्रि क वग म  
 उत्पन्न हुआ अङ्ग नाम वाला प्रजापति हुआ था । जिसका पुत्र वेन हुआ था,  
 जो कि विदोष धार्मिक धार्मिक नहीं था ॥१०७॥

जानो मृत्युमुनाया वं मुनीयाया प्रजापति ।

स मातामहदोषेण वेन बालात्मजात्मज ॥१०८

स धम प्रधृत कृत्वा कामाल्लोभे व्यवस्तन ।  
 स्थापन स्थापयामास धमपित स पार्थिव ॥१०६  
 वेदशास्त्राप्यतिक्रम्य ह्यधर्मो निरतोऽभवत् ।  
 नि स्वाध्यायवपटकारा प्रजास्तस्मिन् प्रशासति ।  
 आसन्न च पपु सोम हुत यज्ञ प देवता ॥११०  
 न यष्टव्य न होतव्यमिति तस्य प्रजापते ।  
 आसीत् प्रतिज्ञा क्रूरेय विनाशे प्रत्युपस्थिते ॥१११  
 अह्मिज्यश्च पूज्यश्च सवयज्ञ द्विजातिभिः ।  
 मयि पज्ञो विधातव्यो मयि होतव्यमित्यपि ॥११२  
 तमति क्रांतमर्यादिमाददानमसाम्प्रतम् ।  
 ऊबुमर्ह्यय सर्वे मरीचिप्रमुखास्तथा ॥११३  
 वय दीक्षा प्रवेक्ष्याम सवत्सरशतान् बहून् ।  
 माऽधम वेन कार्पोस्त्व नप धम सनातन ।  
 निवने च प्रसूनोऽसि प्रजापतिरसशय ॥११४

मृत्यु की पुत्री सुनीया म प्रजापति ने जन्म ग्रहण किया था। वह वेन  
 मातामह के दोप से कालकी आत्मजा का पुत्र हुआ था। ॥१०८॥ उसने धम  
 को पीठ पीछे करके अर्घान् एकदम भुला कर ही कान से लोभ म निमग्न  
 होगया था। उम राजा ने धम से रहित स्थापना को ही स्थापित किया था  
 ॥१०६॥ वेदों और समस्त शास्त्रों का अनिक्रमण करके वह धम म निरत  
 होगया था। उसके प्रशासन करन पर समस्त प्रजा स्वाध्याय तथा वपटकार से  
 रहित होगई थी और उसके शासन कालम देवगण यज्ञो म उम सोमरस का  
 पान नहीं करत थ ॥११०॥ उस प्रजापति की ऐसी यह क्रूर प्रतिज्ञा विनाग  
 काल के समुपस्थित होने पर थी कि उसके राज्य म किसी क द्वारा भी यजन  
 तथा हवन नहीं करना चाहिये ॥१११॥ मैं यजन करने के योग्य सर्वोपरि प्रभु  
 हूँ—मैं ही सब गिरोमणि पूजा के योग्य हूँ—द्विजातियों के द्वारा समस्त यज्ञ आदि  
 म समस्त देवादिक का त्याग कर मेरा ही भजन—पूजन करना चाहिये। मुझ म  
 यज्ञ करना चाहिये और मेरे लिय ही हवन करना चाहिये ॥११२॥ उस समय

प्रमुञ्च मरीचि आदि समस्त ऋषियो ने मर्यादा का अति क्षमण करने वाले तथा अनुचित वस्तु को ग्रहण करने वाले उसमें कहा—॥११३॥ हम दीक्षा का प्रवेशण करेंगे और बहुत संकष्टो धर्म तक करेंगे । हे वेन ! तुम अधर्म मत करो, यह मर्यादा स चले जाने वाला सनातन धर्म नहीं है । और निधन होजाने पर बिना किसी सन्तय के प्रजापति तुम प्रसूत हुए हो ॥११४॥

पालयिष्ये प्रजाश्चेति त्वया पूर्वं प्रतिश्रुतम् ।

तास्तथा वादिन सर्वान् ब्रह्मर्षीन्ब्रवीत्तदा ॥११५॥

स प्रहस्य तु दुर्दुर्द्विरिद वचनञ्जोविद ।

स्रष्टा धर्मस्य ब्रह्मान्य श्रोतव्य वस्य वै मया ॥११६॥

वीर्यश्रुततप सत्यमया वा वः समो भुवि ।

महात्मानमनून मा यूय जानीत तत्त्वत ॥११७॥

प्रभव सर्वलोकाना धर्माणाञ्च विशेषतः ।

इच्छन् दहेय पृथिवी प्लावयेय जलेन वा ।

सृजेय वा प्रसेय वा नात्र कार्या विचारणा ॥११८॥

यदा न शक्यते स्वभ्रान्माताञ्च भृशमाहित ।

अनुनेतु नृपो वेनस्तत ऋद्धा महपय ॥११९॥

निगृह्य त महाबाहु विस्फुरन्त यथाऽजलम् ।

तताञ्च यामहस्त ते ममन्युर्भृशकापिता ॥१२०॥

तस्मात् प्रमथ्यमानाद् जज्ञे पूर्वमभिश्रुत ।

ह्रस्वाऽतिमात्र पुण्य कृष्णश्चापि तथा द्विजा ॥१२१॥

तुमने पहिले प्रतिज्ञा की थी कि मैं प्रजापति का पालन करूँगा । उस

समय हम प्रकार से कहने वाले समस्त ऋषियों से यह बोला—॥११५॥ दुष्ट

गुण्डि वाला बिल्लु खाने में परम चतुर वह मुझ हँसकर के यह बोला—अन्य

धर्मात् मुझमें अतिरिक्त कौन धर्म का मृजन करने वाला है और मुझे त्रिगर्षी

काग मुननी बाह्य धर्मात् ऐसा भी कोई नहीं है ॥११६॥ हम भूमण्डल में

पराक्रम-श्रुत धर्मात् ताज्ज ज्ञान-तास्त्वर्षी और सत्य हम पूर्ण नमुदाय में मेरी

समता रखने वाला अन्य कौन है ? धर्मात् कोई भी ऐसा मरे समान नहीं है ।

प्रायः लोणं सब भी मुझे तत्काले पूर्ण महात्मा निश्चय रूप से समझे ॥११७॥  
 समस्त लोको के प्रभु और विदोष रूप से धर्मों के स्वामी हमही हैं । मैं इच्छा  
 करता हूँ कि यदि मैं चाहूँ तो इस पृथ्वी को जलाऊँ अथवा जलमे प्लावित  
 करदूँ—मृजन करूँ या घनन करूँ मुझमे यह सब शक्ति विद्यमान है । हमने  
 कुछ भी विचारणा नहीं करनी चाहिये ॥११८॥ स्तम्भ होने के कारण से या  
 मान की अधिकता से कोई अत्यन्त मोहित होजाने और उसका अनुगमन न  
 किया जा सकता हो तो वेन रूप उसे ठीक कर देगा । इतना सुनकर महर्षिद्वन्द  
 बहुत क्रुद्ध होगये थे ॥११९॥ तब तो महाबाहु उसको विस्फुरित अग्नि के समान  
 निगृहीत करके उठोने अत्यन्त क्रोधित होते हुए उसके वाम हस्तका मन्थन किया  
 था ॥१२०॥ उनके प्रमथ्यमान होने वाले से पहिले जो अभिभूत हुआ है वह  
 प्रयत्न पृथु उत्पन्न हुआ । हे द्विजो ! और अत्यन्त छोटा एक कृष्ण वण वाला  
 पुरुष भी उत्पन्न हुआ था ॥१२१॥

स भीतः प्रज्जलिञ्चैव स्थितवान् व्याकुलेन्द्रियः ।  
 तमार्तं विह्वलं दृष्ट्वा निपीदेत्यब्रुवन् किल ॥१२२॥  
 निपादवशवर्त्ताऽसौ बभूवानन्तविक्रमः ।  
 धीवरानमृजत्सोऽपि वेनकल्मषसम्भवान् ॥१२३॥  
 ये चान्ये विन्ध्यनिलयास्तुम्बुरानुवरा खराः ।  
 अघर्मरुचयश्चापि सम्भूता वेनकल्मषात् ॥१२४॥  
 पुनर्महर्षयस्तस्य पाणिं वेनस्य दक्षिणम् ।  
 अरणीमिव सरम्भान्ममन्वुजतिमन्वव ॥१२५॥  
 पृथुस्तस्मात् समुत्पन्नं करारफालनतेजसः ।  
 पृथो करतलाद्वापि यस्माज्जातं पृथुस्ततः ।  
 दीप्यमानं स्ववपुषा साक्षादन्निरिवोज्ज्वलन् ॥१२६॥  
 अद्यमाजगव नाम घनुर्गृह्य महारवम् ।  
 शराश्च विभ्रद्रक्षार्थं कवचञ्च महाप्रभम् ॥१२७॥  
 तस्मिञ्छातेऽथ भूतानि सप्रहृष्टानि सर्वशः ।  
 समुत्पन्ने महाराशिं वेनश्च त्रिदिवङ्गत ॥१२८॥

वह अत्यन्त भयभीत हाथ जोड़े हुए व्याकुल इन्द्रियो वाला म्थित होगया था । उसको अत्यन्त आर्त और विह्वल देख कर ऋषियो ने कहा—बैठ जाओ अर्थात् निपटण हो जाओ ॥१२२॥ यह अनन्त विक्रम वाला निपाद वश का करत थाता हुआ था । वेन के बल्मप से उत्पन्न होने वाले धीवरो वा उमने भी सृजन किया था ॥१२३॥ और जो अन्य विन्ध्याचल मे रहने वाले तुम्बर-तुवर-वर और अघर्म की रत्नि वाले भी थे, वे भी सब वेन के बल्मप से उत्पन्न श्रोष वाले होते हुए बहुत सरम्भ से अरणी काष्ठ की भाँति वेन के दक्षिण हाथ वा मन्यत करने लगे ॥१२४॥ करने पर आरपालन तेज वाले उससे पृथु उत्पन्न हुआ । अथवा जिस पृथु के वरतल से पृथु उत्पन्न हुआ था वह अपने शरीर से दीप्यमान होते हुए साक्षात् अग्नि के तुल्य जलता हुआ था ॥१२५॥ अथ अजगद नाम वाले और महान् ध्वनि वाले धनुष को ग्रहण करके और रक्षा के लिये शरो को धारण करते हुए तथा महा प्रभा वाले ऋच को धारण किये हुए था ॥१२७॥ उसके उत्पन्न होने पर सभी ओर से समस्त प्राणी बहुत प्रसन्न हुए थे । इस महान् राजा के समुत्पन्न होने पर वेन तो स्वर्ग को चला गया था ॥ १२८ ॥

समुत्पन्नेन राजपि स सत्पुत्रेण धीमता ।  
 पुरुषव्याघ्र पुत्राम्नो नरवात्त्रायते तत १२६  
 त नद्यश्च समुद्राश्च रतान्यादाय सर्वश ।  
 समागम्य तदा वंन्यमभ्यपिञ्चन्नराधिपम् ।  
 महता राजराज्येन महाराज महाद्युतिम् ॥१३०  
 सोऽभिषिक्तो महाराजा देवंरङ्गिरस सुतं ।  
 आदिराजो महाराज पृथुर्वन्य प्रतापवान् ॥१३१  
 पित्राऽपरञ्छितास्तस्य प्रजास्तेनानुरञ्छिता ।  
 सतो राजेति नामास्य अनुरागादजायत ॥१३२  
 आपस्तस्तम्भिरे चास्य समुद्रमभियास्यत ।  
 पर्यताश्च विशीर्यन्ते ध्वजभङ्गश्च नाभवत् ॥१३३

अवृष्टपच्या पृथिवी सिद्धयन्त्यन्नानि चिन्तया ।

सववामदुषा गाव पुटके पुटके मधु ॥१३४

एतस्मिन्नेव काले च यज्ञे पंतामहे शुभे ।

मृत सुत्या समुत्पन्न सौत्येऽहनि महामति ।

तस्मिन्नेव महायज्ञे जज्ञे प्राज्ञोऽथ मागध ॥१३५

वह राजर्षि धीमान् भौर सत्युत्र के उत्पन्न होने से वह पुरुषो मे व्याघ्र के समान रहने वाला पु नाम वाले भरक से फिर भ्राण पा जाता है ॥१२९॥ समस्त नदियाँ—समस्त समुद्र सब भौर से रत्नों को लाकर भौर वही भ्रावर उम मराधिय वैश्य का उम सधने अभियेक क्रिया था जो कि महान् राजा के राज्य से महान् राजा भौर महान् श्रुति वाला था ॥१३०॥ वह महान् राजा भ्रगिरा के पुत्र देवो के द्वारा भ्रादिराज—महाराज भौर प्रताप वाला वैश्य पृषु अभिपित्त हुआ था ॥१३१॥ उसके पिता के द्वारा भ्रपरञ्जित उमकी प्रजा उमके द्वारा भ्रनुरञ्जित हुई थी । तब मे ही भ्रनुराण से इत्तका राजा पह नाम हो गया था ॥१३२॥ समुद्र मे अभियान करने हुए उसके जल स्तम्भित होगये थे भौर विभीषण होते हैं और ध्वजभङ्ग नहीं हुआ था ॥१३३॥ उम समय पृथ्वी अवृष्ट पच्या हो गई थी भर्षान् विना जुताई के ही जगलें पैदा करने वाली थी बिता क ने मात्र से ही भ्रमो की निडिि होती है । गोए समस्त कामो के दोहन करने वाली थी भौर पुटक-पुटक मे मधु था ॥१३४॥ इन ही जन मे शुभ पंतामह यज्ञ मे सो य दिन मे मुनि मे मून उत्पन्न हुए जोकि महामति वाले थे । उम ही महायज्ञ मे प्राप्त मागध उत्पन्न हुए थे ॥१३५॥

ऐन्द्रेण हविषा चापि हवि पृक्त बृहस्पते ।

जुहावेन्द्राय देवेन तत सूतो व्यजायत ॥१३६

प्रमादस्तत्र सञ्जज्ञे प्रायश्चित्तञ्च कर्मसु ।

शिष्यहव्येन यत्पृक्तभिभूत गुरोर्हवि ।

अधरोत्तरचारेण जज्ञे तद्वर्णवैश्वतम् ॥१३७

यच्च क्षत्रात्ममभवद्ब्रह्मण्या हीनयोनि ।

गूत पूर्वोण साधर्मनुत्पधर्मं प्रवीर्त्तित ॥१३८



मध्यमो ह्येष सूतस्य धर्मं क्षत्रोपजीवनम् ।  
 रथनागाश्च चरितं जघन्यञ्च चिकित्सितम् ॥१३६॥  
 पृथो स्तवार्थं तो तत्र समाहूतो सुरर्षिभिः ।  
 तावूबुमुं नय सर्गे स्तूयतामेव पार्थिव ।  
 कमेतदनु रूपं वा पात्रं स्तोत्रस्य चाप्ययम् ॥१४०॥  
 तावूचतुस्तदा सर्वास्तानृषीन्सूतमागधो ।  
 आवा देवानृषी इचैव प्रीणयाव स्वकर्मभिः ॥१४१॥  
 न चास्य कर्म वै विद्वो न तथा लक्षणं यश ।  
 स्तोत्रं शेनास्य कुर्याद्वो राज्ञस्तेजस्विनो द्विजा ॥१४२॥

ऐन्द्र हवि के द्वारा वृहस्पति का भी हवि युक्त हुआ । देव के द्वारा इन्द्र के लिए हवन किया था । इसके बाद सूत उत्पन्न हुए ॥१३६॥ वहाँ पर प्रमाद उत्पन्न हुआ और कर्मों में प्रायश्चित्त उत्पन्न हुआ । शिव्य के हव्य से जो पृक्त हो वह गुरु का हवि अभिभूत होगया । ऐसे अधरोत्तर चार से बरुणों की विकृति उत्पन्न हुई ॥१३७॥ जो क्षत्रिय से ब्राह्मणी में हीनयोनि से हुआ । पूर्व से साधम तुल्य धर्म वाला सूत प्रकीर्तित हुआ था ॥१३८॥ सूत का यह मध्यम धर्म है और क्षत्रोपजीवन है । रथ नाग चरित है और चिकित्सित जघन्य चरित होता है ॥१३९॥ सुरर्षियों के द्वारा वहाँ पर वे दोनों पृथु के स्तवन के लिए बुलाये गये थे और समस्त ऋषियों ने उन दोनों से कहा कि तुम इस पृथु राजा की स्तुति करो । यह आप दोनों के अनुरूप ही कार्य है और यह राजा भी स्तोत्र का पात्र है अर्थात् यह राजा भी स्तवन के योग्य है ॥१४०॥ तब उन दोनों सूत और मागध ने उन समस्त ऋषियों से कहा—हम दोनों अपने-अपने कर्मों के द्वारा देवों को और ऋषियों को प्रसन्न करते हैं ॥१४१॥ हम इसके कर्म को नहीं जानते हैं और न उस प्रकार के लक्षण वाग्रा इसका यश ही है ।

द्विज वृन्द ! जिससे कि इस तेजस्वी राजा का स्तोत्र करें ॥१४२॥

ऋषिभिस्तौ नियुक्तौ तु भविष्यं स्तूयतामिति ।

दानधर्मरतो नित्य सत्यवान् स जितेन्द्रिय ।

ज्ञानशीलो वदान्यस्तु सग्रामेष्वपराजित ॥१४३॥

यानि वर्माणि घृतवान् पृथुश्चापि महाबल ।  
 तानि क्षीलेन बद्धानि स्तुवदिभ मृतमागधं ॥१४४  
 तत स्तवान्ते सुप्रीत पृथु प्रादात् प्रजेश्वर ।  
 अनूपदेश सूनाय मगध मागधाय च ॥१४५  
 तदा वै पृथिवीपाला स्तूयन्ते सूतमागधं ।  
 आशीर्वाद प्ररोध्यन्त सूतमागधवन्दिभि ॥१४६  
 त दृष्ट्वा परमप्रीता प्रजा ऊर्धुमर्हय ।  
 एष वा वृत्तिदो वंग्यो भवन्ति वति नराधिप ॥१४७  
 ततो वैन्य महाभाग प्रजा समभिद्रुद्रुवु ।  
 त्वयो वृत्ति विधत्स्वेति महर्षेवचनात्तदा ।  
 साऽभिद्रुत प्रजाभिस्तु प्रजाहितचित्रीर्षया ॥१४८  
 धनुर्गृहीत्वा वारुणांश्च वसुधामाहं बन्दली ।

अस्याहं नभय नस्ता गौर्भूत्वा प्राद्रवन्मही ॥१४९

६ महर्षियों के द्वारा व दोनो निपुण क्रिय गये थे कि कि प्राणे होने वाले  
 कर्मों से इसका स्तवन करो । वह निरय ही दान और धर्म म रत है—सत्यवान्  
 है और इन्द्रिया को जीतने वाला है । ज्ञानशील और बदाय अर्थात् दाता है  
 तथा सशामो म पराजित न होने वाला है ॥१४३॥ महान् बल वाले पृथु ने भी  
 जिन कर्मों को किया था वे सब स्तुति करने वाले सूत मागधा के द्वारा शीत से  
 बद्ध होने है ॥१४४॥ दृगके अनन्तर स्तवन के आत म प्रजेश्वर पृथु ने बहुत  
 प्रसन्न होकर सूत के लिये अनूप देश और मागध के लिये मगध देश वे दिया  
 था ॥१४५॥ उस समय म पृथिवीपाल सूत और मागधा के द्वारा स्तुत किये  
 जाते हैं और सूत मागध वन्दिषो के द्वारा आशीर्वादी से प्ररोधित किये जाते  
 हैं ॥१४६॥ उसकी देखकर अत्यन्त प्रसन्न महर्षियों ने प्रजा से कहा—आप  
 सबका यह नराधिप वै य वृत्ति देने वाला होवे ॥१४७॥ इसके अनन्तर ममस्त  
 प्रजा महाभाग वै य की और दोडी और कहा—आप हमारी वृत्ति करो । तब  
 महर्षियों के वचन स प्रजाओं के द्वारा अभिद्रुत वह प्रजा के हित करने की  
 इच्छा से उस बली ने धनुष और वारुणां व धरकर वसुधा वा का आदन किया

था । हमके आर्दन के भय से डरी हुई भूमि भी बनकर भाग निकली ॥१५८

ता पृथुर्वनुरादाय द्रवन्तीमन्वधावत ।

सा लोकान् ब्रह्मलोकादीन् गत्वा वैन्यभयात्तदा ।

ददगं चाप्रतो वैन्य काम् कोद्यतधारिणम् ॥१५९

ज्वलद्भिर्विदिग्धैर्वाणैर्दीप्ततेजसमच्युतम् ।

महायोग महात्मान दुर्द्धंपमरैरपि ॥१६१

अलभन्तो तदा प्राण वैन्यमेवान्वपद्यत ।

कृताञ्जलिपुष्टा देवी पूज्या लाकैन्त्रिभि सदा ॥१६२

उवाच वैन्य नायमं स्त्रीजथे परिपश्यमि ।

वथ धारयिता चासि प्रजा राजन् मया विना ॥१६३

मयि लोका स्थिता राजन् मयेदन्धार्थत जगत् ।

महत च विनश्येषु प्रजा पार्थिवमत्तम ॥१६४

न नामहसि वै ह्यनु श्रेयश्चेत्त्वं चिकीपसि ।

प्रजाना पृथिवीपाल शृणु चेद वचो मम ॥१६५

उपायत समारब्धा सर्वे सिद्धन्त्युपक्रमा ।

हत्वापि मा न शक्तस्त्व प्रजाना पालने नृप ॥१६६

राजा पृथु ने धनुष लेकर भागनी हुई उलका अनुधावन किया था ।

वह उस समय वै प के भय से ब्रह्मादि लोकों को जाकर भी उमने प्राण धनुष

लेकर उड़न वैन्य का देगा था ॥१६६ १६७॥ जनत हुए विहित वाग्ना से दीप्त

तेज बाल-महाधोप-महात् आत्मा वात और दबो के द्वारा भी दुर्घर्ष अच्युत का

न प्राप्त करती हुई उस समय म रक्षक वै प की ही शरण में प्राप्त हुई थी ।

तीना लोकों के द्वारा महा पूजन के योग्य-अञ्जलि पुष्ट किये हुए वैच मे

बोलीं—वया प्राप स्त्री के वध में अयम की नयी दण रते है ? हे राजन् ! मरे

बिना प्रजा को कैसे धारणा करने वाले हाथों ? ॥१६१ १६२ १६३॥ हे राजन् !

मुझ पर ये सब लोग ग्वियत हैं और मरे द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् धारण किया

जाता है । हे पार्थिवो ! म श्रेष्ठ ! मर बिना तो समस्त प्रजा नष्ट हो जायगी ।

१६४॥ यदि आप व-वाला शत्रु की इच्छा रखते हैं तो मुझ मारने के योग्य

प्राप नहीं हूँ । हे पृथ्वी ! पावक ! हे प्रजा के पावक ! प्राप मर इस

वचन वा श्रवण करो ॥१५५॥ उपाय से भरी भ्रांति शारम्भ किये हुए समस्त  
उपक्रम सिद्ध होते हैं । हे नृप ! मुझे मार कर भी आप प्रजापति के पावन में  
समर्प नहीं हो सकते हैं ॥१५६॥

अनभूता भविष्यामि जहि कोप महाद्युते ।  
अवध्यादत्र स्थिय प्रहृस्तिर्यंग्योनिशतेष्वपि ।  
मत्नोव पृथिवीपाल धर्मं न त्यक्तुमर्हसि ॥१५७॥  
एव बहुविध वाक्य श्रुत्वा राजा महामता ।  
क्रोध निगृह्य धर्मात्मा वसुधामिदमब्रवीद् ॥१५८॥  
एकस्यार्थाय यो हन्यादात्मनो वा परस्य वा ।  
एक प्राण बहून् वापि काम तस्यास्ति पातकम् ॥१५९॥  
यस्मिस्तु निहते भद्रे लभन्ते बहव सुखम् ।  
तस्मिन्हृते शुभे नास्ति पातकञ्चोपपातकम् ॥१६०॥  
सोऽह प्रजानिमित्त त्वा वधिष्यामि वसुधरे ।  
यदि मे वचन नाद्य करिष्यसि जगदितम् ॥१६१॥  
त्वा निहत्याद्य वागेन मन्ध्यासनपराङ्मुखीम् ।  
आत्मान प्रथयित्वेह धारयिष्याम्यह प्रजा ॥१६२॥  
सा त्व वचनमासाद्य मम धर्मभृता वरे ।  
सञ्जीवय प्रजा नित्य शक्ता ह्यसि न सशय ॥१६३॥

हे महान् द्युति वाले ! आप कोप को त्याग देवें—मैं अबभूता ह  
जाऊँगी । सँकड़ो तियग योनिवों मे भी स्थिराँ अबध्या ही कही गई हैं । हे  
पृथ्वीपाल ! ऐसा मानकर आप धर्म का त्याग करने के योग्य नहीं होते हैं ।  
॥१५७॥ महान् मन वादे राजा ने इस प्रकार के वाक्या को सुनकर धर्मात्मा  
ने क्रोध को रोककर पृथ्वी से यह कहा—॥१५८॥ एक के मरने या पराये  
अथ के निये जो कोई हनन किया करता है चाहे किसी के एक प्राण का हनन  
करे या बहूतों का हनन करे उसका बड़ा भारी अवश्य ही पातक हुआ करता  
है ॥१५९॥ हे भद्रे ! जिस हनन में बहुत से प्राणी मूल की प्राप्ति किया करते  
हैं । हे शुभे ! उसके मारे जाने पर पातक और उपपातक कुछ भी नहीं होता

है ॥१६०॥ हे वसुधरे ! वह मैं प्रजा के कारण तुझे मारूँगा । यदि तू अब मेरे जगत् के हित करने वाले वचन को नहीं करेगी ॥१६१॥ मेरे शासन के विरुद्ध जान वाली तुझे आज वाण से मारकर यहाँ आत्मा की प्रार्थना करके मैं प्रजा को धारण करूँगा ॥१६२॥ हे धर्म धारण करने वालो मे श्रेष्ठ ! वह तू आज मेरे वचन को प्राप्त कर प्रजा को नित्य सज्जीवित कर, तू ममयं है- इमम कुछ भी मन्देह नहीं है ॥१६३॥

दुहितृत्वञ्च मे गच्छ एवमेत महद्वरम् ।  
 नियच्छे त्वान्तु धर्मार्थं प्रयुक्तं घोरदर्शने ॥१६४॥  
 प्रत्युवाच ततो वैन्यमेवमुक्ता सती मही ।  
 एवमेतदहं राजन् विधास्यामि न शय ॥१६५॥  
 वत्सन्तु मम त यच्छ क्षरेय येन वत्सला ।  
 समाञ्च नुरु सर्वत्र मा त्व धर्मभृता वर ।  
 यथा विध्यन्दमानञ्च क्षीर सर्वत्र भावये ॥१६६॥  
 तत उत्सारयामास शिलाजालानि सर्वश ।  
 धनुष्कोट्या ततो वैन्यस्तेन शंला विवद्धिता ॥१६७॥  
 मन्वन्तरेष्वतीतेषु विपमासीद्वसुधरा ।  
 स्वभावेनाभवस्तस्या समानि विपमाणि च ॥१६८॥  
 न हि पूर्वनिर्गो वी विपमे पृथिवीतले ।  
 प्रविभाग पुराणा ग्रामाणा वापि विद्यते ॥१६९॥  
 न सस्यानि न गोरक्षा न कृपिनं गणिकपथ ।  
 चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वमितदासीत्पुरा किल ।  
 वीणस्वातेऽन्तरे तस्मिन्सर्वस्यैतस्य सम्भग ॥१७०॥  
 समत्वा यत्र यत्रासीद्भूयस्तस्मिन्स्तदेव हि ।  
 तत्र-तत्र प्रजास्ता वै निवसन्ति स्म सर्वदा ॥१७१॥  
 आहार फलमूलन्तु प्रजानामभवत्किल ।  
 वैन्यात्प्रभृति लोकेऽस्मिन्सर्वस्यैतस्य सम्भव ॥१७२॥  
 वृष्ट्येण महता सोऽपि प्रनष्टास्वोपधीषु वै ।

स कल्पयित्वा वत्सन्तु चाक्षुष मनुमीश्वर ।  
पृथुदुर्दोह सस्यानि स्वतले पृथिवी तत ॥१७३

हे पौर दशने ! तू मेरी बेटी बन जा घर्म के विषे प्रयोग में साई हुई तुमको में इन प्रकार से यह एक बहुत बड़ा वरदान देता हूँ ॥१६४॥ उस तरह से कही गई पृथ्वी ने इसके पञ्चात् वैन्य से कहा—हे राजन् ! इस तरह से मैं यह सब कहूँगी इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥१६५॥ हे घम धारण करने वालो म श्रेष्ठ ! प्राण मुझ उसे बरस बनाकर दो जिनमें मैं वत्मता होकर क्षरण कहूँ और आप मुझे सब जगह मम कर देवें जिनमें यह विष्यन्दमान थीर सर्वत्र भावित रहूँ ॥१६६॥ इसके अनन्तर वैन्य ने सब शीर से शिला के समूहों को उत्सारित किया था और यह वायु धनुष की बाटि से किया और उससे शील विषेप रूप से वर्द्धित हो गये थे ॥१६७॥ धीरे हुए मन्वन्तरो में यह वसुन्धरा विषमा थी । उसके स्वभाव से ही सम और विषम भाग हुए थे । ॥१६८॥ पहिले विसर्ग में इस विषम पृथ्वी के तल में नगरो क्षयवा ग्रामो वा कोई प्रविभाग नहीं है ॥१६९॥ चाक्षुष मन्वन्तर में पहिले यह ऐसी माघार थी कि न तो यहाँ सम्य ही थे, न गौशो की रक्षा हाती थी, न कृषि ही होती थी और न कोई वाणिज्य करने के मार्ग ही थे । फिर वैवस्वत मन्वन्तर म इस सबका यहाँ जन्म हुआ था ॥१७०॥ जहाँ-जहाँ पर समता थी वहाँ पर फिर वह सब हुआ और वहाँ पर ही सर्वदा प्रजा निवास किया करती थी ॥१७१॥ प्रजायो का आहार—फल और मूल भी हुआ था । वैन्य आदि राजा के होने के समय से लेकर इस लोक म इन सब वस्तुओ की उत्पत्ति हुई थी ॥१७२॥ समस्त औपधिया के प्रगल्भ हो जाने पर महान् श्रम से उसने यह सब किया था । अधिपति पृथु ने चाक्षुष मनु का धर्म कल्पित करके स्वतले में सम्यो वा पृथ्वी में दोहव किया था ॥१७३॥

सस्यानि तेन दुग्धानि दौन्येन तु वसुन्धराम् ।

मनुश्च चाक्षुष कृत्वा वत्सम्पात्रे च भूमये ।

तेमाद्ग्रेन तदा ता वै वर्त्यन्ते प्रजा सदा ॥१७४

ऋषिभि स्तूयते वापि पुनर्दुग्धा वसुधरा ।  
 वत्स सोमस्त्ववभूतया दोग्धा चापि बृहस्पति ॥१७५  
 पात्रमासीत्तु ह्यन्द्रामि गायत्र्यादीनि सवश ।  
 क्षीरमासीत्तदा तेषा तपो ब्रह्म च शाश्वतम् ॥१७६  
 पुन स्तुत्वा देवगणं पुरन्दरपुरोगमै ।  
 सोवर्णं पात्रमादाय अमृत दुदुहे तदा ।  
 तेनैव वर्त्तयन्ते च देवा इन्द्रपुरोगमा ॥१७७  
 नागेश्च स्तूयते दुग्धा विप क्षीर तदा मही ।  
 तेषाञ्च वामुकिर्दोग्धा काद्रवेया महीजस ॥१७८  
 नागाना वै द्विजश्रेष्ठ सर्पाणाञ्चैव सर्वदा ।  
 तनेव वर्त्तयन्त्युग्रा महाकाया महोल्बणा ।  
 तदाहारास्तदाचारास्तद्वीर्यास्तु सदाश्रया ॥१७९  
 धामपात्रे पुनर्दुग्धा स्वतर्द्धानिमिग मही ।  
 वत्स वैश्रवणं कृत्वा यक्षं पुण्यजनैस्तथा ॥१८०  
 दोग्धा च जतुनामस्तु पिता मणिवर्गस्य स ।  
 यक्षात्मजो महातजा वशी स सुमहाबल ।  
 तन त वर्त्तयन्तीति परमपिरुवाच ह ॥१८१

उम राजा वै य ने इन वम धरा मे सत्यो वा वांहन किया था उसने  
 चाक्षुष मनु को बध्ना बनाया तब इम भू मण्डल स्वरूप पात्र म उस समय उम  
 अक्ष म बहु समस्त प्रजा अपना वर्त्तन सत्ता किया करती है ॥१७५॥ फिर यह  
 वसुधरा ऋषिया के द्वारा स्तुत होती है और पुन दोहन की गई थी । उम  
 समय सोम तो वत्स हुआ था और बृहस्पति दोहन करन जाने बने थे ॥१७५॥  
 उस समय गभी क्षीर छ द तथा गायत्री आदि पात्र बना था और उस समय  
 उनका शाश्वत तप तथा ब्रह्म ही क्षीर हुआ था ॥१७६॥ इनका पदच त् दक्षगण  
 के द्वारा जिनम पुरन्दर अथगामी य स्तवन करके उन समय म सुवर्ण निर्मित  
 पात्र लेकर अमृत का दोहन किया गया था और उमी से इन्द्र आदि देवा ने  
 अमृत वर्त्तन ( वृत्ति ) किया था ॥१७७॥ नागो क द्वारा स्तुत हुई पृथ्वी ने

उस समय विष रूपी क्षीर दोहन में दिया था । उनका दोग्धा वानुकि या श्रौर काद्रवेय महान् भोज वाले थे ॥१७८॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! नागों का और सभी सर्पों का उसी से बतन होता है । ये सब उग्र-महान् दागीर के धारण करने वाले श्रौर महान् उत्तरण थे । वही उनका आहार था श्रौर बंसा ही आचार वही धीर्य श्रौर वही आश्रय था ॥१७९॥ फिर यह पृथ्वी श्राम पात्र में अन्तर्धान में दोहन की गई थी श्रौर पुरण्य जन यक्षों के द्वारा वंथवरण को बत्स कल्पित कर दोहन किया गया था । उस समय भणिवर का पिता जतुनाभ — यक्षात्मज-महान् तेज वाला, वशी श्रौर महान् बल वाला था, इसका दो श । उससे वे अपनी वृत्ति क्रिया करते हैं यह परमपि ने कहा था ॥१८०॥ ॥

राक्षसंश्च पिशाचंश्च पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ।  
 ब्रह्मोपेतस्तु दोग्धा वै तेषामासीत्कुत्रैरक ॥१८२  
 रक्षः सुमाली बलवान्क्षीर रुधिरमेव च ।  
 कपालपात्रे निदुग्धा अन्तर्धानञ्च राक्षसं ।  
 तेन क्षीरेण रक्षामि वत्तयन्तीह सर्वश ॥१८३  
 पद्मपात्रे पुनर्दुग्धा गन्धर्वैरप्सरोगणं ।  
 वत्स चित्ररथ कृत्वा शुचीन् गधास्तथैव च ॥१८४  
 तेषा विश्वावसुस्त्वासीद्दोग्धा पुत्रो मुन शुचि ।  
 गन्धर्वराजोऽतिबलो महात्मा सूर्यसन्निभ ॥१८५  
 शैलेश्च स्तूयते दुग्धा पुनर्दोषी वसुन्धरा ।  
 तत्रोपधीर्भूत्तिमती रत्नानि विविधानि च ॥१८६  
 वत्सस्तु हिमवास्तेषा भेरुर्दोग्धा महागिरि ।  
 पात्रन्तु शैलमेवासीत्तेन शैलः प्रतिष्ठित ॥१८७  
 स्तूयते वृक्षवीरुभिः पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ।  
 पलाशपात्रमादाय दुग्ध-छिन्नप्ररोहणम् ॥१८८  
 कामभृक् पुष्पित शल प्लक्षो वत्सो यशस्विनी ।  
 सर्वकामदुग्धा दोग्ध्री पृथिवी भूतभाविनी ॥१८९  
 संपा धात्री विधात्री च धारिणी च वसुन्धरा ।



दुग्धा हितार्थं लोकानां पृथुना इति न श्रुतम् ।

चराचरस्य लोकस्य प्रतिष्ठा योनिरेव च ॥१६०

इसके पश्चान् यह वसुन्धरा राक्षस तथा पिशानो के द्वारा दोहन की गई थी । उनका ब्रह्मोपेत कुबेर दोग्धा था ॥१६२॥ सुमाली बलवान् राक्षस था, और उनका क्षीर क्षिपि ही था । राक्षसों के द्वारा कपाल के पात्र में घन्तर्धान दोहन की गई थी । उसी क्षीर से राक्षस लोग अपनी वृत्ति चलाया करते हैं ॥ ॥१६३॥ गन्धर्वों तथा अप्सराओं के समुदाय के द्वारा फिर यह वसुन्धरा दोहन की गई थी । उस समय क्षिपि को बत्स बनाया था और शुचि गन्धो का दोहन किया गया था ॥१६४॥ मुनि का पवित्र पुत्र विश्वावसु उनका दोग्धा था, जो कि गन्धर्वराज अत्यन्त बलवान्—महान् आत्मा वाला और सूर्य के तुल्य था ॥१६५॥ फिर यह पृथ्वी शैलो के द्वारा स्तुत होती है और दोहन की गई थी । वहाँ पर शूलिभती बहुत सी प्रोपधियाँ तथा अनेक प्रकार के रत्नों का दोहन हुआ था ॥१६६॥ उनका उस समय हिमाचल बत्स बना था और महान् गिरि मेरु उनका दोग्धा भर्षात् दोहन करने वाला था । पात्र उन मक्का शैल ही था, उससे शैल प्रतिष्ठित हुए ॥१६७॥ फिर वृक्ष और मत्तओं के द्वारा यह भूमि स्तुत होती है और दोहन की गई थी । पलाय का पत्र लाकर छिन्न का प्ररोहण हुग्ध हुआ था ॥१६८॥ पुष्पित शैल कामधुक् था—लक्ष बत्स हुआ था—यशस्विनी भूत भाविनी पृथ्वी समस्त कामों की दुग्धा दोग्धी थी ॥१६९॥ वह यह धात्री-विधात्री और धारणी वसुन्धरा पृथु राजा के द्वारा समस्त लोकों के हित सम्पादन करने के लिये दोहन की गई थी—ऐसा हमने सुना है । यह इस समस्त चर और अचर लोक की प्रतिष्ठा तथा योनि है, अर्थात् यह सबके उद्भव का स्थान है ॥१६०॥



॥ प्रकरण ४—पृथु-वंश कीर्तन ॥

आसीदिय समुद्रान्ता मेदिनीति परिश्रुता ।

वसु धारयते यस्माद्बसुधा तेन चोच्यते ॥१

मधुकैटभयो पूर्व मेदमा सपरिप्लुता ।  
 ततोऽभ्युपगमाद्राज्ञ पृथोर्वैन्यस्य धीमत ॥२॥  
 इपञ्चासीत् समुद्रान्ता भेदिनीति परिश्रुता ।  
 दुहितृत्वमगुप्राप्ता पृथिवीत्युच्यते तत ॥३॥  
 प्रथिता प्रविभक्ता च शोभिता च वसुधरा ।  
 सस्याकरवती राज्ञा पत्तनाकरमग्निनी ।  
 चानुर्वण्यसमाकीर्णा रक्षिता तेन धीमता ॥४॥  
 एव प्रभावो राजासीद्वैन्य स नृपसत्तम ।  
 नमस्यश्चैव पूज्यश्च भूतशामेण सर्वाप्त ॥५॥  
 ब्राह्मणैश्च महाभागैर्देवेदाङ्गपारम्यैः ।  
 पृथुरेव नमस्कार्यो ब्रह्मयोनि सनातन ॥६॥  
 पार्थिवीश्च महाभागैः प्राथयद्भिर्महद्यम ।  
 आदिराजा नमस्कार्यं पृथुर्वैन्य प्रतापवान् ॥७॥

श्री सूतजी ने कहा—यह समुद्र के अन्त तक है और मेदिनी इस नाम वाली सुनी गई है । क्योंकि यह वसु अर्थात् धरती को धारण किया करती है, इसी से वसुधा इस नाम से कही जाया करती है ॥१॥ यह पहिले समय में मधु और कैटभ के मेद से सपरिप्लुत थी फिर धीमान् वैश्य राजा पृथु के अभ्युपगम से यह समुद्र के अन्त तक हुई थी और मेदिनी इस नाम से परिश्रुत हुई । यह दुहिता के भाव से प्राप्त हुई थी, जब से ही यह पृथ्वी इस नाम से पही जाती है ॥२॥३॥ यह प्रथिता हुई—प्रविभक्त हुई और शोभा से भी युक्त हुई वसुधरा थी, जो कि सस्या के प्रातरों वाली राजा के द्वारा पत्तनों के आकरों के माला धारिणी भी गई थी । यह चारा वर्णों के समुदाय से समाकीर्ण उनी राजा के द्वारा जो नि परम बुद्धिमान् था, रक्षित हुई थी ॥४॥ वह नृपम परम श्रेष्ठ राजा वैश्य इस प्रकार के प्रभाव से युक्त था । वह प्राणियों के समूह के द्वारा स्वयं नमन करने के योग्य तथा पूजा करने के योग्य था ॥५॥ वेद और वेद के समस्त अङ्गों के पारगामी महान् भाग्य वाले ब्राह्मणों के द्वारा ब्रह्मपति एव सनातन केवल पृथु ही नमस्कार करने के योग्य होता है ॥६॥

जो राजा इस भू मण्डल में महाम् यज्ञ प्राप्त करने के इच्छुक था उन महाभागो के द्वारा भी परम प्रताप वाता आदि राजा वैश्व पृथु ही नमस्कार करने के योग्य होता है ॥७॥

यो नीरपि च सग्रामे प्रार्थयानेजंय युधि ।  
 आदिकर्त्ता नराणां नो नमस्य पृथुरेव हि ॥८  
 यो हि योद्धा रणं याति कीर्तयित्वा पृथु नृपम् ।  
 स धीरस्ये सग्रामे क्षेपी तरति कीर्त्तमान् ॥९  
 वैश्वरपि च राजपिवैश्वरुत्तिसमाश्रितै ।  
 पृथुगेव नमस्कार्यो वृत्तिदाता महापथा ॥१०  
 एत वत्मविशेषाश्च दोग्धार क्षीरमेव च ।  
 पाशाणि च गयोक्तानि रावीण्येव यथाक्रमम् ॥११  
 ब्रह्मणा प्रथम दुग्धा पुरा पृथुः महात्मना ।  
 वायु कृत्वा तदा वत्स वीजानि वसुधानले ॥१२  
 ततः स्वायम्भुवे पूर्वन्तदा मन्वन्तरे पुन ।  
 वत्स स्वायम्भुव कृत्वा दुग्धा श्रीग्मेण नो मही ॥१३  
 मतो स्वाराक्षिणे दुग्धा मही चैत्रेण धीमता ।  
 मनु स्वारोक्षिप कृत्वा वत्स तस्यानि नो पुरा ॥१४

जो वीधा नग्राम भूमि में घना जय प्राप्त करने की कामना रखते हैं, उनका द्वारा भी मानवा का आदिकर्त्ता पृथु ही नमस्कार करने के योग्य होता है ॥८॥ जो याथा रत्नभूमि में पहिले पृथु राजा का गुण गान करने जाया करता है वह फिर वही धार स्वल्प वाते सग्राम में क्षेम वाला होता हुआ कीर्त्ति प्राप्त करने वाला पार उन्नता है ॥९॥ वैश्वर्षी की वृत्ति में समाश्रित रहने वाले वैश्वो के द्वारा भी वह राजपि वृत्ति के देने वाला धीर महान् यज्ञ वाला पृथु ही नमस्कार करने के योग्य होता है ॥१०॥ ये सब वत्म विशेष, दाहन करने वाले दावा गण और पात्र तथा क्षीर सभी वस्तुएँ क्रम के अनुसार देने तक ही हैं ॥११॥ पहिले महान् आत्मा वाते ब्रह्मजी ने इस पृथु का दाहन किया था । उस समय ब्रह्मा ने वायु को वत्स बनाया था और इस वसुधा के

तत मे बीजो को ब्रुहा था ॥१२॥ एगने परवात् फिर पहिने स्वायम्भुव मन्व-  
न्तर में स्वायम्भुव को वत्स बनाकर ग्रीष्म के द्वारा इस मही का दोहन किया  
गया था ॥१३॥ स्वारोचिष मन्वन्तर में धीमान् चंद्र ने मही का दोहन किया  
था । स्वारोचिष मनु को वत्स बनाकर सस्यो का दोहन किया गया था ॥१४॥

उत्तमेऽनुत्तमेनापि दुग्धा देवभुजेन तु ।

मनु कुत्वोत्तम वत्स सर्वसस्यानि धीमता ॥१५

पुनश्च पञ्चमे पृथ्वी तामसस्यान्तरे मनो ।

दुग्धेय तामस वत्स कृत्वा तु बलवन्धुना ॥१६

चारिष्णावस्य देवस्य सप्राप्ते चान्तरे मनो ।

दुग्धा मही पुराणो न वत्सञ्चारिष्णाव प्रति ॥१७

चाक्षुषेऽपि च सम्प्राप्ते तदा मन्वन्तरे पुन ।

दुग्धा मही पुराणो न वत्स कृत्वा तु चाक्षुषम् ॥१८

चाक्षुषस्यान्तरेऽस्तीते प्राप्ते वैवस्वते पुन ।

वंन्येनेय मही दुग्धा यथा ते कीर्तित मया ॥१९

एतद्दुग्धा पुरा पृथ्वी प्यतीतेष्वन्तरेषु वै ।

देवादिभिमनुष्यैश्च तथा भूतादिभिश्च या ॥२०

एव सर्वेषु विज्ञेया ह्यतीतानागतेष्विह ।

देवा मन्वन्तरेष्वस्य पृथोऽनु शृणुत प्रजा ॥२१

उत्तम और धीमान् अनुत्तम देवभुज क द्वारा उत्तम मनु को वत्स बना  
कर धीमान् ने ममस्य सस्यो का दोहन किया था ॥१५॥ फिर तामस मन्वन्तर  
से जो कि पाँचवाँ मन्वन्तर था बलवन्धु के द्वारा यह पृथ्वी तामस मनु को  
वत्स बनाकर दोहन की गई ॥१६॥ फिर चारिष्णाव देव के मन्वन्तर प्राप्त होने  
पर पुराण ने चारिष्णाव को वत्स बनाकर इस पृथ्वी का दोहन किया था ॥१७॥  
फिर चाक्षुष मन्वन्तर के आ जाने पर पुराण के द्वारा ही चाक्षुष को वत्स  
कल्पित कर इस मही का दोहन किया गया ॥१८॥ फिर चाक्षुष अन्तर के  
व्यतीत हो जाने पर इस वैवस्वत मन्वन्तर के सम्प्राप्त हो जाने पर यह मही  
वैवस्व राजा के द्वारा दोहन की गई है जंसा कि मैंने तुमको अभी सब बताया

था ॥१६॥ पहिले इन सबके द्वारा मन्वन्तरो के व्यनीत हो जाने पर देव आदि-  
मानव और भूतादि के द्वारा यह भूमि दोहन की गई थी ॥२०॥ इस प्रकार से  
अतीत एक अनागत सभी मे मन्वन्तरो मे देवो को जान लेना चाहिए । अब इस  
राजा पृथु की प्रजा का श्रवण भाव लोग करे ॥२१॥

पृथोस्तु पुत्री विद्वान्तो जज्ञातेऽन्तर्दिपालिनी ।

शिखण्डिनी हविर्दानिमन्तर्दानाद्वयजायत ॥२२

हविर्दानात्पडाग्र्यो धिपणाऽजनयत्सुतान् ।

प्राचीनवर्हिष मुक्त पय कृष्ण प्रजाजिनो ॥२३

प्राचीनवर्हिभंगवान् महानासोत् प्रजापति ।

वलश्रुततपोवीर्ये पृथिव्यामेवराडसौ ।

प्राचीनाग्रा कुशास्तस्य तस्मात्प्राचीनवर्ह्यसौ ॥२४

समुद्रतनयायान्तु कृतदारः स धी प्रभु ।

महतस्तमस पारे सवर्णाया प्रजापते ।

सवर्णाऽऽधत्त सामुद्रो दश प्राचीनवर्हिष ॥२५

सर्वे प्रचेतसो नाम यनुर्गेदस्य पारगा ।

अपृथग्धर्मचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तप ।

दशवपंसहस्राणि समुद्ररालिशया ॥२६

तपश्चरत्सु पृथिवी प्रचेतसु महीरहा ।

अरक्ष्यमाणामावश्रुवंभूवाथ प्रजाधाय ॥२७

प्रत्याहृते तदा तस्मिन्श्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः ।

नाशयन् मारतो वानु कृता खमभवद्द्रुमं ।

दशवपंसहस्राणि न देकुदचेष्टितु प्रजा ॥२८

पृथु राजा के दो विद्वान्त पुत्र उत्पन्न हुए थे जोकि अन्तर्दियानी थे ।

शिखण्डिनी हविर्दान अन्तर्दान मे वशश्रु द्रुमा ॥२२॥ हविर्दान मे पद्मान्वेधी

धिपणा मे पुत्रों को जन्म दिया था । त्रिनके नाम प्राचीन वर्हि-गुरु-जप-

कृष्ण-व्रज और अजित थे ॥२३॥ प्राचीन वर्हि भगवान् महान् प्रजापति थे ।

ह वस-श्रुत-ता और वीर्य मे पृथिवी मे एकपद् थे । प्राचीनाग्र कुशा उनके

ये इतीमे यत् प्राचीन वहि नाम वाया हृषा या ॥२५॥ वह ध्रुव समुद्र तनया मे  
 वृन्दार हृषा या अर्षात् समुद्र तनया को अगनी दारा बनाया था । महात् तप  
 के पार म प्रजापति म रावर्णा म दस नागुडी प्राचीन वदियों को मवर्णन  
 धारण किया था ॥२५॥ य मक धनुर्वेद के वाग्गामी प्रचेतस थे । अष्टवक्र धर्म  
 के भाचरगु बनने पात्र उनमें दस अट्छ वर्ष तक महात् तपस्वर्या की थी जो  
 कि समुद्र के जल म शयन करी बलि थे ॥२६॥ प्रचेताश्रा के तरदवर्षा करने  
 पर महीछह अक्षय्याण पृथ्वी म बोले । इसके अनन्तर प्रजापति हो गया  
 था ॥२७॥ उम समय चाक्षुष मन्वन्तर क प्रसह्य हो जाने पर माहन बहन  
 न कर स्या और द्रुमो ने भावाय धातुन होगया था । दस सहस्र वर्ष तक प्रजा  
 कुछ भी चेष्टा न कर सकी थी ॥२८॥

तद्रुपश्चुत्य तपसा सर्वे युक्ता प्रचेतस ।

मुत्तेभ्यो वायुमग्निञ्च समृजुर्जातमन्वय ॥२९

उन्मूलानथ तान् वृक्षान् कृत्वा वायुरक्षोपयत् ।

तानग्निरदहद्द्वार एवमासीद्रुमक्षय ॥३०

द्रुमक्षयमथो बुद्ध्वा विञ्चिच्छ्रेयेषु शाखिषु ।

उपगम्याश्चवीदेतान् राजा सोमः प्रचेतसः ॥३१

दृष्ट्वा प्रयोजन सर्वं लोकसन्तानकारणात् ।

वोपन्त्यजत राजान सर्वं प्राचीनवर्हिष ॥३२

वृक्षा क्षित्या जनिष्यन्ति शाम्येतामग्निमाष्टौ ।

रत्नभूता तु कन्येय वृक्षास्या वरवर्णिनी ॥३३

भविष्य जानता ह्येषा मया गोभिविर्वाद्धिता ।

मारिषा नाम नाम्नेषा वृक्षीरेव विनिर्मिता ।

भार्या भवतु वो ह्येषा सोमगर्भविर्वाद्धिता ॥३४

पुष्पाक तेजसोऽङ्गेन मम चाङ्गेन तेजसः ।

अरयामुत्पत्स्यते विद्वान् दक्षो नाम प्रजापति ॥३५

तपस्या म युक्त समस्त प्रचेताश्रो ने दह युतकर श्रोयित होने हुए सुखो  
 ने वायु और अग्नि को उत्सर्जित किया था ॥३६॥ वायु ने उन समस्त पृथो

को उन्मूलित कर मुरवा दिया था और अग्नि ने उनको दग्ध कर दिया था । इन प्रकार से धोर द्रुमों का क्षय हुआ था ॥३०॥ कुछ शाखियों के शेष रह जाने पर द्रुमों के क्षय को जानकर प्रचेतस सोम राजा उनके पास आकर उनसे कहने लगा ॥३१॥ लोक मन्तान के कारण से समस्त प्रयोजन जातकर प्राचीन वर्हिप राजा लोग कोष को छोड़ दो ॥३२॥ क्षिति में वृक्ष उत्पन्न होंगे । अग्नि धोर वायु शान्त हो जावे । रत्नभूता यह बन्या वृक्षों की वर वर्णिनी है ॥३३॥ भविष्य धर्मान् आगे आने वाले समय को जानने वाले मैंने गोप्तो से विवर्द्धित की है । नाम से यह मारिषा नाम वाली है और यह वृक्षों के द्वारा ही विनिमित्त हुई है । यह सोम के गर्भ से विवर्द्धित हुई आपकी भार्या होवे ॥३४॥ आपके आधे तेज से और आधे मेरे तेज से इममें परम विद्वान् दक्ष नाम वाला प्रजापति उत्पन्न होगा ॥३५॥

रा इमा दग्धभूयिष्ठा युष्मत्तेजोमयेन वै ।  
 आग्निनाग्निसमो भूयः प्रजा सवर्द्धयिष्यति ॥३६॥  
 ततः सोमस्य वचनाज्जगृह्णस्ते प्रचेतस ।  
 सहृत्य कोप वृक्षेभ्य पत्नी धर्मेण मारिषाम् ॥३७॥  
 मारिषाया ततस्ते वै मनमा गर्भमादधुः ।  
 दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषाया प्रजापति ॥३८॥  
 दशो जर्त महातेजाः सोमम्यागेन धीर्यवान् ।  
 अमृजन्मानसानादो प्रजा दशोऽथ मंथुनात् ॥३९॥  
 अचराश्च चराश्चैव द्विपदोऽथ चतुष्पदान् ।  
 विगृज्य मनमा दश पश्चादमृजत त्रियः ॥४०॥  
 ददौ स दश धर्माय वश्यपाय त्रयोदश ।  
 वानस्य नयने मुक्ताः सप्तविंशतिमिन्दये ॥४१॥  
 एभ्यो दत्त्वा तनोऽन्या वै चतस्रोऽरिष्टनेमिने ।  
 द्वे चैव वाहूपुत्राय द्वे चैवाङ्घ्रिभ्ये तथा ।  
 बन्यामेका वृक्षाश्चाय तेभ्योऽन्यस्य निशोपत ॥४२॥  
 आपके तेजोमय अग्नि में दग्ध भूयिष्ठा इनको वह अग्नि गम होकर फिर

प्रजा का सम्बन्धन करेगा ॥३६॥ इसके पश्चात् सोम के बचन से उन प्रचे-  
ताओं ने वृद्धो ने कोष का सहार करके धम से मारिया को पत्नी रूप में ग्रहण  
किया था ॥३६॥ इसके अनन्तर उन्होंने मारिया में मन से गर्भ धारण कराया  
था । दस प्रचेताओं से मारिया में प्रजापति महान् तेज वाला सोम के अणु से  
घोर्यवान् दश उत्पन्न हुआ था । भादि में मानव प्रजाओं का सृजन किया था  
इसके अनन्तर दस ने मैथुन से सृजन किया ॥३८-३९॥ दश ने चर-प्रचर-  
द्विरद और चतुष्पदों का मन से विशेष रूप से सृजन करके पीछे स्त्रियों का  
सृजन किया था ॥४०॥ उसने अर्थात् दश ने दशतों धम के लिए दी-वश्यप  
को तेरह और काल के मयन में युक्त सत्ताईस इन्दु के लिए दी थी ॥४१॥  
इनको देकर फिर अन्य चार अरिष्टनेमि को दी—दो बाहु पुत्र के लिए—दो  
आङ्घ्रिस के लिये और एक बन्धा वृशाख के लिये दी । अब उनसे जो सन्तति  
हुई उसे भी प्रायः जोर भली भाँति समझ लो ॥४२॥

अन्तर चाक्षुषस्यात्र मनो पञ्चन्तु हीयते ।

मनोर्वेवस्वसस्यापि सप्तमस्य प्रजापते ॥४३

तासु देवाः खगा गावो नागा दितिजदानवा ।

गन्धर्वाप्सरसश्च व जज्ञिरेऽन्याश्च जातयः ॥४४

तत प्रभृति लोकेऽस्मिन् प्रजा मैथुनसम्भवा ।

सङ्कल्पाद्दर्शनात्स्पशतिपूर्वेषा सृष्टिरुच्यते ॥४५

देवाना दानवानाञ्च देवर्षीणाञ्च ते शुभ ।

सम्भवः कथितः पूर्वं दक्षस्य च महात्मन ॥४६

प्राणात्प्रजापतेर्जन्म दक्षस्य कथित त्वया ।

कथ प्राचेतसत्वञ्च पुनर्लभे महातपाः ॥४७

एतन्नः सशय सूत व्याख्यातु त्वमिहाहसि ।

स दीहित्रश्च सोमस्य कथ इवगुरताङ्गतः ॥४८

उत्पत्तिश्च निराधश्च नित्य भूतेषु सत्तमा ।

ऋषयोऽन न मुह्यन्ति विद्यावन्तश्च ये नराः ॥४९

यहाँ ५८ चाक्षुष भनु का छद्म भाँतर हीयमान होना है । प्रजापति



सप्तम वैवस्वत मनु का भी समाप्त होता है । उन में देव-क्षत्र-गौ-नाग-दितिज-दानव-गन्धर्व-अप्सरा और अन्य जातियाँ उत्पन्न हुई थी ॥४३-४४॥ इसके पश्चात् सभी से लेकर इस लोक में मनुष्यसे जन्म ग्रहण करनेवाली प्रजा हुई थी । इससे पहिले जो हुए थे उन पूर्व में होने वालों की सृष्टि सद्बुद्ध-दर्शन-स्पर्शन से ही कही जाती है ॥४५॥ ऋषिया ने कहा—घ्रापने देवों वा-दानवों का और देवपियों का शुभ जन्म महात्मा दश के पहिले बनलाया है ॥४६॥ घ्रापने प्रजापति दक्ष का जन्म प्राण से बनलाया है । फिर महात्पपा ने प्राचेतसात्त्व को कैसे प्राप्त किया था ॥४७॥ हे मृत ! यह हमको बड़ा सशय होता है । आप इसकी पूरी व्याख्या करने के योग्य होने हैं । वह सोम का दौहित्र इवसुर कैसे बन गया था ? ॥४८॥ श्री सूतजी ने कहा—हे सत्तमो ! प्राणियों में उत्पत्ति और निरोध नित्य ही होता है । इस विषय में ऋषि लोग और जो विद्या वाले मनुष्य हैं वे मोह को प्राप्त नहीं होते हैं ॥४९॥

युगे युगे भवन्त्येते सर्वे दक्षादयो द्विजा ।  
 पुनश्चैव निरुध्यन्ते विद्वास्तत्र न भुह्यति ॥५०॥  
 ज्यैष्ठ्य कानिष्ठ्यमप्येषा पूर्व नासीद्द्विजोत्तमा ।  
 तत्र एव गरीयोऽभूत् प्रभावश्चैव कारणम् ॥५१॥  
 इमा विसृष्टि यो वेद चाक्षुषस्य चराचरम् ।  
 प्रजानामायुरुत्तीण स्वर्गलोके महीयते ॥५२॥  
 एष सर्गं समाख्यातश्चाक्षुषस्य समा सत् ।  
 इत्येते षड्विसर्गा हि क्रान्ता मन्वन्तरात्मका ।  
 स्वायम्भुवाद्याः सप्तोपाद्वाक्षुषान्ता यथाक्रमम् ॥५३॥  
 एते सर्गा यथाप्रज्ञ प्रोक्ता वै द्विजसत्तमा ।  
 वैवस्वतनिर्गोण तेषा ज्ञेयस्तु विस्तर ॥५४॥  
 अनन्ता नातिरिक्ताश्च सर्वे सर्गा विवस्वत ।  
 धारोग्यायुष्प्रमाणेन धर्मत कामतोऽर्थतः ।  
 एतानेव गुणान्नेति य पठत्यनसूयक ॥५५॥

वैवस्वतस्य वध्यामि साम्प्रतस्य महात्मनः ।

समासाद्भ्यास्तत सर्गं भ्रुवतो मे निबोधत ॥१६॥

हे द्विज वृन्द ! ये समस्त दश भादि युग-युग में होते हैं और फिर निरुद्ध हुआ करते हैं । उसमें विद्वान् पुरुष कभी मोहित नहीं होता है ॥१६॥ हे द्विजोत्तमो ! पहिले इनकी ज्येष्ठता और कनिष्ठता अर्थात् छुटपन और बढपन नहीं होती थी । तब ही एष बड़ा हुआ या और प्रभाव ही कारण था ॥१७॥ जो चाद्युप की इस चराचर विशेष मृष्टि को जानता है वह प्रजाओं की आयु को उत्तीर्ण होगया और स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित होमा है ॥१८॥ मैंने यह चाद्युप मन्वन्तर का सर्ग संशेष से कहा है । ये मन्वन्तरात्मक अर्थात् मन्वन्तर के स्वरूप वाले छै विसर्ग अन्त होते हैं । स्वायम्भुव के भाय वाले चाद्युप के अन्त वाले यथाक्रम संशेष में वर्णित हैं । अर्थात् इनमें से छै में स्वायम्भुव प्रथम है और चाद्युप अन्तिम है ॥१९॥ ये समस्त सर्ग प्रजा के अनुधार हे द्विजोत्तमो ! मैंने कहे हैं । वैवस्वत विसर्ग से ही उनका विस्तार जान लेना चाहिये ॥२०॥ ये समस्त सर्ग विवस्वान् से न तो अनन्त हैं और न अतिरिक्त ही हैं । आरोग्य और आयुष् प्रमाण से-धर्म से तथा काम से इनके ही गुण से जो अनसूयक इत्ते पढता है हो जाता है । अब साम्प्रत महात्मा वैवस्वत का सर्ग समाप्त और विस्तार दोनो से मैं कहूँगा उसे आप लोग बताने वाले मुझमें जान लो ॥२१-२६॥

### प्रकरण ४६-वैवस्वत-सर्ग वर्णन

सप्तमे त्वय पययि मनोवैवस्वतरय ह ।

मारीचात्कश्यपाद् देवा जज्ञिरे परमर्षयः ॥१॥

आदित्या वसवो रुद्रा साध्या विश्वे मरुद्गणा ।

भृगवोऽङ्गिरसश्चैव ह्यष्टौ देवगणाः स्मृताः ॥२॥

आदित्या मरुतो रुद्रा विज्ञेया कश्यपात्मजाः ।

साध्याश्च वसवो विश्वे धर्मपुत्रास्त्रयो गणाः ॥३॥

भृगोस्तु भार्गवो देवो ह्यङ्गिरोऽङ्गिरस सुतः ।  
 वैवस्वतेऽन्तरे ह्यस्मिन् नित्यं ते छन्दजा सुराः ॥४  
 एष सर्गस्तु मारीचो विज्ञेयः साम्प्रतः शुभः ।  
 तेजस्वी साम्प्रतस्तेषामिन्द्रो नाम्ना महाबल ॥५  
 अतीतानागता ये च वर्तन्ते ये च साम्प्रतम् ।  
 सर्वे मन्वन्तरेन्द्रास्तु विज्ञेयास्तुल्यलक्षणाः ॥६  
 भूतभव्यभवन्नाथ सहस्राक्षः पुरन्दरः ।  
 मघवन्तश्च ते सर्वे शृङ्गीणो वज्रपाणयः ।  
 सर्वे ऋतुशतेनेष्टं पृथक् शतगुणेन तु ॥७

श्री सूत्रजी ने कहा—इसके अनन्तर वैवस्वत मनु के रातम पर्याय में मारीच से कश्यप से देव और परमपिण्ड उत्पन्न हुए ॥१॥ आदित्य-वसुगण-रुद्र-साध्य-विश्वे-मरुद्गण-भृगु-अङ्गिरस ये आठ देवगण कहे गये हैं ॥२॥ आदित्य-मरुत और रुद्र ये कश्यप के पुत्र जानने चाहिए । साध्य-वसुगण-विश्वे ये तीन गण धर्म के पुत्र हैं ॥३॥ भृगु वा भार्गव देव पुत्र है और अङ्गिरस वा अङ्गिरा पुत्र हुआ । इस वैवस्वत अन्तर में नित्य छन्दज सुर हैं ॥४॥ यह मारीच सर्ग जानना चाहिए जो कि साम्प्रत और शुभ है । साम्प्रत अर्थात् इस वर्तमान समय में होने वाला उनमें तेजस्वी और नाम से महाबल इन्द्र है ॥५॥ जो अतीत और अनागत है और जो इस समय में वर्तमान हैं वे सब मन्वन्तरेन्द्र तुल्य लक्षण वाले ही जानने चाहिए ॥६॥ भूत भव्य और भवत् के सहस्राक्ष-पुरन्दर और मघवन्त वे सब शृङ्गी-वज्र पाण्ड हैं । सचो के द्वारा पतशत्रु से मञ्जत किया गया है जो कि पृथक् शत गुण से युक्त हैं ॥७॥

श्रौतौषधे यानि सत्त्वानि गतिमन्त्यबलानि च ।  
 अभिभूयावतिष्ठन्ते धर्मादः कारुणरपि ॥८  
 तेजसा तपसा बुद्ध्या बन्धुत्तपराक्रमे ।  
 भूतभव्यभवन्नाथा यथा ते प्रभविष्णावः ।  
 एतन्मयं प्रवक्ष्यामि श्रुत्वतो मे निबोधतः ॥९

भूत भव्यं भविष्यं तत् लोकत्रय द्विजैः ।  
 भूर्लोकोऽयं स्मृतो भूमिरन्तरिक्षं भुवः स्मृतम् ।  
 भव्यं स्मृतं दिवं ह्येतत्तेषां वक्ष्यामि साधनम् ॥१०॥  
 ध्यायतः पुत्रकामेन ब्रह्मणाग्रे विभाषितम् ।  
 भूरिति व्याहृतं पूर्वं भूर्लोकोऽयमभूत्तदा ॥११॥  
 भूतत्त्वायां स्मृतो धातुस्तथाऽसौ लोकदर्शने ।  
 भूतत्वादर्शनत्वाच्च भूर्लोकोऽयमभूत्ततः ।  
 मतोऽयं प्रथमो लोको भूतत्वाद्भूद्विजैः स्मृतः ॥१२॥  
 भूतेऽस्मिन् भवदित्युक्तं द्वितीयं ब्रह्मणा पुनः ।  
 भवत्युत्पद्यमानेन कालशब्दोऽयमुच्यते ॥१३॥  
 भवनात्तु भुवर्लोको निरुक्तज्ञैर्निरुच्यते ।  
 अन्तरिक्षं भुवस्तस्माद्वितीयो लोक उच्यते ॥१४॥

ग्रीनोक्य मे जो सत्त्व गतिमान् और प्रबल हैं उनका अभिभव करके  
 अवस्थित होते हैं । धर्मार्थ कार्यों से-तेज से-सर्वसे बुद्धिसे और बल-शुत और  
 पराक्रम से भूत-भव्य और भवधाम होते हैं वे उषी प्रकार से प्रभविष्यु भी  
 हैं । यह सब मैं बतलाऊंगा बोलने वाले मुझमें आप लोग सब जानकारी कर  
 लो ॥१०॥ भूत-भव्य और भविष्य वह द्विजों के द्वारा लोकत्रय कहा गया ।  
 यह भूमि भूर्लोक कहा गया है और अन्तरिक्ष भुवनोक इस नाम से कहा  
 गया है । भव्य यह दिव्य कहा गया है अब उनके साधन बतलाऊंगा ॥१०॥  
 पुत्र की कामना वाले ध्यान करते हुए ब्रह्मा ने सबसे आगे "भू" यह बोना या  
 सबसे ही यह भूर्लोक हो गया था ॥११॥ 'भू' यह धातु मसी धर्म में कहा गया  
 है तथा यह लोक दर्शन में भूतत्व और दर्शनताव होने के कारण से तभी से यह  
 भूर्लोक हुआ था । इसीलिये यह प्रथम लोक भूतत्व होने से द्विजों के द्वारा भू  
 कहा गया है । इस भूत में ब्रह्मा के द्वारा पुनः द्वितीय भवत् यह कहा गया है ।  
 भवति इस उत्पद्यमान के द्वारा यह काल शब्द कहा जाता है ॥१२॥१३॥ भवन  
 होने से निरुक्त-के ज्ञाताओं के द्वारा भुवर्लोक कहा जाता है । अन्तरिक्ष भुव  
 होता है इससे यह द्वितीय लोक कहा जाता है ॥१४॥

उत्पन्ने तु भुवर्लोके तृतीयं ब्रह्मणा पुन ।  
 भव्येति व्याहृत यस्माद्भ्राह्म्यो लोकस्तदाऽभवत् ॥१५॥  
 अनागते भव्य इति शब्द एव विभाव्यते ।  
 तस्माद्भ्राम्यो ह्यसौ लोको नामतस्तु दिव स्मृतम् ॥१६॥  
 स्वरित्युक्त तृतीयोऽन्यो भ्राम्यो लोकस्तदाभवत् ।  
 भाव्य इत्येव धातुर्व भाव्ये काले विभाव्यते ॥१७॥  
 भूरितीय स्मृता भूमिरन्तरिक्ष भुव स्मृतम् ।  
 दिव स्मृत तथा भाव्य त्रं लोकयस्येव सग्रहः ॥१८॥  
 त्रं लोकययुक्तं व्याहारैस्तिस्त्रो व्याहनयोऽभवन् ।  
 नाय इत्येव धातुर्व धातुर्न पालने स्मृतः ॥१९॥  
 यस्माद् भूतस्य लोकस्य भव्यस्य भवतस्तदा ।  
 लोकत्रयस्य नायास्ते तस्मादिन्द्रा द्विजं स्मृताः ॥२०॥  
 प्रधानभूता देवेन्द्रा गुणभूतास्तथैव च ।  
 मन्वन्तरेषु ये देवा यज्ञभाजो भवन्ति हि ॥२१॥

भुवर्लोक के उत्पन्न होने पर प्रजा ने फिर तृतीय को भव्य ऐसा कहा जिस कारण से तब यह भव्य लोक हो गया था ॥१५॥ अनागत में भव्य यह शब्द विभाजित हुआ है । इसमें यह लोक भव्य नाम से कहा गया है ॥१६॥ इस यह कहा गया है एक अन्य तृतीय भाव्यलोक हुआ था । भाव्य यह धातु भाव्य काल में विभाजित होता है ॥१७॥ यह भूमि भू इस नाय से बही गई है—अन्तरिक्ष भुव इस नाम से कहा गया और भाव्य दिव इस नाम से कहा गया है—यही त्रिलोक का सग्रह होता है ॥१८॥ त्रिलोक से युक्त व्याहारों से “भूर्भुव इव” तीन व्याहृतियाँ हो गई हैं । ‘नाय’—इस नाम से एक धातु है यह धातु के ज्ञान रखने वालों के द्वारा पालन प्रथम में बही गई है ॥१९॥ जिस में भूत-भव्य और भव्य लोक के उग समय में तीन लोक के वे जो नाय के द्विजों के द्वारा वे इन्द्र बने गये हैं । २०॥ प्रधान भूत देवेंद्र तथा गुणभूत मन्वन्तरा में जो देव हैं वे यज्ञ के भागपाटी होते हैं ॥२१॥

यक्षगन्धर्वरक्षासि पिशाचोरगदानवाः ।  
 महिमानः स्मृता ह्येते देवेन्द्राणान्तु सर्वश ॥२२॥  
 देवेन्द्रा गुरवो नाथा राजानः पितरो हि ते ।  
 रक्षन्तीमा प्रजाः सर्वा धर्मोऽहं सुरोत्तमा ॥२३॥  
 इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं देवेन्द्राणां समासतः ।  
 सप्तर्षीन् सम्प्रवक्ष्यामि साम्प्रतं ये दिवि स्थिताः ॥२४॥  
 गाधिजः कौशिको धीमान् विश्वामित्रो महातपा ।  
 भार्गवो जमदग्निश्च ऊरुपुत्र प्रतापवान् ॥२५॥  
 बृहस्पतिमुतश्चापि भारद्वाजो महातपा ।  
 श्रौतय्यो गौतमो विद्वाञ्छ्वरद्वान्नाम धार्मिक ॥२६॥  
 स्वायम्भुवोऽत्रिभंगवान् ब्रह्मकोशस्तु पञ्चम ।  
 पष्ठो वासिष्ठपुत्रस्तु वभुमान् लोकविश्रुतः ॥२७॥  
 वत्सार काश्यपश्चैव सप्तैते साधुसम्मतः ।  
 एते सप्तर्षयः सिद्धा वर्तन्ते साम्प्रतेऽन्तरे ॥२८॥

यक्ष-गन्धर्व-राक्षस-पिशाच-उरग-दानव-ये देवेन्द्रों के सब घोर से महिभारों कही गई हैं ॥२२॥ हे सुरोत्तमो ! देवेन्द्र-गुरु-नाथ-राजा-पितर ये सभी यहाँ पर धर्म से प्रजा की रक्षा किया करते हैं ॥२३॥ यह देवेन्द्रों का लक्षण संक्षेप से बतना दिया है । अब सप्तर्षियों के विषय में बतलाते हैं जो कि इस समय दिवि में स्थित रहते हैं ॥२४॥ गाधि से उत्पन्न होने वाले, कौशिक और धीमान् महात् तपस्वी विश्वामित्र—भार्गव जमदग्नि प्रताप वाला ऊरु का पुत्र—बृहस्पति का पुत्र महात् तपस्वी भारद्वाज—श्रौतय्य गौतम जो कि बड़ा विद्वान् शरद्वाज नाम वाला परम धार्मिक है—स्वायम्भुव भगवान् अत्रि जो ब्रह्म का कोश और पाँचवा है—छठवें वासिष्ठ पुत्र जो वभुमान् और लोक में परम विश्रुत है—वत्सार काश्यप ये साधुओं के द्वारा सहमत मान ऋषियुक्त हैं । ये वर्तमान इस अन्तर में निद्व दृष्ट सप्तर्षि होते हैं ॥२५॥२६॥२७॥२८॥

इक्ष्वाकुश्चैव नाभागो घृष्टं शर्यातिरेव च ।

रिप्यन्तश्च मित्यातो नाभ उद्दिष्ट एव च ॥२९॥

करुपश्च पृषधश्च वसुमान्नवम स्मृत ।

मनोर्वैवस्तस्येते दश पुत्रा प्रकीर्त्तिता ।

कीर्त्तिता वै मया ह्येते सप्तमञ्चैतदन्तरम् ॥३०

इत्येष वो मया पादो द्वितीय कथितो द्विजा ।

विस्तरेणानुपूर्व्या च भूय किं वणयाम्यहम् ॥३१

इशवाकु-नाभाग-गृध्र-शर्याति-नरिष्यन्त-विख्यात और उद्दिष्ट नाभ-  
पृषध और नवम वसुमान् ये इस वैवस्वन मनु के दस पुत्र कहे गये हैं । मैंने  
इनको कीर्त्तित कर दिया है और यह सप्तम अन्तर है । हे द्विजगण । यह मैंने  
द्वितीय पाद कहा है । अब आप लोग ही मुझे बतलाइये पुत्र विस्तार से तथा  
धानुपूर्वी से मैं क्या बणन करूँ ॥२६॥३०॥३१॥

## ॥ प्रकरण ४७--प्रजापति वंशानु कीर्तन ॥

श्रुत्वा पाद द्वितीयस्तु क्रान्त मूलेन धामता ।

अतस्तृतीय पप्रच्छ पाद वै शाशपायन ॥१

पाद क्रान्तो द्वितीयोऽयमनुपङ्गेण यस्त्वया ।

तृतीय विस्तरात्पाद सोपोद्धात प्रकीर्त्तय ।

एवमुक्तोऽब्रवीत्सूत प्रहृष्टोऽनन्तरात्मना ॥२

कीर्त्तयिष्ये तृतीयञ्च सोपोद्धात सविस्तरम् ।

पाद समुदयाद्विप्रा गदतो मे निबोधत ॥३

मनोर्वैवस्वतस्येव साम्प्रतस्य महात्मन ।

विस्तरेणानुपूर्व्या च नितर्ग शृणुत द्विजा ॥४

चतुर्युगैकसप्तत्या सङ्घपात पूर्वमेव तु ।

सह देवगणैश्चैव ऋषिभिर्दानवै सह ॥५

पितृगन्धर्वयक्षैश्च रक्षोभूतगणैस्तथा ।

मानुषै पशुभिश्चैव पक्षिभि स्यावरै सह ॥६

ऊचु सर्वे ततोऽन्योन्यं जनलोके महर्षय ।  
 ऊचुरेव महाभागा वारुणे वितते क्रतौ ॥१८  
 सर्वे वय प्रसूयामश्चाक्षुपस्यान्तरे मनो ।  
 पितामहात्मजा सर्वे तत श्रेयो भविष्यति ॥१९  
 स्वायम्भुवेऽन्तरे शप्ता समार्थं ते भवेन तु ।  
 जज्ञिरे वै पुनस्ते ह जनलोकादिव गता ॥२०  
 देवस्य महतो यज्ञे वारुणी विभ्रतस्तनुम् ।  
 ब्रह्मणो जुह्वतः शुक्रमग्नी पूर्वं प्रजेप्तया ।  
 ऋषयो जज्ञिरे पूर्वं द्वितीयमिति न श्रुतम् ॥२१

ऋषियो ने कहा—हे श्रेष्ठतम ! पहिले समुत्पन्न सप्तपिण्ड कैसे सात मानस पुत्रत्व से कल्पित हुए ? यह हमे बतलाइये । इसके पश्चात् महान् तेज-वाले पौराणिक मूलजी ने शुभ वचन बोले ॥१५॥ सप्तपिण्ड कैसे सिद्ध हुए जो स्वायम्भुव अन्तर में वे मन्वन्तर को प्राप्तकर जोकि वैवस्वत नाम वाला धाम के अभिशाप से सविद्ध होकर उन्होंने उस समय म तप को प्राप्त नहीं किया था । एकबार आगामी वे जनलोक में उपपन्न थे ॥१६॥१७॥ तब जनलोक में सब महर्षिलोग आपस में एक-दूसरे से बोले और वितत वारुण क्रतु में महाभाग बोले ॥१८॥ हम सब चाक्षुप मनु के अन्तर में प्रनूयमान होते हैं । सब पितामह के आत्मज हैं । इससे श्रेय होगा ॥१९॥ स्वायम्भुव अन्तर में सात के लिये वे शिव के द्वारा अभिशाप हुए वे पुन वहाँ जनलोक से दिव्य को गये हुम्नो ने जन्म लिया था ॥२०॥ यज्ञमें वरुण के शरीर को धारण करने वाले महान् देव प्रजा की इच्छा से पहिले अग्नि में शुक्रका हवन करते हुए ब्रह्मा से पूर्वं ने ऋषिलोग उत्पन्न हुए थे । यह हमारा द्वितीय श्रुत है ॥२१॥

भृगुरङ्गिरा मरीचि पुलस्त्यः पुलह क्रतु ।  
 अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च अष्टौ ते ब्रह्मण सुता ॥२२  
 तथास्य वितते यज्ञे देवाः सर्वे समागता ।  
 यज्ञाङ्गानि च सर्वाणि वपटकारश्च मूर्तिमान् ॥२३  
 मूर्तिमन्ति च सामानि यजूपि च सहस्रशः ।



ऋग्वेदश्चाभवत्तत्र पदक्रमविभूषितः ॥२४

यजुर्वेदश्च वृत्ताढ्य ओङ्कारवदनोज्ज्वल ।

स्थितो यज्ञार्थसंपृक्तमूक्तब्राह्मणमन्त्रवान् ॥२५

सामवेदश्च वृत्ताढ्य सर्वंगेयपुर मरः ।

विश्वावस्वादिभिः साद्धं गन्धर्वैः सम्भृतोऽभवत् ॥२६

ब्रह्मा वेदस्तथा घोरं कृत्याविधिभिरन्वित ।

प्रत्यङ्गिरसयोगैश्च द्विशरीरशिरोऽभवत् ॥२७

लक्षणानि स्वराः स्तोभा निरुक्तस्वरभक्तयः ।

आश्रयस्तु वषट्कारो निग्रहप्रग्रहावपि ॥२८

भृगु-अङ्गिरा-मरीचि-पुलस्त्य-पुलह-ऋतु-अत्रि और वसिष्ठ ये आठ ब्रह्मा के पुत्र हैं ॥२२॥ उसी प्रकार से यज्ञ के वितत होने पर समस्त देवगण वहाँ आये थे । समस्त यज्ञ के प्रज्ञ और मूर्तिमान् वषट्कार-मूर्तिमान् साम-सहस्रो यजु और पद-कम आदि ने विभूषित ऋग्वेद वहाँ पर था ॥२३॥२४॥ वृत्त से आढ्य और ओङ्कार के मुख से उज्ज्वल यजुर्वेद यज्ञ क अर्थ से संपृक्त मूक्त-ब्राह्मण और मन्त्रों वाला वहाँ पर स्थित है ॥२५॥ समस्त गाने के योग्यों में अग्रणी वृत्त से आहूय सामवेद विदवावग्वादि क साग गन्धर्वों के द्वारा सम्भृत था ॥२६॥ ब्रह्मवेद घोरकृत्या विधियों से युक्त और प्रत्यङ्गिरस योगा के द्वारा दो शरीर एवं शिर वाला था ॥२७॥ लक्षण स्वर हैं, स्तोम निरुक्त स्वर और भक्ति हैं । आश्रय वषट्कार है और निग्रह तथा प्रग्रह भी हैं ॥२८॥

दीप्ता दीप्तिरिलादेवी दिश प्रदिशगीश्वरा ।

देवकन्याश्च पत्न्यश्च तथा मातर एव च ॥२९

आयु सर्वत एवैते देवस्य यजतो मुखे ।

मूर्तिमन्तः स्वरूपाख्या वरुणस्य वपुर्भूत ॥३०

स्वयम्भुवस्तु ता दृष्ट्वा रेत समपतद्भुवि ।

ब्रह्मर्षेर्भावभूतस्य विधानाच्च न सशय ॥३१

कृत्वा जुहाव सुग्म्या-व सुवेण परिगृह्य च ।

आन्यवज्जुहुवाञ्चक्रे मन्त्रवच्च पितामह ॥३२

ऊचु सर्वे ततोऽन्योन्य जनलोके महर्षय ।  
 ऊचुरेव महाभागा वारुणे वितते ऋतौ ॥१८  
 सर्वे वय प्रसूयामश्चाक्षुषस्यान्तरे मनो ।  
 पितामहात्मजा सर्वे तत श्रेयो भविष्यति ॥१९  
 स्वायम्भुवेऽन्तरे शप्ता सप्तार्य ते भवेन तु ।  
 जज्ञिरे ० पुनस्ते ह जनलोकाद्दिग गता ॥२०  
 देवस्य महती यज्ञं वाहणी विभ्रतस्तनुम् ।  
 ब्रह्मणो जुह्वत शुक्रमानी पूर्वं प्रजेप्सया ।  
 ऋपयो जज्ञिरे पूष द्वितीयमिति न श्रुतम् ॥२१

ऋषियो ने कहा—हे श्रेष्ठतम ! पहिले समुत्पन्न सप्तपिण्य कैसे सात  
 मानस पुत्रत्व से कल्पित हुए ? यह हमें बतलाइये । इसके पश्चात् महान् तेज  
 वाले पौराणिक सूतजी ने शुभ वचन बोले ॥१५॥ सप्तपिण्य कैसे सिद्ध हुए जो  
 स्वायम्भुव अन्तर मे थे मन्वन्तर को प्राप्तकर जोवि वैवस्वत नाम वाला था  
 भव के अभिशाप से सविद्ध होकर उहोने उस समय मे तप को प्राप्त नही किया  
 था । एकवार प्राणामी वे जनलोक मे उपपन्न थे ॥१६॥१७॥ तब जनलोक मे  
 सब महर्षिलोग आपस मे एक-दूसरे से बोले और वितत वारुण ऋतु मे महाभाग  
 बोले ॥१८॥ हम सब चाक्षुष मनु के अन्तर म प्रसूयमान होते है । सब पितामह  
 के प्रामज हैं । इससे श्रेय होगा ॥१९॥ स्वायम्भुव अन्तर मे सात के लिये वे  
 शिव के द्वारा अभिस्त हुए थे पुन यहाँ जनलोक से दिव को गये हुओ ने जन्म  
 लिया था ॥२०॥ यज्ञमे वरण के शरीर को धारण करने वाले महान् देव प्रजा  
 की इच्छा से पहिले अग्नि मे शुक्रका हवन करते हुए ब्रह्म मे पूष म ऋषिलोग  
 उत्पन्न हुए थे । यह हमारा द्वितीय श्रुत है ॥२१॥

भृगुरङ्गिरा मरीचि पुलस्त्य पुलह ऋतु ।  
 अत्रिश्च वसिष्ठश्च अष्टौ ते ब्रह्मण मुना ॥२२  
 तथास्य वितते यज्ञ दवा सर्वे समागता ।  
 यज्ञाङ्गानि च सर्वाणि वपटकारश्च मूर्तिमान् ॥२३  
 मूर्तिमति च सामानि यजू पि च सत्स्रज ।

पुनस्त्वे कल्पयामास महादेवस्तथा भृगुम् ।  
 वासुणा भृगवस्तस्मात्तदपत्यञ्च स प्रभु ॥३६  
 द्वितीयन्तु तत शुक्रमङ्गारेष्वपतत्प्रभु ।  
 अङ्गारेष्वङ्गिरोऽङ्गानि सहितानि ततोऽङ्गिरा ॥४०  
 सम्भूतिं तस्य ता दृष्ट्वा वह्निर्ब्रह्माणमब्रवीत् ।  
 रेतोधास्तुभ्यमेवाह द्वितीयोऽय ममास्त्विति ॥४१  
 एवमस्त्विति सोऽप्युक्तो ब्रह्मणा सदसस्पति ।  
 तस्मादङ्गिरसश्चापि आग्नेया इति न श्रुतम् ॥४२

उसमें शुक्रके सुत होने पर इसके अनन्तर महर्षिगण प्रादुर्भूत हुए थे जो शरीर से ज्वलत थे और वे सत्त प्रत्यक्ष गुणों से युक्त थे ॥३६॥ अग्नि में एक बार शुक के हृत किये जाने पर ज्वाला से कवि नि गृत हुए । ज्वाला का भेदन कर उसको निकला हुआ ब्रह्मा ने देखा और तू भृगु है ऐसा कहा इसीसे वह भृगु हुए हैं ॥३७॥ महादेव ने उसे इस प्रकार से उत्पन्न होता हुआ दत्तवर ब्रह्माजी से कहा हे प्रभो ! पुत्र की कामना वाले दीक्षित मेरा यह है जो यह भृगुदेव उत्पन्न हुआ है यह मेरा पुत्र होजावे ॥३८॥ ब्रह्माजी न—ऐसा ही होवे—इस तरह से अनुज्ञा प्राप्त होजाने वाले महादेव ने भृगु को अपना पुत्र मान लिया था । इससे वासुण भृगु हुए और उनकी सत्तति प्रभु हैं ॥३९॥ इसके अनन्तर प्रभु ने द्वितीय शुक को अङ्गारो म डाला था । अङ्गारो में अङ्गिर—अङ्ग सहित फिर उससे अङ्गिरा हुआ । उसकी इस प्रकार की सम्भूति को देखकर अग्नि ने ब्रह्माजी से कहा मैं तुम्हारे लिये ही रेतोषा हुआ हूँ । यह दूसरा मेरा होजावे ॥४०॥४१॥ ऐसाही होवे—इस प्रकार से वह सदसस्पति ब्रह्मा के द्वारा समनुज्ञात होगये थे । इससे अङ्गिरस आग्नेय हुए ऐसा हमने श्रुत किया है ॥४२॥

पट्कृत्यस्तु पुन शुक्र ब्रह्मणा लोकाकारिणा ।  
 हृत समभवस्तत्र पद् ब्रह्माण इति श्रुति ॥४३  
 मरीचि प्रथमस्तत्र मरीचिम्य समुत्थित ।  
 क्रतो तस्मिन् सुतो जज्ञे यतस्तस्मात्स वं क्रतु ॥४४

अहं तृतीय इत्यर्थस्तस्मादत्रिं स कीर्त्स्यते ।  
 केशश्च निशितेभूर्त्त पुलस्त्यस्तेन स स्मृत ॥४५॥  
 केशैर्लम्ब्य समुद्रभूतस्तस्मात्तु पुनर्ह स्मृत ।  
 वसुमध्यात्समृत्पत्नी वसुमान् वसुधाश्रय ॥४६॥  
 वसिष्ठ इति तत्त्वज्ञं प्रोच्यते ब्रह्मवादिभिः ।  
 इत्येते ब्रह्मण पुत्रा मानसाः यण्महर्षयः ॥४७॥  
 लोकस्य सन्तानकरास्तैरिमा वद्धिता प्रजा ।  
 प्रजापतय इत्येव पृथ्यन्ते ब्रह्मण सुता ॥४८॥  
 अपरे पितरो नाम एतैरेव महर्षिभिः ।  
 उत्पादिता ऋषिगणा सप्त लोकेषु विभ्रुताः ॥४९॥

लोक के पारण करने वाले ब्रह्मा के द्वारा शुक के छेँ भाग कर हवन करने पर वहाँ छेँ ब्रह्मा हुए थे ऐसी स्तुति है ॥४५॥ उनमें मरीचि प्रथम है जो मरीचियो से समुद्रियत हुए हैं । उस क्रतु में सुन उन्नत हुआ इसीलिए वह क्रतु नाम वाले हुए थे ॥४४॥ मैं तीसरा हूँ इस अर्थ वाला इसीसे वह अत्रि कहा जाता है । निशित केश से हुआ इससे वह पुलस्त्य कहा गया है ॥४५॥ लम्बे केशों से समुद्रभूत हुआ था इससे वह पुनर्ह-इय नाम से कहा गया है । वसु के मध्य से उत्पन्न हुआ इससे वसुधा का आश्रय वाला वसुमान् हुआ था ॥४६॥ ब्रह्मवादी तत्त्वज्ञ ने वसिष्ठ ऐसा कहा है । इनमें ये ब्रह्मा के छेँ मानस महर्षि उत्पन्न हुए थे ॥४७॥ ये इस लोक के सन्तान के करने वाले थे और उनके द्वारा ही यह वद्धित हुई है । ये ब्रह्मा के पुत्र प्रजापति इस प्रकार से भी पढ़े जाया करते हैं ॥४८॥ दूसरे पितर भी इन्हीं महर्षियों के द्वारा उत्पादित है जो मात्र लोको में विभ्रुत ऋषिगण हैं ॥४९॥

मारीचा भार्गवाश्चैव तथैवाङ्गिरसोऽपरे ।  
 पौलस्त्या पौलहाश्चैव वासिष्ठाश्चैव विभ्रुताः ।  
 आमेयाश्च गणा प्रोक्ता पितृणां लोकविभ्रुता ॥५०॥  
 एते समासतरतात पुरैव तु युष्मास्त्रयम् ।  
 अपूर्वाश्च प्रकाशाश्च ज्योतिष्मन्तश्च विभ्रुता ॥५१॥

तेषा राजा यमो देवो यमैर्विहितवल्मया ।  
 अगरे प्रजाना पतयस्ताच्छुग्धुवमत्तन्द्रिता ॥१२॥  
 कर्दम कश्यप धेपो विक्रान्त सुश्रुवास्तया ।  
 बहुपुत्र कुमारश्च विवस्वान् स शुचिधवा ॥१३॥  
 प्रचेतसोऽरिष्टनेमिर्वह्लश्च प्रजापति ।  
 इत्येवमादयोऽन्येऽपि बहवश्च प्रजेश्वरा ॥१४॥  
 कुशोद्धया बालखिल्या सम्भृता परमर्षय ।  
 मनोजवा सर्वगता सार्वभौमाश्च तेऽभवन् ॥१५॥  
 जाता भस्मव्यपोहिण्या ब्रह्मर्षिगणसम्भृता ।  
 वैश्वानसा मुनिगणास्तप श्रुतपरावराणा ॥१६॥  
 स्रोतोम्यस्तस्य स्रोतपन्नावश्विनो रूपसम्भृता ।  
 विदुजंग्माक्षरजसो विमला नेत्रसम्भवा ॥१७॥  
 ज्येष्ठा प्रजाना पतय स्रोतोम्यस्तस्य जज्ञिरे ।  
 ऋषयो रोमकूपेभ्यस्तथा स्वेदमलोद्भवा ५८

मारोच-भागव-भ्राह्मिण-शीलस्थ-शीलह-वाशिष्ठ और घ्रात्रेय ये भए  
 सोनो मे प्रतिष्ठ गिबरो मे कहे गये हैं ॥१०॥ हे तात । ये सबेव से पहिले ही  
 सोन गुण से अपूर्व-प्रकाश और विश्रत ज्योतिष्मन्त ये कहे जाने हैं उनका राजा  
 देवयम है । यमा के द्वारा विहित कल्मष दूमरे प्रजाधो के पति होते हैं उनको  
 अब अतन्द्रित होकर सुनो मैं कहता हूँ इसलिये तुम्हें सुनना चाहिये यह भाषार्थ  
 है ॥११॥१२॥ कर्दम-कश्यप-धेप-विक्रान्त-सुश्रुवा-बहुपुत्र-कुमार-विवस्वान्-  
 शुचिधवा-प्रचेतस-अरिष्टनेमि-बह्ल और प्रजापति एवमादि तथा अग्य भी बहुत  
 मे प्रजेभर होते हैं ॥१३॥१४॥ कुशोधय-बालखिल्य परमर्षि उत्पन्न हुए तथा  
 मनोजव-सर्वग और सार्वभौम वे हुए हैं ॥१५॥ ब्रह्मर्षिगण सम्भृत तप और  
 धृत मे परावराण वैश्वानस मुनिगण भस्म व्यपोहिणी मे उत्पन्न हुए थे ॥१६॥  
 उगरे सोनो से रूप सम्भृत भधिनीकुमार उत्पन्न हुए । उगरे सोनो से विदुजं-  
 ग्मार जम-विमल-नेत्र सम्भव-ज्येष्ठा प्रजाधो के पति उत्पन्न हुए । तथा स्वेदमल  
 से उद्भव जाने ऋषि रोम कूपों से उत्पन्न हुए ॥१७॥५८॥

दारुणा हि स्ते मासा निर्यासा पक्षसन्धय ।  
 चत्तरा ये स्वहोरात्रा पित्रं ज्योतिश्च दारुणम् ॥५९  
 रौद्र लोहितमित्याहुर्लोहित कमक स्मृतम् ।  
 तन्मंत्रमिति विज्ञेय धूमश्च पशवः स्मृता ॥६०  
 येऽर्च्चिपस्तस्य रद्रास्तयादित्या समुद्भवा ।  
 अङ्गारेभ्य समुत्पन्ना ज्योतिषो दिव्यमानुषा ॥६१  
 आदिमानस्य लोकस्य ब्रह्मा ब्रह्मसमुद्भव ।  
 सर्वकामदमित्याहुस्तत्र कन्यामुदाहरन् ॥६२  
 ब्रह्मा गुरुगुहस्तत्र त्रिदशै सप्रसीदति ।  
 इमे वै जनयिष्यन्ति प्रजा सर्वा प्रजेदवरा ॥६३  
 सर्वे प्रजानो पतय सर्वे चापि तपस्विन ।  
 तत्प्रसादादिर्माँल्लोकान्धारयेयुरिमा त्रिया ॥६४  
 इन्द्र मवद्धंयामास तव तेजोविवद्धंनम् ।  
 देवेषु वेदविद्वास सर्वे राजर्षयस्तथा ॥६५

इन म मास दारुण थे, जो निर्यास थे वे पशु की गन्धियाँ थीं, जो  
 चत्तर और घहोरात्र, पित्र दारुण ज्योति रौद्र की लोहित कहते थे लोहित की  
 कनक ब्रह्मा गया है । उमे मंत्र ऐसा जानना चाहिए और धूम पशु बहे गये  
 हैं ॥५९-६०॥ उनको भविष्यी थी वे रुद्र तथा आदित्य उत्पन्न हुए । अङ्गारो मे  
 दिव्य मानुष ज्योतिषी समुत्पन्न हुई ॥६१॥ आदिमान लोक का ब्रह्मा ब्रह्म से  
 समुद्भूत हुआ । यहाँ पर कन्या की उदाहृत करत हुए सर्व कामद ऐसा बहो  
 हैं ॥६२॥ यहाँ देवो के साथ गुरुगुह ब्रह्म गम्भयन्त होते हैं । मे प्रजेदवर समस्त  
 प्रजाओं को उलान्न करेगे ॥६३॥ ये सब प्रजाओं के रजि थे और ये सब तरवो  
 थे । उनके प्रगाथ मे ये त्रियाए इन माओ कां पाणु करती हैं ॥६४॥ आदो  
 तेज के विपद्धंन करते हुए इन्द्र का मवर्धन दिया था । देवों मे समस्त राजविगा  
 वेद के विद्वान् थे ॥६५॥

वेदमन्त्र परा सर्वे प्रजापतिगुणोद्भवा ।

धनन्त ब्रह्म गत्यश्च तपश्च परम भुवि ॥६६

सर्वे हि वयमेते च तवैव प्रसव प्रभो ।

ब्रह्म च ब्राह्मणाश्चैव लोकाश्चैव चराचरा ॥६७

मरीचिमादित कृत्वा देवाश्च ऋषिभि सह ।

अपत्यानीय सञ्चिन्त्य तेऽपत्यङ्कामयामहे ॥६८

तस्मिन् यज्ञ महाभागा देवाश्च ऋषिभि सह ।

एतद्ब शसमुद्भूता स्थानकालाभिमानिन ॥६९

न च तेनैव रूपेण स्थापयेयुरिमा प्रजा ।

युगादिनिधनाच्चैव स्थापयेयुरिमा प्रजा ॥७०

ततोऽब्रवील्लोकगुरु परमित्यविचारयन् ।

एव देवा विनिश्चित्य मया सृष्टा न सशय ।

भवता वशसम्भूता पुनरेते महर्षय ॥७१

तेषा भृगो कीर्तयिष्ये वश पूर्वमहात्मन ।

विस्तरेणानुपूर्व्या च प्रथमस्य प्रजापते ॥७२

सब प्रजापति के गुणों से उद्भव होने वाले वेदों के मन्त्रों में परायण

। प्रमत्त और सत्य ब्रह्म-भू में परम तप ये सब और हम हे प्रभो । आपका प्रसव है जिनमें ब्रह्म और ब्राह्मण तथा चराचर लोक हैं ॥६६-६७॥ मरीचिमादि लेकर ऋषियों के साथ देवगण यहाँ पर सन्तति की चिन्ता कर उन सबने अपत्य (सन्तान) की कामना की थी ॥६८। उस यज्ञ में महान् भाग वाले ब्रह्मण्य ऋषियों के साथ स्थान और काल के अभिमानों इस वश में समुद्भूत थे ॥६९॥ और उन्हीं रूप से इन प्रजाओं की स्थापना नहीं करनी चाहिए किन्तु युगादि निधन में इनको स्थापित करो ॥७०॥ इसके अनन्तर लोक गुरु से विचार न करते हुए कहा—मैंने इस प्रकार का विनिश्चय करके देवताओं को सृष्ट किया है इसमें सशय नहीं है । फिर ये महर्षिगण सबके वश में सम्भूत हुए हैं ॥७१॥ उनमें से महात्मा भृगु के वश को पहिले बतलाऊँगा जो कि प्रथम प्रजापति है इसे विस्तारानुपूर्व से कहूँगा ॥७२॥

भार्या भृगोरप्रतिमे उत्तमैर्भजने शुभे ।

हिरण्यकशिपो वन्या दिव्या नाम परिश्रुता ।

पुनोमन्भ्रापि पौलोमी दुहिता वर वर्णिनी ॥७३

भृगोस्त्वजनयद्विद्या काव्य वेदविदा वरम् ।  
 देवानुराणामाचार्यं शुक्रं क्विसुतं ग्रहम् ॥७४  
 स शुक्रश्चोशना स्यात् स्मृत काव्योऽपि नामत ।  
 पितृणां मानसी कन्या सोमपाना यज्ञस्विनी ।  
 शुक्रस्य भार्याङ्गी नाम विजज्ञे चतुर सुतान् ॥७५  
 ब्राह्मणं तेजसा युक्तं स जातो ब्रह्मवित्तम ।  
 तस्यामेव तु चत्वार पुत्रा शुक्रस्य जज्ञिरे ॥७६  
 त्वष्टा बरुत्री द्वावेती शण्डामर्को च तादुभौ ।  
 ते तदादित्यसङ्काशा ब्रह्म कल्पा प्रभावत ॥७७  
 रञ्जनं पृथुरश्मिश्च विद्वान्यश्च बृहद्गिरा ।  
 बरुत्रिणा मुता ह्येते ब्रह्मिष्ठा सुरयाजका ॥७८  
 इज्याधर्मविनाशार्थं मनु मेत्याभ्ययोजयन् ।  
 निरस्यमानं वै धर्मं दृष्ट्वेन्द्रो मनुमब्रवीत् ॥७९  
 एतैरेव तु काम त्वा प्रापयिष्यामि याजनम् ।  
 श्रुत्वेन्द्रस्य तु तद्वाक्यं तस्माद् देशादपाक्रमन् ॥८०

भृगु की भार्या हिरण्यकशिपु के उत्तम-शुभ-अप्रतिम अभिजन से दिव्या  
 इम नाम से परिश्रुत होने वाली कन्या से वेदों के ज्ञाताओं से परमश्रेष्ठ काव्य  
 को उत्पन्न किया था जो कि देवानुरों के आचार्य थे और कविसुत शुक्र ग्रह  
 है ॥७४॥ वह शुक्र उशना इस नाम से प्रसिद्ध हुआ और नाम से काव्य भी  
 कहा गया है । सोम पितृगण की मानसी यज्ञस्विनी कन्या जो कि शुक्र की  
 अङ्गी नाम वाली भार्या थी उसने चार पुत्र उत्पन्न किये थे ॥७५॥ बड़ा तेज से  
 युक्त वह ब्रह्मवेत्ताओं से श्रेष्ठ वह उत्पन्न हुआ था । शुक्र के चार पुत्र उमी से  
 से हुए हैं ॥७६॥ त्वष्टा-बरुत्री हों वे और शण्डा तथा मर्क ये दोनों उत्पन्न  
 हुए । वे उस समय आदित्य के सुहृद् और प्रभाद से ब्रह्मा के ही तुल्य थे ॥७७॥  
 रञ्जन-पृथुरश्मि और बृहद्गिरा ये बरुत्री के ब्रह्मिष्ठ और सुरों के यजन करने  
 वाले पुत्र थे ॥७८॥ इज्या के धर्म को विनाश करने के लिये मनु के समीप  
 जाकर योजना की । इन्द्र ने धर्म को निरस्यमान देमकर मनु से कहा—॥७९॥



इन्के द्वारा ही इन्द्रापूर्वक याजन तुमको प्राप्त कराऊँगा । इस इन्द्र के वाक्य को सुनकर उस देश से आपात्रान्त होगये ॥८०॥

तिराभूतेषु तैरिन्द्रो धर्मपत्नीश्च चेतनाम् ।  
 ग्रहेण मोचयित्वा तु ततः सोऽनुसंगार ताम् ॥८१  
 तत इन्द्रविनाशाय यतमानान् यतीस्तु तान् ।  
 तत्रागतान् पुनर्दृष्ट्वा दुष्टानिन्द्र प्रहन्यतु ।  
 सुध्वाप देवदेवस्य वेद्या वै दक्षिणे ततः ॥८२  
 तेषान्तु भक्ष्यमाणानां तत्र शालावृके सह ।  
 शीर्षाणि न्यपतस्तानि खजूराण्यभवस्तन ॥८३  
 एव वरुत्रिण पुत्रा इन्द्रेण निहता पुरा ।  
 यजन्या देवयानी च शुक्रस्य दुहिताऽभवत् ॥८४  
 त्रिशिरा विश्वरूपस्तु त्वष्टु भुवोऽभवन्महान् ।  
 विश्वरूपानुजश्चापि विश्वकर्मा यम स्मृत ॥८५  
 भृगोस्तु भृगवो देवा जज्ञिरे द्वादशात्मजा ।  
 देव्या तान्मुपुवे सर्वान्वाव्यश्चैवात्मजान्प्रभु ॥८६  
 भुवनो भावनश्चैव प्रन्यश्चान्यायतस्तथा ।  
 क्रतु श्रवाश्च मूर्धा च व्यजयो व्यश्रुपश्च य ।  
 प्रसव श्राप्यजश्चैव द्वादशोऽधिपति स्मृत ॥८७  
 इत्येते भृगवो देवा स्मृता द्वादश याशिना ।  
 पीतोऽम्यजनयत्पुत्र श्रद्धिष्ठ वशिन विभुम् ॥८८  
 व्याधित सोऽष्टमे भासि गर्भंऋरेण कर्मणः ।  
 च्यवनाच्च्यवनासोऽथ चेतनस्तु प्रचेतम ।  
 प्राचेतसाच्च्यवनक्रोधादध्वान पुण्यादजः ॥८९  
 जनयामास पुत्री द्वौ सुरग्यायाश्च भार्गव ।  
 घ्रात्मवान दधीचञ्च तापुभो माधुगमनो ॥९०

उत्के तिरौभूत हो जान पर इन्द्र ने धर्म की पत्नी चेतना को यह मे  
 छुड़वाकर इनके परत्याग वह उगवा ही अनुसंगण करने लगा था ॥८१॥ इनके

पत्न्यात् इन्द्र के विनाश करने के लिये यत्न करते हुए उन पत्नियों को वहाँ धाये हुए पुत्रों को पुनः देसकर इन्द्र उनका हनन कर देवे। फिर दक्षिण में देवदेव की बेटी में ली गया था ॥८२॥ शाला वृत्तों के साथ गायें हुए उनके वहाँ पर शीर्ष गिर गये थे जो कि फिर मरूँ हो गये थे ॥८३॥ इस प्रकार से पहिले कश्यपी के पुत्र इन्द्र के द्वारा मारे गये थे। यजनी में देवयानी गुरु की बेटी हुई थी ॥८४॥ स्वष्टा के त्रिशिरा और विश्वहर महात् पुत्र उत्पन्न हुआ। विश्वरूप का अनुज भी विश्वकर्मायम कहा गया है ॥८५॥ मृगु के भृगव देव बारह पुत्र उत्पन्न हुए थे। प्रभु काश्य ने उन समस्त पुत्रों को देवी में उत्पन्न किया था ॥८६॥ भुवन-भावन-भय-भाषायन-अनुभुवा-भूर्द्धा-ध्वजय-अशुप-प्रसव-प्रज और बारहवाँ यपिपति कहा गया है ॥८७॥ ये इनके बारह याज्ञिक भृगव देव कहे गये हैं। पीतोमी ने इन्द्रिय-वर्षी-विभु पुत्र को उत्पन्न किया था ॥८८॥ गर्भ मूर कर्म से वह अष्टम मास में व्याधि से युक्त हुआ था। प्यवन से ध्यवनास और प्रचेना से चेतन-प्राचेत्यस ध्यवन कीध से पुरथ से अज ने शय्या को इस प्रकार भार्गव ने सुबन्धा में दो पुत्रों को उत्पन्न किया था जोकि आत्मवान और दधीच थे दोनों बहुत ही शत्रु सम्पत्त हुए थे ॥८९-९०॥

सारस्वत सरस्वत्या दधीचाच्चोपपद्यते ।  
 र्ची पत्नी महाभागा आत्मवानस्य नाहृषी ॥९१॥  
 तस्य ऊर्वोऽर्द्धपिर्जज्ञे ऊरु मित्वा महावशा ।  
 श्रीर्वश्यासीदृत्तीवस्तु दीप्ताग्निसदृशप्रभः ॥९२॥  
 जमदग्निर्द्धीवस्य सत्यवत्या व्यजायत ।  
 भृगोरच्च रुचिपर्याये रोद्रवैष्णवयोस्तथा ॥९३॥  
 जमनाद्वैष्णवस्याग्नेर्जमदग्निरजायत ।  
 रेणुका जमदग्नेस्तु शत्रुतुल्यपराक्रमम् ।  
 ब्रह्मक्षत्रमय राम सुपुत्रेऽमिततेजसम् ॥९४॥  
 श्रीर्वश्यासीत्पुत्रशत जमदग्निपुरागेमम् ।  
 तेपा पुत्रसहस्राणि भार्गवाणां परस्परात् ॥९५॥

ऋष्यन्तरेषु धी वाह्या बहवो भार्गवा स्मृता ।  
 वत्सो विश्वोऽश्विषेणश्च पाण्डः पथ्य सशौनक ।  
 गोत्रेण नप्तमा ह्येते पञ्चा ज्ञेयास्तु भार्गवाः ॥६६॥  
 शृणुताङ्गिरसो वनमग्ने पुत्रस्य धीमत ।  
 यस्यान्ववाये सम्भूता भारद्वाजा, सगौतमाः ।  
 देवाश्चाङ्गिरसो मुख्यास्त्विषुमन्तो महीजसः ॥६७॥

दृषीच से सरस्वती मे सारस्वत पुत्र उत्पन्न होता है । धारमवान की महान् भाग वाली नहुष की पुत्री रवि पत्नी हुई थी ॥६१॥ महान् यज्ञ वाले ऋषि ने उसके ऊरुओं का भेदन करके ऊरुओं से श्रोत्रं ऋषीक दीप्त अग्नि की प्रभा के गहन हृद्य था ॥६२॥ ऋषीक के सत्यवती में जमदग्नि उत्पन्न हुए । उन्हीं प्रकार से शौद्र वैष्णवों के रवि पर्याय मे शृगु के हुए ॥६३॥ वैष्णव अग्नि के जमन से जमदग्नि उत्पन्न हुए । जमदग्नि मे रेणुका ने इन्द्र के समान पराक्रम वाले ब्रह्म शीर क्षत्र मे पूर्ण अभित तेज वाले राम (परशुगम) की उत्पन्न किया था ॥६४॥ श्रोत्रंके जमदग्नि से पहिले होने वाले सो पुत्र हुए थे उन भार्गवों के आपस मे एक सहस्र पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥६५॥ ऋष्यन्तरी मे बहूत से वाह्य थे वे भार्गव कहे गये हैं । वत्स-विश्व-अश्विषेण-पाण्ड-पथ्या-सशौनक गोत्र मे वे भार्गव सप्तमा पञ्च जानने के योग्य होने हैं ॥६६॥ भव अग्नि के भीमान् पुत्र अङ्गिरस के यज्ञ का श्वशुर करो जिसके वंश में सगौतम भारद्वाज उत्पन्न हुए थे । इषुमान् महान् श्रोत्र वाले अङ्गिरस देव मुख्य थे ॥६७॥

सुरुषा चैव मारीचो कार्दमी च तथा स्वराट् ।  
 पथ्या च मानवी कन्या तिस्रो भार्गा स्त्वयर्वण ।  
 इत्येताङ्गिरस पत्न्यस्तासु वष्टयामि सन्ततिम् ॥६८॥  
 अथर्वणस्तु दायादास्तासु जाता कुलोद्बहा ।  
 उत्पन्ना महता चैव तपसा भावितात्मनाम् ॥६९॥  
 बृहस्पति सुरुषामा गौतम सुपुत्रे स्वराट् ।  
 अवन्ध्य वामदेवश्च उत्थप्रमुशिजन्तथा ॥१००॥

विष्णु पुत्रस्तु पथ्याया सवत्संदत्तं मानस ।  
 विचित्तञ्च तथायस्य शरद्वाश्राप्युत्थ्यज ॥१०१॥  
 अशिजो दीर्घतमा बृहद्बुधो वागदेवज ।  
 विष्णो पुत्र सुयन्वान ऋषभश्च सुयन्वन ॥१०२॥  
 रथकारा स्मृता देवा ऋषयो ये परिश्रुता ।  
 बृहस्पतेभरद्वाजो विश्रुत सुमहायसा ॥१०३॥  
 अङ्गिरसस्तु सवत्तो देवानङ्गिरस ऋणु ।  
 बृहस्पतेर्षवीयासो देवा ह्यङ्गिरस स्मृता ॥१०४॥  
 श्रीरसाङ्गिरस पुत्रा सुरूपाया विज्जिरे ।  
 श्रीदार्यायुर्दनुर्दक्षो दभं प्राणस्तथैव च ।  
 हविष्माश्च हविष्णुश्च क्रतु सत्यश्च ते दश ॥१०५॥  
 अयस्यस्तु उत्थ्यश्च वानदेवस्तयोशिज ।  
 भारद्वाजा शकृतिका गार्ग्यकाण्वरथीतरा ॥१०६॥  
 मुद्गला विष्णुवृद्धाश्च हरिता वायवस्तथा ।  
 तथा भाक्षा भरद्वाजा श्रापेभा किम्भयास्तथा ॥१०७॥  
 एते ह्यङ्गिरस पक्षा विजया दश पन्ध च ।  
 ऋष्यन्तरेषु वै वाह्या बहवोऽङ्गिरस स्मृता ॥१०८॥

सुरूपा—मारीची—कादमी तथा स्वराट्—पथ्या—मानवी और कन्या रे  
 तीन अर्षवा की भार्या थी । ये इनती अगिरस की भार्या थी उनम जो सननि  
 हुई उत्तकी में प्रव बतलाता हूँ ॥१६८॥ अर्षवा के दायाद कुलोद्भू उनम उत्पन्न  
 हुए थे और भावित धातना बाला के महान् तप स उत्पन्न हुए थे ॥१६९॥ सुरूपा  
 में बृहस्पति ने गौतम ने स्वराट प्रभूत किया । उसी प्रकार से अयस्य—वाग्देव  
 उत्थ्य और उशिज को उत्पन्न किया था ॥१७०॥ पथ्या म विष्णु पुत्र हुआ  
 सवत्सं मानस हुआ । निचित—तथा मस्य—शरद्वाज—उत्थाज—अगिज—दीर्घतमा—  
 बृहद्बुध ये वानदेव से जन्म लेने वाले थे । विष्णु के पुत्र सुयन्वान—ऋषभ और  
 सुयन्वन थे ॥१०१॥१०२॥ ये देव रथकार बड़े गये हैं जो कि ऋषि परिश्रुत  
 थे । बृहस्पति से महान् यश वाणा भरद्वाज विश्रुत हुआ था ॥१०३॥ अङ्गिरस

मे सम्बन्तं दृष्ट्वा अथ अङ्गिरस देवो का श्रवण करो । बृहस्पति के जो छोटे देव हैं वे ही अंगिरस कहे गये हैं ॥१०४॥ अङ्गिरा के और पुत्र सुरूपा नाम वाली मे उत्पन्न हुए थे । औदार्यायु-दनु-दक्ष-दभं-प्राण-हविष्मान्-हविष्णु-क्रतु और मत्स्य वे दश थे ॥१०५॥ अयस्य-उतथ्य-वामदेव-उगिज-भारद्वाज-शाकृ-ति-गायं-वाव्य-रषीतर-मुद्गल-क्षिष्णु वृद्धहरित-वायव-भाक्ष-भरद्वाज-आर्षभ-किम्भय ये अंगिरस दश और पाँच पक्ष जानने के योग्य होते हैं । ऋष्यन्तरो मे बहुत से बाह्य अंगिरस कहे गये हैं ॥१०६-१०७-१०८॥

मारीच परिवक्ष्यामि वशमुत्तमपूरुषम् ।

यस्यान्ववाये सम्भूत जगत्स्यावरजङ्गमम् ॥१०९

मरीचिरापश्चरुमे ताभिध्यायन्प्रजेप्सया ।

पुत्र सर्वंगुणोपेत प्रजावान् सुरुचिदिति ।

सपूज्यते प्रशस्ताया मनसा भाविता प्रभु ॥११०

आहूताश्च तत सर्वा आप समवसत्प्रभु ।

तामु प्रणिहितात्मानमेव सोऽजनयत्प्रभु ॥१११

पुत्रमप्रतिमन्नाम्नारिष्टनेमि प्रजापति ।

पुत्र मरीच सूर्याभिवधीवेशो व्यजीजनत् ॥११२

प्रध्यायन् हि सता वाच पुशार्थी सन्निले स्थित ।

सप्तवर्षमहस्त्राणि तत सोऽप्रतिमोऽभवत् ॥११३

वश्यप सवितुषिद्वाम्नेन स ब्रह्मण सम ।

मन्वन्तरेषु सर्वेषु ब्राह्मणात्तेन जायते ॥११४

बन्धानिमित्तमित्युक्ते दक्षेण कुपिता प्रजा ।

अपिवत्स तदा वश्य वश्य मद्यमिहोच्यते ॥११५

हादक्षेणसा हि विज्ञेया ब्रह्मणा वश्य उच्यते ।

वश्य मद्यं स्मृत विप्रं वश्यपानात्त वश्यप ॥११६

अथ मारीच उत्तम पुत्रो वाच वग वो वनलाना है जिनके

समस्त स्यावर और जङ्गम जगत् उत्पन्न दृष्ट्वा या ॥१०९॥ मरीच  
उत्पन्न हिन्दे और प्रजा की इच्छा मे उनके द्वारा ध्यान करने हुए

यदास्य मनसा सृष्टा न व्यवद्वन्त ता प्रजा ।  
 अपघ्वाता भगवता महादेवेन धीमता ॥१२७  
 मैथुनेन च भावेन सिसृक्षुर्विविधा प्रजा ।  
 असिक्वी चावहत् पत्नी वीरणस्य प्रजापतेः ॥१२८  
 मुता सुमहता युक्ता तपसा लोकधारिणीम् ।  
 यया धृतमिद सर्वं जगत् म्यावरजङ्गमम् ॥१२९  
 अत्राप्युदाहरन्तीमौ श्लोकी प्राचेतस प्रति ।  
 दक्षस्योद्बहतो भार्यामसिक्वी वीरिणी पराम् ॥१३०

फिर धीमान् ने अपने प्राणको मनुष्य-उरग-राक्षस देव-असुर-गन्धर्व-  
 दिव्य सहननप्रजा-ईश्वर रूप-धन और तेज से अपने ही तुल्य विभाजित किया  
 था ॥१२४॥ उसी प्रकार से परम मुदित होते हुए अन्य गतिमान् और ध्रुव  
 मानस ही प्राणियों को एक अनेक प्रकार की प्रजाओं का सृजन किया था ॥१२५॥  
 ऋषियों को-देवों को-गन्धर्वों को-मनुष्य-उरग और राक्षसों को, यक्ष-भूत और  
 पिशाचों को पक्षी-पशु और मृगों को जिस समय इसने मनसे सृजन किया था  
 तो वह प्रजा की वृद्धि नहीं हुई थी । क्योंकि वह प्रजा धीमान् महादेव भगवान्  
 के द्वारा अपघ्वात थी ॥१२७॥ फिर मैथुन के भाव से अनेक प्रकार की प्रजा  
 का सृजन किया था । प्रजापति वीरण की असिक्वी पत्नी को बहन किया था  
 ॥१२८॥ प्रजापति वीरण की मुता सुमहान् तपसे युक्त थी और लोकोंको धारण  
 करने वाली थी जिसने इस सम्पूर्ण स्थावर और जङ्गम जगत् का धारण किया  
 था ॥१२९॥ परम वीरिणी असिक्वी भार्या का उद्बहन करने वाले दक्ष प्राचेतस  
 के प्रगति के दो श्लोक हैं जिनको यहाँ पर भी उदाहृत किया जा ता है ॥१३०॥

कूपाना नियुत दक्ष सर्पिणा साभिमानिनाम् ।  
 नदीगिरिषु सज्जस्ता पृष्टतोऽनुयगी प्रभु ॥१३१  
 त दृष्ट्वा ऋषिभि प्रोक्त प्रतिष्ठास्यति वै प्रजा ।  
 प्रथमान द्वितीया तु दक्षस्येह प्रजापते ॥१३२  
 तथागच्छद्यथाकाल कूपाना नियुते तु स ।  
 असिक्वी वीरिणी यत्र दक्ष प्राचेतसोऽवहत् ॥१३३

अथ पुत्रमहस्र स वैरिण्याममितीजसा ।  
 असिकन्या जनयामास दक्ष प्राचेतस प्रभु ॥१३४  
 तास्तु दृष्ट्वा महातेजा स विवर्द्धयिषून् प्रजा ।  
 देवपि प्रियसवादो नारदो ब्रह्मणः सुतः ।  
 नाशाय वचनं तेषां शापायैवात्मनोऽब्रवीत् ॥१३५  
 यः स वै प्रोच्यते विप्रः कश्यपस्येति वृत्रिमः ।  
 दक्षशापभयाद्भीतो ब्रह्मपिस्तेन कर्मणा ॥१३६  
 यः कश्यपमुत्सयाथ परमेष्ठी व्यजायत ।  
 मानसः कश्यपस्येह दक्षशापभयात् पुनः १३७  
 तस्मात् स कश्यपस्याथ द्वितीयं मानसोऽभवत् ।  
 सहि पूर्वसमुत्पन्नो नारदः परमेष्ठिनः ॥१३८  
 येन दक्षस्य पुत्रास्ते ह्ययंश्वा इति विश्रुताः ।  
 निन्दार्थं नाशिता सर्वे विनष्टाश्च न सशयः १३९  
 तस्योद्यतस्तदा दक्षः क्रुद्धो नाशाय वो प्रभुः ।  
 ब्रह्मर्षीन् वै पुरस्कृत्य याचित परमेष्ठिना ॥१४०

साभिमानी सर्षो बूपो वा एक निपुण नदी घोर पर्वतो मे सज्जन करते हुए प्रभु दक्षने उनके पीछे अनुगमन किया था ॥१३१॥ उसको देखकर श्रुषियों ने कहा प्रजापति को प्रतिष्ठित करेगा । यहाँ प्रजापति दक्षकी प्रथमा है, द्वितीया तो यथावाल् उमी प्रकार मे बूपो के निपुण मे खली गई उन प्राचेतस दक्ष ने जहाँ पर बैरिणी अशिकनी वा उद्ग्रहण किया था ॥१३२॥१३३॥ इसके अनन्तर उग प्राचेतस दक्ष ने बैरिणी अशिकनी मे अपरिमित धोत्र मे एक मह्य पुत्र उत्पन्न किए थे ॥१३४॥ महान् क्षेत्रवाले उगन प्रजापति के बचाने की इच्छा वाले उनको देगकर ब्रह्मा के पुत्र दरपि प्रिय मग्बाद वाले नारद ने उनके नाम के निसे ही वचन बोना ॥१३५॥ जो वह कश्यप वा वृत्रिम विप्र है यह कहा जाता है । ब्रह्मपि उग कर्म मे दक्ष के शाप के भय से दरगया ॥१३६॥ इसके अनन्तर जो कश्यप मुनिका परमेष्ठी उत्पन्न हुआ था दक्ष के शाप के भय से फिर यहाँ कश्यप वा मानस पुत्र हुआ ॥१३७॥ इसके बाद कश्यप वा द्वितीय मानस हुआ

था । वह परमेशी का नारद पूर्व में समुत्पन्न हुआ ॥१३८॥ त्रिषसे दक्ष के वे पुत्र हयंश्व इम नगर से प्रसिद्ध हुए थे । निन्दा के लिये नाश कर दिये गये थे और सभी विनष्ट होगये इससे सशय नहीं है ॥१३९॥ उग ममय प्रभु दश क्रुद्ध होकर उमके नाश के लिये उद्यत होगये थे । तत्र परमेशी के द्वारा ब्रह्मर्षियों को प्राणे बरके उमसे याचना की गई थी ॥१४०॥

ततोऽभिसन्धित चक्रे दक्षस्तु परमेष्ठिना ।  
 वन्याया नारदो मह्य तव पुत्रो भवत्विति ॥१४१॥  
 ततो दक्ष मुता प्रादात् प्रिया वै परमेष्ठिने ।  
 तस्मात् स नारदो जज्ञे भूय शान्तो भयादृषि ॥१४२॥  
 तदुपश्रुत्य विप्रास्ते जातकौतूहलाः पुन ।  
 अपृच्छन् वदता श्रेष्ठ सूत तन्वार्थदर्शिनम् ॥१४३॥  
 कथं विनाशिता पुत्रा नारदेन महात्मना ।  
 प्रजापतिसृतास्ते वै प्रजा प्राचेतसात्मजा ॥१४४॥  
 स तथ्य वचने श्रुत्वा जिज्ञासासम्भव शुभम् ।  
 प्रोवाच मधुर वाक्य तेषा सर्वगुणान्वितम् ॥१४५॥  
 दक्षपुत्राश्च हयंश्वा विवर्द्धयिषव प्रजा ।  
 समागता महावीर्या नारदस्तानुवाच ह ॥१४६॥  
 बालिशा वत यूय वै न प्रजानीय भूतलम् ।  
 अन्तमूर्द्धमघश्चैव कथं स्रक्ष्यथ वै प्रजा ॥१४७॥  
 किं प्रमाणन्तु मेदिन्या स्रष्टव्यानि तयैव च ।  
 अविज्ञायेह स्रष्टव्यमन्यथा किं नु स्रक्ष्यथ ।  
 अल्प वापि बहुर्वापि तत्र दोषस्तु दृश्यते ॥१४८॥

इसके पश्चात् दक्ष ने परमेशी के साथ अभिसन्धित किया कन्या में नारद मेरे लिये तुम्हारा पुत्र होजावे ॥१४१॥ इसके अनन्तर दक्ष ने प्यारी पुत्री को परमेशी के लिये दे दिया उसमें वह नारद ऋषि फिर भय से शान्त उत्पन्न हुए ॥१४२॥ उन विप्रों ने यह सुनकर कौतूहल वाले होते हुए बोलने वालों में थोड़ा और तत्त्वार्थ को देखने वाले सूतजी से पूछा ॥१४३॥ ऋषियों ने कहा—महान्



आत्मा जाने नारद ने पुत्रों को कैसे विनाशित दिया था वे तो सब प्रजापति के पुत्र और प्राचेतस के भात्मज थे ॥१४४॥ उमने शुभ और जानने की इच्छा से होने वाले ऋषियों के तथ्य वचनों को सुनकर उनको मधुर समस्त गुणों से भन्वित वाक्य बोले ॥१४५॥ प्रजा के विवर्द्धन करने की इच्छा वाले ह्यंश्व नाम वाले दश के पुत्र जो महान् वीर्य वाले वहाँ आगये और नारद ने उनसे कहा—॥१४६॥ तुम सब महामूर्ख हो अन्त-ऊर्द्ध और अधस्तल भयान् नीचेरा भाग इस भूतल को गही जानते हो फिर तुम कैसे प्रजा का सृजन करोगे ? ॥१४७॥ इस मेदिनी का क्या प्रमाण है तथा दश प्रमाण वाले सृजन करने के योग्य हैं । यहाँ पर यह न जानकर अन्यथा सृजन करना चाहिये, क्या तुम सृजन करोगे ? धरूप है या बहून है, वहाँ पर दोष स्पष्ट दिखलाई देना है ॥१४८॥

ते तु तद्वचन श्रुत्वा प्रयाताः सर्वतोदिशम् ।  
 वायुन्तु समनुप्राप्य गतास्ते वै पराभवम् ॥१४९॥  
 अद्यापि न निवर्तन्ते भ्रमन्तो वायुमिधिता ।  
 एव वायुपथ प्राप्य भ्रमन्ते ते महपय ॥१५०॥  
 स्वेषु पुत्रेषु नष्टेषु दक्ष प्राचेतस पुन ।  
 वैरिण्यामेव पुत्राणा सहस्रमसृजत् प्रभु ॥१५१॥  
 प्रजा विवर्द्धयिषवः शबलाश्वा पुनस्तु ते ।  
 पूर्वमुक्त वचस्तत्र श्राविता नारदेन ह ॥१५२॥  
 तच्छ्रुत्वा वचन सर्वे कुमारास्ते महौजस ।  
 अन्योज्यभूबुभुस्ते सर्वे सम्यगाह महानृषि ।  
 भ्रातृणा पदवी चैव गन्तव्या नात्र सशय ॥१५३॥  
 ज्ञात्वा प्रमाण पृथ्व्याश्च सुख लक्ष्यामहे प्रजा ।  
 तेषुपि तेनैव मार्गेण प्रयाता सर्वतोदिशम् ।  
 अद्यापि न निवर्तन्ते समुद्रेभ्य इवापागा ॥१५४॥  
 तत प्रभृति वै भ्राता भ्रातुरन्वेषणे रत ।  
 प्रयातो नश्यति तथा तन्न कार्य विजानता ॥१५५॥

उन लोगों ने नारद का यह वचन सुना और उसे मुनकर वे सब दिशाघ्नो में चले गये । वायु को समनुप्राप्त कर वे पराभव को प्राप्त हुए ॥१५६॥ वे वायु में मिथिन होने हुए आज तरु भी भ्रमण करते हुए ही हैं और नहीं लौट पा रहे हैं । इस प्रकार से वायु के पथ को प्राप्त होकर वे महर्षिगण भ्रमण किया करते हैं ॥१५७॥ अपने पुत्रों के नष्ट हो जाने पर प्राचेतस दक्ष ने फिर वैरिणी पत्नी में ही उस प्रभु ने एक सहस्र पुत्र उत्पन्न किये थे ॥१५१॥ प्रजा के विवर्द्धन करने की इच्छा वाले वे शबलाश्व फिर नारद के द्वारा वहाँ पर वह पूर्व में वहा हुआ वचन सुनाये गये थे ॥१५२॥ महान् भोग वाले वे सब कुमारों ने उस वचन को मुनकर आपस में एक दूसरे से बोले महर्षि ने ठीक ही कहा है । भाइयों की पदवी अर्थात् मार्ग को जानना चाहिए, इसमें कुछ भी सशय नहीं है ॥१५३॥ पृथ्वी का प्रमाण जानकर प्रजा का सुख पूर्वक मृज्ज करेगे । वे सब भी उसी मार्ग से सम्पूर्ण दिशाघ्नो की ओर चले गये थे । समुद्रों में गई हुई नदियों की भाँति वे भी अभी तक नहीं लौट रहे हैं ॥१५४॥ तभी में लेकर भाई-भाई के अन्वेषण करने में रत होता हुआ प्रयाण करता था और वहाँ नष्ट हो जाता है क्योंकि उन प्रकार से कार्य की जानकारी नहीं रहती थी ॥१५५॥

नष्टेषु शबलाश्वेषु दक्ष क्रुद्धोऽभवद्विभु ।

नारद नाशमेहीति गर्भवास वसेति च ॥१५६॥

तथा तेऽपि नष्टेषु महात्मसु पुरा किल ।

पष्टिकन्याऽसृजद्दक्षो वैरिण्यामेव विश्रुता ॥१५७॥

तास्तदा प्रतिजग्राह पत्न्यर्थे कश्यप प्रभुः ।

धर्मः सोमस्तु भगवास्तथैवान्ये महर्षय ॥१५८॥

इमा विसृष्टि दक्षस्य कृत्स्ना यो वेद तत्त्वत ।

आयुष्मान् कीर्त्तिमान् धन-प्रजावाञ्छ भवत्युत ॥१५९॥

शबलाश्व पुत्रों के नष्ट हो जाने पर विभु दक्ष बहुत ही अधिक क्रोधित हुआ था और 'नारद नाश को प्राप्त हुआ तथा गर्भ थे आवान अर्थात् गर्भ भ निवान प्राप्त कर' ऐसा शाप दे दिया था ॥१५६॥ पहिले समय में उक्त प्रकार

ये उन महान् आत्मा वालों के नष्ट हो जाने पर दश न वैरिणी पत्नी म ही प्रसिद्ध साठ बन्ध्याघो का मृजन किया था ॥१५७॥ उन समस्त बन्ध्याघो ने पत्नी के रूप में प्राप्त होने के लिये प्रभु कश्यप को स्वीकार किया था । भगवान् धर्म-मोम और उभी प्रकार से धन्य महर्षिगण थे ॥१५८॥ जो कोई पुरुष दक्ष प्रजापति की इस विशेष रूप वाली मृष्टि को सम्पूर्ण रूप से तत्त्वपूर्वक जानता है वह परमानु वाला-वीतिवाला और प्रजावाला धन्य होता है ॥१५९॥

### प्रकरण ४८--ऋषि वंशानु कीर्तन

एव प्रजामु सृष्टामु कश्यपेन महात्मना ।  
 प्रतिष्ठितामु सर्वासु स्थावरामु चरासु च ॥१  
 अभिषिच्याधिपत्येषु तेषा मुख्य प्रजापति ।  
 तत क्रमेण राज्यानि व्यादेष्टुमुपचक्रमे ॥२  
 द्विजातीना वीरुधाश्च नक्षत्राणा ग्रहे सह ।  
 यज्ञाना तपसाञ्छ्वेव मोम राज्येऽभ्यपेचयत् ॥३  
 वृद्धस्पति तु विश्वेण ददावङ्गिरना पतिम् ।  
 भृगुरणामधिपश्चैव काव्ये राज्येऽभ्यपेचयत् ॥४  
 आदित्याना पुनर्विष्णु वसूनामथ पावकम् ।  
 प्रजापतीना दक्षश्च भरतामथ वासवम् ॥५  
 देव्यानामथ राजान प्रह्लाद दितिनन्दनम् ।  
 नारायण तु साध्याना रुद्राणा वृषभध्वजम् ॥६  
 विप्रचित्तिश्च राजान दानवानामथादिशत् ।  
 अपा तु वरुण राज्ये राजा वैश्रवण पतिम् ।  
 यक्षाणां राक्षसानाञ्च पायिथानां धनस्य च ॥७

श्री मृतजी ने कहा—महान् आत्मा वाले कश्यप के द्वारा इस प्रकार से प्रजाघो का मृजन करने पर और समस्त स्थावर तथा जङ्गम प्रजाघो के प्रतिष्ठित किये जाने पर उनके आधिपत्य के स्थान पर उनमें से मुरग को प्रजापति

का अभिषेक करके इसके पश्चात् क्रम से राज्यों का आदेश करने का उपक्रम किया था ॥१-२॥ द्विजानियों के वीरधो थे ब्रह्मेश्वर नक्षत्रों के साथ यज्ञों का और तपो का राज्य में सोम को अभिषिक्त किया था अर्थात् उक्त सबका अधिपति चन्द्र को बनाया था ॥३॥ अङ्गिरस विश्वेशो का पति बृहस्पति और भृगुओं का अधिप काव्य को राज्य में अभिषिक्त किया था ॥४॥ आदित्यों का विष्णु को—वसुओं के पादक को—प्रजापतियों का दक्ष को और मरुतो का इन्द्र को राज्य में अधिप अभिषिक्त किया था ॥५॥ इसके पश्चात् देवों का राजा दितिनन्दन प्रह्लाद को—साधुओं का अधिप नारायण को—हरो का अधिप वृषभ-श्वज को बनाया था ॥६॥ दानवों का अधिप यज्ञा विप्रनिति को आविष्ट किया था—जलो का स्वामी बहल को और सब राजाओं के राज्य में बंधवण (कुवेर) को पति बनाया था यक्षों और राक्षसों का—पाषाणों का और धन का भी अधिप भी कुवेर को ही अभिषिक्त किया था ॥७॥

ववस्वत पितृणाञ्च यम राज्येऽभ्यपेक्षयत् ।

सर्वभूतपिशाचानां गिरिश शूलपाणिनम् ॥८

शैलानां हिमवन्तश्च नदीनामथ सागरम् ।

गन्धर्वाणामधिपतिं चक्रे विश्वरथ तदा ॥९

उच्चैश्च श्रवसमदवानां राजानञ्चाभ्यपेक्षयत् ।

मृगाणामथ क्षार्दूल गोवृषश्च चतुष्पदाम् ॥१०

पक्षिणामथ सर्वेषां गरुड पततां वरम् ।

गन्धानां मानुजश्चैव भूतानामगरीरिणाम् ॥११

ज्ज्वाकाशवलानाञ्च वायु बलवतां वरम् ।

सर्वेषां दृष्टिणां शेष नागानामथ वासुकिम् ॥१२

सरीसृपाणां सर्पाणां नागानाञ्चैव तक्षकम् ।

सागराणां नदीनाञ्च मेघानां वपितस्य च ।

आदित्यानामन्यतम पर्जन्यमभिषिक्तवान् ॥१३

सर्वाप्सरीमणानाञ्च कामदेव तथैव च ।

शत्रूणामथ मानानामार्तवानां तथैव च ॥१४

पक्षाणाञ्च विपक्षाणां मुहूर्तानाञ्च पर्वणाम् ।

कलाकाष्ठाप्रमाणानां गते रयनयोस्तथा ।

गणितस्याथ यागस्थ चक्रे सवत्सरं प्रभुम् ॥१५

पितृगण का स्वामी वैवस्वत यम का राज्य म अधिप अभिषिक्त किया था । समस्त भूतगणो और पिशाचो का स्वामी गूल पाणि गिरिश को बनाया ॥५॥ शैला का स्वामी हिमाचल को—नदियो का पति सागर को—गन्धर्वों का अधिपति उस समय मे चित्ररथ को बनाया था ॥६॥ अश्वो का राजा उच्चैश्रवा को राजा बनाकर अभिषिक्त किया था । समस्त मृग अर्थात् पशुघो का राजा शार्दूल को और चतुष्पदो का अधिप गोवृष को बनाया था ॥१०॥ समस्त पक्षियों का स्वामी पक्षिया मे परमश्रेष्ठ गरुड को बनाया । गन्धो के स्वामी को और बिना शरीर वाले प्राणी शब्द—आकाश और बल इन सबका स्वामी बलवानो म श्रेष्ठ वायु का तथा मन्मूख दृष्टाधारी जीवो का अधिप दोष को और नागो का स्वामी वामुर्क को अभिषिक्त किया था ॥११-१२॥ सरीसृप—नाग और सर्पों का राजा तक्षक को बनाया था । सागरो का—नदियों का—मेघो का—वर्षित का आदित्यो का अयनम पत्राय को स्वामी अभिषिक्त किया था ॥१३॥ समस्त अ पराप्ता के समुदाय का राजा कामदेव को अभिषिक्त किया था । श्वेतुघो का—मानो का—आत्तवो का—पत्ता का—विपत्ता का—मुहूर्तो का—पर्वो का—कला एव काष्ठा प्रमाणो का—गति का तथा दोनो अयना का—गणित का और याग का स्वामी मन्वत्सर को बनाया था ॥१३ १४ १५॥

प्रजापतवै रजस पूर्वस्यान्दिशि विश्रुतम् ।

पुत्र नाम्ना सुरामान राजान सोऽम्यपेचयत् ॥१६

पश्चिमाया दिशि तथा रजस पुत्रमच्युतम् ।

केतुमन्त महात्मान राजान सोऽम्यपेचयत् ॥१७

मनुध्याणामधिपति चक्रे चैव सुत मनुम् ।

तैरिय पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना ।

यथाप्रदेशमद्यापि वर्मण परिपाल्यते ॥१८

स्वाम्भुवेऽन्तरेपूर्वं ब्रह्मणा तेऽभिपेचिताः ।  
 नृपा ह्येतेऽभिपिच्यन्ते मनवो ये भवन्ति वै ॥१९॥  
 मन्वन्तरेऽवतीतेषु गता ह्येतेषु पार्थिवा ।  
 एवमन्येऽभिपिच्यन्ते प्राप्ते मन्वन्तरे पुन ।  
 अतीतानागता सर्वे स्मृता मन्वन्तरेऽथरा ॥२०॥  
 राजसूयेऽभिपिक्तश्च पृथुरेभिर्नरोत्तमः ।  
 वेददृष्टेन विधिना वृतो राजा प्रतापवान् ॥२१॥  
 एतानुत्पाद्य पुत्रास्तु प्रजासन्तानकारणात् ।

राजा प्रजापति पूरे दिशा मे बहुत ही प्रसिद्ध सुधामा नाम वाले पुत्रको  
 उसने राजा अभिषिक्त किया था । ॥१९॥ पश्चिम दिशा मे राजा के पुत्र अच्युत  
 को महान् आत्मा वाले केतुमान् को उसने राजा अभिषिक्त किया था ॥१७॥  
 और समस्त मनुष्यो का स्वामी मनु गुन को बनाया । उसके द्वारा यह समस्त  
 सात द्वीपो वाली भूमि और पत्तनो(नगर)के सशित प्रदेशके अनुभार राजतक धी  
 धर्म के साथ परिपालित की जाती है ॥१८॥ स्वाम्भुव अन्तर मे पहिले ये सब  
 ब्रह्मा ने अभिषिक्त किये थे । जो मनु होने हैं ये नृप अभिषिचिन किये जाते हैं  
 ॥१९॥ इन मन्वन्तरो के अतीत होजावे पर पार्थिव चले गये थे । फिर अन्य  
 मन्वन्तर प्राप्त होने पर अन्य इसी प्रकार से अभिषिक्त किये जाते है । मनीत  
 तथा अनागत समस्त मन्वन्तरेऽथरा कह गये हैं ॥२०॥ इन थोठ मानवो के द्वारा  
 राजसूय मे पृथु अभिषिक्त किया गया था जोकि वेदोक्त विधि से प्रतापवान्  
 राजा बनाया गया है ॥२१॥

पुनरेव महाभाग प्रजाना पतिरीश्वर ॥२२॥  
 कश्यपो गोत्रकामस्तु चत्वार परम तप ।  
 पुत्रो गोत्रकरो मह्य भवेतामित्यचिन्तयत् ॥२३॥  
 तस्य प्रध्यायमानस्य कश्यपस्य महात्मन ।  
 ब्रह्मणोऽसौ सुतो पश्चान् प्रादुर्भूतो महोऽसौ ॥२४॥  
 वत्साराश्वासितश्चैव तावुभौ ब्रह्मवादिनौ ।  
 चत्साराग्निध्रुवो जज्ञे रैम्यश्च स महायशाः ॥२५॥

रैम्यस्य रैम्या विज्ञेया निध्रुवस्य निबोधत ।

च्यवनस्य मुकन्याया सुमेधाः समपद्यत ॥२६

निध्रुवस्य तु या पत्नी माता वै कुण्डपायिनाम् ।

असितस्यैवपर्णाया ब्रह्मिष्ठ समपद्यत ॥२७

शाण्डिल्याना वच श्रुत्वा देवलः मुमहायशा ।

निध्रुवा शाण्डिल्या रैम्यास्तथ पञ्चात्तु कश्यपा ॥२८

वरप्रभृतयो देवा देवलस्य प्रजास्त्रिभुवा ॥२९

प्रजा की वृद्धि के कारण मे इन पुत्रा को उत्पन्न कराकर पुन प्रजापति के पति महान् भाग वाले—ईश्वर कश्यप कोई मोक्ष की कामना रखते थे, परम तपस्या को धारण किया था और मनम यह सख्य मोक्ष था कि दो पुत्र मेरे मोक्ष के चलाने वाले उत्पन्न होजायें ॥२७॥२८॥ प्रवृष्ट रूप से ध्यान करने वाले महात्मा कश्यप के पीछे ब्रह्मा क सग स्वरूप दा पुत्र महान् प्रोज वाले प्रादुर्भूत हुए ॥२४॥ वत्मार और अग्नि य दोनो ही ब्रह्मवादी थे । वत्मार से निध्रुव उत्पन्न हुआ और महान् यज्ञ वाला वह रैम्य हुआ ॥२५॥ रैम्य के जो हुए व रैम्य कहलाये और निध्रुव की अन्न जानकारि करी । च्यवन की सुकन्या म सुमथा समुत्पन्न हुए ॥२६॥ निध्रुव की जो पत्नी थी वह कुण्डपायियो की माता थी । अग्नि की तर्पणा म ब्रह्मिष्ठ उत्पन्न हुआ ॥२७॥ शाण्डिल्यो के वचन को सुनकर मुन्द एव महान् यज्ञवाले देवल ने निध्रुव—शाण्डिल्य और रैम्य मे तीन और पीछे कश्यप और वह प्रभूति देव ये सब देवल की प्रजा थी ॥२८॥२९॥

मानसस्य अग्न्यन्तस्तास्य पृथो दम क्विन् ।

मानसस्तम्य दायदम्नृगाबिन्दुरिति श्रुत ॥३०

त्रेनामुगमुमे राजा तृतीये सम्बभूव ह ।

तम्य कन्या त्रिविडा रूपेणाप्रतिमाभवत् ।

पुलस्त्याय म गर्जपिस्ता कन्या प्रत्यपादयत् ॥३१

अपिरिडविद्यायान्तु विश्वाः समपद्यत ।

सत्य पर्यभनस्यः पीतस्यबु नवर्द्धना ॥३२

बृहस्पतेर्वृहत्कीर्तिर्देवाचार्यस्य कीर्त्तिनः ।  
 वन्यां तस्योपयेमे स नाम्ना वै देववर्णिनीम् ॥३३॥  
 पुष्पोत्कटाश्च वावाश्च सुते माल्यवत स्थिता ।  
 नं कसी मानिन. वन्या तासान्तु शृणुत प्रजा ॥३४॥  
 ज्येष्ठ वैश्रवण तस्य सुपुत्रे देववर्णिनी ।  
 दिव्येन विधिना युक्तमार्षैरेव श्रुतेन च ।  
 राक्षसेन च रूपेण आसुरेण बलेन च ॥३५॥  
 त्रिपाद सुमहाकाय स्थूलशीर्ष महातनुम् ।  
 अष्टदंष्ट्र हारिच्छ्रमधु शशुक्लं विलोहितम् ॥३६॥  
 ह्रस्वबाहु प्रवाहुश्च पिङ्गल सुविभीषणम् ।  
 बंधतंज्ञानसम्पन्न सम्बुद्ध ज्ञानसम्पदा ॥३७॥  
 एवविध सुत दृष्ट्वा विद्वद्रूपधर तथा ।  
 पिता दृष्ट्वात्रकीर्त्तन कुबेरोऽयमिति स्वयम् ॥३८॥

चरिष्य मरण मानस उसके दम पुत्र हुआ । उसका नामादि मानस था  
 जोकि वृषाविन्दु इम नामसे विद्वुत हुआ था ॥३०॥ वृतीय नेता युग के मुख म  
 राभा हुआ था । उसकी दृढविडा थी जोकि रूप म अग्रनिमा थी । उम राक्षसि  
 ने उस परम सुन्दरी क या को पुमस्तय के लिय देवी थी ॥३१॥ ऋषि पुलस्तय ने  
 दृढविडा म विश्रवा को जन्म दिया । पौनरस्य कुन् के बडान वाली उमकी चार  
 पत्नियां थी ॥३२॥ देवो के आचार्य बृहस्पति वा बृहकीर्ति कहा गया है ।  
 नाम से देववर्णिनी उमकी कन्या के साथ उसने विवाह किया था ॥३३॥  
 माल्यवान् की पुष्पोत्कटा और वाका दो मुताए थी-माती की कन्या वन्या थी,  
 सब उनकी प्रजापरो का धरण करो ॥३४॥ देव वर्णिनी ने उमके सबसे बडे  
 वैश्रवण को उत्पन्न किया जोकि दिव्य विधि और आर्यन्तु के पूजनया सम्पन्न  
 था । साथ ही उमके राक्षस वा रूप था और घनुर बल भी था ॥३५॥ तीन  
 पैरो वाल-बहुत बडे शरीर वाले-स्थूल शीर्ष से युक्त-महान् तनुमे सम्पन्न-आठ  
 दादा वाले-हरी रंग की श्मधु से युक्त-शशुक्ल-विनीहित-छोटी बुझाभा  
 वाले-प्रवाहु-पिङ्गल-सुविभीषण-बंधत ज्ञान स युक्त तथा ज्ञान की सम्पति के



उत्प्लुत इग प्रवार के विग्रहण को धारण करने वाले पुष को देमकर पिता के  
बर्हा पर देतल हृष्ट कहा यह तो स्वयं कुवेर है ॥३६॥३७॥३८॥

वृत्सायां विप्रतिशद्वोऽय शरीर वेग्मुच्यते ।  
 कुवेरः कुशरोऽस्मात्प्राप्ता तेन च सोऽद्भुतः ॥३६॥  
 यस्माद्विश्रवमोऽपत्य साहस्योऽद्विश्रवा इव ।  
 सस्माद्विश्रवणो नाम नाम्ना लोके भविष्यति ॥३७॥  
 ऋद्धिर्षां वृत्तेऽज्जनयद्विश्रुत तन्वृत्तम् ।  
 रावणं कुम्भकर्णंश्च कन्यां दूर्पणाम्बलाया ।  
 विभीषणं चतुर्धाऽन्वर्षयत्जनयत्पुत्रान् ॥३८॥  
 शक्रवर्षो दशप्रोवः पित्रो रत्तमूर्द्धज ।  
 चतुष्पाद्विभक्तिभुजो महाबापो महाबल ॥३९॥  
 जात्याश्चननिभो दष्टो त्योहितप्रोव एव च ।  
 राजमेनो त्रययुक्तो स्पेण च वनेन च ॥४०॥  
 गन्धबुद्धिर्दृढनतू राक्षसैरेव रावण ।  
 निगर्गाहारण कूरो रावणाद्रावणम्पु गः ॥४१॥  
 हिरण्यकशिपुस्त्यामोत्म राजा पूर्वजन्मनि ।  
 अनुसुनानि राज्ञाश्च त्रयोदश न राक्षस ॥४२॥

कूर था, रावण करने से ही वह रावण कहलामा है ॥४२॥४३॥४४॥ तेरह  
वह राक्षस है ॥४५॥

ता पञ्चकोट्यो वर्षाणामास्याता सहस्रधया द्विजै ।

नियुतान्येरूपष्टिश्च सहस्राविद्धिरदाहता ॥४६

पष्टिगतसहस्राणि वर्षाणान्तु स रावणः ।

देवताना ऋषीणाञ्च घोर कृत्वा प्रजागरम् ॥४७

त्रेतायुगे चतुर्विधे रावणस्तपस क्षयात् ।

राम दाशरथिं प्राप्य सगण क्षयभीषिवान् ॥४८

महोदय प्रहस्तश्च महापाशुखरस्तथा ।

पुष्पोत्कटाया पुत्रास्ते कन्या कुम्भीनसी तथा ॥४९

त्रिशिरा द्रूपणश्चैव विद्युजिह्वश्च राक्षस ।

कन्या ह्यसतिका चैव वाकाया प्रसवा स्मृता ॥५०

इत्येते क्रूरवर्माण पौलस्त्या राक्षसा दश ।

दारुणाभिजना सर्वे देवैरपि दुरासदा ॥५१

सर्वे लब्धवराश्चैव पुत्रपौत्रसमन्विता ।

यक्षाणाञ्चैव सर्वेषा पौलस्त्या ये च राक्षसा ॥५२

वे वर्षों की पाँच कराड द्विजा के द्वारा सख्या स कही गई हैं । सख्या के ज्ञाताओं के द्वारा इकमठ नियुक्त कही गई है ॥४६॥ साठसौ हजार वर्ष तक उस रावण ने देवताओं और ऋषियों का घोर प्रजागर करके चौबीसवें त्रेता-युग में तपस्या का क्षय होने में दगरथ के पुत्र श्रीराम का प्राप्त किया और वह रावण गणों के साथ क्षय को प्राप्त हुआ था ॥४७-४८॥ पुष्पोत्कटा के महोदय प्रहस्त—महापाशुखर पुत्र थे तथा कुम्भीनसी नाम वाली एक कन्या हुई थी ॥४९॥ त्रिशिरा—द्रूपण—विद्युजिह्व राक्षस तथा नाका के असतिका नाम वाली कन्या ये सब प्रसव कहे गये हैं ॥५०॥ ये दश पौलस्त्य राक्षस क्रूर कर्म करने वाले थे । ये सब दारुण अभिजन वाले और देवों के द्वारा भी दुरासद थे ॥५१॥ ये सभी वरदान प्राप्त करने वाले और पुत्रों तथा पौत्रों से युक्त थे अर्थात् पुत्र पौत्र वाले थे । और समस्त यक्षा के ये पौलस्त्य राक्षस थे ॥५२॥

आगस्त्यवैश्वामित्राणा ऋराणा ब्रह्मरक्षसाम् ।  
 वेदाध्ययनशीलाना तपोव्रतनिपेविसाम् ॥५३  
 तेषामंडविडो राजा पौनस्त्य सव्यपिङ्गल ।  
 इतरे वै पशमुत्पास्तेन रक्षोगण स्त्रय ॥५४  
 यानु धाना ग्रहाधाना वार्त्ताश्र्व दिवाचरा ।  
 निशाचरगणास्तेषा चत्वार पविभि म्मृता ॥५५  
 पौनस्त्या नैश्र्वंताश्चैव आगत्स्या कौशिकास्तथा ।  
 इत्येताः मत्त तेषा वै जानया राक्षसा स्मृता ॥५६  
 तेषा रूप प्रवक्ष्यामि स्वभावेन व्यवस्थितम् ।  
 वृत्ताणा पिङ्गलाश्र्व महावाया महोदरा ॥५७  
 अष्टदशानुवर्णा ऊर्ध्व रोमाण एव च ।  
 भावर्गशरितास्याश्च मुञ्जधूमार्द्धमूर्द्धजा ॥५८  
 स्थूलनीपा गिताभाश्च ह्रस्वराश्च प्रवाहना ।  
 ताम्रास्या लम्बजिह्वीश्च लम्बभूस्थूलनासिका ॥५९  
 नीनाङ्गा लोहितप्रोवा मम्भीराक्षा विभीषणा ।  
 महापोरस्वराश्चैव विमटा वदपिण्डिरा ॥६०  
 स्थूलाश्च तुङ्गनामाश्च शिवागहनता दृढा ।  
 दाग्णाभिजना ऋरा प्रायण चिन्ष्टवमिण ॥६१  
 मकुण्डनाङ्गशपीडा मुकुटाष्णीपधारिण ।  
 विवित्र यम्पाभग्गाश्चिप्रयगनुत्पेपना ॥६२  
 धन्नादा पिशिताशश्च पुण्णादाश्च त स्मृता ।  
 इत्येतद्रूपमाधर्म्ये राक्षसानां बुध स्मृतम् ।  
 न तमस्मयन् बुद्ध यथा मायाहृत् त्वित् ॥६३

गण कवियों के द्वारा कहे गये हैं ॥५५॥ पीनः-नैः-त-भागस्य-शिशवः  
 उनकी मात जानियां हे जो राक्षस कहे गये हैं ॥५६॥ अब उनका स्वभाव से  
 व्यवस्थित रूप बतलाऊंगा । गोन भ्रौवो वाने-पिङ्गल वणं वाने-महान् वाम  
 से युक्त-महान् उदर वाने-घाट दाडा वाने-शंकु के समान जानो वाने-ऊपर  
 वा उठे हुए रोमी से युक्त-जानो तरु फटे हुए मुखो वाने-मूज तथा एभा  
 जैसे ऊर्ध्व नशो वान-म्यूल माथे वाने-मित भाभा वाने-छोटे कद वाने-  
 प्रवाहक-नामम दश मुखो स युक्त-लम्बी जीभ शीर लम्बे होटा वाने-लम्बी  
 शीर मोटी नाक वाने-नीले भङ्गी वाने-लाहित वणं की शीवा (गर्दन) वाने-  
 गहरे नेत्रो स युक्त-विशेष रूप स डरावने-महान् घोर ध्वनि वाने-विषट-बृद्ध  
 पीडी वाने-माटे-तुङ्ग नासिका वाने-शिला के समान महान्त वाने-मन्त्रवृत्त  
 दास्य अभिजन वाने-क्रूर शीर बहुधा विनष्ट कर्म करने वान तथा बुरेदल-  
 चङ्गद और भागीठ धारण करने वाले एव मुकुट शीर उष्णोष्ण को धारण  
 करने वाले विचित्र वस्त्र एव भाभरण वाने-विष माला शीर मनुलेपन वान-  
 शत्रु भक्षण करने वान तथा मौन खाने वाले एव पुरुषो वा भक्षण करने वाले  
 वे सब बताये गये हैं । इस प्रकार का राक्षसों के रूप वा साधर्म्य बुधवती के  
 द्वारा कहा गया है । यह समस्त बात बुद्ध नहीं है किन्तु वह भाषा वृत्त भी होना  
 है ॥५७-५८-५९ ६० ६१-६२ ६३॥

पुनहस्य मृगा पुत्रा सब व्यावाश्च दृष्टिण ।

भूता पिशाचा सर्पाश्च भ्रमरा हस्तिवस्तथा ॥६४

वानरा किन्नराश्चैव यमनिम्पुम्पाम्स्तथा ।

येऽन्ये चैव गरिजान्ता मायात्राधवशानुया ॥६५

घनपत्न्य ऋतुस्मिन् स्पृनो वैवस्वतेऽनरे ।

न तस्य पुत्र पोत्रा वा तेज मन्त्रिष्य वा स्थित ॥६६

अथैवंश प्रवक्ष्यामि तृतीयस्य प्रजापते ।

तस्य परम्यश्च मुन्दर्यो दशैवामन्पतिव्रता ॥६७

भद्राश्विन्य धृताचर्या वै दशाप्यगमि गूनव ।

भद्रा शूद्रा च भद्रा च दानदा मलदा तथा ॥६८

बेला खला च मर्त्याया या च गोचपला स्मृता ।  
 तथा मानरसा चैव रत्नवृटा च ता दश ॥६६  
 आग्नेयवदशकृत्तासां भर्ता नाम्ना प्रभावर ।  
 भद्रायां जनयामास सोम पुत्र यशस्विनम् ॥७०  
 स्वर्भानुना हने सूर्ये पनमानो दिवो महीम् ।

पुत्र के पुत्र ममस्य भृगु व्यान-दात्रो बाने-भूत विभाव-मर्ष-भ्रमर-  
 शायी-वानर-किन्नर-यम-किम्पूरुष और जो भी माया तथा क्रोध के बशानुग  
 होने हैं तथा बह गये हैं वे सब पुत्र के पुत्र हुए थे ॥६४-६५॥ उम वैवस्वत  
 मन्वन्तर न कनु एक ऐसा था जो आत्प हीन हुआ था । उनके न तो कोई पुत्र  
 था और न कोई पौत्र ही था । वह तेज का मदीर करने स्थित रहता था ॥६६॥  
 अब तृतीय प्रजापति अग्नि के वश को बतलाऊंगा । उसकी दश, परम पतिव्रता  
 सुन्दरी पत्नियाँ थी ॥६७॥ भद्राश्व के पुलाची नाम वाली मन्वरा म दश लगाने  
 हुए । उनके नाम—भद्रा-शूद्रा-रद्रा-दानदा-मनदा-बेला और खला ये मान  
 और गो चपला तथा मानरसा और रत्न कृग य दश हैं ॥६८-६९॥ आग्नेय  
 वद का करम वाला उनका भर्ता नाम से प्रभाकर था त्रियम भद्रा म यश वाले  
 सोम पुत्र को जन्म दिया था ॥७०॥

तमोऽभिभूते लोकेऽस्मिन् प्रभा येन प्रवर्तिता ॥७१  
 स्वस्ति तेऽस्मिन्वति चोक्त स पतन्निह दिवाकर ।  
 ब्रह्मर्षेर्वचनात्तस्य न एषात् दिवा महीम् ॥७२  
 अत्रिथ्रंष्टानि गोत्राणि यश्चकार महत्तपाः ।  
 यज्ञेष्वग्निघनश्चैव सुर्येश्च प्रवर्तित ॥७३  
 स ताम्बजनयत् पुत्रानान्मनुल्याननामवान् ।  
 दश ताम्बेव महता तपसा भावितप्रभा ॥७४  
 स्वस्त्याग्नेया इति ख्याता ऋषयो वेदपारगाः ।  
 तेषां बिह्वातयशसो ब्रह्मिष्ठी मूमहोजनी ॥७५  
 दत्ताग्नेयस्तस्य ज्येष्ठो दुर्वासास्तरय चानुज ।

यवीयसी मुता तस्यामत्रला ब्रह्मवादिनी ।  
 अत्राप्युदाहरन्तीम श्लोक पौराणिका पुरा ॥७६॥  
 अत्रे पुत्र महात्मान शान्तात्मानमकल्मषम् ।  
 दत्तात्रेय तनु विष्णो पुराणज्ञा प्रचक्षते ॥७७॥

स्वर्भानु के द्वारा सूर्य के हन होने पर दिव म मही पर पतमान हुआ था । इस लोक के उस समय अन्धकार मे एवढम अभिभूत होने पर जिमन प्रभा को प्रवर्तित किया था ॥७१॥ यहाँ गिरता हुआ वह दिवाकर उम समय तेरा कल्याण हा—इम प्रकार स कहा गया था । उम ब्रह्मवि के बचन से दिव से मही पर नहीं गिरा ॥७२॥ जिम महान् तपस्वी ने अत्रिधेष्ठ गोत्री को किया था और जो अत्रिधन यज्ञा म देवो के द्वारा प्रवर्तित किया गया था । उसने महान् तप मे भावित प्रभा वाले उनमे ही अन्धानक अपने समान दस पुत्री को उत्पन्न किया था ॥७३-७४॥ इतरत्यावेद इम नाम से विख्यात वेद के पारगामी ऋषिगण थे उनम विरुधान यश धाने महान् ओत्र मे युक्त परम ब्रह्मिष्ठ दो पुत्र थे ॥७५॥ उनम दत्तात्रेय सबसे बडा था और उसका छोटा भाई दुर्वासा थे । उसकी छोटी अबला और ब्रह्मवाद वाली पुत्री थी । यहाँ पर भी पहिले पौराणिक लोग इम श्लोक को कहा करते है ॥७६॥ महान् आत्मा वाले कल्मष रहित और शान्तात्मा अत्रि के पुत्र को जिमका नाम दत्तात्रेय था, पुराणो के ज्ञाता लोग उन्हे विष्णु का तनु कहा करते हैं ॥७७॥

तस्य गोशान्त्रये जाताश्चत्वार प्रथिता भुवि ।  
 श्यामाश्चमुद्गलाश्चैव बलारकगविष्टिरा ।  
 एते नृणान्तु चत्वार स्मृता पक्षा महोजसाम् ॥७८॥  
 कश्यपान्तरदश्चैव पर्वतोऽरुन्धती तथा ।  
 जज्ञिरे च त्वरुन्धत्यास्तानिवायत सत्तमा ॥७९॥  
 नारदस्तु वसिष्ठायारुन्धती प्रत्यपादयत् ।  
 ऊर्ध्वरेता महातेजा वृक्षशापात्तु नारद ॥८०॥  
 पुरा देवापुरे तस्मिन्सग्रामे तारकामये ।

श्वेता वृग्गाश्च शीगाश्च श्यामा धूम्रा सम्लिवा ।

ऊष्मपा दारवाश्च नीलाश्चैव पराशरा ।

पराशराणामष्टौ ते पक्षा प्राक्ता महात्मनाम् ॥८७

अन ऊर्ध्वं त्रिवोध्रध्यमिन्द्रप्रतिमसम्भवम् ।

वमिष्ठम्य कपिश्वरया घृताच्या समपद्यत ।

कुशीतिय समाहयात् इन्द्रप्रतिम उच्यते ॥८८

पृथो मुताया सम्भूत पुत्रस्तस्या भवद्वन्दु ।

उपमन्यु मुतस्नस्य यस्येमे उपमन्यव ॥८९

मित्रावरुणयोश्चैव कुण्डिनो ये परिश्रुता ।

एकार्षेयास्तथैवान्ये वसिष्ठा नाम विश्रुता ।

एते पक्षा वसिष्ठाना स्मृता एवादशैव तु ॥९०

इत्येते ब्रह्मण पुत्रा मानवा ह्यष्ट विश्रुता ।

आतर गुमहाभागा तेषा वशा प्रतिष्ठिता ॥९१

श्रीलोकान्धारयन्तीमा-देवपिण्डमकुलान् ।

तेषा पुत्राश्च पौत्राश्च शतगोऽथ सहस्रतः ।

यैर्व्याप्ता पृथिवी सर्वा सूर्यस्यैव गभस्तिभि ॥९२

य छे पुत्र के पीवगी म उत्पन्न हान हैं—भूरिश्रवा-शत्रु-गम्भु-कृणाल

गौर पञ्चम गौर शीर कीतिमती कन्या जा योगमाता दृढ अत वाली ब्रह्मदत्त

की माता थी और सात्व गुह की पत्नी थी ॥८५॥८६॥ अत-वृष्ण-गौर-

श्याम-धूम्र-मामूनिर-ऊष्म-दारक-नील और पराशर-महान् आत्मा बाने

पराशरो के ये षाठ पक्ष बहे गये हैं ॥८७॥ इसके बाद इन्द्र प्रतिम सम्भव का

जान लो । वमिष्ठ की कपिश्रुवी घृताची म कुशीतिय कहा गया उत्पन्न हुआ

जोकि इन्द्र प्रतिम कहा जाता है ॥८८॥ पृथु की मुता से उमका वमु पुत्र हुआ ।

उसका पुत्र उपमन्यु था जिसके ये सब उपमन्यु गण हैं ॥८९॥ और मित्रावरुणो

के कुरिण्डन हुए जो एकार्षेय परिश्रुत हुए थे । उसी प्रकार से अन्य वमिष्ठ नाम

से विश्रुत हुए थे । ये ग्यारह पक्ष वसिष्ठो के बहे गये हैं ॥९०॥ ये षाठ पुत्र

ब्रह्माके मानस प्रतिष्ठ हुए हैं । भार्गुमुन्दर एव महान् भाग बालेहैं और उनके वश

एक ही प्रजानि-इम नाम से प्रतिष्ठ पुत्र हुआ था ॥४॥ प्रजानि क सनिज नाम बाना वीयवान् पुत्र हुआ था । उमरु श्रीमान् महान् यग बाना क्षुप-इम नाम का पुत्र हुआ ॥५॥ क्षुप का पुत्र विग हुआ जिसकी कोई प्रतिमा नहीं थी । विग का पुत्र कल्पाण जिसका नाम विविग था और वह बहुत धार्मिक था ॥६॥ विविग का पुत्र धर्मात्मा और प्रताप बाला खनित्र था । उसका पुत्र करधम हुआ जोकि वेना युग के आरम्भ में हुआ था ॥७॥

करधमसुतश्चापि आविक्षिप्तम वीयवान् ।  
 आविक्षितो व्यनिक्रामत् पितरं गुणवत्तया ॥८॥  
 भरुतो नाम धगात्मा चक्रवर्त्तिसमो नृप ।  
 सवर्त्तेन दिव नीत समुहत् सह धान्धव ॥९॥  
 विवादोऽथ महानासीत् सवत्तस्य बृहस्पति ।  
 ऋद्धि दृष्ट्वा तु यज्ञस्य क्रुद्धस्तस्य बृहस्पति ॥१०॥  
 सवर्त्तेन हत यज्ञ चुकाप सुभृगन्तदा ।  
 लोकानां स हि नाशाय दंभतर्हि प्रसादित ॥११॥  
 भरुत्तश्चक्रवर्त्ती स नरिप्य तमवाप्तवान् ।  
 नरिप्यन्तस्य दापादो राजा दण्डधरा दम ॥१२॥  
 तस्य पुत्रस्तु विक्रातो राज सीषाष्टवर्द्धन ।  
 सुधृती तस्य पुत्रस्तु नर सुधृतिन सुत ॥१३॥  
 केवलस्तस्य पुत्रस्तु वन्धुमान् केवनात्मज ।  
 अथ वन्धुमत पुत्रो धर्मात्मा वेगवान् नृप ॥१४॥

करधम का पुत्र वीयवान् आविविग नाम बाना था । गुणा की सप्तता से आविविग ने अपना पिता को भी व्यतिक्रान्त कर दिया था ॥८॥ भरुत् नाम बाला राजा चक्रवर्त्ती के समान हुआ था । मित्रों और बाधकों के सहित वह सवर्त्त के द्वारा दिव लोक को ले जाया गया था ॥९॥ इसमें सवर्त्त बृहस्पति का महान् विवाद था । यज्ञ की ऋद्धि को देखकर बृहस्पति उससे बहुत क्रुद्ध हुआ था ॥१०॥ सवत्त के द्वारा यज्ञ के हत हो जाने पर उस समय वह बहुत ही अधिक कुपित हुआ और वह लोकों के नाश करने के लिए उद्यत



होगया था : देवगण के द्वारा उमे प्रमत्त किया गया था ॥११॥ चक्रवर्ती जो मरुत था उमने नरिष्यन्त को प्राप्त किया था : नरिष्यन्त का दायाद् दशुधरद्वम राजा था ॥१२॥ उमका पुत्र परम विक्रम वाला राष्ट्रवर्धन राजा था । उसका पुत्र सुधुनी था और उसका पुत्र नर था ॥१३॥ उसका बेबल पुत्र था और केवल का धात्मज बन्धुमान् था । इसके परचात् बन्धुमान् का पुत्र धर्मात्मा राजा वेगवान् हुआ ॥१४॥

बुधो वेगवत पुत्रस्तृणविन्दुबुधारमज ।  
 त्रेतायुगमुत्से राजा तृतीये सवभूव ह ॥१४  
 बन्या तु तस्य द्रविडा माता विश्वसो हि सा ।  
 पुत्रश्चास्य विशालोऽभूद् राजा परमधामिक ॥१६  
 विशालस्य समुत्पन्ना विशाला नयनिर्मिता ।  
 विशालस्य सुतो राजा हेमचन्द्रो महाबलः ॥१७  
 मुचन्द्र इति विख्यातो हेमचन्द्रादनन्तरम् ।  
 सुचन्द्रतनयो राजा धूम्राश्व इति विश्रुतः ॥१८  
 धूम्राश्वतनयो विद्वान् मृञ्जय समपद्यत ।  
 मृञ्जयस्य सुत श्रोमान् सहदेव प्रतापवान् ॥१९  
 कृशाश्व सहदेवस्य पुत्र परमधामिक ।  
 कृशाश्वस्य महातेजा सोमदत्त प्रतापवान् ॥२०  
 सोमदत्तस्य राजर्षे सुतोभूज्जनमेजय ।  
 जनमेजयात्मजश्चैव प्रमतिर्नाम विश्रुत ॥२१

वेगवान् का पुत्र बुध हुआ और बुध का पुत्र तृणविन्दु हुआ था जो कि तृतीय त्रेतायुग के मुत्त (धारम्भ) में राजा हुआ था ॥१४॥ उसकी बन्या द्रविडा थी जो कि विश्वसा की माता हुई थी । इसका पुत्र परम धामिक राजा विशाल हुआ था ॥१६॥ विशाल को नय निर्मित विशाला उत्पन्न हुई थी और विशाल का पुत्र महाबलवान् हेमचन्द्र राजा हुआ था ॥१७॥ हेमचन्द्र के अनन्तर मुचन्द्र इन नाम से विख्यात पुत्र हुआ । मुचन्द्र का पुत्र राजा धूम्राश्व परम विख्यात हुआ ॥१८॥ धूम्राश्व का पुत्र बहुत विद्वान् मृञ्जय समुत्पन्न हुआ

था । सृञ्जय का पुत्र श्रीमान् एव प्रताप वाला सहदेव हुआ ॥१६॥ सहदेव का पुत्र परम धार्मिक कृशाश्व हुआ और कृशाश्व का पुत्र महान् तेजवाला एव प्रतापी सोमदत्त हुआ ॥२०॥ राजपि सोमदत्त के जनमेजय पुत्र उत्तरभ हुआ था । जनमेजय के प्रमति इस नाम से प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुआ ॥२१॥

तृणविन्दुप्रसादेन सर्वे वैशालका नृपा ।  
 दीर्घायुषो महात्मानो वीर्यवन्त सुधार्मिका ॥२२  
 शर्यातिमिथुन त्वासीदानार्तो नाम विश्रुत ।  
 पुत्र मुकन्या कन्या च भार्या या च्यवनस्य तु ॥२३  
 आनात्तस्य तु दायादो रेवो नाम्ना तु वीर्यवान् ।  
 आनर्तो विपयो यस्य पुरी चापि कुशस्थली ॥२४  
 रेवस्य रेवत पुत्र ककुची नाम धार्मिक ।  
 ज्येष्ठो भ्रातृशतस्यासीद्राजा प्राप्य कुशस्थलीम् ॥२५  
 कन्यया सह श्रुत्वा च गन्धर्व प्रहृष्टोऽन्तिके ।  
 मुहूर्त्तं देवदेवस्य मार्त्यं बहुयुग विभो ॥२६  
 आजगाम युवा चैव स्वा पुरी यादवैर्वृताम् ।  
 कृता द्वारवती नाम बहुद्वारा मनोरमाम् ॥२७  
 भोजशृष्टघन्धर्वगुंता वमुदेवपुरोगमं ।  
 ताङ्कथा रेवत श्रुत्वा ययातस्त्वमरिन्दम ॥२८  
 कन्या तु बलदेवाय सुव्रता नाम रेवतीम् ।  
 दत्त्वा जगाम शिखर मेरोस्तपति सस्थित ॥२९

ये समस्त राजा तृणविन्दु के प्रसाद से वैशालक हुए थे । ये समस्त दीर्घ आयु वाले—महान् आत्मा स दृक्त—वीर्य वाले और भली भाँति से धर्म के मानने वाले हुए थे ॥२२॥ शर्याति के एक जोड़ा हुआ था—एव पुत्र था जो आनार्त इस नाम से प्रसिद्ध था और एक कन्या थी जिसका नाम मुकन्या था और वह च्यवन ऋषि की भार्या हुई थी ॥२३॥ आनात्त का दायाद शर्यात् दाय के ग्रहण करने वाला पुत्र वीर्यवान् रेव नाम वाला हुआ जिसका देश तो आनात्त था और पुरी कुशस्थली थी ॥२४॥ रेव का पुत्र रेवत हुआ था जिसका नाम

ककुथी था और वह परम धार्मिक हुआ था जो सौ भाइयों का ज्येष्ठ था और कुशस्थली को प्राप्त कर राजा हुआ था ॥२५॥ विष्णु देवों के देव के एक मुहूर्त्त मान समय तक जोकि मर्त्यों के बहुत ने युग थे, ब्रह्मा के समीप में गन्धर्व को कन्या के साथ में सुनकर युवा यादवों से वृत प्रवती पुरी में प्रागया जोकि बहुत द्वारों वाली बहुत सुन्दर द्वारवती नाम वाली की गई थी, वसुदेव जिनमें अग्रणी थे ऐसे भोज वृष्टि और गन्धर्वों के द्वारा वह पुरी सुरक्षित थी । उस कथा को शत्रुघ्नो के दमन करने वाले रैवत ने यथातत्त्व गुना था ॥२६-२७-२८॥ सुन्दर वृत वाली रेवती नाम से युवत कन्या को बलदेव को देकर तपश्चर्या में सस्यित होना हुआ मेरुगिरि के तिखर पर चला गया ॥२९॥

रेमे रामश्च धर्मात्मा रेवत्या सहित किल ।

ता कथामृपय श्रुत्वा पप्रच्छुस्तदनन्तरम् ॥३०॥

कथ बहुयुगे काले व्यतीते सूतनन्दन ।

न जरा रेवती प्राप्ता पलितञ्च कुत प्रभो ॥३१॥

मेरु गतस्य वा तस्य शर्याति सन्तति कथम् ।

म्यिता पृथिव्यामद्यापि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वत ॥३२॥

क्रियन्ता वा सुरगणा गन्धर्वास्तत्र कीदृशा ।

यच्छ्रुत्वा रैवत कालान् मुहूर्त्तमिव मन्यते ॥३३॥

न जरा क्षुत्पिपासा वा न च मृत्युभय तत ।

न च रोग प्रभवति ब्रह्मलोकगतस्य हि ॥३४॥

गान्धर्वं प्रति यच्चापि पृष्टस्तु मुनिसत्तमा ।

ततोऽह सप्रवक्ष्यामि याथातथ्येन सुव्रताः ॥३५॥

सप्त स्वरास्तनयो ग्रामा मूर्च्छनास्त्वैकविंशति ।

तालाश्रुकोनपञ्चाशदित्येतत् स्वरमण्डलम् ॥३६॥

पङ्कजपंभो च गान्धारो मध्यम पञ्चमस्तथा ।

धं वतश्चापि विज्ञेयस्तथा चापि निपादवान् ॥३७॥

धर्मात्मा बलराम ने रेवती के साथ धमण किया । उस कथा को सुन

कर इगके अनन्तर श्रुतिगो ने पूछा ॥३०॥ श्रुतिगण बोलें—हे सूत नन्दन !

हे प्रभो ! बहुत यूगो वाले काल के भयतीन हो जाने पर रेवनी वृद्धावस्था को प्राप्त नहीं हुई और पलित कैसे प्राप्त नहीं हुआ है ? ॥३१॥ जब अर्थात् मरु पर चला गया तो उसकी सन्तति कैसे हुई जोकि आज तक भी इस भू मण्डल पर स्थित है । यह तत्त्व पूर्वक सब वृत्त मनुना चाहते हैं ॥३२॥ कितने सुरगण थे और किस तरह के गन्धर्व थे जिसको सुनकर रैवत कालों को मूर्खों की भांति मानता था ॥३३॥ श्री सूतजी ने कहा—ब्रह्मलोक में जाने वाले को न बुढ़ापा होता है और न मूल-व्यास ही लगती है । मृत्यु का भय भी नहीं होता है और न किसी रोग का भय ही रहा करता है ॥३४॥ हे मुनिधेयो ! गान्धर्व के विषय में जैसा भी मुझसे पूछा गया है वह मैं ही मुबता । यथातथ्य से अर्थान् बिल्कुल ठीक ठीक बतलाऊंगा ॥३५॥ सात स्वर पङ्खादि होते हैं, तीन ग्राम और इक्कीस मूर्च्छनाएँ होनी हैं । उनकास ताल होते हैं—यह इतना स्वर मण्डल होता है ॥३६॥ स्वरों के नाम—पङ्क-शुभ-गान्धार-मध्यम-पञ्चम धैवत और निषाद ये सात हैं ॥३७॥

सौवीरी मध्यमग्रामो हरिणास्या तथैव च ।

स्यात्कलोपबलोपेता चतुर्थी शुद्धमध्यमा ॥३८

दार्ढ्वा च पावनी चैव दृष्टाका च यथाक्रमम् ।

मध्यमग्रामिका ख्याता पङ्कग्राम निबोधत ॥३९

उत्तरमन्द्रा रजनी तथा या चोत्तरायता ।

शुद्धपङ्का तथा चैव जानीयात् सप्तमा च ताम् ॥४०

गान्धारग्रामिकाश्चान्यान् कीर्त्यमानान् निबोधत ।

आग्निष्टोमिवमाद्यन्तु द्वितीय वाजपेयिकम् ॥४१

तृतीय पौण्ड्रक प्रोक्त चतुर्थं चाश्वमेधिकम् ।

पञ्चम राजसूय च षष्ठं चक्रसुवर्णकम् ॥४२

सप्तम गोसव नाम महावृष्टिवमष्टमम् ।

ब्रह्मदानञ्च नवम प्राजापत्यमनन्तरम् ॥४३

नागपक्षाथय विद्याद्गोतरञ्च तथैव च ।

हयक्रान्त मृगक्रान्त विधग्क्रान्त मनोहरम् ॥४४

सूर्यक्रान्त वरेण्यश्च भक्तवोकिलवादिनम् ।  
 सावित्रमद्धंसावित्र सर्व्वतो मद्रमेव च ॥४५॥  
 सुवर्णंश्च सुतन्द्रश्च विष्णुवैष्णुवरावुभौ ।  
 सागर विजयश्चैव सर्व्वभूतमनोहरम् ॥४६॥  
 हस ज्येष्ठ विजानीमस्तुम्बुरुप्रियमेव च ।  
 मनोहरमधात्र्यश्च गन्धर्वानुगतश्च यः ॥४७॥  
 अलम्बुपेष्टश्च तथा नारदप्रिय एव च ।  
 कथितो भीमसेनेन नागराणा यथा प्रिय ॥४८॥  
 करोपनीत विनता श्रीराख्यो भागवप्रिय ।  
 विशतिर्मध्यमग्राम पड्जग्रामश्चतुर्दश ॥४९॥

सौवीरी-मध्यम ग्राम-हरिणास्या-कनोपवतोपेता-शुद्धमध्यमा चतुर्था-  
 साङ्गी-पावनी-दृष्टाका ये यथाक्रम मध्यम स्वर की ग्रामिका हैं और इन्ही नामों  
 से प्रसिद्ध हैं । अब पड्ज ग्राम को समझो ॥३८॥३९॥ उत्तर मन्द्रा-रजनी-  
 उत्तरायता-शुद्धपड्जा और सप्तमा ये जाननी चाहिये ॥४०॥ अब बतलाई जाने  
 वाली अन्य जो गान्धार की ग्रामिका हैं उन्हें समझ लेनी चाहिये । अग्निष्टोमिका  
 प्रथम है और द्वितीय वाजपेयिक है । तीसरी पौरुडक कही गई है । चौथी  
 आश्वमेयिक है । पाँचवी राजमूय और छठी चक्र सुवर्णक है । सातवी गोसव  
 महावृष्टिक प्राठवी होती है । नवम ब्रह्मदान है इनके अनन्तर प्राजाय है ॥४०  
 ॥४१॥४२॥४३॥ नाम पक्षाश्वय-भोतर-हयक्रान्त-मनोहर-मृगक्रान्त-सूर्यक्रान्त-  
 वरह्य-भक्तवोकिल वादी-सावित्र-मद्धंसावित्र-मर्व्वतोभद्र-सुवर्णं-सुमन्द्र-विष्णु  
 वैष्णुवर-सागर-विजय-मर्व्वभूत मनोहर-हन को ज्येष्ठ जानते हैं-स्तुम्बुरुप्रिय-  
 मनोहर-अधात्र्य-गन्धर्वानुगत-अलम्बुपेष्ट नारद प्रिय-भीमसेन के द्वारा नागरों  
 को प्रिय कही गई है-करोपनीत विनता श्री-इम नाम वाली-भागव प्रिय-  
 ये भीम मध्यम स्वर के ग्राम हैं । पड्ज के चौदह ग्राम हैं ॥४४॥४५॥  
 ४६॥४७॥४८॥४९॥

तथा पञ्चदशेच्छन्ति गान्धारग्रामसंस्थितान् ।

ससौवीरा तु गान्धारी ब्रह्मणा ह्युपगोयते ॥५०॥

उत्तरादिस्वरस्यैव ब्रह्मा वै देवताञ्च च ।  
 हरिदेवसमुत्पन्ना हरिणास्या व्यजायत ।  
 मूर्च्छेना हरिणास्यैव अस्या इन्द्रोऽधिदेवतम् ॥१११  
 करोपनीतवितता मरुद्भिः स्वरमण्डले ।  
 सा कालोपनता तस्मान्भारुत्तश्चाथ देवतम् ॥११२  
 मनुदेशसमुत्पन्ना मूर्च्छेना शुद्धमध्यमा ।  
 मध्यमोऽयं स्वर शुद्धो गन्धर्वश्चात्र देवता ॥११३  
 गृणै सह राञ्चरते सिद्धाना मार्गदशने ।  
 यस्मात्तस्मात् स्मृता मार्गी मृगेन्द्रोऽस्याश्च देवता ११४  
 सा चाथमममायुक्ता घनेकान् पौरवान् रवान् ।  
 मूर्च्छेना योजना ह्येषा रजसा रजनी तत ॥११५  
 तान् उत्तरमन्द्रास पञ्जदेवतका विदुः ।  
 तस्मादुत्तरतालञ्च प्रथम स्वायतं विदुः ।  
 तस्मादुत्तरमन्द्रोऽयं देवतास्य ध्रुवो ध्रुम् ॥११६

इसी प्रकार में गान्धारी स्वर के साथ मस्विन पन्द्रह चाहते हैं । मगो-  
 बीरा-गान्धारी जो ब्रह्मा के द्वारा उपगीत हुआ करती है । उत्तरादि स्वर का  
 यहाँ पर ब्रह्मा ही देवता होता है । हरिदेव समुत्पन्ना-हरिणास्या ही मूर्च्छेना है  
 और इन्द्र इगवा अधिपतारी देवता होता है ॥११०॥१११॥ स्वर्गों के मण्डल में  
 मरुतों के द्वारा मरोपनीत विनता होती है । वह कालोपनता है इगमे पारत ही  
 यहाँ पर मरुदिवत होता है ॥११२॥ मनु देव में समुत्पन्न मूर्च्छेना शुद्ध मध्यमा  
 है । यहाँ मध्यम स्वर है और शुद्ध गन्धर्व देवता है ॥११३॥ गिद्धा के मार्ग के  
 दर्शन में मृगों के गाय मञ्चरण करती है । इसी कारण में यह मार्गी बही गर्द  
 है और इगवा मृगेन्द्र देवता होता है ॥११४॥ और वह आथम में ममायुक्त होती  
 है और घनेक वीरवों को रख जाने कर देनी है । यह मूर्च्छेना यात्रना है, रजने  
 रजनी होती है ॥११५॥ इगवा नाम उत्तर में द्वांस होता है और इसको पञ्च  
 देवता बानी जाननी चाहिये । इगमे उत्तर नाम प्रथम स्वायत जान लिये । इग  
 यह उत्तर मद्र है और इगवा ध्रुव विधित देवता है ॥११६॥

अपानादुत्तरत्वाच्च धैवतस्योत्तरायण ।  
 स्यादिय मूर्च्छना ह्येव पितर आद्भदेवता ॥५७॥  
 शुद्धपङ्कजस्वर कृत्वा यस्मादग्नि महर्षय ।  
 उपतिष्ठन्ति तस्मान् जानीयाच्छुद्धपङ्कजिकम् ॥५८॥  
 य सता मूर्च्छना कृत्वा पञ्चमस्वरको भवेत् ।  
 यक्षीणा मूर्च्छना सा तु याक्षिका मूर्च्छना स्मृता ॥५९॥  
 नागदृष्टिविषा गीता नोपसर्पन्ति मूर्च्छनाम् ।  
 भवन्तीव तृता ह्येते ब्रह्मणा नागदेवता ।  
 अहीना मूर्च्छना ह्येषा वरुणाश्चात्र देवता ॥६०॥  
 शकुन्तकाना कृत्वा च उपमा यान्ति किन्नरा ।  
 उत्तमा मूर्च्छना तस्मात् पक्षिराजोऽत्र देवता ॥६१॥  
 गान्धाररागशब्देन गा च धारयनेऽर्थात् ।  
 तस्माद्विशुद्धगान्धारी गन्धर्वंश्चाधिदैवतम् ॥६२॥

अपान और उत्तरस्व होने से धैवत का उत्तरायण यह मूर्च्छना है । इस प्रकार से आद्भ देवता पितर होते हैं ॥५७॥ त्रिम कारण से महर्षिगण शुद्ध पङ्कज स्वर को करके फिर अग्नि का उपस्थान किया करते हैं । इसलिये उसे शुद्ध पङ्कजिक जानना चाहिये । जो सत्पुरुषों की मूर्च्छना को करके पञ्चम स्वर होता है वह यक्षियों की मूर्च्छना है और वह याक्षिका मूर्च्छना वही गई है ॥५८॥ ॥५९॥ विषागीता नागदृष्टि मूर्च्छना का उपसर्पण नहीं करती है और ये नाग-देवता ब्रह्मा के द्वारा हृत होजाते हैं । यह अहियों अर्थात् नागों की मूर्च्छना होती है और वरुण यहाँ देवता है ॥६०॥ किन्नर पक्षियों की उपमा करके जाते हैं । इससे उत्तमा मूर्च्छना है और इससे पक्षिराज यहाँ देवता है ॥६१॥ गान्धार राग के शब्द से गा की अर्थ से धारण करता है इससे वह विशुद्ध गान्धारी होता है और उसका गन्धर्व अग्निदेवता होता है ॥६२॥

गान्धारानन्तर गत्वा मृष्टेय मूर्च्छना यत ।  
 तस्मादुत्तरगान्धारी वसवश्चात्र देवता ॥६३॥

सेय खलु महाभूता पितामहमुपस्थिता ।  
 पड् जेय मूर्च्छना तस्मात् स्मृता ह्यनलदेवता ॥६४  
 दिव्येय चायता तेन मन्दपष्ठा च मूर्च्छने ।  
 निवृत्तगुणनामान पञ्चमञ्चात्र धं वतम् ॥६५  
 पूर्णा सप्त स्वरा ह्येव मूर्च्छना सप्रकीर्तिता ।  
 नानासाधारणाश्चैव पडेवानुविदस्तथा ॥६६

जिसमे गा धार के अनन्तर यह मूर्च्छना गृष्ट हुई उस का ण से उत्तर  
 गा धारी हुई और यहाँ वसु अधिष्ठात्री देवता है ॥६३॥ वह यह महाभूता पिता  
 मह को उपस्थित हुई यह पडज मूर्च्छना है और इससे यह अनल देवता वाली  
 कही गई है ॥६४॥ यह दिव्या और आयता है इससे मन्द पष्ठा मूर्च्छनायें पञ्चम  
 और धं वत की होती हैं जोकि निवृत्त गुण और नाम वाले हैं । इन प्रकार से  
 सात स्वरो वाली पूर्ण मूर्च्छना कही गई है । यह अनेक और साधारण जै ही  
 अनुविद होती हैं ॥६६॥

### प्रकरण ५०--गीता लंकार निर्देश

पूर्वाचार्य्यमत बुद्धा प्रवक्ष्याम्यनुपूर्व्वश ।  
 त्रिशत वै अलङ्कारास्तान् मे निगदत शृणु ॥१  
 अलङ्कारास्तु चत्तव्या स्वै स्वैर्वर्णै प्रहेतव ।  
 सस्यानयोगैश्च तथा पादाना चान्ववेक्षया ॥२  
 वाक्यार्थपदयोगार्थै रलङ्कारस्य पूरणम् ।  
 पदानि गीतकस्याहु पुरस्तान् पृष्टनोऽथवा ॥३  
 स्थानानि त्रीणि जानीयादुर कण्ठशिरस्तथा ।  
 एतेषु त्रिषु स्थानेषु प्रवृत्तो विधिरुत्तम ॥४  
 चत्वार प्रकृती वर्णा प्रविचारश्चतुर्विध ।  
 विकल्पमष्टधा चैव देवा षोडशधा विदु ॥५



स्थायी वर्ण प्रसचारी तृतीयमवरोहणम् ।  
 आरोहण चतुर्यन्तु वर्ण वर्णविदो विदु ॥६॥  
 तत्रैक सचरस्थायी सचरास्तचरीभवन् ।  
 अथ रोहणवर्णानामवरोह विनिर्दिशेत् ॥७॥

अब पूर्व में हुए आचार्यों के मत को जानकर आनुपूर्वी के साथ तीन सौ अक्षरों को बतलाया जाता है । उन्हें बतलाने वाले मुझमें आप लोग भली भाँति जानकारी कर लें और श्रवण करें ॥१॥ अपने अपने वर्णों में प्रकृत हेतु वाले अक्षर सस्थान योगों से और पादों की प्रवृत्तियों से कथन करने के योग्य होते हैं ॥२॥ वाक्य-ग्रन्थ-पद और योगार्थों से अक्षरों की पूर्णता होती है । पृष्ठ से और भागे गीतरु के पद कहे गये हैं ॥३॥ स्थान उर स्थल-फल और गिर ये तीन जानने चाहिए । इन तीन स्थानों में उत्तम विधि प्रवृत्त होती है ॥४॥ प्रकृति में चार वर्ण और चार प्रकार का प्रविचार होता है । विरह्य आठ प्रकार के तथा देव सोलह प्रकार के जाने गये हैं ॥५॥ स्थायी वर्ण प्रसचारी और लीखरा अवरोहण चतुर्यं आरोहण वर्ण वर्णों के वेना लोग जानते हैं ॥६॥ यहाँ एक सचरास्तचरी होता हुआ सचर स्थायी होता है । इसके अनन्तर रोहण वर्णों का अवरोहण विनिर्दिष्ट करना चाहिए ॥७॥

अरोहणेन चारोहवर्ण वर्णविदो विदु ।  
 एतेषामेव वर्णानामलङ्काराभिबोधत ॥८॥  
 अलङ्कारास्तु चत्वार स्थापनी क्रमरेजिनः ।  
 प्रमादश्चाप्रमादश्च तेषा वक्ष्यामि लक्षणम् ॥९॥  
 विस्वरोष्ट्रकलाश्चैव स्थानादेकान्तर गता ।  
 आवर्त्तस्याक्रमोत्पत्ती द्वे कार्म्ये परिमाणत ॥१०॥  
 कुमारमपर विद्याद्विस्तर वमन गतम् ।  
 एष वै चाप्यपाङ्गस्तु कुतारेवः कलाधिक ॥११॥  
 श्येनस्त्वेकान्तरे जात कलामात्रान्तरे स्थित ।  
 तस्मिन्श्चैव सररे वृद्धिस्तिउने तद्विनशणा ॥१२॥

श्येनस्तु अपरोहस्तु उत्तरः परिकीर्तितः ।

बलाकलप्रमाणाच्च स विन्दुर्नाम जायते ॥१३

विन्दुरेककला कार्या वर्णान्तस्यायिनी भवेत् ।

विपर्ययस्वरोऽपि स्याद्यस्य दुर्घटितोऽपि न ॥१४

बर्णों के जाता लोम आरोहण से आरोह वर्णों जाना करते हैं । अब इन्हीं वर्णों के घनद्वारों को समझ लो ॥१३॥ घनद्वार चार होते हैं—स्या-पनी—क्रमरेत्री—प्रमाद और अप्रमाद ये चार उनके नाम होते हैं । अब उनके लक्षण बतलाना हू ॥१४॥ विम्बरोश्रृंखला स्थान से एक के अन्तर में गये हुए आवर्त्तों की अक्रम और उत्पत्ति परिणाम से दो करने चाहिए ॥१०॥ धरर को विस्तर बमन को गया हुआ कुमार जानना चाहिए । और यही कुमारके बला-पिक अर्थात् है ॥११॥ जो श्येन होता है वह स्थित रहता है । और उगी स्वर में उमगे विलक्षण वृद्धि स्थित हुआ करती है ॥१२॥ श्येन और अपरोह उत्तर कहा गया है और फनावन प्रमाण से वह विन्दु नाम धाला होता है ॥१३॥ विन्दु एक बना करनी चाहिए और वर्णान्त स्यायिनी होती है । विपर्यय स्वर भी होगा है त्रिवर्ण दुर्घटित भी नहीं जाना है ॥१४॥

एवान्तर्ग तु वायन्तु पङ्जनः परमः स्वरः ।

आशेषास्सन्दनं कार्यं वाक्येष्वेवोच्चपुष्यलम् ॥१५

गन्तारो तो तु सञ्चारी कार्यं वा कारणं तथा ।

पाक्षितभरगोह्यापि प्रोक्षमयन्त्येन च ॥१६

द्वादश च कनास्थानमेतान्तरगतन्तन ।

प्रदो नितमलद्वारमेव स्वरमग्नितम् ॥१७

स्वरमग्रामराजैव तन प्रोक्तन्तु पुष्पलम् ।

प्रक्षितमेव मन्त्रया पादानीतरयोर्भवेत् ॥१८

द्वित्वं वा यथा भूत यत्तद् द्वैमित्तमुच्यते ।

उद्वागद्विस्वराणां तथा पाष्टम्बरान्तम् ॥१९

यन्तु ग्यादरगोहो वा गार्तो मन्त्रतोऽपि वा ।

एतान्तरहिता ह्येते तमेव स्वरमन्तवः ॥२०

मक्षिप्रच्छेदनो नाम चतुष्पल्लवगणः स्मृतः ।

अनङ्गुला भवन्त्येते त्रिंशद्ये वै प्रकीर्तिताः ।

वर्णम्यानप्रयोगेण कनामात्रा प्रमाणात् ॥२१॥

एकान्तरा षट् तो षट्ज से परम स्वर होता है । आशेषातकन्दन वाद की भाँति उच्च गुणन करना चाहिए ॥१५॥ ये दोनों गन्तार गन्तार करने के योग्य हैं, कारण हो अपवा वायं हो । आक्षिप्त का अवरोहण करने भी उमी प्रकार से प्रोक्षमद्य होता चाहिए ॥१६॥ एकान्तर से गया हुआ बारहवीं कना का स्थान होता है । इनके आगे इन प्रकार से प्रेक्षोक्ति अनङ्गुला स्वर से गमनित होता है ॥१७॥ स्वर के मशमक होने में ही वह निर दुष्कल कहा गया है । पाशानीकों से कला के द्वारा प्रक्षिप्त ही होता है ॥१८॥ अपवा दो कना वादा जैसे हुआ वह प्रामित कहा जाता है । उच्चर से विश्वराम्ब तथा षट् स्वगन्तार वाता होता है ॥१९॥ जा तार से अपवा मन्द्र से अवरोह होता है ये लज्जाल रहित अन्त उमी स्वर में होते हैं ॥२०॥ मक्षिप्रच्छेद नाम चामः चतुष्पल्लवगणु कहा गया है । ये अनङ्गुला जो कि तीस वें स्वर है, होते हैं, ये वर्ण दोर स्वार के प्रयोग से कनामात्र के प्रमाण में होते हैं ॥२१॥

मन्थानुच्च प्रमाणं च विचारो मक्षगन्तया ।

चतुर्विधमिदं श्रवणं चतुर्भ्रमरोज्जनम् ॥२२॥

यथात्मना ह्यनङ्गुला त्रिंशदंगोऽतिगह्वितः ।

यथात्मनाप्यनङ्गुला विषम ह्यथममन्थयान् ॥२३॥

नानाभरणनमोपायवा नावा विभक्त्याम् ।

प्रयोविशत्य शीतिस्तु तेषामेतद्विपर्ययः ।

पङ्कजपक्षोऽपि तत्त्वादी मध्यो हीनस्वरो भवेत् ॥२८

अलङ्कार का प्रयोजन चार प्रकार का जानना चाहिए जोकि मस्थान-प्रमाण-विकार और लक्षण होना है ॥२२॥ जिस प्रकार से अपने शरीर का अलङ्कार विपर्ययस्त अर्थात् उल्टा-पल्टा हुआ अत्यन्त गह्रित अर्थात् बुरा हो जाता है । आत्म सम्भव होने में वरुणों को भी अलङ्कृत करने में विषम हो जाता है ॥२३॥ अनेक प्रकार के आभरणों के योग से जिस तरह नारी का विभूषण हुआ करता है उसी प्रकार से वरुणों का भी अलङ्कार होता है और यह भी यदि विपर्यस्त होता है तो अत्यन्त गह्रित हो जाता है ॥२४॥ जिस तरह चरण में कुण्डल कभी नहीं पहिने हुए देखे गये हैं और कभी कण्ठ में रचना अर्थात् बरघनी (कौबनी) नहीं पहिनी जाया करती है । इसी तरह से विपरीत स्थिति में रहने वाला अलङ्कार अत्यन्त बुरा हुआ करता है ॥२५॥ बिया हुआ भी अलङ्कार जो राग को दिखा देवे मयादिष्ट मार्ग वाले कर्त्तव्य के लिए जिसका विधान किया जाता है ॥२६॥ लक्षण-पर्यवस्था और वर्णिकाद्यो द्वारा प्रवर्त्तन मामोद्भव और मुखोद्भव ठीक ठीक रूप से बतलाता है ॥२७॥ उनका यह विपर्यय तेईम और अस्ती होता है । तत्त्व के आदि में पङ्कज पक्ष भी मध्य और हीन स्वर वाला हो जाता है ॥२८॥

पङ्कजमध्यमयोश्चैव ग्रामयो पर्य्ययस्तथा ।

मानोयोत्तरमन्द्रस्य पङ्कवात्राविकस्य च ॥२९

स्वरालप्रत्ययश्चैव सर्व्वेषां प्रत्यय स्मृतः ।

अनुगम्य बहिर्गीत विज्ञात पञ्चदैवतम् ॥३०

गोरूपाणां पुरस्तात्तु मध्यमाशस्तु पर्य्ययः ।

तयोविभागो गीतानां तावप्यमामसस्थितः ॥३१

अनुपङ्ग मयोद्दिष्ट स्वमारञ्च स्वरान्तःम् ।

पर्य्यय सप्रवर्त्तित सप्तस्वरपदक्रमम् ॥३२

गान्धारानेन गीयन्ते चत्वारि मन्द्रकणि च ।

पञ्चमो मध्यमश्चैव ध्रुवते तु निपादजे ।  
 पङ्कजपभैश्च जानीमो मन्द्रकेष्वेव नान्तरे ॥३३  
 द्वे चापरान्तिके विद्याद्वयशुल्लाष्टकस्य तु ।  
 प्राकृते वैणवैश्चैव गान्धारासे प्रयुज्यते ॥३४  
 पदस्य तु त्रय रूप सप्तरूपन्तु कौशिकम् ।  
 गान्धाराशेन वात्सर्ग्येन पर्ययस्य विधिः स्मृतः ।  
 एवञ्चैव क्रमोद्दिष्टो मध्यमाशस्य मध्यमः ॥३५

पङ्कज और मध्यम ग्रामो का पर्यय मानोयोत्तर मन्द्र का और आना-  
 विक का ध्रुव होना है ॥३३॥ स्वराल प्रत्यय सबका प्रत्यय कहा गया है ।  
 बहिर्गत का अनुपमन करके पाँच देवता जाने गये हैं ॥३०॥ गोरूपो के पहिले  
 मध्यमाश पर्यय होना है । उन दोनों का विभाग गीतो के सावण्य मार्ग मे  
 सस्थित होना है ॥३१॥ मैंने स्वरांतर स्वमार और अनुपङ्ग को उद्दिष्ट किया  
 है । पर्यय सप्तस्वर पदक्रम को सप्रवर्तिन होता है ॥३२॥ चार मन्द्रक गान्धा-  
 राश से गाये जाते हैं । पञ्चम और मध्यम ही ध्रुवत निपादज-पङ्कज और  
 ऋषभो से मन्द्रको ही मे जानते हैं, अन्तर मे नहीं ॥३३॥ और दो अपरान्तिक  
 जानने चाहिए । हय शुल्लाष्टक का प्राकृत मे वैणवों से ही गान्धाराश मे प्रयोग  
 किया जाता है ॥३४॥ पद के तीन रूप हैं और कौशिक मात रूप वाला होता  
 है । पूर्ण गान्धाराश से पर्यय की विधि कही गई है । इसी प्रकार मे क्रमोद्दिष्ट  
 और मध्यमाश का मध्यम होना है ॥३५॥

यानि गीतानि प्रोक्तानि रूपेण तु विशेषतः ।  
 तत्तु सप्तस्वर कार्यं सप्तरूपश्च कौशिकम् ॥३६  
 अङ्गदमनमित्याहुर्मनि द्वे समवे तथा ।  
 द्वितीयभावाचरणा मात्रा नाभिप्रतिष्ठिता ॥३७  
 उत्तरे च प्रवृत्त्येव मात्रा तत्नीयते तथा ।  
 हन्तारः पिण्डवो यत्र मात्राया नातिवर्तते ॥३८  
 पादेनैवेन मात्रायां पादोनामति धीरणा ।  
 सख्यामाश्रोपहननं तत्र यानमिति स्मृतम् ॥३९

द्वितीय पादभङ्गश्च ग्रहेणाभिप्रतिष्ठितम् ।

पूर्वमष्टतृतीये तु द्वितीयं चापरीतके ॥४०

अर्द्धेन पादसाम्यस्य पादभागाच्च पञ्चके ।

पादभाग सपाद तु प्रकृत्यामपि सस्थितम् ॥४१

चतुर्थमुत्तरे चैव मद्रवत्या च मद्रके ।

मद्रके दक्षिणस्यापि यथोक्ता वृत्तंते कला ॥४२

जो गीत विशेषता से रूप से कहे गये हैं वह तो सप्त स्वर करना चाहिए और कौशिक सप्त रूप करना चाहिये ॥३६॥ सम दो मान अङ्गदर्शन यह कहते हैं । द्वितीयभावाचरण मात्र अभिप्रतिष्ठिता नहीं है ॥३७॥ और उत्तर में प्रकृति से ही इस तरह मात्रा तल्लीन होती है जहाँ पर हन्तार विरुद्धक मात्रा में अतिवृत्तन नहीं करता है ॥३८॥ एक पाद से मात्रा म पादोना मतिवीरणा है और सख्या का उपहनन होता है वहाँ पर यानम्—यह कहा गया है ॥३९॥ द्वितीय पादभङ्ग है जो ग्रह से अभि प्रतिष्ठित होता है । अष्ट तृतीय म तो पूर्व है और अपरीतक म द्वितीय है ॥४०॥ अर्द्ध से पाद साम्य का और पञ्चक म पाद भाग में, पाद भाग सपाद तो प्रकृति में भी सस्थित होता है ॥४१॥ उत्तर में चतुर्थ और मद्रवती म मद्रव और मद्रक म दक्षिण की भी यथोक्त कला होती है ॥४२॥

पूर्वमेवानुयोगन्तु द्वितीया बुद्धिरिष्यते ।

पादो चाहरण चास्मत् पार नात्र विधीयते ॥४३

एकत्वमुपयोगस्य द्वयोर्बुद्धि द्विजोत्तम ।

अनेकसमवायस्तु पताकाहरिण स्मृतम् ॥४४

तिमृणा चैव वृत्तीना वृत्तौ वृत्ता च दक्षिणा ।

अष्टौ तु समत्रायास्ते सौवीरा मूर्च्छना तथा ।

कुशत्यनुत्तर सत्य सप्त सन्वस्वर तु यः ॥४५

पूर्व ही अनुयोग ता है द्वितीया बुद्धि इच्छित होती है । पाद आर चाहरण यहाँ पर अस्मत् पार कार का पिधान नहीं होता है ॥४३॥ हे द्विजोत्तम ! उपयोग का एकत्व और जो दोना है तथा अनेक का समवाय है वह

पताका हरिण कहा गया है ॥४४॥ और तीन वृत्तियो का और वृत्ति मे दक्षिणा वृत्ता के आठ समवाय हैं और सीवीरा मूच्छना होती है । कुण्डलानुत्तर जो सत्य सात मन्वस्वर होता है ॥४५॥

### प्रकरण ५१—वैवस्वत मनु वंश वर्णन

ककुच्चिनस्तु त लोक रैवतस्य गतस्य ह ।  
 हता पुण्यजनै सर्वा राक्षसै सा कुशस्थली ॥१॥  
 तद्वै भ्रातृशत तस्य धार्मिकस्य महात्मन ।  
 निवध्यमाना रक्षोभिदिश सप्राद्रवन् भयात् ॥२॥  
 तेषान्नु ते भयाक्रान्ता क्षत्रियारतन तत्र हि ।  
 अववायस्तु सुमहान् महास्तत्र द्विजोत्तमा ॥३॥  
 प्रयता इति विख्याता दिक्षु सर्वासु धार्मिका ।  
 घृष्टस्य धाष्टक क्षत्र रणघृष्ट वभूव ह ॥४॥  
 त्रिसाहस्रन्तु सगरा क्षत्रियाणा महात्मनाम् ।  
 नभगस्य च दायादो नाभागो नाम वीयवान् ॥५॥  
 अम्वरीपस्तु नाभागिविरूपस्तस्य चात्मज ।  
 पृषदश्वो विरूपस्य तस्य पुत्रो रथीतर ॥६॥  
 एते क्षत्रप्रसूता व पुनश्चाङ्गिरस स्मृता ।  
 रथीतराणा प्रवरा क्षत्रोपेता द्विजातय ॥७॥

श्री मूत्रजी ने कहा—ककुची के उग लोक का रैवत के बने जाने में उसरी जो कुण्डली थी वह सब पुण्यजनो राजनो के द्वारा हत होगई ॥१॥ उनके जो सौ भाई थे जोहि बड़ा धर्म के मानने वाला और शत्रु घातना वाला था राक्षसो के द्वारा निवध्य मान जाने हुए मय से शिशाघो म भाग गये ॥२॥ हे द्विजो म उत्तम । उनके भय से प्रात्रा १ व क्षत्रिय वहाँ-वहाँ होगये और यह सुमहान् अवकाय महान् ही गया ॥३॥ गमस्त शिशाघो म धार्मिक रोग प्रयता इत नाम से विख्यात हुए । मूत्रजी रणभूमि में उग्न वाला धाष्टक

क्षत्रिय हृष्णा या ॥४॥ महान् धात्मा बाले क्षत्रियो वा सगण तीन हजार या ।  
नमग के दाय का हृक्षदार बडा पराक्रमी नाभाग नाम वाला हृष्णा ॥५॥  
नाभागि अम्बरीष हृष्णा और उसका पुत्र विरूप हृष्णा । विरूप का पुत्र वृषदस्व  
और उसका पुत्र रथीतर नाम वाला हृष्णा या ॥६॥ ये सब क्षत्रियो की सतति  
आङ्गिरस कही गयी है । रथीतरों में जो प्रवर थे और क्षत्र धर्म से समन्वित  
थे वे द्विजाति थे ॥७॥

क्षवतस्तु मनो पूर्वमिह्वाकुरभिनि सृत. ।

तस्य पुत्रशतं त्वासीदिक्ष्वाकोभूरिदक्षिणम् ॥८

तेषा ज्येष्ठो विकुक्षिश्च नेमिदण्डश्च ते त्रयः ।

शकुनिप्रमुखास्तस्य पुत्रा पचाशतस्तु ते ॥९

उत्तरापथदेशस्य रक्षितारो महीक्षित. ।

चत्वारिंशत्तथाष्टौ च दक्षिणस्याञ्च ते दिशि ॥१०

विंशतिप्रमुखास्ते तु दक्षिणापथरक्षिणः ।

इह्वाकुस्तु विकुक्षि वै अष्टकायामयादिशेत् ॥११

मासमानय श्राद्धेयं मृगान् हत्वा महाबल ।

श्राद्धमद्य नु कर्तव्यमष्टकाया न सशय ॥१२

स गतस्तु मृगव्या वै वचनात्तस्य धीमत ।

मृगान् सहस्रसो हत्वा परिश्रान्तश्च वीर्यवान् ।

भक्षयच्छकन्तत्र विकुक्षिमृगयाङ्गतः ॥१३

आगते स विकुक्षौ तु समासे सहस्रान्तिके ।

वसिष्ठञ्चोदयामास मास प्रोक्षयतामिति ॥१४

मनु के पूर्व श्रुत से इह्वाकु अभिनिभृत हुए । उस इह्वाकु के सौ पुत्र  
थे जोकि भूरि दक्षिणा वाले थे ॥८॥ उन एक शत पुत्रों में जो सबसे बडा पुत्र  
था उनका नाम विकुक्षि या और नेमिदण्ड यो वे तीन थे । उनके शकुनि  
जिनमें प्रधान था ऐसी रीति से पचिसौ पुत्र हुए थे ॥९॥ वे सब नृप उत्तरा  
पथ के रक्षा करने वाले थे । उनमें चालीस और आठ दक्षिण दिशा में गये  
थे ॥१०॥ जिसमें विंशति सबसे प्रमुख थे ऐसे वे दक्षिणा पथ के रक्षा करने



वाले हुए थे । इक्ष्वाकु ने विकुक्षि को अष्टका में आदेश दिया था ॥११॥ राजा बोले—हे महान् बल वाले ! जंगल में जाकर श्राद्ध करने के योग्य सामग्री लाना चाहिए । आज अष्टका में श्राद्ध करना चाहिए । इसमें कुछ भी सशय नहीं है ॥१२॥ वह बुद्धिमान् इस वाक्य को ग्रहण कर वन में जा पहुँचा । वह परम वीर्यवान् शिकार करते करते परिश्रान्त होगया था । भृगया करने गये हुए विकुक्षि ने वहाँ पर कुछ आहार कर लिया था ॥१३॥ सैनिका के सहित विकुक्षि ने आने पर राजा ने बसिष्ठ जी को प्रेरित किया कि वे सामग्री का प्रोक्षण करें ॥१४॥

तयेति चोदितो राज्ञा विधिवत्समुपस्थितः ।  
 स दृष्टोपहत मास क्रुद्धो राजानमब्रवीत् ॥१५॥  
 शूद्रेणोपहत मास पुत्रेण तव पार्थिव ।  
 शशभक्षादभोज्य वं तव मास महाच्युते ॥१६॥  
 शशो दुरात्मना पूर्वमरण्ये भक्षितोऽनघ ।  
 तेन मासमिदं दुष्ट पितृणां नृपसप्तम ॥१७॥  
 इक्ष्वाकुस्तु तत क्रुद्धो विकुक्षिमिदमब्रवीत् ।  
 पितृकमणि निदिष्टो मया त्वं भृगयाङ्गत ।  
 शश भक्षयसेऽरण्ये निर्धृंण पूर्वमच नु ॥१८॥  
 तस्मात्परित्यजामि त्वा गच्छ त्वं स्वैन वर्मणा ।  
 एवमिदवाकुना त्यक्तो वसिष्ठवचनात् सुत ॥१९॥  
 इक्ष्वाकौ सस्थिते तस्मिञ्छशी स पृथिवीमिमाम् ।  
 प्राप्तं परमधर्मात्मा स चायोभ्याधिपोऽभवत् ॥२०॥  
 तदाकरोत्स राज्यं वै वसिष्ठपरिनोदित ।  
 तत स्तेनेन सा पूर्णा राज्यावस्था महीपते ॥२१॥

राजा के द्वारा उम प्रवार प्रेरित बसिष्ठ मुनि विधिपूर्वक उपस्थित हुए । सामग्री का देमन्त्र बुधित होने हुए राजा से कहा—॥११॥ हे पार्थिव ! हे महान् शक्ति वाले ! आपने पुत्र शूद्र ने सामग्री को उपहन कर दिया है । वन भक्षण कर भेने से यह सामग्री भोजन करने के योग्य नहीं है ॥१६॥ हे अनघ !

हे नृपो म श्रेष्ठ ! इम दुरात्मा ने पहिले ही जगत् में आहार कर लिया है ।  
 इनसे यह समस्त सामग्री दूषित होगयी है और पितरों के योग्य नहीं रही है  
 ॥१७॥ तब तो इक्ष्वाकु बहुत ही क्रुद्ध हुआ और विकृन्धि से बोला—मैंने तुम्हें  
 पितृ-कर्म में निर्दिष्ट किया था और तभी तू शिकार करने यहाँ से गया था ।  
 निर्घृण तूने आज पहिले ही जगत् में आहार कर लिया है ॥१८॥ इस कारण  
 से मैं आज तेरा त्याग करता हूँ और त्याग तेरे ही अपने कर्म से किया जा रहा  
 है । इस प्रकार से वह पुत्र वसिष्ठ क वचन से इक्ष्वाकु के द्वारा त्याग दिया गया  
 था ॥१९॥ इम इक्ष्वाकु क सस्यत होने पर उस दशो ने इस पृथ्वी को प्राप्त  
 किया और परम धर्मात्मा वह अयोध्या का स्वामी हुआ था ॥२०॥ वसिष्ठ के  
 द्वारा परिप्रेरित हुए उसने उस समय राज्य किया था । इसके अनन्तर राजा की  
 वह राज्यावस्था स्नेह से पूर्ण हुई ॥२१॥

कालेन गतवास्तत्र स च न्यूनतराङ्गतिम् ।  
 शात्वैवमेतदारयान ना विधिभक्षयेत्तु वै ॥२२  
 मास भक्षयितामुत्र यस्य मासमिहादम्यहम् ।  
 एतन्मासस्य मासत्व प्रवदन्ति मनोपिण ॥२३  
 शशादस्य तु दायाद ककुत्स्थो नाम वीर्यवान् ।  
 इन्द्रस्य वृषभूतस्य ककुत्स्थो जायत पुरा ॥२४  
 पूर्वमाडीवके युद्धे ककुत्स्थस्तेन स स्मृत ।  
 अनेनास्तु ककुत्स्थस्य पृथुरोमा च स स्मृत ॥२५॥  
 वृषदश्व पृथो पुत्रस्तस्मादन्ध्रस्तु वीर्यवान् ।  
 आन्ध्रस्तु यवनाश्वस्तु श्रावस्तस्तस्य चात्मजः ॥२६॥  
 जज्ञे श्रावस्तको राजा श्रावन्ती येन निर्मिता ।  
 श्रावस्तस्य तु दायादो वृहदश्वो महायशा ॥२७॥  
 वृहदश्वमुतश्चापि युवलाश्व इति श्रुति ।  
 य स पुंघुयधाद्राजा पुंघुमास्त्वमागत ॥२८॥

पान क म्पनीन होने ग वहाँ पर वह ग्यूनतर गति को प्राप्त हुआ । इस  
 प्रकार से इस आरयान को जानकर बिना विधि के भक्षण नहीं करना चाहिये

॥२२॥ परलोक मे मांस खादि क भक्षण करने वाली मे जिमके मांस को मैं यहाँ भक्षण करता हूँ । वह इममे मांस को खायगा इस मांस का मासत्व मनीषीगण वहा करते हैं ॥२३॥ सशाद का दायद (पुत्र) वीर्यवान् ककुत्स्थ हुआ । पहिले वृषभूत इन्द्र का ककुत्स्थ उत्पन्न होता है ॥२४॥ पहिले आडीवरु युद्ध मे उसके द्वारा वह ककुत्स्थ स्मरण किया गया था—प्रर्वात् कहा गया था । इसके द्वारा ककुत्स्थ क पृथुरोमा हुआ ॥२५॥ पृषु का पुत्र वृषदध और उससे वीर्यवान् अ ध हुआ । उसके आध—यवनरूप और थावस्त ये पुत्र हुए ॥२६॥ थावस्तक राजा हुआ जिमने थावस्ती नाम वाली पुरी का निर्माण किया था । थावस्त का दायद महान् यम वाला वृहदश्व हुआ था ॥२७॥ वृहदश्व का पुत्र भी कुवसाश्व हुआ यह श्रुति है । जो वह राजा धुन्धु के वध से धुन्धु मारत्व को प्राप्त होगया था ॥२८॥

धुन्धुवध महाप्राज्ञ श्रोतुमिच्छामि विस्तरात् ।  
यदर्थं कुवलाश्व स धुन्धुमारत्वंनागत ॥२९॥  
वृहदश्वस्य पुत्राणा सहस्राण्येव विशति ।  
सर्वे विद्यामु निष्णाता बलवन्तो दुरासदा ॥३०॥  
वभूवुर्दार्मिका सर्वे यज्वाना भूरिदक्षिणा ।  
कुवलाश्व महावीर्यं दूरमुत्तमघाम्बिकम् ॥३१॥  
वृहदश्वोऽम्बपिञ्चत् तस्मिन् राष्ट्रे नराधिप ।  
पुत्रसन्नामितश्रीस्तु वन राजा विवेश ह ॥३२॥  
वृहदश्व महाराज दूरमुत्तमघाम्बिकम् ।  
प्रयात् तमुत्तङ्गस्तु ब्रह्मपि प्रत्यवारयत् ॥३३॥  
भवतो रक्षणं कार्यं तत्तावत् कर्तुं महंति ।  
निरद्विग्नस्तप कर्तुं न हि शक्नोमि पार्थिव ॥३४॥  
ममाश्रमममीपेषु समेषु मरघन्वसु ।  
समुद्रो बालुवापूरुणस्तत्र तिष्ठति भूपते ॥३५॥

ऋषियो ने कहा—हे महान् परिष्ण ! हम धुन्धु व यम को मारना चाहते हैं और निस्तरापूर्वक यवण करने की इच्छा करते हैं जिमने विये वह

कुवलाश्व धुन्धु मारुत्व को प्राप्त होगया था ॥२६॥ श्री सूतजी ने कहा—बृहदश्व के एक बीस सहस्र पुत्र थे । वे सब विद्याओं में निष्णात, बड़े ही बलवाले और दुरासह थे ॥३०॥ सब बहुत दक्षिण वाले यज्वा परम धार्मिक हुए थे । बृहदश्व राजा ने महान् वीर्य वाले-शूरवीर-उत्तम धर्म के मानने वाले उस कुवलाश्व को उस राष्ट्र में राजा अभिषिक्त किया था । जब पुत्र ने समस्त राज्य भी प्राप्त करलीया था तब राजा ने वनमें प्रवेश कर लिया था ॥३१-३२॥ उत्तम धार्मिक और शूर महाराज बृहदश्व को वन में प्रयाण करने वाले को ब्रह्मपि उत्तङ्क ने उसको रोका था ॥३३॥ उत्तङ्क ने कहा—हे पार्थिव ! आपका रक्षा करना कर्म है, आपकी उसे करना चाहिये । मैं उद्वेग रहित होकर तप नहीं कर सकता हूँ ॥३४॥ हे भूपते ! मेरे आश्रम के समीप सम मरुत्वनाम्नो में बालुरा से परिपूर्ण समुद्र यहाँ पर स्थित रहता है ॥३५॥

देवतानामवध्यन्तु महाकायो महाबल ।

अन्तर्भूमि गतस्तत्र बालुकान्तहिता महात् ॥३६॥

स मनोस्तनय क्रूरो धुन्धुर्नाम मुदाहरण ।

शल लोक विनाशाय तप आस्याय दारुणाम् ॥३७॥

सवत्सरस्य पर्यन्ते स निश्वास प्रमुञ्चति ।

यदा तदा मही तत्र चलिता स्म सकानना ॥३८॥

तस्य निश्वासवातेन रज उद्धूयते महत् ।

घ्रादित्यपथमावृत्य सप्ताह भूमिकम्पनम् ॥३९॥

सविम्फुलिङ्ग सज्वाल सधूममतिदारुणम् ।

तेन राजन्न दक्नोमि तस्मिन् स्यातु स्व आश्रमे ॥४०॥

त वारय महाबाहो लोकाना हितवाम्यया ।

तेजस्ते सुमहाविष्णुस्तेजसाप्याययिष्यति ॥४१॥

सौरा स्वस्या भवन्त्वद्य तस्मिन् विनिहतेऽमुरे ।

त्व हि तस्य यथावाद्य समर्थं पृथिवीपते ॥४२॥

यह महान् पावा वाला और महान् बल वाला देवताओं का अवध्य है अर्थात् देवों ने द्वारा यथ करन क योग्य नहीं है । यह भूमि के अन्तर्गत यहाँ

वालुकाभो से छिपा हुआ रहता है ॥३६॥ वह मनुका पुत्र है, धुन्धु उसका नाम है और वह बड़ा दारुण है । वह शतलोको के विनाश करने के लिये दारुण रूप में स्थित होकर रहता है ॥३७॥ वह सम्बत्सर पर्यन्त में निश्वास का मोचन किया करता है । जब वह अपना निश्वास छोड़ता है तब यह समस्त भूमि वनों के सहित चलायमान होजाया करती है ॥३८॥ उसके निश्वास की वायु से बहुत रज उटती है और सूर्य के मार्ग को आवृत्त करलेती है तथा सप्ताह तक भूमि का कम्पन हुआ करता है ॥३९॥ वह कम्पन भी सामान्य नहीं होता है उसमें स्फुल्लिङ्ग अर्थात् अग्निकण होते हैं ज्वाला युक्त, धूम से समन्वित और अत्यन्त ही दारुण होता है । हे राजन् ! इस कारण से उस अपने आश्रम में में ठहर नहीं सकता हूँ ॥४०॥ हे महान् वाहुओ धावे ! उसका निवारण करो और हमारे हितकी कामना से उसे हटाओ । आपका तेज महाविष्णु है आप तेजसे भी शोक देगे ॥४१॥ उस असुर के मृत होजाने पर आज लोक स्वस्थ होवें । हे पृथिवी के पति ! आपही उसके वध करने में सपर्य होते हैं ॥४२॥

विष्णुना च वरो दत्तो मम पूर्वं ततोऽनघ ।  
 न हि धुन्धुर्महावीर्यस्तेजसाल्पेन शक्यते ॥४३॥  
 निर्दग्धु पृथिवीपाल अपि वर्षशतरिह ।  
 वीर्यं हि सुमहत्तस्य देवैरपि दुरासहम् ॥४४॥  
 एवमुक्तस्तु राजर्षिरुत्तङ्गेन महात्मना ।  
 कुबलाश्व मुत प्रादात्तस्मिन् धुन्धुनिवारणे ॥४५॥  
 राजा सम्यस्तशस्त्रोऽहमयन्तु तनयो मम ।  
 भविष्यति द्विज श्रेष्ठ धुन्धुमारो न शशय ॥४६॥  
 स त व्यादिस्य तनय धुन्धुमारणमुद्यतम् ।  
 जयाम पञ्चतार्यैव तपसे शमितवत ॥४७॥  
 कुबलाश्वस्तु धन्मात्मा पितुवचनमास्थित ।  
 सहस्रं रेकविशत्या पुत्राणा सह पार्थिव ।  
 प्रादादुत्तङ्ग सहितो धुन्धोस्तस्य निवारणे ॥४८॥

समाविशत्ततो विष्णुर्भगवान् स्वेन तेजसा ।  
उत्तङ्कस्य नियोगात्तु लोकानां हितकाम्यया ॥४६

हे अनघ ! विष्णु ने मुझे पहिले बरदान दिया था महान् वीर्य वाला धुंधु अल्प तेज वाले किसी के भी द्वारा मारा नहीं जा सकता है ॥४३॥ हे पृथिवी पाल ! सौ वर्षों में भी वह निदग्ध नहीं किया जा सकता है । उसका पराक्रम बहुत ही अधिक है जिसको कि देवगण भी सहन नहीं कर सकते हैं ॥४४॥ महात्मा उत्तङ्क के द्वारा इस प्रकार से कहने पर उस राजपि ने उस पुत्र के हटाने के कार्य के लिये अपने पुत्र कुवलाश्व को दे दिया था ॥४५॥ मैं शस्त्र त्याग करने वाला होगया यह मेरा पुत्र राजा है । यह धुंधु के मारने वाला होगा, हे द्विज श्रेष्ठ ! इसमें कुछ भी शक्य नहीं है ॥४६॥ वह धुंधु के मारण में उद्यत उस पुत्र को आज्ञा देकर स्वयं मशित ब्रतवान्ना होते हुए तप करने के लिये पर्वत पर चला गया था ॥४७॥ धर्मात्मा कुवलाश्व पिता के वचनों में आस्थित होकर एक विशति मशल्ल पुत्रों के साथ वह राजा उत्तङ्क के साथ धुंधु के निवारण करने के कार्य में दिया था ॥४८॥ इसके पश्चात् भगवान् विष्णु ने तेज के द्वारा उत्तङ्क के नियोग से लोकों के हित की कामना से उसमें प्रवेश किया था ॥४९॥

तस्मिन् प्रयाते दुर्द्धर्षे दिवि शब्दो महानभूत् ।  
अथप्रभृत्येष नृपो धुन्धुमारो भविष्यति ॥५०  
दिव्यं पुष्पैश्च त देवा सममसत अद्भुतम् ।  
स गत्वा पुरुष व्याघ्रस्तनयं सह वीर्यवान् ॥५१  
समुद्रं खनयामास बालुकार्णवमव्ययम् ।  
नारायणेन राजपिस्तेसाप्यायितो हि स ॥५२  
बभूवातिबलो भूष उत्तङ्कस्य वशे स्थित ।  
तस्य पुत्रैः खनद्भिश्च बालुवान्तहितस्तदा ॥५३  
धुन्धुरासादितस्तत्र दिशमाधित्य पश्चिमाम् ।  
मुखजेनाग्निर्नो क्रुद्धो लोवानुद्धत्तं यस्मिन् ॥५४

वारि शुश्राव योमेन महोदधिरिवोदये ।  
 सोमस्य सोमपथं च धारोमिवलिलो महान् ॥१५॥  
 तस्य पुत्रास्तु निर्द्दग्धास्त्रिभिर्हृत्नास्त राक्षसा ।  
 तत स राजातिवलो घुन्धुवन्धुनिवर्हण ॥१६॥  
 तस्य वारिमय वेगमपिवत् स नराधिप ।  
 योगी यागेन वर्ह्ण वा समयामास वारिणा ॥१७॥  
 निरस्यत्त महावाय वलेनोदकराक्षसम् ।  
 उत्तद्भु दशयामाम वृत्तवर्म्मनि नराधिप ॥१८॥

उम दुष्य के प्रयाण करने पर दिव म एग महान् गब्द हुआ कि धाज  
 स नरर यह राजा पुत्रु मार इस नाम से प्रथित हो जायगा । यह आकाशवाणी  
 हुई थी ॥१७॥ देवगण न दिव्य पुत्रों के द्वारा अति अद्भुत उसका समयेन  
 किया था और वह पुरुष व्याघ्र वीथ वाला पुत्रों के साथ बहाँ गया था ॥१८॥  
 नारायण के क्षेत्र से आस्थापित उम राजा ने वहाँ उम वायुवाणव अथवा समुद्र  
 का मनन किया था ॥१९॥ वह अत्यन्त बलवान् राजा उत्तद्भु के वग मे  
 स्थित हुआ था । उस समय सनन करने बाद उस राजा के पुत्रों ने धानुकार्मों  
 म दिया हुआ वह पुत्रु प्राप्त कर दिया था जोकि पश्चिम गिगा म आश्रम बना  
 कर मुग म उत्तम अग्नि म मानो उत्रो का उद्भवन करता हुआ था बहुत ही  
 क्रुद्ध हो रहा था ॥२०॥ सोम के उत्प म समुद्र की भक्ति योग से जल  
 छोडा है सोम पान करने वालो म श्रेष्ठ । मन्द् धार की उमिया स वरित  
 होयगा था ॥२१॥ उनसे पुत्र निर्दग्ध हो गय म रागम तीन म कम म इगके  
 धननर पुत्रु के वधुओं का निवर्हण करने वाल धनि वनवान् नराधिप न उमके  
 जनमय वेग को ही दिया था । योगी ने याग क द्वारा अग्नि का जन्म से जन्म  
 कर लिया था ॥२२॥ २३॥ बल से उदक रागम मन्द् नाम वाय उगवा निरसत  
 पर गिया और नराधिप ने अपना वाय समाप्त कर उत्तद्भु को शिखा दिया  
 था ॥२४॥

उत्त वञ्च वरं प्रादात्तम्भे राज महात्मन ।

अदात्तम्यागय वित्त गणुभिश्चाप्यभृणान् ॥२५॥

धर्मो रतिश्च सतत स्वर्गो वास तथाक्षयम् ।  
 पुत्राणां चाक्षयाल्लोकान् स्वर्गो ये राक्षसा हताः ॥६०  
 तस्य पुत्रास्त्रय शिष्टा दृढाश्वो ज्येष्ठ उच्यते ।  
 भद्राश्व कपिलाश्वश्च कनोयासौ तु तो स्मृतौ ॥६१  
 धीन्धुमारिहं द्वाश्वस्तु ह्यश्वस्तस्य चात्मज ।  
 ह्यश्वस्य निकुम्भोऽभूत् क्षत्रधर्मरत सदा ॥६२  
 सहताश्वो निकुम्भस्य श्रुतो रणविशारद ।  
 वृशाश्वश्चाक्षयाश्वश्च सहताश्व सुतावुभौ ॥६३  
 तस्य पत्नी हैमवती सता मतिदृढवती ।  
 विख्याता त्रिपु लोकेषु पुत्रस्तस्या प्रसेनजित् ॥६४  
 युवनाश्व सुतस्तस्य त्रिपु लोकेष्वतिद्युति ।  
 अत्यन्तधार्मिको गौरी तस्य पत्नी पतिव्रता ॥६५  
 अभिशस्ता तु सा भर्त्रा नदी सा बाहुदा कृता ।  
 तत्पारतु पौरिव पुत्रश्चक्रवर्ती बभूव ह् ॥६६  
 मान्धाता यौवनाश्वो वै श्रीलोक्यविजयो नृप ।  
 अथाप्युदाहरन्तीमौ श्लोकौ पौराणिका द्विजा ॥६७  
 यावत्सूर्य उदयति यावच्च प्रतितिष्ठति ।  
 सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मान्धातु क्षेत्रमुच्यते ॥६८

उत्तङ्ग ने उस महान् आत्मा वाले राजा को वरदान दिया था और  
 उसे ब्रह्मचर्य पन तथा वसुधो के द्वारा अर्थात् होने का भी वर दिया था । ५६।  
 मुनि ने राजा को धर्म में प्रेम मदा स्वर्ग में निवास जोकि कभी क्षीण न हो,  
 पुत्रो को ब्रह्मचर्य लोक जोकि स्वर्ग में राक्षस दक्ष हुए, दिया था ॥६०॥ उसके  
 तीन पुत्र बेष रहे उनमें दृढाश्व कहा जाता है । भद्राश्व और कपिलाश्व दो  
 छोटे बड़े गये हैं ॥६१॥ दृढाश्व धीन्धुमारि था और उसका ह्यश्व हुआ था ।  
 ह्यश्व का क्षत्रधर्म में रति रखने वाला निकुम्भ पुत्र हुआ था ॥६२-६३॥  
 निकुम्भ व। रण विधाता परम परिष्ठत सहताश्व पुन हुआ था । महताश्व के  
 वृशाश्व और अक्षयाश्व ये दो पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥६३॥ सःरुद्रो की मति



दृष्टती हैयवती प्राम वाली उमकी पत्नी थी जो कि तीनों लोकों में परम विद्वान् थी, उमका पुत्र प्रमेनजित् हुमा था ॥६४॥ उसका पुत्र तीनों लोकों में प्रवृत्त श्रुतिवाला पुननारव हुमा था जोकि प्रवृत्त धार्मिक था उमकी पति-वत्ता पत्नी थी ॥६५॥ वह उसके स्वामी के द्वारा अभिशास्य हुई और वह बाहुदा बन्धी कर दी गई थी । उमका पुत्र गौरिक अक्रवर्ती हुमा था ॥६६॥ मन्गला यौवनादव श्रीनौक्य के विनाश करने वाला राजा हुमा था । यहीं पर भी पौराणिक द्विज दी श्लोको को कहा करते हैं ॥६७॥ जब तक मूर्ख उदित होता है और जब तक वह गृही प्रविष्टिन रहता है वह समस्त यौवनादव माघाता का क्षेत्र कहा जाता है ॥६८॥

अभाष्युदाहरन्तीम श्लोक वराविदो जना ।  
 यौवनादव महात्मान यज्वानममितौजसम् ।  
 मन्घाता तु तनुर्विष्णोः पुराणज्ञा प्रचक्षते ॥६९॥  
 तस्य चेश्वरथी भार्या शशविन्दो मुताऽभवत् ।  
 साध्वी विन्दुमती नाम रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥७०॥  
 पतिव्रता च ज्येष्ठा च भ्रातृणामयुतस्य सा ।  
 तस्यामत्पादयामास मन्घाता त्रीन् सुतान् प्रभु ॥७१॥  
 पुरुकुत्ममन्वरीय मुबुकुन्दश्च विश्रुतम् ।  
 अम्वरीयस्य दायोषो मुवनादवोऽपर स्मृत ॥७२॥  
 हरितो मुवनादवस्य हारिता शूरय स्मृता ।  
 एते ह्यङ्गिरस पुत्रा दायोपेता द्विजातय ॥७३॥  
 पुरुकुत्सस्य दायोदस्त्रसदम्भुमहापथा ।  
 नर्मदाया समुरदस्य सम्भूतस्त्वस्य चात्मज ॥७४॥  
 गम्भूतस्यात्मज पुत्रोऽपरस्य प्रनादवान् ।  
 गवणान हनो यन त्रिलोकीविजये पुरा ॥७५॥  
 यहीं पर वरा के देनाशन इग श्लोक को उदाहरण करते हैं । महान्

पाप्या बान्ता-उग्रा-धर्मिन चात्रयाना यौवनादव का माघाता तो विष्णु का तनु का पुगाती के माता ऐश्वरी करी है ॥६८॥ उसकी पतिवत्ता भी

सोऽभवद्गालवो नाम गले बद्धो महातपा ।

महर्षिः कौशिकस्तातस्तेन वीर्येण मोक्षित ॥६०॥

भगवान् वमिष्ठ ऋषि ने इसको आश्रम नहीं दिया और भीमान् वह सत्यव्रत पिता के द्वारा मुक्त किया गया । वीर स्वपाकी के घर के समीप में रहने लगा और इसका पिता वन में चला गया था ॥८४॥ उसके उस देश में इंद्र ने वर्षा नहीं की और उस समय उस अश्रम से बारह वर्ष पूरे वर्षा नहीं हुई ॥८५॥ महात्पस्वी विश्वामित्र ने उसके देश में झिगों को छोड़ कर सागरानूप में बड़ा भारी तप किया था ॥८६॥ उसकी पत्नी ने मध्यम और सपुत्र को गले में बाँधकर शिखा से मरणार्थ क लिये सी गौरों बेचदिया था । नरी में श्रेष्ठ सुव्रत ने उसको गले में बाँधा हुआ और विक्रीत देल कर उस महर्षि पुत्र को घर्मात्ना ने मुक्त करा दिया था ॥८७-८८॥ महात् बुद्धि वाले सत्य व्रतने उसका भरण किया था और यह विश्वामित्र के सन्तोष तथा अनुकम्पा के लिये ही किया था ॥८९॥ वह महा तपस्वी गले में बद्ध गालव नाम वाला हुआ था । महर्षि कौशिक उसके तात थे क्योंकि उसने पराक्रम ने मुक्त कराया था ॥९०॥

तस्य व्रतेन भक्त्या च कृपया च प्रतिज्ञया ।

विश्वामित्रकलत्रञ्च वभार विनये स्थित ॥९१॥

हृत्वा मृगान् वराहाञ्च महिषाञ्च वनेचरान् ।

विश्वामित्राश्रमाभ्यांशे तन्मासमपचत्ततः ॥९२॥

उपाशुव्रतमास्थाय दीक्षा द्वादशवापिकीम् ।

पितुर्नियोगादभजन्प्रे तु वनमास्थिते ॥९३॥

अयोध्याञ्चैव राज्यञ्च तथैवान्त पुर मुनि ।

याज्योपाध्यायसयोगाद्वरिष्ठ परिरक्षित ॥९४॥

सयत्र तस्नु, बाल्यात्तु भावितोऽर्षस्य वै बलात् ।

वसिष्ठेऽभ्यधिक मन्यु धारयामास मन्युना ॥९५॥

पित्रा रदस्तदा राष्ट्रात् परित्यक्त स्वमात्मजम् ।

न वारयामास मुनिर्वसिष्ठ कारणेन वै ॥९६॥

उमके वत से-भक्ति से-तृपा से घोर प्रतिज्ञा से विनय से स्थित होकर  
 विश्वामित्र की स्त्री का भरण किया था ॥६१॥ मृगो को बराहो को घोर वनमें  
 विचारण करने वाले महियों को मार कर विश्वामित्र के श्याम्य के समीप में  
 उनके मांस को पकाया था ॥६२॥ उषानु वन में घातित होकर वारह वर्ष की  
 दीक्षा को राजा के वनमें चले जाने पर पिता की आज्ञा से मेघन किया था ॥६३॥  
 षयोष्या को-गन्ध से तथा बन्त-पुर को वाज्जोपाध्याय से योग से मुनि बमिष्ठ  
 ने परिचरित किया था ॥६४॥ सत्यव्रत ने बाल्याबाल ने भावि धर्म के बल से  
 बमिष्ठ पर अत्यधिक क्रोध धारण किया था ॥६५॥ पिता के द्वारा रोने हुए उम  
 समय राष्ट्र में परिवर्तक धपने धारमज को मुनि बमिष्ठ ने कारण बस धारण नहीं  
 किया था ॥६६॥

पाणिग्रहणमन्त्राणा निष्ठा स्यात् सप्तमे पदे ।

एव सत्यव्रतस्तान् ये कृतवान् सप्तमे पदे ॥६७

जानन् धर्मान् यगिष्ठस्तु न च मन्त्रानिहेच्छति ।

इति सत्यव्रते रोप बसिष्ठो मनसाकरोत् ॥६८

पुरबुद्ध्या तु भगवान् बमिष्ठः कृतवास्तदा ।

न तु सत्यव्रतो बुद्ध्या उपागुव्रतमस्य वै ॥६९

तस्मिन्प्रोपरते यो यत्पितुरासीन्महात्मना ।

तेन द्वादशवर्षाणि गायन्तु पावशासनं ॥१००

नेन सिवदानी बृष्या दीक्षा ता बुधला भुवि ।

कुन्म्य निष्कृति स्पस्य कृतेयश्च भवेदिति ॥१०१

ततो बसिष्ठो भगवान् पित्रा शपत् न्यवारयत् ।

प्रभिर्यथास्यह राशे पत्रादेनमिति प्रभुः ॥१०२

न तु द्वादशवर्षाणि दीक्षान्तामुद्धरन् बली ।

प्रविचमान मागे तु बमिष्ठस्य महारसनः ॥१०३

गर्भं वामदुयां येन गन्धं नृपामजः ।

तां वै ब्रूयाच्च माहाच्च भमाद्यं च सुधान्वितः ॥१०४

कालिन्धर के मांशों की निष्ठा प्राप्त कर में होती है । एही प्रकार है

सत्यव्रत ने सप्तम पद में उनको किया था ॥६७॥ वसिष्ठ मुनि धर्मों को जानते हुए वहाँ पर मन्त्रों को नहीं चाहते हैं । इसलिये वसिष्ठ ने सत्यव्रत पर मन से रोप किया था ॥६८॥ भगवान् वसिष्ठ ने उस समय बुद्धि से गुरू किया था । सत्यव्रत ने इसकी बुद्धि से उपाशुव्रत नहीं किया था ॥६९॥ उसके उपरत होने पर जो जिसके पिता का महामना था उगसे इन्द्रदेव बारह वर्ष तक नहीं बरने थे ॥१००॥ इससे इस समय प्रायः उस दुर्वल दीक्षा को भूमि पर कुत्तकी और अपनी निष्कृति यह की हुई होनी चाहिए ॥१०१॥ इसके पश्चात् भगवान् वसिष्ठ ने पिता के द्वारा त्यक्त को निवारण किया था और प्रभु ने पीछे में इसको राज्यासन पर अभिषिक्त करूँगा—कहा—॥१०२॥ बली उसने द्वादश वर्ष तक दीक्षान्ता को उद्धहन करते हुए महात्मा वसिष्ठ के मास के अविद्यमान होने पर नृपात्मज ने ममन्त कामनाओं के दोहन करने वाली धेनु को देखा था और उसको देखकर क्रोधसे—मोहने और श्रमसे श्रुधा से युक्त हुआ ॥१०४॥

दस्युधर्म्मं गतो दृष्ट्वा जघान बलिना वरः ।

स तु माम स्वय चैव विश्वामित्रस्य चात्मजान् १०५

भोजयामास तच्छ्रुत्वा वसिष्ठस्त तदात्यजत् ।

प्रोवाच चैव भगवान् वसिष्ठस्त नृपात्मजम् ॥१०६

पातये क्रूर हे क्रूर तव शकुमयोमयम् ।

यदि ते श्रीणि शकूनि न स्युर्हि पुरुषाघम ॥१०७

पितुश्चापरितोपेण गुरोर्दोग्ध्रीवधेन च ।

अप्रोपितोपयोगाच्च त्रिविधस्ते व्यतिक्रम ॥१०८

एव स श्रीणि शकूनि दृष्ट्वा तस्य महातपा ।

त्रिशकुरिति होवाच त्रिशकुस्तेन स स्मृत ॥१०९

विश्वामित्रस्तु दाराणामागतो भरणे वृते ।

ततस्तस्मै वर प्रादात्तदा प्रीतस्त्रिदाद्भुवे ॥११०

यत्रियो में श्रेष्ठ ने देवपर दस्यु के धर्म को प्राप्त हुए धेनु हनन किया और उसने स्वय मांस को विश्वामित्र के आत्मजों को खिनाया था । यह श्वरण करने वसिष्ठ ने उगे उमी समय त्याग दिया था और भगवान् उग नृप के

वैवस्वत म\_वश वरण ]

आत्मज में बोले ॥१०५-१०६॥ हे क्रूर ! हे पुष्पो मे प्रथम ! यदि तुझे तीन शकु नहीं हो तो तुझे शकुमय भ्रम में पानन करता हू ॥१०७॥ पिता के अपरितोप होने में—गुरु की दोगध्री धेनु के वध करने से और अप्रोपित के उपयोग से तेरा तीन प्रकार का व्यतिक्रम है ॥१०८॥ इस प्रकार से उसके तीन शकुओं को देखकर महातपस्वी उसे त्रिशकु इन नाम से बोले और इससे वह त्रिशकु कहा गया है ॥१०९॥ ध्राये हुए विश्वामित्र ने दाराओं के भरण करने पर तब त्रिशकु से प्रसन्न होते हुए उसे वरदान दिया था ॥११०॥

छन्दमानो वरेणाय गुरु ब्रवे नृपात्मज ।

अनावृष्टिभये तस्मिन् गते द्वादशवापिके ॥१११

अभिपिच्य राज्ये पित्र्ये याजयामास त मुनि ।

निपता देवतानाञ्च वसिष्ठस्य च कौशिक ।

सशरीर तदा त वै दिवमारोपयत् प्रभु ॥११२

मिपतस्तु वसिष्ठस्य तदद्भुतमिवाभवत् ।

अत्राप्युदाहरन्तीमौ श्लोको पौराणिका जना ॥११३

विश्वामित्रप्रमादेन त्रिशकुर्दिवि राजते ।

देवै साद्धं महातेजानुग्रहात्तस्य धीमत ॥११४

एनर्यात्यवला रम्या हेमन्ते चन्द्रमण्डिता ।

अलकृता त्रिभिर्भावेस्त्रिशकुप्रहभूषिता ॥११५

तस्य सत्यरता नाम भार्या केकयवराजा ।

कुमार जनयामास हरिश्चन्द्रमवलम्पम् ॥११६

बारह वर्ष के अनावृष्टि के भय के बले जाने पर वर में छन्दमान होते हुए नृपात्मज गुरु से बोला ॥१११॥ पिता के राज्य पर अभिषेक करते कौशिक

मुनि में मिय होने वाले देवताओं के और वसिष्ठ के लिय यजन कराया था ।

तब प्रभु विश्वामित्र ने उस त्रिशकु को शरीर के महित स्वयं में आरोपित

कराया था ॥११२॥ मिय होते हुए वसिष्ठ को वह एक अद्भुत वायु जैसा हुआ

था । यहाँ पर भी पौराणिक पुरुष इन दो श्लोकों को उदाहृत किया करते हैं

॥११३॥ विश्वामित्र मुनि के प्रमाद से त्रिशकु स्वयं में शोभा देता है । पद्म

धीमान् उमके धनुषह से जोकि महान् तेज से युक्त है वह विशकु देवो के साथ स्वर्ग मे विराजमान होता है ॥११४॥ विशकु ग्रह से भूयित तीन भावो से अत-  
 कृत चन्द्र से मण्डित रम्य धवला हेमन्त मे धनं धनं जाती है ॥११५॥ उसकी  
 सत्य मे रत रहने वाली अर्थात् सत्यरता इस नाम वाली भार्या जोकि बेकय के  
 वश म जन्मी थी उमने कल्पमे से रहित हरिश्चन्द्र कुमार को जन्म दिया  
 था ॥११६॥

स तु राजा हरिश्चन्द्रश्रीशङ्ख इति श्रुत ।

आहर्ता राजसूयस्य सत्राडिति परिश्रुत ॥११७

हरिचन्द्रस्य तु सुतो रोहितो नाम वीर्यवान् ।

हरितो रोहितस्याय चचुहारीत उच्यते ॥११८

विजयश्च सुदेवश्च चबुपुत्रो बभूवतु ।

जेता सर्वस्य क्षत्रस्य विजयस्तेन स स्मृत ॥११९

रुक्मस्तनयस्तत्र राजा धर्माधिकोविद ।

रुक्माद्घृतनः पुत्रस्तस्मा द्वाहुश्च जज्ञिवान् ॥१२०

हेहयस्तालजङ्घैश्च निरस्तो व्यसनो नृपः ।

शक्यंवनकाम्बोजे पारशु पल्लवैरतथा ॥१२१

नात्यर्थं घाम्मिकोऽभूत् स धर्म्ये सत्ययुगे तथा ।

सगरस्तु गुता बाहाजंज्ञ सह गरेण वै ।

भृगोराश्रममामाय सुर्वेण परिरक्षित ॥१२२

आग्नेय मस्य लब्ध्वा तु मार्गवात् सगरो नृपः ।

जघान पृथिवीङ्गत्वा तालजघान् सहैहयान् ॥१२३

वह राजा हरिश्चन्द्र शीशङ्ख हम नाम मे प्रसिद्ध हुआ था । वह राजसूय  
 का आह्वरण करने वाला तथा सत्राद परिश्रुत हुआ था ॥११७॥ सत्राद् हरि-  
 चन्द्र का पुत्र वीर्यवान् रोहित नाम धान्वा था । रोहित का हरित अर्थात् चचुहारीत  
 कहा जाता है ॥११८॥ चचु हारीत ने विजय और सुदेव दो पुत्र हुए थे ।  
 समस्त क्षत्रियों को वह जीतने वाला था इसलिए वह विजय कहा गया है ॥११९॥  
 वही रुक्म पुत्र हुआ जोकि धर्म और धर्म का परिष्कृत राजा था । रुक्म ने

हनुक पुत्र हुआ और उससे बाहु उत्पन्न हुआ ॥१२०॥ वह व्यसनी राजा हैहय—  
 शालजङ्ग—शक—यवन—शाम्बोज—गारद और पल्लवों के द्वारा निरस्त किया गया  
 था ॥१२१॥ वह अत्यन्त धार्मिक उस धर्म युक्त सत्य युग में नहीं हुआ था ।  
 बाहु का पुत्र सगर करके माय उत्पन्न हुआ था । शृगु के आश्रम में पहुँच कर  
 तनू के द्वारा परिरक्षित हुआ था ॥१२२॥ उस सगर नृप ने भार्गव से धानिप  
 षष्ठ्य को प्राप्त कर पृथ्वी पर जाकर उसने शालजङ्गों को हैहयों का हनन किया  
 था ॥१२३॥

शकाना पल्लवानाश्च धर्म्मन्त्रिरसदच्युत ।

शत्रियाणा तथा सेपा पारदानाश्च धर्म्मवित् ॥१२४

कथ स सगरो राजा गरेण सह जज्ञिवान् ।

विमर्शश्च शकादीना शनियाणा महौजसाम् ।

धर्म्मान् नुलोचिनान् क्रुद्धो राजा निरसदच्युत ॥१२५

वाहोर्व्यसनिनस्तस्य हृत राज्य पुरा किन ।

हैह्यैस्तालजपेश्र शकै साद्धं समागतं ॥१२६

यवना पारदाश्चैव काम्बोजा पल्लवास्तथा ।

हैह्यार्थं पराक्रान्ता एते पश्चवणास्तदा ॥१२७

हृत राज्य वलीयोभिरेभिः शत्रियपुङ्गवै ।

हृतराज्यस्तदा बाहु सन्यस्य नु तदा नृप ।

वन प्रविश्य धर्म्मन्त्रिणा सह पत्न्या तपोञ्जरन् ॥१२८

वस्यचित्तवथ कालस्य तोयार्थं प्रस्थितां नृप ।

वृद्धतराद् दुर्वलत्वाच्च अन्तरा म ममार च ॥१२९

पत्नी तु यादधी तस्य सगर्भा पृष्टनोज्वगान् ।

सपत्न्या तु गरस्तस्य दत्तो गर्भजिघासया ॥१३०

धर्म्युत ने शत्रु को तथा पहनवा को धर्म में निरस्त कर दिया था ।

धर्म के ज्ञान न हमी प्रकार उन शत्रिय पारदों को भी कर दिया था ॥१२४॥

श्रियों ने बहू—वह सगर राजा गर के माय त्रिग तरह उत्पन्न हुआ था ?

और शत्रिय शकादि शत्रिय जो महाद् भोज बाने थे, धर्म्युत राजा ने वृद्ध

होकर कुन्तीचितो को घनों को निरस्त किया था ॥१२५॥ श्री सूतजी ने कहा—  
 पहिले समय मे व्यमन वाले वस वाहु राजा का सम्पूर्ण राज्य हरण कर लिया  
 था और उनके हरण वाले शब्दों के साथ आने हुए हैहय और तावजह्व थे ।  
 ॥१२६॥ यवन—वारह—काम्बोज और पल्लव ये पाँच गण उसम श्रेष्ठ अधिक  
 चल वालों के द्वारा उनके राज्य का हरण किया गया था । जब उम समय वह  
 राज्य हीन होगया तो वह वाहु राजा सन्यास ग्रहण करके वन मे प्रविष्ट होगया  
 और धर्मात्मा उधने अपनी पत्नी के साथ तपश्चर्या की थी ॥१२७॥ किमी बाल  
 के बल के लिये राजा ने प्रस्थान किया था किन्तु वह वृद्ध होने के तथा दुर्बल  
 होने के कारण से बीच मे मर गया था ॥१२६॥ उसकी पत्नी यादवी गर्भ मे  
 युक्त थी वह भी उसके पीछे से गई थी । उसकी सपत्नी ने गर्भ के मारने की  
 इच्छा मे उसे गर दे दिया था ॥१२७॥

सा तु भर्तुश्चिता कृत्वा बह्वी त समरोहयत् ।

श्रीवंस्ता भार्गवो दृष्ट्वा कारुण्द्राद्विन्यवत्तं यत् ॥१२१

तस्याश्रमे तु तद्गर्भं भा गरेण तदा सह ।

व्यजायत महाबाहु सगर नाम धार्मिकम् ॥१२२

श्रीवंस्तु जातकर्मादीन् कृत्वा तरय महात्मन ।

अध्याप्य वेदशास्त्राणि ततोऽत्र प्रत्यपादयत् ॥१२३

जामदग्न्यात्तदाग्नेयमसुरंरपि दुमहम् ।

स तेनास्त्रवलेनैव बलेन च समन्वित ।

जघान हैहयान् क्रुद्धो रुद्र पशुगलानिव ॥१२४

ततः शकाद् सयवतान् काम्बोजान् पारदास्तया ।

पल्लवाश्चैव नि शेपान् कर्तुं व्यवसितो नृप ॥१२५

ते बध्यमाना वीरेण सगरेण महात्मना ।

वसिष्ठ शरणं मूर्खे प्रपन्ना शरणं पितृण ॥१२६

वमिष्ठस्तान् तथेत्पुत्रत्वा समयेन महामुनि ।

सगरं वारयामास तेषान्दत्त्वाऽभयन्तदा ॥१२७

उम यादवी ने अपने स्वाधी की चिता बनाकर अग्नि मे उमके साथ



समाह्वय होगयी थी । जीवें भर्गव ने उसे देखकर कृष्णा से उसे निवारण किया था ॥१३१॥ उनके आश्रम में उस समय उमने उम यमं को गर (विप) के साथ महान् बाहुषो वाले परम धार्मिक सगर नाम वाले को जन्म दिया था ॥१३२॥ श्रीवें ने उम महात्मा ने जात कर्मादि मस्कारो को करके फिर वेद शास्त्रो का पढाया और इसके अनन्तर ऋश्रो की विद्या मिलाकर ऋश्र दिये ॥१३३॥ जामदग्न्य से वह आग्नेय ऋश्र प्राप्त किया जाकि ऋशुरो को भी दुमह था । उमने उस ऋश्र के यज्ञ से ही तथा वत से समन्वित होते हुए ऋत्यन्त क्रुद्ध होकर जैने रत्न पशुगणो को हतन करते हैं उमी भानि उसने हेह्यो का वध कर दिया ॥१३४॥ इसके अनन्तर गरो को-यवनो को-काम्बोजो को-पारदो को तथा पल्लवो को सबको नि शेष करने का राजा ने स्थिर कर लिया था ॥१३५॥ और और महान् आत्मा वाले सगर के द्वारा वध्यमान वे सब क्षरण की इच्छा वाले होत हुए वसिष्ठ मुनि की शरणागति में उपरिधत होगये थे ॥१३६॥ वसिष्ठ मुनि ने उनको 'तुम्हारी रक्षा होगी' तथास्तु यह कहकर महामुनि ने प्रतिज्ञा की और उन सबको अभय दा देकर सगर को वध करने से वारण कर दिया था ॥१३७॥

सगर स्वाम्प्रतिज्ञाश्च गुरोर्वाक्य निशम्य च ।

धर्मं जघान तेषा वै वेपान्यत्य चवार ह ॥१३८॥

अद्धं शकाना शिगसो मुण्डायत्वा व्यसजंयत् ।

यवनाना शिर सर्वं काम्बोजानान्तथैव ॥१३९॥

पादा मुक्तनेशाश्च पल्लया श्मश्रुधारिण ।

नि स्वाध्याय त्रपट्वारा वृतास्तेन महात्मना ॥१४०॥

शका यवनराम्बोजा पल्लया पारदै सह ।

केलिस्पर्दा माहिपिवा दावाश्चना खसास्तथा ॥१४१॥

सर्वे ते क्षत्रियगणा धर्मस्तेषा निरावृत्त ।

वसिष्ठवचनात्पूर्वं सगरेण महात्मना ॥१४२॥

स धर्मविजयी राजा त्रिजित्यमा यमुन्धराम् ।

अस्य विचारयामास वाजिमेघाय दीशित ॥१४३॥

तस्य चारयत सोऽय्य समुद्रे पूर्वदक्षिणे ।  
वेलासमीपेऽपरहतौ भूमिर्ध्वं व प्रवेशित ॥१४४

सगर ने अपनी प्रतिज्ञा को और गुरु के वाक्य को श्रवण कर उनके धर्म का हनन किया और वेपान्यत्व किया था ॥१३८॥ एक जाति वालो का भ्राधा शिर मुँडवा कर उन्हें छोड़ दिया—यवन जाति वालो का समस्त शिर मुँडवा दिया और नाम्योजों को भी ऐसा ही किया था ॥१३९॥ पारदो को मुक्त केश और पल्लवो को श्मश्रुधारी-स्वाध्याय से हीन तथा वपट्कार से रहित उस महात्मा ने कर दिया था ॥१४०॥ शक-यवन-काम्बोज-पल्लव-पारद-बेलिस्पर्श-माहिषिन-दार्व-धोल और लम ये समस्त क्षत्रियो के जो गण थे इन सबका वसिष्ठ मुनि के वचन से महात्मा सगर ने धर्म निराकृत कर दिया था ॥१४१॥ ॥१४२॥ उस धर्म से विजय प्राप्त करने वाले राजा सगरने इस भगवत भूमण्डल को जीत कर वाजिमेघ यज्ञ के करने के लिये वीक्षित होते हुए उसने पत्न के भस्व को विचरण कराया था ॥१४३॥ उसका घुमाया जाने वाला वह भस्वमेघ यज्ञ का घोडा पूर्व दक्षिण समुद्र पर वेला के समीप में अपहरण किया गया था और उसे अपहृत करके भूमि के अन्दर प्रवेशित कर दिया गया था ॥१४४॥

स तन्देश सुते, सर्वे खनयामास पार्थिवः ।  
आसेदुश्च ततस्तस्मिस्तदन्तस्ते महारणवे ॥१४५  
तमादिपुरप देव हरि कृष्ण प्रजापतिम् ।  
विष्णु कपिलरूपेण हस नारायण प्रभुम् ॥१४६  
तस्य चक्षु समासाद्य तेजस्तत् प्रतिपद्यते ।  
दग्धा पुनास्तदा सर्वे चत्वारस्त्ववशेषिता ॥१४७  
बर्हिकेतुः सकेतुश्च तथा धर्मरतस्नय ।  
दूर पञ्चवनश्च तस्य वशकरा प्रभो ॥१४८  
प्रादाच्च तस्य भगवान् हरिर्नारायणो वरान् ।  
अक्षयत्व स्ववशस्य वाजिमेघशत तथा ।  
विभु पुन समुद्रश्च स्वर्गो वस तथाक्षयम् ॥१४९

स समुद्रोऽश्वमादायव वन्दे (?) सङ्गितापति ।  
सागरत्य च लेभे स कर्मणा तेन तस्य वै ॥१५०॥  
त चाश्वमेधिक सोऽदव समुद्रात् प्राप्य पाषिय ।  
आजहाराश्वमेधाना दत्त चैव पुन पुन ॥१५१॥

सत्साद् सगर ने उगी स्थान की पृथो के द्वारा जो कि सभ्या मे साठ हजार थे मुदवाया था । इनके अनन्तर उग स्थान मे उसके नीचे महाएवंव मे उन्होने देगा कि वहाँ आदि पुष्प हरि-वृष्ण-प्रजापति-विष्णु-हम-प्रभु नारायण बनिन मुनि के स्वरूप मे स्थित है ॥१५४-१५६॥ उनके नेत्र थे सामने प्राप्त होते ही उगका तेज ऐमा हींद्र था कि उगी समय के सब जलवर दग्ध एवं भस्मी भूत होगये थे केवल चारही अवशिष्ट बचे थे ॥१५७॥ जो चार बचगये थे वे बह्वेत्तु-मनेत्तु-धर्मरत ये तीन थे और चार पशुवन या जो कि उसके वश के करने वाले थे ॥१५८॥ भगवान् हरि नारायण ने उसको वरदान दिया था कि अपने वश का अश्वत्य-सौ-आजमेघ-विभु पुत्र और समुद्र तथा स्वर्ग मे अशील निवास हो ॥१५९॥ वह नदियो का पति समुद्र अरुण की तेज र भाया और अग्नि की । उग कर्म तो उसने सागरभ्य की प्राप्ति की थी ॥१५०॥ उस राजा ने समुद्र मे उग आश्वमेधिक अश्व की प्राप्ति कर फिर बार-बार तो अश्व-मय यज्ञ दिये थे ॥१५१॥

पष्टिपुत्रगह्वर्याणि दग्धान्यस्वानुसारिणाम् ।  
तेषा नारायण तेज प्रविष्टाना महात्मनाम् ।  
पुत्राग्नान्तु महस्याणि पष्टिस्तु इति न श्रुतम् ॥१५२॥  
मगरम्यात्मजा राज्ञ कथ जाता महाजला ।  
विमान्ता पष्टिमाह्वरा विधिना चैत्र वा वद ॥१५३॥  
द्वे पत्न्यौ मगरम्यास्तां तपना दग्धकिन्त्रिये ।  
ज्येष्ठा विदर्भदुहिता वैशिनो नाम नामत ॥१५४॥  
तनीपती तु या तस्य पत्नी परमशक्तिगो ।  
अरिष्टनेमिदुहिता रूपेणाप्रतिगा भुवि ॥१५५॥

श्रौर्वस्ताम्या वरं प्रादात् तपसाराधितः प्रभुः ।  
 एका जनिष्यते पुत्र वशकर्त्तरिमीप्सितम् ।  
 पष्टिपुत्र सहस्राणि द्वितीया जनयिष्यति ॥१५६॥  
 मुनेस्तु वचन श्रुत्वा केशिनी पुत्रमेककम् ।  
 वशस्य कारणा श्रेष्ठा जग्राह नृपससदि ॥१५७॥  
 पष्टिपुत्रसहस्राणि सुपर्णभगिनी तथा ।  
 महात्मनस्तु जग्राह सुमति स्वमतियथा ॥१५८॥

उस घटवभेध यज्ञ के अश्व के पीछे अनुमरण करने वाले उस राजा के  
 साथ सहस्र पुत्र दान होगये और उन महात्माओं में नारायण के तेज ने प्रवेश  
 किया था । वे पुत्र साठ हजार थे ऐसा हमने सुना है ॥१५२॥ ऋषियों ने कहा—  
 राजा सगर के महान् बलवाले परम विक्रान्त साठ सहस्र किस विधि से उत्पन्न  
 हुए थे कृपा करके यह हमें बतलाइये ॥१५३॥ श्री सूत्रजी ने कहा—राजा सगर  
 की तपस्या से पापों को दग्ध करने वाली दो पत्नियाँ थीं । उनमें जो ज्येष्ठ थी  
 वह विदर्भ की पुत्री नाम से केशिनी थी ॥१५४॥ छोटी जो उस राजा सगर  
 की पत्नी थी वह बहुत ही अधिक धर्म वाली थी और अष्टि नेमि की पुत्री थी  
 जो कि इस भूमि में अत्यन्त अप्रतिम रूप-मोन्दर्य से युक्त थी ॥१५५॥ तप से  
 प्राराधना किये हुए प्रभु श्रौर्व ने उन दोनों को वरदान दिया था कि उनमें से  
 एक तो वंश के चलाने वाला अष्टि पुत्र जनेगी और दूसरी साठ हजार पुत्रों को  
 जनन देगी ॥१५६॥ केशिनी ने मुनि के वचन को सुनकर जो कि एक पुत्र वन  
 चलाने वाला बनाया था उसी वरदान को नृप महद ने उगने स्वीकार कर लिया  
 था ॥१५७॥ सुपर्ण की भगिनी ने जैसी अच्छी अपनी मति थी उगने अनुगार  
 महात्मा के साठ सहस्र पुत्रों वाले वरदान को ग्रहण किया था ॥१५८॥

अथ काले गते ज्येष्ठा ज्येष्ठ पुत्र ध्यजायत ।  
 असमञ्ज इति श्रात वाकुत्स्थ सगरात्मजम् ॥१५९॥  
 सुमतिस्त्रपि जज्ञे वै गर्भन्तुम्य यदास्मिनी ।  
 पष्टिपुत्रे महन्त्याणि तुम्भमघ्याद्विनि मृता ॥१६०॥

घृतपूर्णेषु कुम्भेषु तान् गर्भान् न्यदधत्तन ।  
 घात्रीश्र्वं केशा प्रादात् तावती पोषणं नृप ॥१६१  
 सतां नवसु मासेषु समुत्तस्थुयंथामुत्तम् ।  
 कुमारास्ते भद्राभागा सगरप्रीतिवर्द्धना ॥१६२  
 कालेन महता चंब गीवनं प्रतिपेदिरे ।  
 पृथपष्टिमहत्तामि तेयामश्वानुमारिण्याम् ॥१६३  
 स तु ज्येष्ठो नरव्याघ्र सगरस्यात्मसम्भवः ।  
 असमञ्ज इति स्थातो बहिकेतुमंहाधलः ॥१६४  
 पौराण्यमहिते मृक्त विना निर्वाणित पुरा ।  
 तस्य पुत्रोऽनुमानाम असमञ्जस्य वीर्यवान् ॥१६५

इनके अनन्तर समय आने पर जो बड़ी गनी थी उसने ज्येष्ठ पुत्र को  
 उत्तर कि या प्रौर वह सगर का पुत्र काकुत्स्थ असमञ्जस इम नाम से प्रसिद्ध  
 हुआ था ॥१५६॥ यमस्विनी मुनि ने भी गभ का एक तूमा पंदा किया जिस  
 तुम्ब ने माठ हजार पुत्र निकल पड़े थे ॥१६०॥ घृत में भरे हुए कलशों में उन  
 गर्भों को रख दिया गया था । राजा न एक एक धाप उन सब के पोषण करने  
 के लिये दही थी ॥१६१॥ इगक बाद भीमान के समाप्त होने पर मगर की प्रीति  
 के बढान जाने महाभाग ने युक्त सुय पूजक के सम्यक् कुमार उठ गडे हुए थे  
 ॥१६२॥ महान् बान ब वृतीत राजाने पर वे मर योवतावस्था की प्राप्त हुए  
 थे । उन असमय के अश्व का अनुमाणु करने बान य ही साठ मह्य सगर के  
 पुत्र थे ॥१६३॥ जो सब में बडा मगर रा नर व्याघ्र पुत्र था वह 'असमञ्जस'-  
 इम नाम से स्थान हुआ था । बहिकेतु महान् बलवान् था ॥१६४॥ वह क्योंकि  
 नगर निवासी जना का अहित किया करता था । इनलिय विना ने उसको  
 निजान दिया अर्वात् दग निराता ददिया था । उस असमञ्जस का महा पारा-  
 यमी अनुमान् नाम वाला पुत्र हुआ था ॥१६५॥

सत्यं पुत्रम्बु धमनिना दिवीय इति विश्रुत ।

दितीपात्तु महानेजा वीगे जाता भगीरथ ॥१६६

येन गङ्गा सरिच्छ्रेष्ठा विमानं ह्यशोभिता ।  
 ईजाग्नेन समुद्राद्द्वे दुहितृत्वेन कल्पिता ।  
 अनाप्युदाहरन्तीम दलोक पीराणिका जना ॥१६७  
 भगीरथस्तु ता गङ्गामानयामास कर्मभिः ।  
 तस्माद्भागीरथी गङ्गा कथ्यते वशवित्तमै ॥१६८  
 भगीरथसुतश्चापि श्रुतो नाम वभूव ह ।  
 नाभागस्तस्य दायदो नित्य धमपरायण ॥१६९  
 अम्बरीष सुतरतस्य सिन्धुद्वीपरततोऽभवत् ।  
 एव वशपुराणज्ञा गायन्तीति परिश्रुतम् ॥१७०  
 नाभागेरम्बरीपस्य भुजाभ्या परिपालिता ।  
 वभूव वमुधात्यर्थ तापत्रयविवर्जिता ॥१७१  
 अयुतायु सुतस्तस्य सिन्धुद्वीपस्य वीर्यवान् ।  
 अयुतायास्तु दायदः श्रुतुपर्णो महायशा ॥१७२

उस अशुमान् का का पुत्र राजा दिलीप हुआ जोकि अत्यन्त प्रसिद्ध और  
 परम धर्मात्मा हुआ था । दिलीप से महान् तेज के धारण करने वाला राजा  
 भगीरथ उत्पन्न हुआ ॥१६६॥ जिसने समस्त नदियों में परमश्रेष्ठ गङ्गा को जो  
 कि विमानों से उपशोभित इसने समुद्र से दुहिता के स्वरूप में कल्पित की थी ।  
 यहाँ पर भी पीराणिक लोग इस श्लोक को उदाहृत किया करते हैं ॥१६७॥  
 भगीरथ कर्मों के द्वारा उस गङ्गा को यहाँ लाया था । इसीलिये उसके वश के  
 ज्ञाताओं के द्वारा गङ्गा भगीरथी इस नाम से कही जाती है ॥१६८॥ भगीरथ  
 का पुत्र श्रुत नाम वाला हुआ था और उसका दायद नित्य ही धर्म में परायण  
 नाभाग—इस नाम वाला हुआ था ॥१६९॥ उसका पुत्र राजा अम्बरीष हुआ  
 उसका पुत्र सिन्धुद्वीप हुआ था । इस तरह वश के पुत्र्य को जानने वाले गान  
 करते हैं—यह सुना है नाभाग के पुत्र अम्बरीष हुआ जिसकी भुजाओं से यह  
 वमुधा तीनों तापों में रहित होती हुई परिपालित हुई थी ॥१७१॥ उस सिन्धु  
 द्वीप का पुत्र अयुतायु बड़ा वीर्यवान् हुआ था और अयुतायु का दायद महान्  
 यश वाला श्रुतुपर्ण हुआ था ॥१७२॥

जन्म ग्रहण किया था ॥१७६॥ ऐडिडड प्रतापवान् श्रीमान् वृत्तक्षर्मा था । उम  
पुत्रीरु का पुत्र विश्व महान् उत्पन्न हुआ ॥१८०॥

दिलीपस्तस्य पुत्रोऽभूत् खट्वाङ्ग इति विश्रुतः ।

येन स्वर्गादिहागम्य मुहूर्त्तं प्राप्य जीवितम् ।

त्रयोऽभिसहिता लोका बुद्ध्या सत्येन चैव हि ॥१८१॥

दीर्घं वाहु सुतस्तस्य रघुस्तस्मादजायत ।

अज पुत्रो रघोश्चापि तस्माञ्ज्ज्ञो स वीर्यवान् ।

राजा दशरथो नाम इक्ष्वाकुकुलनन्दन ॥१८२॥

रामो दाशरथिर्वीरो धर्मज्ञो लोकविश्रुतः ।

भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महाबल ॥१८३॥

माधव लवण हत्वा गत्वा मधुवनञ्च तत् ।

शत्रुघ्नेन पुरी तस्य मथुरा मन्निवेगिता ॥१८४॥

तुवाहुः सूरसेनश्च शत्रुघ्नसहिताबुभौ ।

पालयामासनु सूनू वंदेह्यौ मथुरा पुरीम् ॥१८५॥

अङ्गदक्षिन्द्रेतुश्च लक्ष्मणस्यात्मजाबुभौ ।

हिमवत्पर्वताभ्यामे स्पीतो जनपदौ तयो ॥१८६॥

अङ्गदस्याङ्गदीया तु देशे कारपथे पुरी ।

चन्द्रकेतोस्तु मल्लस्य चन्द्रवक्ता पुरी शुभा ॥१८७॥

उमका पुत्र दिलीप हुआ जो खट्वाङ्ग दम नाम से प्रतिद्ध था जिम्ने  
स्वर्ग से यहाँ भूमण्डल में आकर मुहूर्त्तभर जीवन पाकर बुद्धि से और सत्य से  
तीनों लोकों को अभिसहित कर दिया था ॥१८१॥ उस खट्वाङ्ग का पुत्र दीर्घ  
वाहु हुआ और फिर उस दीर्घवाहु रघु ने जन्म ग्रहण किया था । राजा रघु  
का पुत्र महान् पराक्रमी अज हुआ और उस अज से इक्ष्वाकु कुल का नन्दन  
दशरथ राजा हुआ ॥१८२॥ दशरथ के पुत्र दाशरथि राम बड़े वीर-धर्मज्ञ और  
लोकविश्रुत हुए और महान् बलवान् भरत-लक्ष्मण और शत्रुघ्न हुए ॥१८३॥  
माधव लवण को मारकर और मधुवन को जाकर शत्रुघ्न ने उसकी पुरी मथुरा  
को मन्निवेगित किया था ॥१८४॥ शत्रुघ्न के साथ मुवाहु और सूरसेन वंदेह्य

दोनो पुत्रो ने मयुरपुरी का पात्र लिया था ॥१८५॥ अह्मर और चन्द्रकेतु ये दो लक्ष्मण के पुत्र हुए थे और उन दोनों के जनपद हिमालय पर्वत के समीप में विस्तृत हुए थे ॥१८६॥ अह्मर की राज्यस्य देश में अङ्गदीया नाम वाली पुरी थी और चन्द्रकेतु की जोरि मन्त्र के शुभ चक्रवर्ता नाम की पुरी थी ॥१८७॥

भरतस्यात्मजी वीर्यं तदा पुष्कर एव च ।

गान्धारविषये मिद्रे तयो पुयो महारमनो ॥१८८॥

तक्षस्य दिक्षु विरयाता रम्या तक्षमिना पुरी ।

पुष्करस्यापि वीरस्य विरयाता पुष्करावती ॥१८९॥

गाथा चैवात्र गायन्ति ये पुराणविदो जना ।

रामे निवद्धास्मत्तार्था माहात्म्यात्तस्य धीमत ॥१९०॥

ध्यामो युवा लोहिनाशो दीप्तास्यो मितभाषित ।

आजानुवाह सुमुग सिहस्वन्धो महाभुज ॥१९१॥

दशवर्षसहस्राणि रामो राज्यमकारयन् ।

शृङ्गामयजुषा घापा ज्याधोपञ्च महास्वन ॥१९२॥

अविच्छिन्नाऽभवद्गाष्ट्रं दीयता भुज्यतामिति ।

जनस्थान वसन् धार्यं त्रिदशानाञ्चकार स ॥१९३॥

तमागस्कारिणु पूर्वं पीनस्त्य मनुजयंभ ।

सीताया पदमन्विच्छन् निजघान महायशा ॥१९४॥

भरत के पुत्र बहुत वीर तक्ष और पुष्कर नाम वाले दो थे । उन दोनों मन्त्र अथवा बानो की गान्धार देश में सिद्ध पुरियों थी ॥१८८॥ तक्ष की मन्त्र दिशाप्रम म विख्यात तक्षमिना नाम में युक्त सुन्दर पुरी थी । वीर पुष्कर की भी पुष्करावती नाम वाली पुरी विख्यात हुई थी ॥१८९॥ जो पुराणों के ज्ञान रखने वाले विद्वान् हैं वे यही इस विषय में गाथा का मान लिया करते हैं । धीमार् राम के माहात्म्य में राम में मन्त्र सत्तार्थ निवद्ध थे ॥१९०॥ ध्याम वर्ण बाने-युधावस्था में मन्वित-लोहित तथा में युक्त-दीप्तिपुक्त मुज वान-मित आषण वर्णने वाले-जातु पर्यंत लम्बी भुजाया वाले-सुन्दर मुख की आकृति में मन्वित-मिह के समान रूपों बाने-महात् भुजायो वाले धीराम



थे ॥१६१॥ उन श्रीराम ने दस दृश्य वर्ष तक राज्य किया । श्रीराम के राज्य में ऋक्-साम और यजुर्वेद की ध्वनि मन्त्र होती थी और धनुष की प्रत्याशाभी की भी महान् ध्वनि होती थी ॥१६२॥ श्रीराम के राज्य में उनके शासन के समय में सबत्र मन्त्र 'दान दो-भोजन करो यह ध्वनि अविच्छिन्न रूप से निरन्तर होती रहती थी । जबो के स्थान में निवाम करते हुए उन्होंने देवों का कार्य किया था ॥१६३॥ मनुजा में परमश्रेष्ठ महान् यश वाल श्रीराम ने सीता के पद अर्थात् स्थान को खोजने हुए पहले अपराध करने वाले उस पुलस्त्य के नाभी पौलस्त्य रावण का वध किया था ॥१६४॥

सत्त्वान् गुणसम्पन्नो दीप्यमान स्वतेजसा ।

अति भूयश्च वह्निश्च रामो दाशरयिर्वभौ ॥१६५

एवमेव महाबाहुरिक्ष्वाकु कलनन्दन ।

रावण सगण हत्वा दिवमाचक्रमे विभु ॥१६६

श्रीरामस्यात्मजो जज्ञ बुध इत्यभिधीयते ।

लवश्चान्यो महावीर्यस्तयोर्देशौ निबोधत ॥१६७

बुधस्य कोशला राज्य पुरी वापि कशस्यली ।

रम्या निवेशिता तेन विन्ध्यपर्वतसगुणु ॥१६८

उत्तराकोशले राज्य लवस्य च महात्मन ।

श्रावस्ती लोकविख्याता कशवश निबोधत ॥१६९

बुधस्य पुत्रो धर्मात्मा ह्यतिथि सुप्रियातिथि ।

अतिथेरपि विख्यातो निपधो नाम पार्थिव ॥२००

निपधस्य नल पुत्रो नभ पुत्रो नलस्य तु ।

नभस पुण्डरीकस्तु क्षेमघन्वा तत स्मृत ॥२०१

सत्त्ववान् और समस्त गुणगण से सम्पन्न एवं दीप्यमान दाशरथि श्रीराम ने सूर्य को और वह्नि क अपन तेज से दीप्त किया था ॥१६५॥ इसी प्रकार से महान् बाहु बाल और इक्ष्वाकु राजा के कुल को जानद देने वाले विभु राम ने अपन गणा के साथ रावण को भारकर स्वर्ग में भेज दिया था ॥१६६॥ श्रीराम का पुत्र बुध इम नाम वाले उत्पन्न हुए । और लव अन्य

महारु बोधं बाने पुत्र धे । ध्रुव उनके देशों को भी जान लेना चाहिए ॥१६७॥  
 पुत्र का राज्य बौधायन या धीर उसकी पुरी का नाम कुणस्थली थी जिसको कि  
 षट्पत्त ही गुन्दर किन्ध्य पर्वत के गिखरों में उमने निवेगित किया था ॥१६८॥  
 महात्मा नव का राज्य उत्तरा कोशल में था धीर उसकी पुरी श्रावस्ती नाम  
 वाली लोह में परम विख्यात थी । ध्रुव कुरु के यश को श्रवण करो ॥१६९॥  
 कुण का धर्मात्मा सुप्रिय प्रतिधि बाना प्रतिधि पुत्र था । प्रतिधि का निषध  
 नाम बाना पारिवर पुत्र था ॥१७०॥ निषध का नल पुत्र हुआ धीर नव का  
 नभ नाम बाना पुत्र हुआ था । नभ का पुण्डरीक हुआ धीर उसका शेषधन्वा  
 हुआ ॥१७१॥

शेषधन्वमुतो राजा देवानीक प्रतापवान् ।

आसीदहीनगुर्नाम देवानी कात्मज प्रभु ॥१७२

अहीनगोस्तु दायाद पारियात्रो महायथा ।

दलस्तस्यात्मजश्चापि तस्माद्भ्रज बलो नृप ॥१७३

धौवो नाम स धर्मात्मा बलपुत्रो यभूव ह ।

यज्यनाभः मुत्तम्नस्य दादृणस्तस्य चात्मज ॥१७४

दादृणस्य मुतो विद्वान् ध्युपितास्व इति श्रुत ।

ध्युपितास्व मुतश्चापि राजा विद्वत्सह किल ॥१७५

हिरण्यनाभ वीरत्या वसिष्ठस्तत्मुताम्भवत् ।

पौत्रस्य जमिने जिप्यः स्मृत सवपु शर्मणु ॥१७६

दातानि संहितानान्नु पञ्च योऽप्योक्तवास्तत ।

तस्मादधिगतो योगो यागवल्क्येन धीमता ॥१७७

पुष्यस्तस्य मुतो विद्वान् ध्युयमन्धिश्च तत्पुनः ।

मुदर्शनस्तस्य मुतो अग्निवराः मुदशनान् ॥१७८

धामध वा का पुत्र प्रतापी दशानीक राजा हुआ धीर देवानीक का

अहीनपु नाम बाना पुत्र था ॥१७२॥ अहीनपु का दायाद महान् पण बाना

पारियात्र था धीर इमका पुत्र दम नापक था तथा इमक बन्धु नाम बाना नृप

उत्पन्न हुआ था ॥१७३॥ दनर पदवायु धीरु—दण नाम बाना परम धार्मिक

बल का पुत्र हुआ था । उसका पुत्र बज्र नाभ हुआ और बज्र नाभ क पुत्र  
 बाह्य उतपन्न हुआ था ॥२०४॥ बाह्य का पुत्र परम विद्वान् ध्युपिताश्व का  
 पुत्र राजा विश्वमह हुआ ॥२०५॥ हिरण्यनाभ वीराल्य वशिष्ठ उसका पुत्र हुआ  
 जो ममरत शर्मों में जैमिनि के पौत्र का शिष्य कहा गया है ॥२०६॥ जिसने पाँच  
 सौ सहिताद्यो का अध्ययन किया था और उससे धीमान् याज्ञवल्क्य न योग का  
 ज्ञान प्राप्त किया था ॥२०७॥ उसका पुत्र पुण्य था जो विद्वान् था और उसका  
 पुत्र ध्रुव सन्धि नाम वाला था । उसका पुत्र सुदर्शन और सुदर्शन से अग्निवर्ण  
 उत्पन्न हुआ था ॥२०८॥

अग्निवर्णस्य शीघ्रस्तु शीघ्रवस्य मनु स्मृत ।

मनुस्तु योगमास्थाय कलापग्राममास्थित ।

एकानविंशप्रयुगे क्षत्रप्रावक्तक प्रभु ॥२०९॥

प्रमुद्भुतो मनो पुत्र. मुसन्धिस्तस्य चात्मज ।

सुमन्धेश्च तथा मप सहस्वाशाम नामत ॥२१०॥

आसीत्सहस्वतः पुत्रो राजा विश्रुतवानिति ।

तस्यासीद्विश्रुतवत पुत्रो राजा बृहद्वल ॥२११॥

एते इक्ष्वाकुदायदा राजान प्रायश स्मृताः ।

वशे प्रधाना ये तेऽस्मिन् प्राधान्येन तु कीर्तिता ॥२१२॥

पठन् सम्यगिमा मृष्टिमादित्यस्य विवम्बन ।

प्रजावानेति सायुज्य मनोर्वैवम्बतस्य स ॥२१३॥

श्राद्धदेवस्य देवस्य प्रजाना पुष्टिस्य च ।

विपाप्मा त्रिरजाश्चैव आयुष्मान् भवतेऽच्युत ॥२१४॥

राजा अग्निवर्ण के शीघ्र हुआ और शीघ्रक के मनु उत्पन्न हुआ ।

मनु तो योग में आस्थित होकर कलाप ग्राम में आस्थित होगया था । यह  
 उन्नीसवें प्रयुग में क्षत्र प्रावक्तक प्रभु हुआ है ॥२०९॥ मनु का पुत्र प्रमुद्भुत और  
 उसका पुत्र मुसन्धि हुआ । मुसन्धिका अमप नाम से सहस्वान् था सहस्वान् का  
 पुत्र राजा विश्रुतवान् था और विश्रुतवान् का पुत्र राजा बृहद्वन हुआ । ये सब  
 इक्ष्वाकु वंश के दायाद राजा प्राय कह गये हैं । जो वंश में प्रधान ये वे यहाँ

वहाय बंध हैं । इस आदित्य की मूर्ति को भनी भीति पडत हुए प्रजापान् घोर  
 वैवस्वत मनु क तथा प्रजाधो पुट्टि देने वा न देव आदित्य क सामुज्य को प्राप्त  
 हाता है । विनात्मा विरज तथा आमुत्मान् एव अच्युत हाता है । २१० स २१४।

### प्रकरण ५२--सामोत्पत्तिवर्णन

योऽसौ निवेशयामास पुर-देवपुरापमम् ॥१  
 जयन्तामिति विसृष्टात् गौतमस्याश्रमाभित ।  
 यस्वान्ववाय यज्ञ वै जनवाट्टपिसत्तमात् ॥२  
 नमिर्नामि सुधर्मात्मा सर्वसत्त्वनमस्तृत ।  
 आसीत् पुत्रो महाप्राज्ञ इदवाज्ञोभू रितजस ॥३  
 स सापेन वसिष्ठस्य विदेह समपद्यत ।  
 तस्य पुत्रा मिदिर्नाम जनित पवभिस्त्रिभि ॥४  
 अरण्या मथ्यमानाया प्रादुभू ता महायसा ।  
 नाम्ना मिधिरिति त्याता जननाञ्जनकोऽभवत् ॥५  
 मिधिर्नाम महावीर्यो यनासो मिधित्ताभवत् ।  
 राजासो जनवा नाम जननाञ्जाप्युद वसु ॥६  
 उदावगा सुधर्मात्मा जनिता नन्दिबद्ध न ।  
 नन्दिबद्धे नत दूर सुवतुर्नाम धामिव ॥७  
 सुवेत्तारपि धर्मात्मा दवराता महाजन ।  
 दवरातरय धर्मात्मा बृहद्बुद्ध इति श्रुति ॥८

गुनको बान—विदुर्नाम क छोटे भाई निर्मि क वग को समझता । जो  
 इगन देवापुर क समान दुर का निवेशित रिषा था ॥१॥ जो गौतम क आश्रम  
 क सामन जनन—इम नाम से विख्यात था । जिनके अवकाश यम क श्रुतिया  
 म अष्ट वाक से ननि—इम नाम काय अत्यधिक तत्र यान इदवापु का पुत्र था  
 जो भती प्रवार से धर्मिया समान शक्तिया क साथ समस्त धर्मात् समार

प्राप्त करने वाला और महान् परिहृत था ॥२॥३॥ वह वसिष्ठ के शाप से विदेह हो गये । उसका पुत्र मिथि नाम वाला तीन वर्षों से जन्मा था ॥४॥ भरणी के मथन करने पर यह महान् यश वाला प्रादुर्भूत हुआ था । नाम से मिथि प्रसिद्ध हुआ और जनन होने से जनक हुए थे ॥५॥ मिथि नाम वाले महान् पराक्रम वाले थे जिसमे यह मिथिला हुई थी । यह जनक नाम वाला राजा था और जनक से उदावसु हुआ ॥६॥ उदावसु से सुन्दर धर्ममय धर्मात्मा वाला नदिबद्धन जन्मा । नदिबद्धन से धार्मिक और शूरवीर सुवतु उत्पन्न हुआ ॥७॥ सुवतु से महान् बलवाला धर्मात्मा देवरात हुआ और देवरात के धर्मात्मा बृहदुच्च हुआ—यह धृति है ॥८॥

बृहदुच्छस्य तनयो महावीर्यं प्रतापवान् ।  
 महावीर्यस्य धृतिमान् सुधृतिस्तस्य चारमज ॥९  
 सुधृतेरपि धर्मात्मा धृष्टकेतु परन्तप ।  
 धेष्टकेतु सुतश्चापि ह्यश्वो नाम विश्रुत ॥१०  
 ह्यश्वस्य मरु पुत्रो मरो पुत्रे प्रतिश्वव ।  
 प्रतिश्ववस्य धर्मात्मा राजा कीर्तिरथ सत ॥११  
 पुत्र कीर्तिरथस्यापि देवमीढ इति श्रुत ।  
 देवमीढस्य विबुधो विबुधस्य सुतो धृति ॥१२  
 महाधृतिमुतो राजा कीर्तिराज प्रतापवान् ।  
 कीर्तिराजात्मजो विद्वान् महारोमेति विश्रुत ॥१३  
 महारोम्यास्तु विख्यात स्वगरोमा व्यजायत ।  
 स्वगरोमात्मजश्चापि ह्रस्वरामाभवन्नृप ॥१४  
 ह्रस्वरामात्मजो विद्वान् सीरध्वज इति श्रुति ।  
 उद्भिन्ना कृपता यन सीता राज्ञा यनम्बिनी ।  
 रामभ्य महिषी माध्वी सुव्रतातिपतिव्रता ॥१५  
 कथ सीता समुत्पन्ना कृष्यमाणा यशस्विनी ।  
 विमर्षश्चाट्टपद्राजा श्रेय यस्मिन् बभूव ह ॥१६

बृहदुच्छ वा पुत्र प्रताप वाला महावीर्य हुआ और महावीर्य के धृतिमान् हुआ और उसके सुधृति पुत्र हुआ था ॥६॥ सुधृति के धार्मिक और शत्रुघ्नो को तपाने वाला धृष्टकेतु पुत्र हुआ । धृष्टकेतु वा पुत्र भी हृष्य-इस नाम से विधुत होने वाला उत्पन्न हुआ था ॥१०॥ राजा हृष्य के मह पुत्र उत्पन्न हुआ और मह के प्रतिवक हुआ तथा प्रतिवक के परम धार्मिक राजा कीर्तिरथ पुत्र हुआ था ॥११॥ कीर्तिरथ वा पुत्र देवमीढ हुआ और देवमीढ के विबुध तथा विबुध के धृति नाम वाला सुत उत्पन्न हुआ था ॥१२॥ महाधृति का पुत्र प्रतार्ता राजा कीर्तिराज हुआ । कीर्तिराज का आत्मज मयन्त निदाद् महारोमा परम प्रविद्ध हुआ था ॥१३॥ महारोमा राजा वा पुत्र परम प्रविद्ध स्वगरोमा उत्पन्न हुआ था । स्वगरोमा का पुत्र राजा हृस्वरोमा हुआ ॥१४॥ हृस्वरोमा का आत्मज विद्वान् सीरध्वज नाम वाला हुआ था— ऐसी धृति है । जिस राजा ने भूमिका वर्षण करते हुए अर्पति जाते हुए परम यशवाली सीता को उद्भिन्न किया था जो जीना श्रीराम की पटरानी हुई थी और अत्यन्त मादवी-अति पातिव्रत धर्म का पालन करने वाली एवं सुन्दर व्रत वाली थी ॥१५॥ शम्भुपायन ने कहा— कृप्यमाण होनी हुई सीता किस प्रकार से ममत्वग्र हुई थी ? जो कि परम पण्डिनी थी । राजा ने किस लिये भूमिका कर्ण किया था जिसका करने में वह हुई थी ? ॥१६॥

अग्निक्षेत्रे कृप्यमाणो यश्चमेध महात्मन ।

विधिना सुप्रयुक्तेन तस्मात्सा तु ममृत्विता ॥१७

सीरध्वजात्तु जातस्तु भानुमान्नाम मंयिल ।

भ्राता कुशध्वजस्तस्य स काश्यधिपतिर्नृप ॥१८

तस्य भानुमत पुत्र प्रद्युम्नश्चप्रतापवान् ।

मुनिस्तस्य सुतश्चापि तस्माद्भुजं बह स्मृत ॥१९

ऊर्जंबहाद् सुतद्वाज शकुनि स्तस्य चात्मज ।

स्वागत शकुने पुत्र सुवर्वास्तस्मुत स्मृत ॥२०

श्रुतो यस्तस्य दायाद सुश्रुतस्तस्य चात्मज ।

सुश्रुतस्य जय पुत्रो जयस्य विजय सुतः ॥२१

विजयस्य ऋत पुत्र ऋतस्य सुनय स्मृत ।

सुनयाद्वीतहव्यस्तु वीतहव्यात्मजो धृति ॥२२

धृतेस्तु बहुलाश्वोऽभूद्बहुलाश्वमुत कृतिः ।

इत्येते मैथिला प्रोक्ता सोमस्यापि निबोधत ॥२३

श्री मृतजी ने कहा—महान् आत्मा वाज के अश्वमेध में धनि क्षेत्र के कर्पण करने पर और विधि को भली भाँति सुन्दरता के साथ प्रयुक्त करने से उससे से वह सीता समुत्पित हुई थी ॥१७॥ शीरध्वज में भानुमान् नाम वाला मैथिल उत्पन्न हुआ था । उसका भाई कुशाध्वज था और वह काशी का स्वामी नृप था ॥१८॥ उस भानुमान् का पुत्र प्रताप वाला प्रद्युम्न था । उसका पुत्र मुनि हुआ और उससे ऊर्ज्वह हुआ था ॥१९॥ ऊर्ज्वह से सुतदाज हुआ और उसका पुत्र साकुनि हुआ था । साकुनि का स्वागत हुआ और स्वागत का सुवर्चानाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥२०॥ उसका धर्यात् सुवर्चा का शायद (पुत्र) श्रुत हुआ और उसका पुत्र सुश्रुत हुआ था । सुश्रुत का पुत्र जय हुआ जय का पुत्र विजय हुआ ॥२१॥ विजय के ऋत नामक पुत्र था और ऋत के सुनय पुत्र उत्पन्न हुआ था । सुनय से वीत हव्य हुआ और वीतहव्य का पुत्र धृति हुआ ॥२२॥ धृति से बहुलाश्व हुआ और बहुलाश्व का पुत्र कृति नाम वाला था । उसमें महान् आत्मा वाला जनका का वंश सम्भित रहता है । य इतन मैथिल बनाय गये हैं । अब सोम का वंश जान ना ॥२३॥

### प्रकरण ५३—सामोत्पत्तिवर्णन

पिता सोमस्य यो विप्रा जज्ञेऽग्निभगवानृषि ।

सोऽति तस्यो सर्वालोवाग्भगवान्स्वेन तेजसा ॥१

कर्मणा मनसा वाचा शुभान्येव समानरन् ।

षाष्ट्रबुध्यशिलाभूत ऊर्ध्वबाह्वमहाधृति ॥२

सुदुश्चर नाम तपो येन तम महत्पुरा ।

त्राणि वर्षसहस्राणि दिव्यानीति हि नः धृतम् ॥३

तस्योद्धरेतसस्तत्र स्थितस्यानिमिपस्पृहम् ।  
 सोमत्वतनुरापेदे महाबुद्धि स वै द्विज ॥४॥  
 ऊर्द्धमाचक्रमे तस्य सोमत्व भावितात्मन ।  
 सोम सुम्नाव नेत्राम्या दश वा द्योतयन् दिश ॥५॥  
 त गर्भं विधिनादिष्टा दश देव्यो दधुस्तदा ।  
 समेत्य धारयामासुर्न च ता समशक्नुवन् ।  
 स ताम्य सहसैवाथ दिग्म्यो गर्भं प्रभान्वित ।  
 यथावभासपैल्लोकाञ्छीताशु सर्वभावन ॥७॥  
 यदा न धारणो यक्तास्तस्य गर्भस्य ता छिय ।  
 तत स ताभि शीताशुनिपपात वमुन्धराम् ॥८॥

श्री गून्जी ने कहा—हे विप्रा । सोम के पिता ऋषि अत्रिभगवान् ने जन्म ग्रहण किया था । वह अत्रि भगवान् प्रपन तेज मे ममस्त लोकों मे प्रति-स्थित हुए थे ॥१॥ कम-मन और वचन के द्वारा शुभ का भी समाचरण करते हुए महान् शुनि वाले ऊर्ध्वबाहु होकर बाष्प और कुड्य शिना के समान होगय । ॥२॥ हमने यह सुना है कि तीन हजार दिव्य वर्षों तक जिसने पहिले महात् बुद्धि तप किया था ॥३॥ वही पर स्थित ऊर्द्धरेता उमके अनिमिप स्पृह सोमत्व तनु को महान् बुद्धि वाले उस द्विज ने प्राप्त किया था ॥४॥ भावित मात्मा बान उमके ऊपर सोमत्व चलना था । नेत्रो से दशो दिशाओ वा प्रका-शित करता हुआ सोम ध्वरण करता था ॥५॥ उम कभ को उम समय ग्रहा के द्वारा आदेश प्राप्त करने वाली दश देविया म एकदिन होकर धारण किया था किन्तु वे उम न सहन कर सकी ॥६॥ इस क अनन्तर उन दिशाओ से वह गभ महमा ही प्रभा म पुत हा गया जितस सबका अन्तः लगने वाला शीताशु सांको को धवभासित कर रहा था ॥७॥ जब वे स्थिया उम गर्भ के धारण करने में समर्थ न हुई तो फिर वह शीताशु उनसे पृथ्वी पर गिर गया था ।

॥८॥

पतन्त सोममालोक्य ग्रहा लोवपितामह ।  
 रथमारोपयामास लोकाना हितकाम्यया ॥९॥



स हि देवमयो विप्रा धर्मार्थी सत्य सङ्गार ।  
 युक्तो वाजिसहस्रेण सितेनेति हि न श्रुतम् ॥१०॥  
 तस्मिन्निपतिते देवा पुत्रेऽग्रे परमात्मनि ।  
 तुष्टुबुध्रं ह्यण पुत्रा मानसा सम विश्रुता ।  
 तत्र वाङ्मिरसस्तस्य भृगोश्च वात्मजस्तथा ।  
 ऋग्भिर्यजुर्भिर्बहुभिरथर्वाङ्मिरसैरपि ॥१२॥  
 तत सस्तूयमानस्य तेज सोमस्य भास्वत ।  
 आप्यामाना लोकाब्धीन् भावयामास सर्व्वश ॥१३॥  
 समेन रथमुह्येन सागरान्ता वसुन्धराम् ।  
 ध्रु सप्तकृत्वो वितुलश्चकाराभिप्रदक्षिणम् ॥१४॥  
 तस्य यच्चापि तत्तेज पृथिवीमन्वपद्यत ।  
 ओषध्यस्ता समुद्भूतास्तेजसा सज्वलन्त्युत ॥१५॥  
 ताभिर्घायंत्यय लोकान् प्रजाश्चापि चतुर्विधा ।  
 पोष्टा हि भगवान् सोमो जगतो हि द्विजोत्तमा ।

समस्त लोको के पिता यह ब्रह्माजी ने सोम को गिराया हुआ देखकर लोको के हित की कामना से रथ को आरोपित कर दिया था ॥१॥ हे विप्र-वृन्द ! वह देवों से परिपूर्ण, धर्म का अर्थी, सत्य सङ्गार और श्वेत वर्ण वाले सहस्र ऋषियों से युक्त था—ऐसा हमने सुना है ॥१०॥ उस परमात्मा अग्नि के पुत्र के निपतित होने पर जो सात ब्रह्म के प्रसिद्ध मानस पुत्र थे उन्होंने स्तुति की थी ॥११॥ वही पर ही अङ्गिरस और उस भृगु के पुत्र ने उसी प्रकार स ऋग्वेद—यजुर्वेद और बहूत से अङ्गिरसों में स्तवन किया ॥१२॥ इनके अनन्तर भली-भाँति स्तुति किये गये उस भावमान सोम के तेज ने लोको को आप्यायित करते हुए सब ओर से भावित किया था ॥१३॥ उसने सम मुह्यरथ के द्वारा सागर पर्यन्त वसुन्धरा की इक्कीस बार प्रदक्षिणा की थी ॥१४॥ उसका जो भी तेज था वह पृथ्वी में अनुपम हो गया और वे औषधियों के स्वरूप में समुत्पन्न हुई जो कि अपने तत्र से भली भाँति ज्वलित हो रही हैं ॥१५॥ हे द्विजो

तमवृन्द । उन शीशुवियों में यह सोफो को धारण करता है और भगवान् सोम  
भागो प्रकार की प्रजाओं को तथा जगत् का भी परम पोषक है ॥१६॥

स नक्षत्रेजाम्स्तपमा मस्तदैस्तैश्च कर्मभिः ।

तपस्तपे महाभाग पशानां ददातीदृश ॥१७

हिरण्यवर्णा या देव्यो धारयन्त्यात्मना जगत् ।

विभ्रुस्तासाम्भवेत्सोम प्रस्थात स्वेन कर्मणा ॥१८

ततस्तस्मै ददौ राज्यं ब्रह्मा ब्रह्मविदा वरः ।

वीजोपविणु विप्राणामपाञ्च द्विजसत्तमा ॥१९

सोऽभिपिक्तो महार्तेजा महाराज्येन राजराट् ।

लोकाना भावयामास स्वभावात्तपता वर ॥२०

सप्तविंशतिग्न्दोस्तु दाक्षायण्यो महाशता ।

ददौ प्राचेतसो दक्षा नक्षत्राणीति या विदुः ॥२१

स तत्राप्य महद्भ्राज्यं सोम सोमवता प्रभुः ।

समाजत्रे राजभूय सत्सदातदक्षिणम् ॥२२

हिरण्यगर्भश्चोद्गाता ब्रह्मा ब्रह्मत्वमेपिवात् ।

सदस्यस्तत्र भगवान् हरिर्निगयसः प्रभुः ।

मनत्कुमारप्रभुस्त्वैराद्यं ब्रह्मपिभिवृत् ॥२३

दक्षिणामददत्सोमस्त्रीन्लोकानिति न धुत्तम् ।

तेभ्यो ब्रह्मपिमुह्येभ्य मदस्येभ्यश्च वै द्विजा ॥२४

वह संततो और उन कर्मों के द्वारा तथा रूप से तेज प्राप्त करने वाला  
होगया और उस महाभाग ने दक्षती दक्ष पद्या तक तपस्या की थी ॥१७॥ जो  
हिरण्य वर्ण वाली देवियों थी उन्होने जगत् का धारण किया है उनका विष्णु  
सोम हुआ जो अपने कर्मों के द्वारा प्रख्यात है ॥१८॥ ब्रह्म वेत्ताओं में श्रेष्ठ ब्रह्मा  
ने हे द्विजा में श्रेष्ठ । वीजोपविणो में विप्रों का और जलो का राज्य उसे दे दिया  
था ॥१९॥ तपस्या करने वालों में श्रेष्ठ वह अभिपिक्त होता हुआ इस महात्  
राज्य से राजाओं का राज्य तथा महान् तेजस्वी स्वभाव के लोगो को आनन्दित  
किया करता था । २०॥ प्राच्यम् दक्ष ने इन्द्र को महान् वन वाली ब्रह्मर्षि

दाशायणी दे दी जो कि नक्षत्र नाम से जानी गई है ॥२१॥ सोम वाली के स्वामी उस सोमने उस महान् राज्य को प्राप्त करके सहस्र शत दक्षिणा वाला राजन्य यज्ञ किया था ॥२२॥, उसमे हिरण्य गर्भ उद्गाता हुए और ब्रह्मा ब्रह्मत्व को प्राप्त हुए अर्थात् ब्रह्मा बने तथा सनत्कुमार आदि प्रमुख ऋषियों से अन्न भगवान् नारायण प्रभु हरि सदस्य हुए थे ॥२३॥ हमने ऐसा सुना है कि सोम ने उन ब्रह्मर्षि मुख्य सदस्यों के लिये, हे द्विज वृन्द ! तीनों लोकों को दक्षिणा मे था ॥ २४ ॥

त सिनी च बृहश्चैव वपुः पुष्टि प्रभा वसु ।  
 कीर्त्तिधृतिश्च लक्ष्मीश्च नव देव्य सिपेविरे ॥२५  
 प्राप्यावभृथम-मग्र मन्वंदेवर्षिपूजित ।  
 अतिराजातिराजेन्द्रो दशधातापयद्दिश ॥२६  
 तदा तत् प्राप्य दुःप्रापमैश्वर्यमृषिमस्तुतम् ।  
 स विभ्रममतिविभ्रा विनये विनयो हत ॥२७  
 बृहस्पते स वै भार्यान्तारा नाम अशस्विनीम् ।  
 जहार सहसा सर्वानवमत्याङ्गिरःसुतान् ॥२८  
 स याच्यमानो देवैश्च तथा देवर्षिभिश्च ह ।  
 नैव व्यसर्जयत्तारा तस्मायाङ्गिरसे तदा ॥२९  
 उशनास्तस्य जग्राह पाप्णिमङ्गिरसो द्विजाः ।  
 स हि शिष्यो महातेजा पितु पूर्वं बृहस्पते ॥३०  
 तेन स्नेहेन भगवान् एद्रस्तस्य बृहस्पते ।  
 पाप्णिमग्राहोऽभद्देव प्रगृह्याजगवन्धनु ॥३१  
 तेन ब्रह्मर्षिमुख्येभ्य परमास्त्र महात्मना ।  
 उद्दिश्य देवानुत्सृष्ट येनैषा नाशित यश ॥३२

उम राजा सोम की सिनी-बृह-वपु-पुष्टि-प्रभा-वसु-कीर्त्ति-धृति और लक्ष्मी इन नौ देवियों ने सेवा की थी ॥२५॥ अवभृत् को प्राप्त करके व्यग्रता से रहित और ममन्त देव तथा ऋषियों के द्वारा पूजित अति राजाओं का अन्न राजेन्द्र उसने दश प्रकार से दिशाओं को तापित किया था ॥२६॥ हे विभ्रो !

उम समय में ऋषियों के द्वारा मन्तु उम दुःप्राप्त ऐश्वर्य को प्राप्त करके वह विनय में हत एक भीतिहीन विनोद रूप से भ्रान्त मतिवाला होगया था ॥२७॥  
 उमने ममन्त घाङ्गिर पुत्रोको घबरातित कर बृहस्पति की भार्या परम यशस्विनी साथ नाम जानी का सहसा हरण किया था ॥२८॥ उम समय में देवों के द्वारा तथा ममन्त देवपियों के द्वारा वह याचिन किया गया अर्थात् तारा के वापिस दे देने की याचना की गई थी किन्तु उम उम घाङ्गिरस का तारा नहीं छोड़ी थी ॥२९॥ हे द्विज वृन्द ! उम समय उम घाङ्गिरस का ९५ अथवा साथ उराना ने प्रहाण किया था वह महात् तेजस्वी बृहस्पति के पिता का पहिला शिष्य था ॥३०॥ उम स्नेह में भगवान् एत इव भ्रमणक भ्रम्य प्रहण करके उम बृहस्पति के पापिप्राह अर्थात् सहायता करने वाले हुए थे ॥३१॥ उम महात्मा ने ब्रह्मर्षि मुग्धों के त्रिपे परम भ्रम्य देवा को उद्देश करके छोड़ा था जिनने इनके यज्ञ को नष्ट कर दिया था ॥३२॥

तत्र तद्युद्धमभवत् प्रत्यधन्नाग्नामयम् ।  
 देवाना दातवनाश्च तावधयकर महत् ॥३३  
 तत्र निष्ठाश्रया देवान्तुपिताश्र्वं व ये स्मृता ।  
 ब्रह्माग्य शरण्य जम्भुरादिदेव पिनामहम् ॥३४  
 तनो निवार्योमनमं एत ग्यहश्च गङ्गुरम् ।  
 ददावङ्गिरसं तारा स्वयमेव पिनामह् ॥३५  
 अन्तर्वन्तो च सा दृष्ट्वा तारान्ताराधिपाननाम् ।  
 गर्भमुन्मृजमे न त्व विप्र प्राह बृहस्पति ॥३६  
 मरीचाया तनो योनो गर्भो घाय कथञ्चन ।  
 अथो नाथगृजसन्तु कुमार दग्धुहन्ममम् ॥३७  
 ईषिवाप्तस्यमासाश्च ग्धन्ममिष पायकम् ।  
 आतमात्रोऽय भगवान् देवानामाधिपशु ॥३८  
 गत्र गणयमात्पाम्नागमामयम् गुरा ।  
 मत्प प्रूति मुत्र कस्य मोमस्याप वृत्तगने ॥३९

ह्लियमाणा यदा देवान्नाह सा साध्वसायु वा ।  
तदा ता क्षप्नुमारब्ध कुमारो दस्युहन्तम ॥४०

उस समय वहा पर देव और दानवों का लोको के क्षय को करने वाला महान् प्रत्यक्ष तारकामय युद्ध हुआ था ॥३३॥ उस समय में तीन शिष्ट देव जो वि तृपिता कहे जाते हैं आदि देव ब्रह्माजी पितामह की क्षरणगति में प्राप्त हुए थे ॥३४॥ इसके अनन्तर पितामह ने स्वयं ही उशना की और ज्येष्ठ शङ्कर रुद्र को निवारण कर आद्विरस के लिये तारा देदी थी ॥३५॥ उस चन्द्रमुखी तारा को उस समय गर्भवती देखकर विप्र बृहस्पति ने उससे कहा कि तू गर्भ का उत्सर्जन मत करे ॥३६॥ मेरे तनु योनि में किसी भी प्रकार से गर्भ-धारण करना चाहिये । इसके अनन्तर उस दस्यु हन्तम कुमार का अवसर्जन नहीं किया था ॥३७॥ ईपिका-स्तम्ब को पाकर अग्नि की भाँति उत्पन्न होते ही भगवान् ने देवों के शरीर पर आशेष किया था ॥३८॥ तबने सशय को प्राप्त होने वाले देवों ने तारा से कहा—तुम सत्य सत्य बतला दो—यह पुत्र किसका है ? बृहस्पति का है या सोम का है ? ॥३९॥ तब लज्जित होनी हुई उमने जो ठीक या बेठीक था देवों को बतला दिया । उस समय कुमार दस्युहन्तम ने उसको क्षाप देने का आरम्भ किया था ॥४०॥

सन्निवार्यं तदा ब्रह्मा तारा चन्द्रस्य संशय ।  
यदत्र तथ्यन्तद्ब्रूहि तारे कस्य सुतस्त्वयम् ॥४१  
सा प्रञ्जलिरुवाचेद ब्रह्माण वरद प्रभुम् ।  
सोमस्येति महारमान कुमारन्दस्युहन्तमम् ॥४२  
तत स तमुपाध्नाय सोमो दाता प्रजापति ।  
बुध इत्यकरोन्नाम तस्य पुत्रस्य धीमत ॥४३  
प्रतिपूर्व्वंश्च गमने समभ्युत्तिष्ठते बुध ।  
उत्सादयामास तदा पुत्र वं राजपुत्रिका ॥४४  
तस्य पुत्रो महातेजा बभूवन्ल. पुरुरवा ।  
उर्व्वंश्या जज्ञिरे तस्य पुत्राः षट् सुमहोजस ॥४५

प्रसह्य धवितस्तत्र विवशो राजयक्षमणा ।  
 ततो यक्षमाभिभूतस्तु सोम प्रक्षीणमण्डल ।  
 जगाम शरणायाथ पितर सोऽग्निमेव तु ॥४६॥  
 तस्य तत्पापशमन चकाराग्निर्महायशा ।  
 स राजयक्षमणा मुक्त धिया जज्वाल सर्व्वश ॥४७॥  
 एतत्सोमस्य वै जन्म कीर्त्तित द्विजसत्तमा ।  
 वगन्तस्य द्विजश्रेष्ठा कीर्त्त्यमान निबोधत ॥४८॥  
 धन्यमारोग्यमायुष्य पुण्य कल्मषशोधनम् ।  
 सोमस्य जन्म श्रुत्वैव सर्व्वपापे प्रमुच्यते ॥४९॥

उम समय में ब्रह्माजी ने मन्त्रिवारण कर जो चन्द्र का मशय था उसके विषय में कहा—हे तारा । यहाँ पर जो भी तथ्य हो वह बतादो कि यह किमवा पुत्र है ॥४१॥ वह प्राञ्जलि होकर धर्यान् हाथ जोड़कर वर देने वाले प्रभु ब्रह्माजी ने यह बोली कि कुमार दम्पुहन्तम सोम का ही है ॥४२॥ इसके पश्चान् उनने धर्यान् ब्रह्मा ने उमका उपाघ्राण करके सोमदाता प्रजापति है और उनके धीमान् पुत्र का नाम बुध यह स्वला था ॥४३॥ और प्रनिपूर्व के गमन में बुधो से गमम्भुविन होता है । तब राजिका ने पुत्र को उताघ्न किया था ॥४४॥ उनका महान् तेज वाला पुर्करवा ऐल पुत्र हुमा । उसके उर्चंशी में महान् श्रोत्र वाले छँ पुत्रो ने जन्म ग्रहण किया था ॥४५॥ वहाँ बलपूर्वक राजयक्षमा के द्वारा विवश होते हुए धवित किया गया था । इसके अनन्तर राजयक्षमा में प्रतिभव पाने वाला होकर सोम प्रक्षीण मण्डल वाला होगया । इसके पदवान् वह पिता अग्नि के ही शरण में गया था ॥४६॥ महान् यज्ञ जाने अग्नि ने उमके उस पाप का शमन किया था और वह राजयक्षमा से छुटकारा पाकर सर्व प्रकार की शोभा जाज्वन्यमान होगया था ॥४७॥ हे द्विज श्रेष्ठे ! यह मैंने सोम का जन्म बतला दिया है । अब उमका यज्ञ द्विजा में श्रेष्ठ घ्राप समझलो जिसको कि मेरे द्वारा कहा जा रहा है ॥४८॥ यह सोम के जन्म की कथा का वर्णन परम धन्य-आरोग्य और आयु देने वाला पवित्र है । यह पापों का नाशक है । मनुष्य सोम के जन्म की कथा को सुनकर ही गमस्त पापों में छूट जाता है ॥४९॥

### प्रकरण ५३—चन्द्रवंश कीर्तन

सोमस्य तु बुधः पुत्रो बुधस्य तु पुरुरवा ।  
 तेजस्वी दानशीलश्च यज्वा विपुलदक्षिण ॥१॥  
 ब्रह्मवादी पराक्रान्तः शत्रुभिर्बुधि दुर्जयः ।  
 आहर्त्ता चाग्निहोत्रस्य यज्वनाश्च ददौ महीम् ॥२॥  
 सत्यवाक् कर्मबुद्धिश्च वान्तः सवृतमैथुनः ।  
 अतीव पुत्रो लोकेषु रूपेणाप्रतिमोऽभवत् ॥३॥  
 त ब्रह्मवादिन दान्त धर्मज्ञ सत्यवादिनम् ।  
 उर्वशी वरयामास हित्वा मान यशस्विनी ॥४॥  
 तथा सहावसद्राजा दशवर्षाणि चाष्ट च ।  
 सप्त पट् सप्त चाष्टौ च दश चाष्टौ च वीर्यवान् ॥५॥  
 वने चैत्ररथे रम्ये तथा मन्दाकिनीतटे ।  
 अन्धकाया विनाताया नन्दने च वनोत्तमे ॥६॥  
 गन्धमादनपादेषु मेरुशृङ्गे नगोत्तमे ।  
 उत्तराश्च कुम्भन् प्राप्य कलापग्राममेव च ॥७॥  
 एतेषु वनमुख्येषु सुरैराचरितेषु च ।  
 उर्वश्या महितो राजा रेमे परमया मुदा ॥८॥

श्री मूलजी ने कहा—सोम का पुत्र बुध हुआ और बुध का पुत्र पुरुरवा हुआ जो बहुत ही तेजस्वी—दान देने के स्वभाव वाला—यजन करने वाला तथा बहुत दक्षिणा देने वाला था ॥१॥ पुरुरवा ब्रह्मवादी था तथा शत्रुओं के द्वारा पराक्रान्त हुआ एवं युद्ध में वह दुर्जय था अर्थात् रणभूमि में कोई भी आसानी से उसे जीत नहीं सकता था । वह अग्निहोत्र का आहरण करने वाला था और यज्वानों को उसने भूमि का दान दिया था ॥२॥ वह सत्य वचन बोलने वाला, मनुष्य मैथुन, सुन्दर और कर्मों के सम्पादन में बुद्धि रखने वाला हुआ था । लोको में वह पुत्र अत्यन्त ही रूप में अनुपम हुआ था ॥३॥ उस दमनशील धर्म के ज्ञान वाले—सत्यवादी और ब्रह्म की चर्चा करने वाले राजा की उर्वशी ने

मान का त्याग कर करण किया जोकि उर्वशी बड़े ही गदा वाली थी ॥४॥  
 वीर्य काजा राजा उगके साथ घटारह बर्ष लगा चरालोम-भौंनठ और घस्वी  
 बर्ष तक रहा था ॥५॥ मन्वास्िनी के तट पर, परम रम्य वैराग्य वन में,  
 किशाल मलकापुरी में और वनो में सर्वश्रेष्ठ नन्दन वन में निवास किया था ॥६॥  
 गन्धमादन पर्वण की तराई में, विरियो में उत्तम भेद के शिखरो पर और उत्तर  
 कुहमो को प्राक्त कर तथा कलाप ग्राम में जाकर काम किया था ॥७॥ इन उक्त  
 मुख्य वनो में जोकि देवो के द्वारा मेदिन में राजा न प्रेयवी उर्वशी के साथ  
 रहने हुए परमानन्द के साथ रमण किया था ॥८॥

गन्धर्वा चोर्वशी देवी राजान् मानुष कथम् ।  
 देवानुत्सृज्य सम्प्राप्ता तप्तो ब्रूहि बहुभ्रूत ॥६॥  
 ब्रह्मशापाभिभूता मा मानुष समुपस्थिता ।  
 ऐत तु त वरारोहा ममयेन व्यवस्थिता ॥१०॥  
 आत्मन शापमोक्षार्थं नियम सा चकार तु ।  
 अतस्नददानंश्चैव अकामात् सह मंथुतम् ॥११॥  
 द्वी मेपां शयनाभ्यामे म तावद्व्यवतिष्ठते ।  
 घृणमानं तथाहारः कान्मेवन्तु पार्थिव ॥१२॥  
 यत्र प ममया राजन् यावत्पालश्च ते हृदम् ।  
 तावत्पालन्तु वरस्यानि एष न समयं कृत ॥१३॥  
 तस्यास्त समयं सर्वं म राजा पर्यपालयत् ।  
 एव मा चावमन् तस्मिन् पुण्ड्रवामि भामिनी ॥१४॥  
 वर्षाभ्ययं चतुर्षष्टि तद्भुक्त्या शापमाहिना ।  
 उर्वशी मानुष प्राप्ता गन्धर्वाश्चिन्त्याम्विता ॥१५॥  
 चिन्तयध्व महाभागा यथा मा तु वगाङ्गना ।  
 आगच्छेत्तु पुनर्देवानुर्वशी स्वर्गभूपला ॥१६॥

ऋषियो ने कहा—हे बहुभ्रूत । भवति बहुत परिण धाता के गुणने वाले  
 या ज्ञान वाले । उर्वशी देवी तो गन्धर्व ज्ञानी की थीं जामि देवा की ही एव  
 गायन करने वाली विनेय जानि है, उनने मनुष्य जानि के राजा को समस्त



देवनाभो को छोड़कर किम तरह वरण किया था अर्थात् वह देवाङ्गना होते हुए मनुष्य को कैसे प्राप्त होगई—यह स्पष्ट बतलाइये ॥६॥ श्री सूतजी ने कहा— वह उर्वशी ब्रह्म शाप में अभिभूत होकर मनुष्यता को प्राप्त हुई थी उस बरगोहा ने (वह जिमके शरीर के अङ्गों का अग्रिम आगेहण होता है) कुछ समय तक नियम पालनपूर्वक व्यवस्थित होकर ऐल के पाम निवास किया था ॥१०॥ उसने अपने शाप की मुक्ति के लिए कुछ नियम (शर्तें) किये थे और वे ये थे— एक तो नानावस्था में दर्शन नहीं करना था और दूसरा बिना काम की वाचना के मैथुन करने का था ॥११॥ वह राजा शयनाभ्याम में दो भेष तक व्यवस्थित रहता था और राजा केवल एतवार घृत का ही आहार करने वाला रहता था ॥१२॥ उर्वशी ने ये शर्तें तय करती थी और राजा से कह दिया था कि हे राजन् ! आपकी ये शर्तें जब तक दृढ़ता के साथ पालन की जावेंगी उतने ही समय तक मैं आपके साथ निवास करूँगी—यह हमारा किया हुआ समय अर्थात् नियम तथा शर्त है ॥१३॥ उस उर्वशी के द्वारा विष्णु हुए उस नियम को उस राजा ने पूर्ण रूप में पालन किया था और इस प्रकार में वह भामिनी (उर्वशी) उस पुण्यवा के पाम निवास करती थी ॥१४॥ इसके अनन्तर शाप मोहित उर्वशी को इसकी भक्ति में चोमठ वर्ष व्यतीत होगये थे । उवशी मनुष्य जाति के राजा के पाम चली गई—इस बात में गन्धर्व लोग अत्यन्त चिन्ता में युक्त होगये थे ॥१५॥ गन्धर्वों ने कहा—हे महान् भाग वाको ? ऐसा कोई उपाय सोचो, कि वह बराङ्गना उर्वशी जिम रीति में फिर देवा के पाम वापिस आजावे वगैरे वह तो हम स्वर्गलोक की सोधा करने वाले भूपल के समान है ॥१६॥

ततो विश्वावसुर्नाम तत्राह वदता वर ।

नया तु समयस्तत्र विद्यमानो मनोऽनघ ॥१७

समयद्युत्तमात् सा वै राजान त्यज्यते यथा ।

तदह वच्मि यः सर्वं यथा त्यज्यति मा नृपम् ॥१८

महमा योगमेत्यामि युग्मात् कार्यमिच्छे ।

एवमुक्त्वा गतन्तत्र प्रतिष्ठान महायशा ॥१९

स निशायामथागम्य मेपमेक जहार वं ।  
 मातृवद्वर्त्तते सा तु मेपयोश्चाच्छासिनी ॥२०॥  
 गन्धर्वागमन ज्ञात्वा शयनस्थ्या यशस्विनी ।  
 राजानमब्रवीत्मा तु पुत्रो मे ह्लियतेति वं ॥२१॥  
 एवमुक्तो विनिश्चित्य नग्नस्तिष्ठति वं नृप ।  
 नग्न द्रक्ष्यति मा देवी समथो वितथो भवेत् ॥२२॥  
 ततो भूयस्तु गन्धर्वा द्वितीय मेपमाददु ।  
 द्वितीयेऽपत्तते मेपे ऐल देवी तमब्रवीत् ॥२३॥  
 पुत्रो मम त्वृती राजन्ननाथाया इव प्रभो ।  
 एवमुक्तस्तदोत्थाय नग्नो राजा प्रधावित ॥२४॥

इसके अनन्तर उस समय वहाँ पर बोलने वाली मे श्रेष्ठ विदवावसु नाम  
 वाली गन्धर्व बोली कि उसने वहाँ पर भय से रहित समय ( नियम या शर्त )  
 किया हुआ माना है ॥१७॥ उस किये हुए समय ( नियम ) के व्युत्क्रम होने से  
 ही राजा को त्याग देगी और जिस तरह उन समय का व्युत्क्रम हो सकता है  
 वह सब मैं तुमको बतलाता हूँ कि जिसके कारण वह राजा का त्याग करदे  
 ॥१८॥ मैं तुम्हें ही आप लोगों के कार्य की मिद्धि के लिये योग को प्राप्त  
 होगी । यह कहकर वह महान् यशवाला विदवावसु उस प्रतिष्ठान पर पहुँच  
 गया था ॥१९॥ उसने रात्रि में आकर उन दो मेथों में से एक का हरण कर  
 लिया था । वह चार अर्पान् मुन्दर हास वाली उर्वशी उन दोनों मेथों की माता  
 की भानि रहती है ॥२०॥ दामन में स्थित रहती हुई यशस्विनी उस उर्वशी ने  
 राजा से कहा मेरा पुत्र का हरण हुआ है ॥२१॥ इस तरह कहा गया राजा  
 नग्न स्थित हो जाना है यह निश्चय करके कि वह देवी मुझे नग्न का देवेगी तो  
 जो समय था ( अर्पान् शर्त थी ) वह असत्य हो जायगा ॥२२॥ इसके बाद पुन  
 गन्धर्वों ने दूसरा मेप भी ले लिया था । दूसरे मेप के अग्रहृत होजाने पर वह  
 देवी उर्वशी ऐल मे बोली ॥२३॥ हे प्रभो ! हे राजन् ! प्रनाथा की भानि मेरे  
 दोनों पुत्र अग्रहृत होगये हैं । ऐसा कहा गया राजा उन समय नग्न ही उठ  
 कर दौडा ॥ २४ ॥

मेपाभ्या पदवी राजन् गन्धर्व्व्युत्थितामथ ।  
 उत्पादिता तु महती माया तद्भवन महत् ॥२५  
 प्रकाशितन्तु सहसा ततो नग्नमवेक्ष्य सा ।  
 नग्न दृष्ट्वा तिरोऽभूत्सा अप्सरा कामरूपिणी ॥२६  
 तिरोभूतान्तु ता ज्ञात्वा गन्धर्वास्तत्र ताबुभौ ।  
 मेपो त्यक्त्वा च ते सर्वे तत्रैवान्तर्हिताभवन् ॥२७  
 उत्मृष्टावुरणी दृष्ट्वा राजा गृह्यागत प्रभु ।  
 अपश्यस्ता तु वै राजा विललाप मुदु खित ॥२८  
 चचार पृथिवी चैव मार्गमाणस्ततस्ततः ।  
 अथापश्यच्च ता राजा कुरुक्षेत्रे महाबल ॥२९  
 प्लक्षतीर्थे पुष्करिण्या विगाडेनाम्बुनाप्लुताम् ।  
 श्रीङ्गतीमप्सरोभिश्च पञ्चभि सह शोभनाम् ॥३०  
 अपश्यत्सा तत मुञ्चू राजानमविदूरत ।  
 उर्वशी ता सखी प्राह अय स पुरपोत्तम ॥३१  
 यस्मिन्नहमवात्स हि दशंयाभास त नृपम् ।  
 तत आविर्बभूवुस्ता पञ्चचूडाप्सरास्तु ता ॥३२

हे राजन् ! मेपा के द्वारा बनी हुई पदवी को अर्थात् मार्ग मे राजा ने  
 शीघ्र सगाई थी और गन्धर्वों के द्वारा बनी माया उत्पन्न करदी गई थी कि वह  
 महान् भवन सहसा प्रकाश से युक्त होगया और फिर उस उर्वशी ने राजा को  
 नग्न देख लिया था तथा नग्नवस्था में राजा को देखकर वह कायरूप धारण  
 करने वाली अप्सरा तिरोभूत हागई थी ॥२५-२६॥ वहाँ पर उन गन्धर्वों ने  
 जब यह जान लिया कि वह उर्वशी छिप गई है यानी तिरोहित होगई है तो वे  
 दोनों मेपो को वहाँ पर छाड़ कर वे सब भी वही अन्तर्धान होगये थे ॥२७॥  
 उन त्यागे हुए मेपो को लेकर राजा आया तो वहाँ उस अप्सरा उर्वशी को न  
 देखते हुए बहुत दुःखित होकर विलाप करने लगा ॥२८॥ इसके पश्चात् वह  
 राजा उसे धर-उधर खोजता हुआ पृथिवी पर विचरण कर रहा था और इसके  
 पश्चात् महा बलवान् राजा ने उमका कुरुक्षेत्र में देना था ॥२९॥ यह उर्वशी

प्लक्ष तीर्थ में जो पुष्करिणी है उसमें खूब गहरे जल में आप्लुत थी और पाँच अप्सराओं के साथ क्रीडा करती हुई परम शोभा से युक्त वहाँ उस को राजा ने देखा था ॥३०॥ उस मुञ्जू ने निवट से राजा का देखा और इसके पश्चात् अपनी उन सहेलियों से उर्वशी ने कहा कि वह यह श्रेष्ठ पुरुष है ॥३१॥ जिसके साथ मैंने निवास किया था—यह कहकर उनको वह राजा दिखना दिया था । इसके अनन्तर वे सब प्रकट होगईं थी । पञ्चचूडा अप्सरा थी ॥३२॥

दृष्ट्वा तु राजा ता प्रीत प्रलापान् कुरुते बहून् ।

आयाहि तिष्ठ मनसा धीरे वचसि तिष्ठ हे ॥३३

एवमादीनि सूक्ष्माणि परस्परमभाषत ।

उर्वशी त्वन्नवीच्च ल समर्भाह त्वया प्रभो ॥३४

सवत्सरात् कुमारस्ते भविता नव सशय ।

निशामेकान्तु वै राजा ह्यवसत्तु तथा सह ॥३५

सन्नरदृष्टो जगामाथ स्वपुरन्तु महायशा ।

गते सवत्सरे राजा उर्वशी पुनरागमत् ॥३६

उपित्वा तु तथा साङ्गमेकरात्र महामनाः ।

वामार्त्तश्चा ब्रवीद्दीनो भव नित्य ममेति वै ॥३७

उर्वश्यथात्रवीच्च ल गन्धर्वास्ति वरं ददु ।

त वृणीष्व महाराज ब्रूहि चैतास्त्वमेव हि ॥३८

वृणे नित्य हि सालोक्य गन्धर्वाणा महात्मनाम् ।

ततेत्युक्त्वा वर वस्रे गन्धर्वाश्च तथास्त्विति ॥३९

स्थालीमग्ने पूरयित्वा गन्धर्वाश्च तमन्नृषन् ।

अनेन दृष्ट्वा लोकन्त प्राप्स्यसि त्व नराधिप ॥४०

राजा ने उसको देखकर परम प्रसन्नता प्राप्त की और वह बहुत से प्रलाप करने लगा जैसे—आधो, ठहरो, मनसे धीरे वचन में स्थित होजा, इत्यादि अनर्थक वचन राजा ने कहे ॥३३॥ इस प्रकार से बहुत-सी सूक्ष्म बातें आपस में बोलीं और फिर उर्वशी ने ऐल से कहा—हे प्रभो ! मैं आपसे गर्भ वाली होगई हूँ ॥३४॥ एक वर्ष में तुम्हारा कुमार उत्पन्न होगा—इसमें कोई भी सशय

मेघाम्बा पदवी राजन् गन्धर्व्यैर्द्युं त्यितामथ ।  
 उत्पादिता तु महती माया तद्भूवन महन् ॥२५  
 प्राशितन्तु सहसा ततो नग्नमवेक्ष्य सा ।  
 नग्न दृष्ट्वा तिरोऽभूत्सा अप्सरा वामरूपिणी ॥२६  
 तिरोभूतान्तु ता ज्ञात्वा गन्धर्वाम्बत्र ताकुभौ ।  
 मेघो त्यक्त्वा च ते सर्वे तत्रैवान्तर्हिताभवन् ॥२७  
 उत्सृष्टावुराणो दृष्ट्वा राजा गृह्यागत प्रभु ।  
 अपश्यस्ता तु यं राजा विललाप मुहु खित ॥२८  
 चचार पृथिवी चैव मार्गमाणस्ततस्ततः ।  
 यथापश्यच्च ता राजा कुरशेने महाबल ॥२९  
 प्लक्षतीर्ये पुष्करिण्या विगाहेनाभ्युनाप्नुताम् ।  
 श्रीङ्गतीमप्सरोंभिश्च पञ्चभि सह शोभनाम् ॥३०  
 अपश्यत्सा तत गुभ्रू राजानमबिदूरत ।  
 उर्वशी ता सखी प्राह अय स पुरपोत्तम ॥३१  
 यस्मिन्नहमवात्स हि दर्शयामाम त नृपम् ।  
 तत आविर्बभूवुस्ता पञ्चचडाप्सरास्तु ता ॥३२

हे राजन् ! मेघा के द्वारा बनी हुई पदवी को अर्थात् मार्ग में राजा ने  
 ः लगाई थी और गन्धर्वों के द्वारा बड़ी माया उत्पन्न कर दी गई थी कि वह  
 न् भवन सहसा प्रकाश में युक्त होगया और फिर उस उर्वशी ने राजा को  
 ः देख लिया था तथा नग्नावस्था में राजा को देखकर वह वामरूप धारण  
 न वाली अप्सरा तिराभूत हुआई थी ॥२५-२६॥ वही पर उन गन्धर्वों ने  
 यह जान लिया कि वह उर्वशी छिप गई है यानी तिरोहित हुआई है तो वे  
 णों मेघो को वहाँ पर छोड़ कर वे सब भी वही अन्तर्धान होगये थे ॥२७॥  
 त्यागे हुए मेघो को लेकर राजा आया तो वहाँ उस अप्सरा उर्वशी को न  
 ते हुए बहुत दुःखित होकर विलाप करने लगा ॥२८॥ इसके पश्चात् वह  
 ः उसे इधर उधर खोजता हुआ पृथिवी पर विचरण कर रहा था और इसके  
 वान् महा बलवान् राजा ने उसका कुरुशेन म देखा था ॥२९॥ वह उर्वशी

प्लक्ष तीर्थ में जो पुष्करिणी है उनमें खूब गहरे जल में आप्नुत थी और पाँच अप्सराओं के साथ क्रीडा करती हुई परम शोभा से युक्त वहाँ उस को राजा ने देखा था ॥३०॥ उस सुभू ने निकट से राजा को देखा और इसके पश्चात् अपनी उन सहेलियों से उर्वशी ने कहा कि वह यह श्रेष्ठ पुरुष है ॥३१॥ जिसके साथ मैंने निवास किया था—यह कहकर उनको वह राजा दिखला दिया था । इसके अनन्तर वे सब प्रकट होगई थी । पञ्चषूडा अप्सरा थी ॥३२॥

दृष्ट्वा तु राजा ता प्रीत प्रलापान् कुरुते बहून् ।

आयाहि तिष्ठ मनसा घोरं वचसि तिष्ठ हे ॥३३॥

एवमादीनि सूक्ष्माणि परस्परमभाषत ।

उर्वशी त्वन्नवीजं ल सगर्भाह त्वया प्रभो ॥३४॥

सवस्तरात् कुमारस्ते भविता नव सशयः ।

निशामेकान्तु वं राजा ह्यवसत्तु तथा सह ॥३५॥

सन्प्रदृष्टो जगामाथ स्वपुरन्तु महायशा ।

गते सवत्सरे राजा उर्वशी पुनरागमत् ॥३६॥

उपित्वा तु तथा सार्द्धं मेकरात्र महामनाः ।

वामार्तंश्चा ब्रवीद्दीनो भव नित्य ममेति वं ॥३७॥

उर्वंश्ययाववीजं ल गन्धर्वास्ते वर ददु ।

त वृणीष्व महाराज ब्रू हि चैतास्त्वमेव हि ॥३८॥

वृणो नित्य हि सालोक्य गन्धर्वाणा महात्मनाम् ।

ततेत्युक्त्वा वर वन्न गन्धर्वाश्च तथास्त्विति ॥३९॥

स्थालीमग्ने पूरयित्वा गन्धर्वाश्च तमब्रूवन् ।

अनेन दृष्ट्वा लोकन्त प्राप्स्यसि त्व नराधिप ॥४०॥

राजा ने उसको देखकर परम प्रसन्नता प्राप्त की और वह बहुत से प्रशाम करने लगा जैसे—आप्रो, ठहरो, मनसे घोर वचन में स्थित होजा, इत्यादि अनर्थक वचन राजा ने कहे ॥३३॥ इस प्रकार से बहुत-सी सूक्ष्म बातें आपस में बोलीं और फिर उर्वशी ने ऐस से कहा—हे प्रभो ! मैं आपसे गर्भ वाली होगई हूँ ॥३४॥ एक वर्ष में तुम्हारा कुमार उत्पन्न होगा—इसमें कोई भी सशय

मही है । यह राजा एक रात बड़ा उगरे गाय रहा ॥३५॥ वह राजा परम प्रगल्भ होता हुआ महान् यज्ञ थाता घबने पुर को वाग्नि चला गया था । एक वर्ष के समाप्त होजाने पर राजा ऐन पुन वही उर्वशी के पास थापा था ॥३६॥ महान् मन थाता वह राजा गांध एव रात्रि तक वही उगरे गाय निवान करके घोर बाम से घात होता हुआ दीन होकर उर्वशी से बोला तुम मेरी नित्य ही रहने वाली होजाओ ॥३७॥ घोर इगने अन्नगंत उर्वशी ने ऐन से कहा उन गन्धर्वों ने गरदान दिया है—उमरा वरण कर—नो हे महाराज ! तुमही इनमे बहो ॥३८॥ महामा गन्धर्वों के नित्य गालोक्य को बरा । 'तथास्तु'—यह कह कर अर्घ्य ऐना ही होके गन्धर्वों ने बर दिया ॥३९॥ घोर स्थाली को अग्नि से भर कर गन्धर्वों ने जजने कहा—नरो के स्वामी ! इगने यजन कर्के तू उत सोच को प्राप्त हो जायगा ॥४०॥

तमादाय कुमारन्तु नगरायोपचक्रमे ।

निःक्षिप्य तमरण्याश्च स पुत्रन्तु गृह ययी ॥४१

पुनरादाय हृदयाग्निमदवत्य तत्र दृष्टवान् ।

समीपतस्तु त दृष्ट्वा हृदवत्य तत्र विस्मितः ॥४२

गन्धर्व्यम्यस्तथास्यातुमग्निना गा गतस्तु सः ।

श्रुत्वातमयमखिलमरणि तु समादिशत् ॥४३

अश्वत्यादरणि कृत्वा मथित्वाग्नि यथाविधि ।

तेनेष्ट्वा तु सलोक नः प्राप्स्यसि त्व नराधिप ।

मथित्वाग्नि त्रिधा कृत्वाह्ययजत्स नराधिप ॥४४

इष्ट्वा यज्ञैर्वहुविधंगतस्तेषा सलोकताम् ।

वासाय च स गन्धर्व्यस्त्रेताया स महारथ ।

एकोऽग्नि पूर्वमासीद्व ऐलस्त्री स्तानकल्पयत् ॥४५

एवप्रभावो राजासीदलस्तु द्विजसत्तमाः ।

देशे पुष्यतमे चैव महर्षिभिरलकृते ॥४६

राज्य स कारयामास प्रयागे पृथिवी पतिः ।

उत्तरे यामुने तीरे प्रतिष्ठाने महायज्ञा ॥४७

तस्य पुत्रा वमूबुहि पडिन्द्रोपमतेजस ।  
 गन्धर्व्यलोके विदिता आयुर्दोमानमावगुः ॥४८  
 विदवायुश्च गतायुश्च गतायुश्चोर्वशीमुता ।  
 श्रमावमोस्तु यं जातो भीमो राजाय विद्वजित् ॥४९

उग कुमार को लेकर नगर के लिये चन दिया था वह उग पुत्र को धरणी में दानकर गृह बना गया ॥४१॥ फिर लानर हृदय अग्नि अद्वय (पीपन) को बर्षा देना था । समीप में उगे अद्वय को देकर वहीं विरमित होगया ॥४२॥ गन्धर्वों में उग प्रकार में बहने के लिये अग्नि के द्वारा भूमि में गया हुआ वह उग गमस्त अर्थ को श्रवण कर अग्नि को आज्ञा दी ॥४३॥ अद्वय से धरणी में बरके और अग्नि को यथा विधि के अनुसार मथन कर हे नगधिप । मुम उगमें यजन करके धार हमारे मोक्ष को प्राप्त हो जाओगे । अग्नि का मन्थन करके उग राजा ने उगके तीन भाग बरके यजन किया था ॥४४॥ वह महारथ गन्धर्व दहन प्रार के पशों के द्वारा यजन करके श्रेया में उनही गमोरता को प्राप्त हुआ और वाग के निचे योग्य बना था । पहिले एव अग्नि या राजा ऐत न उग तीन बना दिया था ॥४५॥ इस प्रकार के प्रभाव वाता वह राजा ऐत हुआ है । हे द्विज श्रेयो । राजा ऐत महर्षियों के द्वारा अद्वय और परम पुण्य देन में हुआ था ॥४६॥ वह महान् यशवाता भूयति यमुना के उत्तर के तट पर प्रतिष्ठान म प्रयाग में राज्य किया जाता था अर्थात् उगने अरुनी राजपानी प्रयाग को बनाया था ॥४७॥ उगके इन्द्र के समान लेकरभी ई पुत्र हुए थे जोकि गन्धर्वों के मोक्ष में विरित थे । उनके नाम-आयु-भीमान्-धमावगु-विदवायु-गतायु और गतायु थे जोकि उर्वशी के पुत्र थे उमावगु में समान इग विद्व को जीतने वाता राजा भीम उच्यन्त हुआ ॥४८-४९॥

भीमान् भीमस्य दायादो राजामीतवाचनप्रभ ।  
 विद्वांसु वाचनस्यापि मुनेषोऽमूमहावन ॥५०  
 मुनेषाम्गामश्चतुः केनिकागर्भमम्भरः ।  
 प्रतिगन्त तपो गन्ता विपने यज्ञवर्मणि ॥५१



प्लावयामाम त देश भाविनोर्यस्य दर्शनात् ।  
 गङ्गाया प्लावित दृष्ट्वा यज्ञवाट समन्तत ॥५२  
 मोहोत्रिर्वरद क्रुद्धा गङ्गा सरक्तलोचन ।  
 यस्य गङ्गेऽजलेपस्य सद्य फलमवाप्नुहि ॥५३  
 एतत्ते विफल सर्व्वं पीतमम्भ करोम्यहम् ।  
 राजपिशा तत. पीता गङ्गा दृष्ट्वा सुरपंथ ॥५४  
 उपनिन्युमंहाभागा दुहितृत्वेन जाह्नवीम् ।  
 यौवनाश्वस्य पीत्रीन्तु कावेरोञ्जह्नु रावहत् ॥५५  
 युवनाश्वस्य शापेन गङ्गा येन विनिर्ममे ।  
 कावेरी सरिता थोष्ठा जह्नु भार्यामनिन्दिताम् ॥५६  
 जह्नुश्च दयित पुत्र मुहोन नाम धार्मिकम् ।  
 कावेर्या जनयामास अजकस्तस्य चात्मज ॥५७

श्रीमान् भीम का दायद अर्थान् पुत्र काञ्चनप्रभ राजा या श्रीर काञ्च-  
 नप्रभ राजा का पुत्र महान् बलवान् तथा परम विद्वान् सुहोत्र नाम वाला दृष्ट्वा  
 या ॥५०॥ सुहोत्र का पुत्र केशिका के गर्भ से उत्पन्न होने वाला जह्नु नाम  
 वाला हुआ । त्रिसके विस्तृत यज्ञ कर्म में गङ्गा ने आकर उस भाग को होने  
 वाले प्रयोजन के दर्शन के कारण से पूर्णतः प्लावित कर दिया था । गङ्गा के  
 द्वारा सब ओर से प्लावित यज्ञवाट को सुहोत्र के पुत्र जह्नु ने देखा ॥५१-५२॥  
 वरद जह्नु गङ्गा पर घत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उसके नेत्र क्रोधावेशसे लाल होगये  
 थे—उसने कहा—हे गङ्गा ! इस घमण्ड का तू तुरन्त ही फल प्राप्त कर ॥५३॥  
 यह नेरा जल सब पान कर मैं विफल कर देता हूँ । देवपियो ने उस राजपि के  
 द्वारा गङ्गा को पीत अर्थान् पान की हुई देखा ॥५४॥ पीत गङ्गा को देखकर  
 महान् भाग वाले सुरपियो ने उसको जह्नु राजा की पुत्री उपनीत किया था ।  
 जह्नु राजा ने यौवनाश्व की पीथी कावेरी के साथ विवाह किया था ॥५५॥  
 युवनाश्व के त्रिम शाप से गङ्गा ने थोष्ठा सरिता कावेरी को जह्नु की अनिन्दित  
 भार्या बनाया था ॥५६॥ जह्नु राजा ने दयित पुत्र जोकि परम धार्मिक था  
 ऐसा सुहोत्र नाम वाला कावेरी में उत्पन्न किया था और उसका चात्मज अजक  
 हुआ था ॥५७॥

अजकस्य तु दायादो दलाकाद्वो महायना ।  
 बभूवुश्च गय शीलः कुशस्तस्यात्मज स्मृत ॥१५८  
 कुशपुत्रा बभूवुश्च चत्वारो वेदवचंस ।  
 कुशादव. कुशनाभश्च अमूर्त्तार्यशोवगुः ॥१५९  
 कुशस्तम्बस्तपस्तेपे पुत्रार्थी राजसत्तम ।  
 पूर्णो वर्षसहस्रे वै क्षतक्रानुमपदयत ॥१६०  
 समुद्रतपसां दृष्ट्वा राहभ्राक्ष पुरन्दरः ।  
 समर्थं पुत्रजनने स्वयमेवास्य शादवतः ॥१६१  
 पुत्रत्व कल्पयामास स्वयमेव पुरन्दर ।  
 गाधिर्नामाभवत्पुत्र कौशिक. पाकशासनः ॥१६२  
 पौत्रुत्सामवद्भार्या गाधिस्तस्यामजायत ।  
 पूर्व्वं कन्या महाभगा नाम्ना सत्यवती शुभाम् ।  
 ता गाधिपुत्र काव्याय ऋचीकाय ददौ प्रभु ॥१६३  
 तस्या पुत्रस्तु वै भर्त्ता भार्गवो भृगुनन्दन ।  
 पुत्रार्थे साधयामास चर गाधेस्तपैव च ॥१६४  
 तथा चाहय मुधृतिर्ऋचीको भार्गवस्तदा ।  
 उपयोज्यश्चरस्य त्वया मात्रा च ते शुभे ॥१६५

अत्र क का पुत्र महान् यस्य दाना बलाशाश्च हुमा या और उसने पुत्र  
 गय-शील तथा कुशक हुए ॥१५८॥ कुश क वेदवचंस जाने कुशाश्च-कुशनाभ-  
 अमूर्त्तार और यशोवगु ये चार पुत्र हुए ये ॥१५९॥ राजागो मे परमश्रेष्ठ कुश-  
 स्तम्ब ने पुत्र की प्राप्ति का इच्छुक होने हुए पूरे एक सहस्र वर्ष तक तपस्या  
 की थी और इन्द्र का दान प्राप्त किया था ॥१६०॥ महर्षि नेत्रो जाने इन्द्र ने  
 उगको उप तपस्वियों करने जाने की देखकर इसने पुत्र उत्पन्न होने में स्वय ही  
 साधन समर्थ होकर था ॥१६१॥ इन्द्र ने स्वय ही पुत्रत्व की कल्पना की थी  
 और पाकशासन (इन्द्र) गाधि नाम काना कौशिक पुत्र हुआ था ॥१६२॥ शौल्-  
 क्रुणा नाम कानी भार्या थी उसमें गाधि उत्पन्न हुए । पहिले महान् भाग वाली  
 सत्यवती नाम कानी उस शुभ कन्या की प्रभु गाधि पुत्र ने ऋचीक काव्य का

दी थी ॥६३॥ उसमें भृगुनन्दन भरण करने वाले भाग्यंश पुत्र हुए । पुत्र के लिए गाधि से चरु का गाधन किया या ॥६४॥ उस समय मुधुनि को बुलाकर ऋचीक भाग्यंश ने कहा—हे शुभे ! इस चरु का तुझे और तेरी माता को उपयोग करना चाहिए ॥६५॥

तस्या जनिष्यते पुत्रो दीप्तिमान् क्षत्रियर्षभ ।

अजेय क्षत्रियैर्मुद्धे क्षत्रियर्षभसूदन ॥६६

तवापि पुत्रं कल्याणि घृतिमन्त तपोधनम् ।

समात्मक द्विजश्रेष्ठं चरुरेप विधास्यति ॥६७

एवमुक्त्वा तु ता भार्यामृचीको भृगुनन्दन ।

तपस्यभिरतो नित्यमरण्य प्रविवेक्ष ह ॥६८

गाधिः सदा रस्तु तदा क्षत्रीकाथमम्यगात् ।

तीर्थंयानाप्रसङ्गेन सुता द्रष्टु नरेदवर ॥६९

चरुद्वय गृहीत्वा तु ऋषेः सत्यवती सदा ।

भर्तुर्वचनमव्यग्रा हृष्टा मात्रे न्यवेदयत् ॥७०

माता तु तस्यै दंवेन दुहित्रे स्व चरु ददौ ।

तस्याश्चरुमयाज्ञानादात्मन सा चकार ह ॥७१

अथ सत्यवती गर्भे क्षत्रियान्तकर शुभम् ।

धारयामास दीप्तेन वपुषा घोरदर्शना ॥७२

तमृचीवस्ततो दृष्ट्वा योगेनाप्यनुमृश्य च ।

तदाश्र्वीद्विजश्रेष्ठ स्वा भार्या वरवर्णिनीम् ॥७३

मातुः सिद्धयति ते भद्रे चरुव्यस्यासहेतुना ।

जनिष्यति हि पुत्रस्ते क्रूरकर्मातिदारुण ॥७४

उसमें ऐसा एक पुत्र उत्पन्न होगा जो क्षत्रियो में परमश्रेष्ठ और दीप्तिमान् होगा जिसको युद्ध में क्षत्रियो के द्वारा जीता नहीं जा सकता है, वह क्षत्रियर्षभ सूदन होगा ॥६६॥ हे कल्याणी ! तुझको भी यह चरुघृति वाला—तपोधन, राम के स्वरूप वाला और द्विजों में श्रेष्ठ पुत्र होगा ॥६७॥ इस प्रकार मैं भार्या से कहकर ऋचीक भृगुनन्दन नित्य ही तपस्था में अभिरति रखने वाला

होकर अरण्य में प्रविष्ट होगये थे ॥६८॥ उन समय गार्गी पत्नी के साथ ऋचीक के आश्रम में गये । वह नरेश्वर तीर्थयात्रा करने से प्रसङ्ग में अपनी पुत्री की देखने के लिये आश्रम में पहुँचे थे ॥६९॥ सत्यवती ने ऋषि के चरद्वय अर्थात् दोनों चरुओं को लेकर सदा स्वाधी के वचन से प्रव्यग्र रहती हुई प्रसन्न होकर अपनी माता से निवेदन किया था ॥७०॥ माता ने दैववशात् उस धेरी के लिए अपना चर दे दिया और अज्ञान से उसके चर को अपना कर लिया था ॥७१॥ इसके अनन्तर सत्यवती ने क्षत्रियों के अन्त तक कर देने वाला शुभ गर्भ धारण किया था जिसका शरीर शक्ति वीर्य था और उससे वह घोर दर्शन वाली थी ॥७२॥ ऋचीक ने उसे देखकर घोर फिर योग के द्वारा भी विचार कर तब वह द्विजों में श्रेष्ठ अपनी वरवर्णिनी भार्या से बोला ॥७३॥ हे भद्रे ! चारु के व्यस्याम (उलट-पलट) के कारण से तुझे माता का चर प्राप्त हुआ है अतः तेरे क्रूरकर्म करने वाला अत्यन्त दारुण पुत्र पैदा होगा ॥७४॥

माता जनिष्यते वापि तथाभूत तपोधनम् ।  
 विश्व हि ब्रह्म तपसा मया तत्र समर्पितम् ॥७५॥  
 एवमुक्त्वा महाभागा भर्त्रा सत्यवती तदा ।  
 प्रसादयामास पतिं मुनी मे नेदृशो भवेत् ।  
 ब्राह्मणापसदस्त्रय इत्युक्तो मुनिरब्रवीत् ॥७६॥  
 नैप सङ्कल्पित वामो मया भद्रे तथा त्वया ।  
 उग्रकर्मा भवेत् पुत्र पितुर्मर्तुश्च कारणात् ॥७७॥  
 पुन सत्यवती वाक्यमेवमुक्त्वाब्रवीदिदम् ।  
 इच्छेन्नलोकानपि मुने सृजेथाः किं पुन सुतम् ॥७८॥  
 दामात्मकमृजु भर्तुं पुत्र मे दातुमर्हति ।  
 काममेवविध पुत्रो मम स्यात्तु वद प्रभो ॥७९॥  
 मय्यन्यथा न शक्य वै कर्तुंमेव द्विजोत्तम ।  
 तत प्रसादमकरोत् स तस्यास्तपसो बलात् ॥८०॥  
 पुत्रे नास्ति विशेषो मे पात्रे वा वरवर्णिनि ।  
 त्वया यथोक्त वचन तथा भद्रे भविष्यति ॥८१॥

तस्मात् सत्यवती पुत्र जनयामास भार्गवम् ।  
तपस्यभिरतन्दान्त जमदग्नि शमात्मवम् ॥८२

तेरी माता ऐसा परम तपस्वी पुत्र पैदा करेगी मैंने वहाँ तप के द्वारा ब्रह्म को समर्पित किया है ॥७५॥ इस प्रकार से अपने पति के द्वारा कही गई सत्यवती उस समय पनि को प्रसन्न करने लगी कि मेरा पुत्र इस प्रकार का जन्म लेवे । अथ ब्राह्मणसद है इस प्रकार से कहे गये मुनि बोले ॥७६॥ हे भद्रे ! इस प्रकार की यह इच्छा मैंने तथा तूने कभी नहीं की थी । उपक्रम करने वाला पुत्र पिता और माता के कारण से होता है ॥७७॥ फिर इस प्रकार से कही गई सत्यवती यह वचन बोली—हे मुने ! इच्छा करते हुए तो लोगों का भी सृजन करते हैं फिर पुत्र के विषय में क्या बात है ॥७८॥ हे स्वामिन् ! सीधा और दाम स्वरूप वाला पुत्र मुझे देने के योग्य हैं । हे प्रभो ! इच्छानुकूल इस प्रकार का पुत्र मेरा हो जावे और ऐसा कह देवें ॥७९॥ हे द्विजोत्तम ! मुझमें अथवा नहीं किया जा सकता है । इसके अनन्तर तप के बल से उसने उस पर प्रमत्तता की थी ॥८०॥ हे वरवर्णिनि ! मेरे पुत्र अथवा पौत्र में विशेषता नहीं है । तूने जैसा कहा है हे भद्रे ! वैसा ही वचन होगा ॥८१॥ इससे सत्यवती ने तप में अभिरति रखने वाला—वान्त और शमात्मक जमदग्नि भार्गव पुत्र को जन्म दिया था ॥८२॥

भृगोश्चरुविषयसि रौद्रवैष्णवयो पुरा ।  
यमनाद्रौ षण्णवस्याग्नेर्जमदग्निरजायत ॥८३  
विश्वामित्र तु दायाद गाधि कुशिकनन्दन ।  
प्राप्य ब्रह्मर्षिसहिनो (सविता) जगाम ब्रह्मणा वृत ॥८४  
सा हि सत्यवती पुण्या सत्यव्रतनरायणा ।  
वैशिवीति समाख्याता प्रवृत्तय महानदी ॥८५  
परिल्लुता महाभागा वैशिकी सारता वरा ।  
इत्वायुवने त्वभवत्मुवेणुर्नाम पार्थिव ॥८६  
तस्या कन्या महाभागा कामी नाम रेणुका ।

रेणुकायान्नु कामल्यां तपोधृतिसमन्वित ।  
 धार्मीको जनयामास जमदग्नि मुदारुणम् ॥८७  
 सर्वविद्यान्तग श्रेष्ठं धनुर्वेदस्य पारगम् ।  
 राम क्षत्रियहन्तार प्रदीप्तमिव पावकम् ॥८८  
 श्रोर्व्वस्यैवमृचीकस्य सत्यवत्या महामना ।  
 जमदग्निस्ततो वीर्याज्जिज्ञे ब्रह्मविदा वरः ।  
 मध्यमश्च शुन.शेफः शुन.पुच्छ कनिष्ठक ॥८९  
 विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा नाम्ना विश्वरथ स्मृतः ।  
 जज्ञे भृगुप्रसादेन कौशिकाद्वंशवद्धं न ॥९०

पहिने भृगु के गौद्र और बंप्णाव के बर के ब्यरथास होने पर बप्णाव  
 अग्नि के यमन से जमदग्नि उत्पन्न हुए थे ॥८३॥ कुशिक नन्दन गाधि ने दायद  
 विश्वामित्र को प्राप्त कर ब्रह्मापियो के सहित ब्रह्मा से वृत होकर गया था ॥८४॥  
 वह सत्यवती परम पवित्र प्रौर सत्य के व्रत मे परायण थी जोकि कौशिकी इम  
 नाम से प्रवृत्त यह महानदी कहलाई थी ॥८५॥ सरिताद्यो मे श्रेष्ठ महान् भाग  
 धानी कौशिकी परिरुत हुई थी । इक्ष्वाकु के वश मे वेणु नाम वाला राजा  
 हुआ था ॥८६॥ उसकी महान् भाग वाली कन्या कामली नाम वाली रेणुका  
 थी । रेणुका कामलीमे धार्मीक जमदग्नि ने जोकि तप प्रौर धुनि मे समन्वित थे,  
 मुदारुण को उत्पन्न किया था ॥८७॥ जोकि समस्त विद्यायो का पारगामी-  
 शेप और धनुर्वेद के परम परिणत थे जिनका नाम राम था तथा प्रदीप्त पावक  
 (अग्नि) के समान एव क्षत्रियो का हनन करने वाले हुए थे ॥८८॥ ब्रह्मवेत्ताओ  
 मे श्रेष्ठ, महान् मन वाले जमदग्नि ने सत्यवती मे श्रोर्व्व ऋचीक के वीर्य से राम  
 को उत्पन्न किया था । और मध्यम शुन शेफ तथा सबसे छोटा शुन पुच्छ था  
 ॥८९॥ विश्वामित्र तो बहुत ही धर्मात्मा थे और नाम से विश्वरथ कहे गये थे ।  
 भृगु के प्रसाद मे कौशिक से वश के बढाने वाले उत्पन्न हुए थे ॥९०॥

विश्वामित्रस्य पुत्रस्तु शुन शेफोऽभवन्मुनिः ।

हरिश्चन्द्रस्य यज्ञे तु पशुत्वे नियुत स वै ।

देवदत्त स वै यस्माद् बरातस्ततोऽभवत् ॥९१

विश्वामित्रस्य पुत्राणां शुनः शेषोऽग्रजः स्मृतः ।  
 मधुच्छन्दो नपश्चैव कृते देवौ ध्रुवाष्टकौ ॥६२॥  
 कच्छपः पूरणश्चैव विश्वामित्रमुनास्तु वै ।  
 तेषां गोश्राणि बहुधा कौशिकानां महात्मनाम् ॥६३॥  
 पार्थिवा देवराताश्च याज्ञवल्क्याः समर्पणाः ।  
 उदुम्बरा उदुम्बलानास्तारका यममुञ्चनाः ॥६४॥  
 लोहिष्यो रेणवश्चैव तथा कारीपवः स्मृताः ।  
 बभ्रवः पाणिनश्चैव ध्यानजप्यास्तथैव च ॥६५॥  
 शालावत्या हिरण्याक्षा स्यट्कृता गालवा स्मृताः ।  
 देवला यामदूताश्च शालङ्कायनवाष्कलाः ॥६६॥  
 ददाति वादराश्रान्ये विश्वामित्रस्य धीमतः ।  
 ऋष्यन्तरविवाह्यास्ते बहवः कौशिका स्मृता ॥६७॥  
 कौशिकासोऽश्रुमाश्चैव तथान्ये संधवायनाः ।  
 पौरोरवस्य पुण्यस्य ब्रह्मर्षेः कौशिकस्य तु ॥६८॥

विश्वामित्र के पुत्र शुन शेष मुनि हुए थे । वह राजा हरिश्चन्द्र के यज्ञ में  
 समुत्सव में नियुक्त किये थे । देवों के द्वारा बहू दिया गया था इससे तब देवराज  
 हुए थे ॥६१॥ विश्वामित्र के पुत्रों में शुन शेष सबसे बड़ा कहा गया था । मधु-  
 मच्छन्द और नप, कृतदेव ध्रुवाष्टक—कच्छप और पूरण ये सब विश्वामित्र के  
 पुत्र थे । उन महात्मा कौशिकों के बहुत प्रकार के गोत्र हैं ॥६२-६३॥ पार्थिव-  
 २ ११०—याज्ञवल्क्य—समर्पण—उदुम्बर—उदुम्बलान—तारक—यममुञ्चन—लोहिष्य—  
 १११—बभ्रव—पाणिन—ध्यान जप—शालावत्य—हिरण्याक्ष—स्यट्कृत—  
 ११२—यामदूत—शालङ्कायन—वाष्कल और वादर ये धीमान् विश्वामित्र  
 के पुत्रों के गोत्र बड़े गये हैं । वे अन्य ऋषि के विवाह के योग्य बहुत कौशिक  
 बड़े गये हैं ॥६४ ६५-६६-६७॥ पौरोरव, पुण्य, ब्रह्मर्षि कौशिक के कौशिक-  
 सोऽश्रुम तथा अन्य संधवायन हैं ॥६८॥

दृषद्वतीसूतश्चापि विश्वामित्रात्तथाष्टकः ।

अष्टरुस्य सुतो यो हि प्रोक्तो जह्नु गणो मया ॥६९॥

किं लक्षणेन धर्मेण तपसेह श्रुतेन वा ।  
 ब्राह्मण्य समनुप्राप्तं विश्वामित्रादिभिर्नृपैः ॥१००॥  
 येन येनाभिधानेन ब्राह्मण्य क्षत्रिया गता ।  
 विशेषेण ज्ञानुमिच्छामि तपसा दानतस्तथा ॥१०१॥  
 एवमुक्तस्ततो वाक्यमब्रवीदिदमर्थवत् ।  
 अन्यायोपगतैर्द्रव्यैराहृत्य यजने धिया ।  
 धर्माभिकाक्षी यजते न धर्मफलमश्नुते ॥१०२॥  
 धर्मं चैतं समाख्याय पापात्मा पुरुषाधम ।  
 ददाति दानं विप्रेभ्यो लोकानां दम्भकारणात् ॥१०३॥  
 जप कृत्वा तथा तीव्रं धनलाभात्तिरकुश ।  
 रागमोहान्वितो ह्यन्ते पावनार्थं ददाति यः ॥१०४॥  
 तेन दत्तानि दानानि अफलानि भवन्त्युत ।  
 तस्य धर्मप्रवृत्तस्य हिमकस्य दुरात्मनः ॥१०५॥  
 एव लब्ध्वा धनमोहाद्ददतो यजतश्च ह ।  
 सविलष्टकर्मणो दानं न तिष्ठति दुरात्मनः ॥१०६॥

विश्वामित्र ने दृपद्वी का पुत्र अष्टक हुआ । अष्टक का जो मुत था वह  
 जहनुगण में दे दिया है ॥१६१॥ ऋषिधो ने कहा—विश्वामित्र आदि राजाओं  
 ने किम लगण वाके धर्म के द्वारा तपस्या से अथवा श्रुत से ब्राह्मणत्व प्राप्त  
 किया था ॥१००॥ किम किम अविधान से क्षत्रिय लोग ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुए  
 थे तप के द्वारा या दान के द्वारा हुए उसके विशेष को जानने की इच्छा है  
 ॥१०१॥ इन प्रकार से कहे गये वे इनके पश्चात् यह अर्थ से युक्त वाक्य बोले—  
 अन्धकार में उपगत द्रव्यों को लेकर उनसे यजन करने में जो बुद्धि से धर्म का  
 इच्छुक होकर यजन किया करता है वह धर्म का फल नहीं प्राप्त करता है ॥१०२॥  
 इसी धर्म कहकर जो पापात्मा अथवा पुरुष लोको को दम्भ दिखाने के कारण  
 से विपों को दान दिया करता है ॥१०३॥ धन के लोभ से निरकुश होकर तथा  
 तीव्र तप करने राग और मोह से युक्त होता हुआ अन्त में पावन होने के लिये  
 जो दान देता है ॥१०४॥ उसके द्वारा दिय हुए दान विफल हुआ करते हैं ।



हिंगक-दुरात्मा धीर धर्म मे प्रवृत्ति रखने वाले उनके इन प्रकार मे (अन्याय से) धन को पाकर मोह मे डार देने वाले धीर यजन करने वाले एव जो विनष्ट धर्म मे युक्त हो दुरात्मा का दान नहीं ठहरा करता है ॥१०५-१०६॥

न्यायागताना द्रव्याणा तीर्थे सम्प्रतिपादनम् ।

यामाननभिमन्धाय यजते च ददाति च ॥१०७

स दानफलमाप्नोति तच्च दान मुक्तोदयम् ।

दानेन भोगानाप्नोति स्वर्गं मत्सेन गच्छति ॥१०८

तपसा तु मुक्तपतेन लोकान् विष्टम्या तिष्ठति ।

विष्टम्य स तु तेजस्वी लोकेऽश्वानन्त्यमश्नुते ॥१०९

दानाच्छ्रेयास्तथा यज्ञो यज्ञाच्छ्रेयस्तथा तपः ।

सन्यामस्तपसः श्रेयास्तस्माज्ज्ञान गुरु स्मृतम् ॥११०

श्रूयन्ते हि तपःसिद्धा क्षात्रोपेता द्विजातयः ।

विश्वामित्रो नरपतिर्मन्धाता सवृत्ति कपि ॥१११

कपेश्च पुरवृत्सश्च सत्यश्चानृहवानृगु ।

आष्टिणेणऽजमीढश्च भागान्योन्यस्तथैव च ॥११२

वक्षीवश्चैय शिजयस्तथान्ये च महारथाः ।

रथीतरश्च रुन्दश्च विष्णुवृद्धादयो नृपाः ॥११३

क्षात्रोपेताः स्मृता ह्येते तपसा ऋषिताङ्गताः ।

एते राजर्षयः सर्वे सिद्धिं मुमहतीङ्गताः ।

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि अयोर्वंश महात्मनः ॥११४

न्याय से प्राय हुए द्रव्यो का तीर्थे स्थान मे भली-भांति प्रतिपादन करना

तथा अपनी कामनाओं का अभिसन्धान न करके जो यजन करता है धीर दान देता है ॥१०७॥ वह दान का फल प्राप्त करता है और वह दान सुख के उदय वाला होता है । दान से भोगों की प्राप्ति किया करता है और सत्य से स्वर्ग को जाता है ॥१०८॥ अन्धी प्रकार से तपे हुए तप से लोकों का विष्टम्भ करके रहा करता है । वह तेजस्वी विष्टम्भ करके लोकों में अनन्तता को प्राप्त किया करता है ॥१०९॥ दान से अधिक श्रेय करने वाला यज्ञ होता है और यन से

श्रेयस्कर तप होना है । तप से भी श्रेयान् सन्यास ( अच्छी रीति से सबका त्याग करना ) होना है । और उससे भी बड़ा ज्ञान कहा गया है ॥११०॥ सुने जाते हैं कि तपस्या में सिद्ध-क्षात्र धर्म में युक्त-विजाति राजा विश्वामित्र, मान्धाता, सवृत्ति, कपि और कपि का पुरुकुत्स, सत्य, भानूहवान्, ऋधु, आदिपेस, भ्रजमोड तथा भागान्द्योन्व, कधीव, सिञ्जय एव अन्य महारथ, रथीतर, छन्द और विष्णु वृद्ध प्रभृति राजा ये सब क्षत्रिय थे तपस्या के द्वारा ऋषित्व को प्राप्त होगये थे । ये सब राजपि थे जोकि महती सिद्धि को प्राप्त कर चुके थे । इससे आगे महान् प्रात्मा वाले ऋषि के वश का वर्णन करूँगा ॥१११ में ११४॥

### प्रकरण ५४ — रजियुद्ध वर्णन

एते पुत्रा महात्मान पञ्चैवासन् महाबला ।  
 स्वर्भानुतनया विप्रा प्रभाया जजिरे नृपा ॥१  
 नट्टप प्रथमस्तेषा पुत्रधर्मा तत स्मृत ।  
 धर्ममृद्धात्मजश्च व सुतहोत्रो महायशा ॥२  
 सुतहोत्रस्य दायदास्त्रय परमधाम्मिका ।  
 काश शलश्च द्वावेतो तथा गृत्समद प्रभु ॥३  
 पुलो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनव ।  
 ब्राह्मणा क्षत्रियाश्च व वैश्या शूद्रास्तथैव च ॥४  
 एतस्य वशे सम्भूता विचित्रैः कर्मभिर्द्विजा ।  
 सलात्मजो ह्याष्टिपेण श्ररन्तस्तस्य चात्मज ॥५  
 शौनकाश्चाष्टिपेणाश्च क्षात्रोपेता द्विजातय ।  
 काशस्य काशयो राष्ट्र पुत्रो दीर्घतपास्तया ॥६  
 धर्मश्च दीर्घतपसो विद्वान् घन्वन्तरिस्ततः ।  
 तपसा मुमहातेजा जातो वृद्धस्य धीमत ।  
 अथैनमृपयः प्रोबु सृत वाक्यमिम पुन ॥७

हिमव-पुरातना घोर धर्म म प्रवृत्ति रगने वाले उनके इन प्रकार ने (अन्याय मे) धन को पाकर मोह से दान देने वाले घोर यजन करने मान एव जो बिनाट धर्म मे युक्त हो दुःखमा वा दान नहीं ठहरा करता है ॥१०५-१०६॥

न्यायागतानां द्रव्याणां तीर्थे सम्प्रतिपादनम् ।

शामाननभिसन्धाय यजते च ददाति च ॥१०७

स दानफलमाप्नोति तच्च दानं नुगोदयम् ।

दानेन भोगान्नाप्नोति स्वर्गं सत्येन गच्छति ॥१०८

तपसा तु मुतप्लेन लोकान् विष्टम्या तिष्ठति ।

विष्टम्य म तु तेजस्वी लोकेऽधानन्त्यमदनुते ॥१०९

दानाच्छ्रेयास्तया यज्ञो यज्ञाच्छ्रेयस्तया तपः ।

सन्ध्यामस्तपसः श्रेयास्तस्माज्जानं गुहं स्मृतम् ॥११०

श्रूयन्ते हि तपःसिद्धा क्षात्रोपेता द्विजातयः ।

विश्वामित्रो नरपतिर्मान्वाता सवृत्ति कपि ॥१११

कपेश्च पुरुवृत्सश्च सत्यश्चानृहवानृगु ।

आष्टिपेणोऽजमीढश्च भागान्योन्यस्तथैव च ॥११२

वक्षीवश्चैयं शिजयन्तथान्ये च महारथाः ।

रथीतरश्च रुन्दश्च विष्णुवृद्धादयो नृपाः ॥११३

क्षात्रोपेताः स्मृता ह्येते तपसा ऋषिताङ्गताः ।

एते राजर्षयः सर्वे सिद्धिं सुमहतीङ्गताः ।

अत ऊढं प्रवक्ष्यामि अयोर्वंश महात्मन ॥११४

न्याय से धाये हुए द्रव्यो का तीर्थ स्थान में भली-भांति प्रतिपादन करना तथा अपनी सामनाओ का अभिसन्धान न करके जो यजन करता है और दान देता है ॥१०७॥ वह दान का फल प्राप्त करता है और वह दान सुख के उदय वाला होता है । दान से भोगों की प्राप्ति किया करता म और सत्य से स्वर्ग की जाता है ॥१०८॥ अच्छी प्रकार में तपे हुए तप से लोकों का विष्टम्य करने रहा करता है । वह तेजस्वी विष्टम्य करके लोकों में धनन्तता की प्राप्त किया करता है ॥१०९॥ दान से अधिक श्रेय करने वाला यज्ञ होता है और यज्ञ से

श्रेयस्कर तप होता है । तप से भी श्रेयान् मन्वास ( अच्छी रीति से सबका त्याग करना ) होना है । और उससे भी बड़ा ज्ञान कहा गया है ॥११०॥ मुने जाते है कि तपस्या म सिद्ध-क्षात्र धर्म मे युक्त-त्रिजाति राजा विश्वामित्र, सान्घाता, सवृत्ति, कपि और कपि का पुरुदुत्स, सत्य, भानूहवान्, ऋषु, आर्षिपेण, भजनीठ तथा भागान्बोन्ध, पक्षीक, शिजय एव अन्य महारथ, रथोत्तर, छन्द और विप्यु वृद्ध प्रभृति राजा ये सब क्षत्रिय ये तपस्या के द्वारा ऋषिर्व को प्राप्त होगये थे । ये सब राजाये थे जोकि महती सिद्धि को प्राप्त कर चुके थे । इससे प्राये महाद् आत्मा वाने अपु के वश का वर्णन करूंगा ॥१११ से ११४॥

### प्रकरण ५४ — रजिपुद्ग वर्णन

एते पुत्रा महात्मान पश्वं वासन् महाबला ।  
 स्वर्भानुतनया विप्रा प्रभाया जजिरे नृपा ॥१  
 नहृप प्रथमस्तेषा पुत्रधर्मा तत स्मृत ।  
 धर्मं वृद्धात्मजश्चैव सुतहोत्रो महायशा ॥२  
 सुतहोत्रस्य दायादास्त्रय परमधार्मिका ।  
 काश शलश्च द्वावेतौ तथा गृत्समद प्रभु ॥३  
 पुसो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनक ।  
 द्राह्मणा क्षत्रियाश्चैव वैश्या शूद्रास्तथैव च ॥४  
 एतस्य वशे सम्भूता विचित्रैः कर्मभिर्द्विजा ।  
 सलारमजो ह्याष्टिपेण श्वरन्तस्तस्य चारमज ॥५  
 शौनकाश्चाष्टिपेणश्च क्षात्रोपेता द्विजातय ।  
 काशस्य काशयो राष्ट्र पुत्रो दीर्घतपास्तथा ॥६  
 धर्मश्च दीर्घतपसो विद्वान् घन्वन्तरिस्ततः ।  
 तपसा सुमहातेजा जातो वृद्धस्य धीमत ।  
 ध्येनमृषयः प्रोतु सूत वाक्यमिम पुन ॥७

यथ धन्वन्तरिहो वा मानुषेऽपिह जनिवान् ।

एतद्वेदितुमिच्छामस्ततो यूहि प्रिय तथा ॥८॥

श्री गूतजी ने कहा—ये महान् बनवान् महान् धारमा जाने पांन ही पुत्र थे । स्वर्मानु के पुत्र विप्र नृप प्रभा ने उत्पन्न हुए थे ॥१॥ उनमें पुत्र धर्म वाना प्रथम न हुआ था । महान् यज्ञ वाला धर्म वृद्धा मन्त्र सुनहोन हुआ ॥२॥ सुनहोन के दायाद परम पामिब सीन हुए थे । बास और शून दो ही ये थे तथा तृतीय प्रभु शूतमद हुआ था ॥३॥ शूतमद का भी पुत्र सुनक हुआ जिसका कि सीनक हुआ था । प्राण्यण—शयिय—वंश्य और शूद्र इनके वश में हे द्विजगण । अपने विविध बर्णों के द्वारा उत्पन्न हुए थे । एतव पुत्र आश्विरेण वा और उमका पुत्र चरन्त हुआ था ॥४-५॥ सीनक और आश्विरेण ये शात्र धर्म में उपेत द्विजाति थे । वशवा वादाय—राष्ट तथा दीर्घतया पुत्र हुए ॥६॥ दीर्घतया का धर्म और इनके धनन्तर विद्वान् धन्वन्तरि हुआ जो तपमें महान् एव मुन्दर तेज वाला धीमान् वृद्ध के उत्पन्न हुआ था । इनके अनन्तर श्रुपिवृन्द ने फिर श्री गूतजी से यह वाक्य बोले ॥७॥ श्रुपियो ने कहा—देव धन्वन्तरि ने मनुष्यो में कैसे यहाँ जन्म लिया था । हम लोग यह जानना चाहते हैं तो आप यह प्रिय वान वृषा वरके बताइये ॥८॥

धन्वन्तरे सम्भवोऽयं धूमनामिह वै द्विजा ।

स सम्भूत समुद्रान्ते मध्यमानेऽमृते पुरा ॥९॥

उत्पन्न सकलात् पूर्वं सर्वतश्च श्रियावृत ।

सर्व्वससिद्धकाय त दृष्ट्वा विष्टम्भित स्थित ।

अजस्त्वमिति होवाच तस्मादजस्तु स स्मृत ॥१०॥

अज प्रोवाच विष्णु त तनयोऽस्मि तव प्रभो ।

विधत्स्व भाग स्यान्श्च मम लोके सुरोत्तम ॥११॥

एवमुक्तः स दृष्ट्वा तु तथा प्रोवाच स प्रभुः ।

वृत्तो यज्ञविभागस्तु यज्ञिर्गृहि सुरैस्तथा ॥१२॥

वेदेषु विधियुक्तश्च विधिहोत्र महर्षिभि ।

न शक्यमिह होमो वै तुल्य वक्तुं कदाचन ॥१३॥

अर्वावमुतोऽसि हे देव नाममन्त्रोऽसि वै प्रभो ।

द्वितीयायान्तु सम्भूत्या लोके श्यातिङ्गमिष्यसि ॥१४

अणिमादिपुता सिद्धिर्गर्भस्थस्य भविष्यति ।

तेनैव च शरीरेण देवत्व प्राप्स्यसि प्रभो ।

चारुमन्त्रोर्धुं तैर्गन्धैर्यक्ष्यन्ति त्वां द्विजातयः ॥१५

अथ च त्व पुनश्चैव आयुर्वेद विधास्यसि ।

अवश्यम्भावी ह्यर्थोज्य प्राग्दष्टस्त्वब्जयोनिना ॥१६

द्वितीय द्वापर प्राप्य भविता त्व न सशय ।

तस्मात् तस्मै वर दत्त्वा विष्णुरन्तर्दधे ततः ॥१७

द्वितीये द्वापरे प्राप्तौ सौनहोत्र स काशिराटू ।

पुनवाम स्तपस्तेपे नृपो दीघतपास्तथा ॥१८

श्री सूतजी ने कहा—हे द्विजगण ! यहाँ पर धन्वन्तरि का यह जन्म

मुनी । वह पहिले अमृत के लिये समुद्र का मन्थन करने पर समुद्र के मध्य से

उत्पन्न हुए थे ॥१६॥ सबसे पूर्व और सर्व प्रकार से श्री से आवृत वह उत्पन्न हुए

थे । सब प्रकार से सन्निद्ध काया वाले उनको देखकर सब विष्टम्भित होगये थे ।

आप अज्ञ हैं—यह बोले—इस कारण से वह अज्ञ कहे गये थे ॥१७॥ अज्ञ उन

विष्णु से बले—हे प्रभो ! मैं आपका पुत्र हूँ । हे सुरो मे उत्तम ! आप लोक

मे मेरा स्थान और भाग वा विधान कर देवें ॥१८॥ इस कारण से कहे गये वह

प्रभु देखकर इस तरह से बोले—यज्ञिय सुरो के द्वारा यज्ञ वा विभाग किया गया

है ॥१९॥ वेदो मे विधि से युक्त और विधिहीन महर्षियो के द्वारा यहाँ पर होम

कभी तुल्य नहीं किया जा सकता है ॥२०॥ हे देव ! हे प्रभो ! आप अर्वावमुत

हैं और नाम मन्त्र हैं । आप दूसरे जन्म मे लोक मे श्याति को प्राप्त करेंगे ॥२१॥

आप जब गर्भ मे स्थित रहेंगे तभी आपको अणिमा प्रभृति से युक्त सिद्धि प्राप्त

हो जायगी और आप उसी शरीर से देवत्व को भी प्राप्त करेंगे । द्विजाति गण

गुन्धर मन्त्रो से—पुत्र मे और गन्धो के द्वारा आपका यजन करेंगे ॥२२॥ इसके

अनन्तर फिर आप आयुर्वेद की रचना करेंगे । यह अवश्य ही होने वाला अर्थ

है जोकि पहिले ही पश्योनि ब्रह्मने आदिष्ट कर दिया है ॥२३॥ दूसरे द्वापर को

पाकर प्राप होंगे इसमें तनिक भी संशय नहीं है । इसमें उनको वरदान देकर फिर विष्णु भगवान् वहीं पर अन्तर्धान होगये थे ॥१७॥ दूसरे द्वापर युग के प्राजाने पर काशिराष्ट्र वह सौन होय तथा बीर्षतया नृप ने पुन भी कामना बाला होते हुए तप किया था ॥१८॥

अज देवन्तु पुत्रार्थे ह्यारिराधयिपुनृप ।

वरेण च्छन्दमामास प्रीतो धन्वन्तरिर्नृपम् ॥१९॥

भगवान् यदि तुष्टस्त्व पुत्रो मे धृतिमान् भव ।

तथेति समनुज्ञाय तत्रैवान्तरधीयत ॥२०॥

तस्य गेहे समुत्पन्नो देवो धन्वन्तरिस्तदा ।

काशिराजो महाराज सर्व्वरोगप्रणाशन ॥२१॥

आयुर्वेद भरद्वाजश्चकार समिपक्क्रियम् ।

तमष्टथा पुनर्व्यस्य शिष्येभ्य प्रत्यपादयत् ॥२२॥

धन्वन्तरिसुतश्चापि केतुमानिति विश्रुत ।

अथ केतुमत पुत्रो विभो भीमरथो नृप ।

दिवोदास इति ख्यातो वाराणस्यधिपोऽभवत् ॥२३॥

एतस्मिन्नेव काले तु पुरी वाराणसी पुरा ।

शून्या विवेशयामास क्षेमको नाम राक्षस ॥२४॥

शप्ता हि सा पुरी पूर्वं निकुम्भेन महात्मना ।

शून्या वर्षसहस्र वै भविषीति पुन. पुन ॥२५॥

तस्यान्तु शप्तमात्राया दिवोदास प्रजेश्वर ।

विषयान्ते पुरी रम्या गोमत्या मन्व्यवेशयत् ॥२६॥

पुत्र के लिये अज देव की आराधना करने वाले नृप को परम प्रसन्न धन्वन्तरि ने वरदान मागने के लिये कहा था ॥१९॥ राजा बोला—हे भगवान् !

यदि आप मुझपर सन्तुष्ट हैं तो धृतिमान् प्राप भरे पुत्र होंवें । तथाम्तु ( ऐसा ही होवे )—यह कहकर वहाँ पर ही धन्वन्तरि अन्तर्हित होपये ॥२०॥ तब

उसके घर में देव धन्वन्तरि समुत्पन्न हुए । काशिराज महाराज समस्त रोगों के

नाश करने वाले थे ॥२१॥ भरद्वाज ने निपक् क्रिया के साथ आयुर्वेद की प्राठ ।

प्रकार से ध्यनित करके शिष्यो के लिये प्रतिपादित किया था अर्थात् शिक्षा दी थी ॥२२॥ धन्वन्नरि का पुत्र भी वेतुमान् इस नाम से विद्युत हुआ । इसके धन्वन्नर वेतुमान् का पुत्र त्रिभ भीमरथ नृप हुआ था । वह दिवोदाम इस नामसे विख्यात हुआ था और वाराणसी का स्वामी हुआ ॥२३॥ इस ही समय के बीच में पहिले वाराणसी पुरी में दून्य में क्षेमक नाम वाले राजस न प्रवेश किया था ॥२४॥ पहिले समय में महात्मा निकुम्भ के द्वारा वह पुरी क्षाप से मुक्त हुई थी कि बार-बार एक महत्त वर्ष तक यह दून्य होगी ॥२५॥ उम पुरी के क्षाप मुक्त होने पर ही प्रजेश्वर दिवोदाम ने विषयान्त में गामती में रम्यपुरी को सन्निवेशित किया था ॥२६॥

वाराणसी विमथन्ता निकुम्भ क्षप्तवान् पुरा ।  
 निकुम्भश्चापि धम्मरिमा मिद्धक्षेत्र क्षशाप यः ॥२७  
 दिवोदामस्तु राजपिभंगरी प्राप्य पार्थिव ।  
 वसते स महातेजा स्फीताया वै नराधिप ॥२८  
 एतस्मिन्नेव काले तु वृत्तदारो महेश्वर ।  
 देव्या स प्रियनामस्तु वसानश्च सुरान्तिके ॥२९  
 देवाज्ञया पारिपदा विश्वरूपास्तपोधना ।  
 पूर्वोक्तं रूपविशेषस्तोपयन्ति महेश्वरीम् ॥३०  
 तृप्यति तैर्महादेवो मेना नैव तु तृप्यति ।  
 जुगुप्सते सा नित्यञ्च देव देवो तथैव च ॥३१  
 मम पाद्वे त्वनाचारस्तव भर्ता महेश्वरः ।  
 दरिद्रं तथैव एवेह भविलष्ट सङ्गतेऽप्ये ॥३२  
 मात्रा तपोता वचसा स्त्रीस्वभावात्प्र चाक्षमत् ।  
 स्मितं श्रुत्वा तु वरदा हरपाद्वैमयागमत् ॥३३  
 विषण्णायदना देवी महादेवमभाषत ।  
 नेह वत्स्याम्यहं देव नम मां स्य निवेशनम् ॥३४

ऋगिषो ने कहा—पहिले निकुम्भ ने त्रिगने कि वाराणसी पुरी को क्षाप दिया था । निकुम्भ भी बड़ा परमार्थी था त्रिगने कि उम गिद्ध क्षेत्र को क्षाप



दिया था ॥२७॥ मूनजी ने कहा — राजा दिवोदास ने जोकि राजपि था, उस नगरी को प्राप्त कर वह महान् तेज वाला राजा स्वीत अर्थात् फौली हुई पुरी में निवास करता था ॥२८॥ इसी काल में दारा को करने वाले महेश्वर देवी के प्रिय कामना वाले वह मुंगे के समीप में वास करने वाले थे ॥२९॥ देव की आज्ञा में लोपोधन विश्वरूप परिपद् पूर्वोक्त रूप विशेषों के द्वारा महेश्वरी को तोप देते थे ॥३०॥ उनसे महादेव को प्रसन्न होते हैं किन्तु मेना प्रसन्न नहीं होती है । वह निश्चय ही देवी और देव की चुराई करती है ॥३१॥ मेरे समीप में अनाचार है तुम्हारा स्वामी महेश्वर जो दरिद्र है । हे अनधे ! यहाँ सभी साधारण साध करते हैं ॥३२॥ माता के द्वारा उस प्रकार जो बारी से कही गई देवी सती स्वभाव के कारण सहन करने में समर्थ न हुई । बरदा ने स्मित करके उसके बाद हर के समीप में गई थी ॥३३॥ विषाद से युक्त मुख वाली देवी ने महादेव से कहा—हे देव ! मैं यहाँ वास नहीं करूँगी आप मुझे अपने घर पर ले चलिये ॥३४॥

तथोक्तस्तु महादेव सर्वाल्लोकानवेक्ष्य ह ।  
 वासार्थं रोचयामास पृथिव्या तु द्विजोत्तमा ।  
 वाराणसी महातेजा सिद्धक्षेत्रे महेश्वरः ॥३५॥  
 दिवो दासेन ता ज्ञात्वा निविष्टान्नगरी भव ।  
 पार्श्वस्थं स समाहूय गणेश क्षेमकं ब्रवीत् ॥३६॥  
 गणेश्वर पुरीङ्गत्वा शून्या वाराणसी कुरु ।  
 मृदुना चाम्यु पायेन अतिवीर्यं स पार्थिव ॥३७॥  
 तता गत्वा निकुम्भस्तु पुरी वाराणसी पुरा ।  
 स्वप्ने सन्दर्शयामास महान् नाम नापितम् ॥३८॥  
 श्रेयस्तेऽहं करिष्यामि स्थान मे रोचयानध ।  
 मद्रूपा प्रतिमा कृत्वा नगर्यन्ते निवेशय ॥३९॥  
 तथा स्वप्ने यथा दृष्टं सर्वं कारितवान् द्विजा ।  
 नगरीद्वार्यनुज्ञाप्य राजानन्तु यथाविधि ॥४०॥

उत्पन्न हुआ । उस बालक पुत्र ने उनका फिर हरण कर लिया था ॥६५॥ उस समय उस महान् राजा ने वैर का अन्त करते हुए ऐसा किया था । प्रतर्द्धन के दो पुत्र हुए । एक वरस नाम वाला और दूसरा गर्ग इस नाम से प्रसिद्ध था ॥६५॥ वरस का पुत्र अलकं हुआ और उसका पुत्र सद्यति हुआ था । अलकं के प्रति राजर्षि गीत श्लोक पुरातन थे ॥६६॥ काशिसत्तम अलकं युवा रूपसे साठ हजार छै मी साठ वष तक सम्पन्न रहा था ॥६७॥ शोषामुद्रा के प्रसाद से अलकं ने परमायु को प्राप्त किया था ॥६८॥

शापस्यान्ते महाबाहुर्हत्वा क्षेमकराक्षसम् ।

रम्यामावास्तयामास पुरी वाराणसी नृप ॥६९

सन्ते रषि दायाद सुनीथो नाम धार्मिक ।

सुनीथस्य तु दायाद सुकेतुर्नाम धार्मिक ॥७०

सुकेतुनयश्चापि घमकेतुरिति श्रुति ।

धर्मकेतोस्तु दायाद सत्यकेतुर्महारथ ॥७१

सत्यकेतुस्तश्चापि विभुर्नाम प्रजेश्वर ।

सुविभुस्तु विभो पुत्र सुकुमारस्तत स्मृत ॥७२

सुकुमारस्य पुत्रस्तु धृष्टकेतुः स धार्मिक ।

धृष्टकेतोस्त दायादो वेणुहान प्रजेश्वर ॥७३

वेणुहोत्रमुतश्चापि गार्ग्यो वं नाम विश्रुत ।

गार्ग्यस्य गर्गभूमिस्तु वात्स्यो बल्लभस्य धीमत ॥७४

ब्राह्मणा क्षत्रियार्थं च तयो पुत्रा सुधार्मिका ।

विद्वान्ता बलवन्यश्च सिंहनुत्यपराक्रमा ॥७५

इयेते काश्यपा प्रोक्ता रजेरपि निबोधत ।

रजे पत्रगतान्यासन् पञ्च वीर्यवतो भुवि ।

राजेयमिति विख्यात क्षत्रमिन्द्रभयावहम् ॥७६

पाप के धन्त होजाने पर महाबाहु ने क्षेमक राक्षस का वध करके राजा ने रम्य वाराणसी पुरी को बसाया था ॥६९॥ मरुति का भी दायाद ( पुत्र ) सुनीथ नाम वाला बहुत ही धार्मिक था । सुनीथ का पुत्र सुकेतु नाम वाला

धामिक ह्यथा वा ॥७०॥ गुर्वेनु वा भी पुत्र धर्मवेनु ह्यथा—ऐसी धृति है ।  
 धर्मवेनु वा दायाद महारथ गत्ववेनु ह्यथा वा ॥७१॥ गव्यवेनु वा भी पुत्र प्रजेधर  
 विभु नाम वाक्ता ह्यथा वा । विभु का पुत्र गुर्विभु वा मौर उग्रता पुत्र गुडुमार  
 वा ॥७२॥ गुडुमार के पुत्र का नाम घृष्टवनु वा घह बद्धे ही धामिक था ।  
 घृष्टवेनु के दायाद प्रजेधर वेणुहोत्र ह्यथा वा वेणुहोत्र के पुत्र का नाम गार्ग्य  
 प्रख्यात था । गार्ग्य की गर्गभूमि मौर धीमान् बल का वात्स्य था ॥७४॥ उन  
 दोनो के पुत्र सुन्दर धर्म के प लन करने वाले प्राज्ञान मौर सत्रिय ये वे बडे  
 विक्रम वाले तथा बलवान् एव सिंह के समान पराक्रम वाले थे ॥७५॥ ये इनके  
 काश्यप बनलाये गये हैं भव रजि के भी समकूला । भूमण्डल में वीरवान् रजि  
 के पाँचसो पुत्र थे । इन्द्र के भय देने वाला वह क्षत्र राजय—क्षत्र नाम से विख्यात  
 था ॥७६॥

तदा देवा सुरे युद्धे समुत्पन्ने मुदारुणे ।  
 देवाश्च वासुराश्च व पितामहमथान् वन् ॥७७  
 अश्वयोर्भगवान् युद्धे विजेता को भविष्यति ।  
 शूहि न सर्व्वलोकेश श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥७८  
 येषामर्थाय सशामे रजिरात्तायुध प्रभु ।  
 योत्स्यते ते विजेष्यन्ति श्रीलोकान्नाश सशय ॥७९  
 रजिर्यतस्ततो लक्ष्मीर्यतो लक्ष्मीस्ततो धृति ।  
 यतो धृतिस्ततो धर्मो यतो धर्मस्ततो जय ॥८०  
 तद्देवा दानवाः सर्वे सत श्रुत्वा रजेर्जयम् ।  
 अभ्ययुर्जयमिच्छन्त स्तुवन्तो राजसत्तमम् ॥८१  
 ते स्तुष्टमनस सर्वे राजान देवदानवा ।  
 ऊचुरस्मज्जयाय त्व गृहाण वरकामुं कम् ॥८२  
 अहञ्छेष्यामि नो युद्धे देवान् शक्रपुरोगमान् ।  
 इन्द्रो भवामि धर्मात्मा ततो योत्स्यामि सयुगे ॥८३  
 धस्माकमिन्द्र प्रह्लादस्तस्यार्थे विजयामहे ।  
 धस्मिस्तु समये राजस्तिष्ठेथा देव नोऽदिते ॥८४

उम ममय परम दारण) देवामुर युद्ध के उत्पन्न होने पर देवगण और असुरकृन्द इनके घनन्तर पितामह मे बोले ॥७७॥ हे सषं सोवेदा ! भगवान् घतलावें कि हम दोनो के युद्ध मे कौन विजयी होगा—यह हम सुनना चाहते हैं ॥७८॥ ब्रह्माजी ने कहा—जिनके निये सपाम मे प्रभु रजि हयिपार ग्रहण करने वाला होकर युद्ध करेगा वे तीन लोको को जीत लेंगे—हममे सशय नही है ॥७९॥ जहाँ रजि है वहाँ लक्ष्मी है और जहाँ पर लक्ष्मी है वहाँ पर धृति होती है । जहाँ पर धृति है वहाँ धर्म रहता है और जहाँ धर्म है वही पर जय होती है ॥८०॥ तब तो देवता लोग और दानव सभी रजि की जय श्रवण कर जय की इच्छा करते हुए राजाप्रो मे परम श्रेष्ठ रजि की स्तुति करते हुए वहाँ गये ॥८१॥ वे शव देव और दानव प्रसन्न मन वाले राजा से बोले कि हमारे जय के लिये आप श्रेष्ठ धनुष शरण करे ॥८२॥ रजि ने कहा—मैं इन्द्र जिनका धरणाामी है ऐसे देवो को युद्ध मे नही जीतूंगा । धर्मात्मा इन्द्र होता है तब युद्धभूमि मे लहूंगा ॥८३॥ दानवो ने कहा—हमारा इन्द्र प्रह्लाद है । उसके निये हम विजय प्राप्त करते हैं । हे राजन् ! इन ममय म शदिनि के वहाँ न टहरिये ॥८४॥

स तथेति द्रुवन्नेव देवैरप्यभिचोदितः ।

भविष्यसीन्द्रो जित्वेति देवं रपि निमन्त्रित ॥८५॥

जधान दानवान् सर्वान् समक्ष वचपाणिन ।

स विप्रनष्टां देवाना परमश्रीं धिय वशी ॥८६॥

निहत्य दानवान् सर्वान् व्याजहार रजि प्रभु ।

त तथा तु रजि तत्र देवैस्तह शतक्रतु । ८७

रजिपुत्रोऽहमित्युक्त्वा पुनरेवाद्ब्रवीद्वच ।

इन्द्रोऽसि राजन् देवाना सर्वेपान्नाश सशय ।

यस्याहमिन्द्रपुत्रस्ते ख्याति यास्यामि शत्रुहन् ॥८८॥

स नु शक्रवच श्रुत्वा दक्षितस्तेन मायया

तथेत्येवाद्ब्रवीद्राजा प्रीयमाण शतक्रतुम् ॥८९॥

तस्मिस्तु देवसदृशे दिव प्राप्ते महीपती

दायाद्यमिन्द्रादाजह्नु राचार तनया रजेः ॥९०॥

तानि पुत्रशतान्यस्य तच्च स्थान शचीपत ।  
 समक्रामन्त बहुधा स्वर्गलोक त्रिविष्टपम् ॥६१॥  
 ततः काने बहुतिथे समतीते महाबल ।  
 हृत्तराज्योऽन्नवीच्छक्रो हृतभागो बृहस्पतिम् ॥६२॥

वह तथास्तु अर्थात् ऐसा ही होवेगा—यह कहता हुआ तथा देवों के द्वारा भी बहुत प्रेरित हुआ और देवों के द्वारा निमंत्रित होता हुआ शीतकर इन्द्र होगा यह कहा गया था ॥६१॥ बज्रबाण ( इन्द्र ) के समक्ष में उसने समस्त दानवों का हवन किया था । देवों की विनोय रूप में नष्ट हुई श्री को बना रखने वाला यह परम थी होगया ॥६६॥ समस्त दानवों को मारकर प्रभु रजि ने कहा वहाँ उस प्रकार से रजि को देवों के सहित इन्द्र ने भी रजि का पुत्र हूँ—यह कहकर फिर बचन कहे । हे राजा ! अथ समस्त देवों के इन्द्र ही इनमें तनिक भी सहाय नहीं है । हे शत्रुहनु ! जिस त्रेरा मैं इन्द्र पुत्र हूँ—यह स्वाति को प्राप्त करूँगा ॥६८॥ वह इन्द्र के बधन वीभुनकर उसने द्वारा माया से बलिपत किया गया था । राजा ने तथास्तु—यह ही शत्रु क्रु ( इन्द्र ) को प्रसन्न करते हुए कहा ॥६९॥ उस राजा के जोकि देव के तुल्य था स्वर्ग में प्राप्त होजाने पर रजि के पुत्रों ने इन्द्र से दागाद घाचार को ले लिया था ॥६०॥ इसके उन पचिसों पुत्रों शची वे पति इन्द्र के उस स्थान त्रिविष्टप स्वर्ग लोक को बहुत प्रकार से सक्रान्त कर लिया था ॥६१॥ इसके अनंतर बहुत काल के व्यतीत होजाने पर महान् बल वाला राज्य के छिन जाने वाला भाग्यहीन इन्द्र बृहस्पति से जाकर बोला ॥६२॥

वदरीफलमात्रं वं पुराडाश विघत्स्व मे ।  
 ब्रह्मर्षे येन तिष्ठेय तेजसाप्याधितस्तत ॥६३॥  
 ब्रह्मन् बृशोऽय विमना हृत्तराज्यो हृताशन ।  
 हृताजा दुवनां मूढो रजिपुत्रे प्रमीद मे । ६४॥  
 यद्येव चोदित शक्र त्वया स्या पूर्वमेव हि ।  
 नाभविष्यन् स्वत्प्रियाय नावतश्च ममानप ॥६५॥

पूजा तु महती चैव नित्यमेव प्रयुज्यते ।  
गन्धधूपंश्च माल्यंश्च प्रेक्षणीयंस्तथैव च ॥४१

हे द्विजोत्तमो, उस प्रकार मे कहे हुये महादेव ने रामस्त लोको को देवस्वर वाम के लिए पृथिवी मे महान् तेज बाने महेश्वर ने मिडभेत्र वाराणसी को पमन्द किया । दिवोदाम के द्वारा उम नगरी को निविष्ट जानवर उन महादेव ने पास मे स्थित धेमक गणेश मे कहा ॥३६॥ हे गणेश्वर ! पुरी मे जाकर वाराणसी को धून्य करदो । और मृदु अभ्युपाय मे, वहं पार्थिव अनिवीर्यं हो गया ॥३७॥ इसके अनन्तर निकुम्भ पुरी वाराणसी मे जाकर पहिले मन्दुन नाम नरपित को स्वप्न मे दिखाया या ॥३८॥ हे अनघ ! मैं तेरा श्रेय कर्होगा, मेरे स्थान को रोचित करो । मेरे रूप बानो प्रतिमा को बनाकर नगरी के अन्त मे निवेधित करदो ॥३९॥ हे द्विज वृन्द ! स्वप्न मे जैसा देखा या उम प्रकार का सब करा दिया था । और यथा विधि राजा को नगरी के द्वार पर अनुज्ञापित करके नित्य ही महती पूजा गन्ध-धूप-दीप और प्रेक्षणीय मान्यो ने द्वारा की जाती है ॥४० ४१॥

अन्नप्रदानयुक्तंश्च अत्यद्भुतमिवाभवत् ।  
एव सम्पूज्यते तत्र नित्यमेव गणेश्वर ॥४२  
ततो वरसहस्राणि नगराणां प्रयच्छति ।  
पुत्रान् हिरण्यमायू पि सर्व्वकामास्तथैव च ॥४३  
राजस्तु महिषो थेषा सुयशा नाम विश्रुता ।  
पुत्रार्थमागता साध्वी राजा देवी प्रचोदिता ॥४४  
पूजान्तु त्रिपुला कृत्वा देवी पुत्रानयाचत ।  
पुन पुनरयागम्प बहुश पुनकारणात् ॥४५  
न प्रयच्छति पुनास्तु निकुम्भ कारणेन तु ।  
राजा यदि तत् क्रुध्येत तत विश्वित् प्रवर्तते ॥४६  
अथ दीर्घण कालेन क्रोधो राजानमाविशत् ।  
भूत त्विद महाद्वारि नगराणां प्रयच्छति ॥४७

प्रीत्या वराश्च शतशो न विश्वित्तु प्रवर्त्तते ।  
 मामकैः पूज्यते नित्यं नगर्यां मम चैव तु ॥४८॥  
 तत्राद्वितश्च बहुशो देव्या मे तत्र कारणात् ।  
 न ददाति च पुत्र मे कृतघ्नो बहुभोजन ॥४९॥  
 अतो नार्हति पूजान्तु मत्सकाशात् कथञ्चन ।  
 तस्मात्तु नाशयिष्यामि तस्य स्थानं दुरात्मन ॥५०॥  
 एवं तु स विनिश्चित्य दुरात्मा राज किंत्विषी ।  
 स्थानं गणपतेस्तस्य नाशयामात्त दुर्मति ॥५१॥  
 भग्नमायतनं दृष्ट्वा राजानमगमत् प्रभु ।  
 यस्माद्दृष्टेऽपराध मे त्वया स्थानं विनाशितम् ॥५२॥

और अन्न प्रदान से युक्तों के द्वारा अत्यद्भुत की तरह होगया था । इस प्रकार से वहाँ पर नित्य ही गणेश्वर की बहुत अच्छी तरह पूजा की जाती है ॥४२॥ इसके पश्चात् नगरों को महत्तर वरदान देती है । पुत्रों को—हिरण्य को—आयु को और समस्त प्रकार के कामों का वरदान देती है । राजा की महिषी (पदाभिषिक्ता रानी) श्रेष्ठ थी जोकि सुयशा इस नाम से विश्रुत थी । राजा के द्वारा प्रेरित होकर साध्वी रानी पुत्र के लिये वहाँ भाई थी ॥४३-४४॥ देवी ने विपुल पूजा करने उतने पुत्रों की माचना की थी और पुत्र के कारण से बहुत बार वह पुन पुन वहाँ आती थी ॥४५॥ निकुम्भ पुत्रों को तो कारणवश नहीं देना है । राजा यदि क्रुद्ध होगा तो इनके पश्चात् कुछ प्रवृत्त होगा ॥४६॥ इनके अनन्तर लम्बे समय में राजा के हृदय में क्रोध ने प्रवेश किया था । नरों के महा द्वार पर यह भूत को देता है ॥४७॥ प्रीति से संशयो वरदान देना है किन्तु क्रुद्ध होना नहीं है । मेरी नगरी में मेरे लोगों के द्वारा नित्य ही यह पूजित भी किया जाता है ॥४८॥ मेरे कारण से देवी के द्वारा यह बहुत बार पूजित हुआ है किन्तु अल्प और बहुत भोजन करने वाला यह पुत्र नहीं देना है ॥४९॥ इसलिए मेरे द्वारा किसी भी प्रकार से यह पूजा करने के योग्य नहीं है । इससे दग दुरात्मा के स्थान को मैं नष्ट करा दूंगा ॥५०॥ इस तरह से राजाओं में पानी दुष्ट उतने निश्चय करने दुष्ट बुद्धि वालों ने उग गणपति के स्थान को नष्ट कर

दिया था ॥५१॥ प्रभु अपने आगन को भग्न हुआ देखकर राजा के पास आये कि जिससे बिना किसी अपराध के तुने मेरे स्थान को नष्ट करा दिया है ॥५२॥

अकस्मात् तु पुरी शून्या भवित्री ते नराधिपः ।

ततस्तेन तु शापेन शून्या वाराणसी तथा ॥५३

शामा पुरी निकुम्भस्तु महादेवमथानयत् ।

शून्या पुरी महादेवो निम्ममे परमात्मना ॥५४

तुल्या देवविभूत्यास्तु देव्याश्चैव महात्मनः ।

रमते तत्र वै देवी रममाणे महेश्वर ॥५५

न रति तत्र वै देवी लभते गृहविस्मयात् ।

देव्या क्रीडार्थमीशानो देवो वाक्यमथाब्रवीत् ॥५६

नाह वेश्म विमोक्ष्यामि अविमुक्त हि मे गृहम् ।

प्रहस्येनामथोवाच अविमुक्त हि मे गृहम् ॥५७

नाह देवि गमिष्यामि गच्छरवेह रमाम्यहम् ।

तस्मात्तदविमुक्त हि प्रोक्त देवेन वै स्वयम् ॥५८

एव वाराणसी शमा अविमुक्त च कीर्तितम् ।

यस्मिन् वसति वै देव सर्वदेवनमस्कृत ।

युगेषु त्रिषु धर्मात्मा सह देव्या महेश्वर ॥५९

अन्तर्द्वानि कली याति तत्पुरन्तु महात्मनः ।

अन्तर्हिते पुरे तस्मिन् पुगी सा वसते पुनः ॥६०

उन्होंने राजा से कहा है नराधिप ! अचानक तेरी यह पुरी शून्य हो

जायगी । इसने परवत् उस शाप से वाराणसी पुगी शून्य होगई थी ॥५३॥

निकुम्भ शाप से युक्त उस पुरी में महादेव को ले आये थे । महादेव ने उस शून्य

पुरी का परमात्मा के द्वारा निर्माण किया था ॥५४॥ वह पुरी देवों की विभूति

के तुल्य थी और महात्मा की देवों के भी तुल्य थी । वहाँ पर महेश्वर के रमण

करने पर देवी रमण करती है ॥५५॥ गृह के विस्मय के कारण से देवी को

रति प्राप्त नहीं होती है । देवी की क्रीडा के लिए देव ईशान (महादेव) यह

वाक्य बोले ॥५६॥ मैं गृह का त्याग नहीं करूँगा । मेरा घर अविमुक्त है ।



इसके अनन्तर हँस कर बोले मेरा गृह अविमुक्त होना है ॥१७॥ हे देवि ! मैं नहीं जाऊँगा, तुम जाओ, मैं यहाँ रहना करता हूँ । इससे देव ने स्वयं उस विमुक्त कहा है ॥१८॥ इस प्रकार में वाराणसी पुरी क्षाप में युवत है और वह अविमुक्त नहीं गई है । जिस पुरी में समाप्त देवों के द्वारा नमस्कृत-तीनों युगों में परमात्मा महेश्वरदेव दधी के साथ निवास किया करते हैं ॥१९॥ कल्पियुग में महान् आत्मा वाले का वह पुर अन्तर्धान को प्राप्त हो जाता है और उस पुर के अन्तर्धान होने पर वह पुरी पुनः बस जाती है ॥२०॥

एव वाराणसी शप्ता निवेश पुनरागता ।

भद्रथं ष्यस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ॥६१

ह्रस्वा निवेशयामास दिवोदासो नराधिप ।

भद्रथेष्यस्य राज्यन्तु तद्वत्तन्तेन बलीयसा ॥६२

भद्रथेष्यस्य पुत्रस्तु दुर्दमो नाम नामत ।

दिवोदासेन बालेति शृणुया स विवर्जित ॥६३

दिवोदामाहृषद्वत्या वीरो जज्ञे प्रतर्दनः ।

तेन पुत्रेण बालेन प्रहृत तस्य वै पुन ॥६४

वैरस्यान्त महाराजा तदा तेन विधत्सता ।

प्रतर्दनस्य पुत्रो द्वौ वरसो गर्गश्च विध्रुत ॥६५

वरसपुत्रो ह्यलर्कस्तु सन्नतिस्तस्य चात्मज ।

अलर्कं प्रति राजपिगीतस्लोको पुरातनौ ॥६६

पष्टिवर्षसहस्राणि पष्टिवर्षशतानि च ।

युवा रूपेण सम्पन्नो ह्यलर्कं कागिसत्तम ॥६७

लोपामुद्रा प्रसादेव परमायुरवाप्तवान् ॥६८

इस तरह क्षाप युक्त हुई फिर निवेश को प्राप्त हुई भद्रथेष्य के उत्तम धनुषधारी सौ पुत्रों का हनन करके दिवोदाम राजा ने पुनः इस निधशित किया था । उस बालवान् न भद्रथेष्य का राज्य का हरण कर लिया था ॥६१-६२॥ भद्रथेष्य का एक पुत्र नाम से दुर्दम था । दिवोदाम ने उसे बालक है—इस युवा से छोड़ दिया था ॥६३॥ दिवोदास से हृषद्वती में प्रतर्दन नामक वीर पुत्र

योवत्सुदेशप्रभव कौरवो जनमेजय ।  
 कुरो पुत्रस्य राज्ञस्तु राज्ञ पारिक्षितस्य ह ।  
 जगाम स रथो नाश शापाद्गार्ग्यस्य धीमत ॥२१॥  
 गार्ग्यस्य हि सुत बाल स राजा जनमेजय ।  
 दुर्बुद्धिहिसयामास लोहगन्ध नराधिपम् ॥२२॥  
 स लोहगन्धो राजपि परिधावतितस्तात ।  
 पौरजानपदैस्त्यक्तो न लेभे शर्म कर्हिचित् ॥२३॥  
 तत स दुःखसन्तप्तो नालभात्सविद क्वचित् ।  
 शशाप हेतुकमृपि शरण्य व्यथितस्तदा ॥२४॥

वह रथ मन के समान वेग वाले भ्रष्टवो से युक्त था जिससे क्या समु-  
 द्रहन किया था । उसने उस मुख्य रथ के द्वारा मही को जीत लिया था ॥१६॥  
 गयाति देवता और दानवा के द्वारा युद्ध में अत्यन्त दुःख था । पौरवो म और  
 राजाओ म मवम वह रथ हुआ था ॥२०॥ योवत्सुदेश से उत्पन्न होने वाला  
 कौरव जनमेजय था । राज कुरुके पुत्र और राजा पारिक्षित का वह रथ धीमाद्  
 गार्ग्य के शाप से नाश को प्राप्त हुआ था ॥२१॥ उस राजा जनमेजय ने बालक  
 की अवस्था में दुर्बुद्धि होकर गार्ग्य के पुत्र लोहगन्ध नराधिप की हिंसा की थी  
 ॥२२॥ वह राजपि लोहगन्ध इधर उधर दौड़ता हुआ पौरजन पशु के द्वारा  
 त्याग हुआ वही पर भी शान्ति को एक कल्याण का प्राप्त नहीं हुआ ॥२३॥  
 इसके अनन्तर दुःख से सन्तप्त होने हुए वही पर भी मविद को प्राप्त नहीं किया  
 था । तब अत्यन्त व्यथा में युक्त होकर उसने भरस्य हेतुक ऋषि का शाप दे  
 दिया था ॥२४॥

इन्द्रोतो नाम विद्याता योऽमी मुनिरुदारधी ।  
 योजयामास चन्द्रात शीतको जनमेजयम् ।  
 अश्वमेधेन राजान पावनार्यं द्विजात्तम. ॥२५॥  
 स लोहगन्धो ध्यनशतस्यावसथमेत्य ह ।  
 स च दिव्यो रथस्तस्माद्दसोश्च दिपतेस्तया ॥२६॥  
 तत शत्रुण तुष्टेन लेभे तस्माद्बृहद्रथ ।

ततो हत्वा जरासन्ध भीमस्त रथमुत्तमम् ।  
 प्रददौ वासुदेवाय प्रीत्या कौरवमन्दन ॥२७  
 स जरा प्राप्य राजपिर्ययातिनेहृपात्मज ।  
 पुत्र ज्येष्ठ वरिष्ठञ्च यदुमित्यब्रवीद्वच ॥२८  
 जरावली च मा तात पलितानि च पर्यगु ।  
 काव्यस्योशनस शापान च तृप्तोऽस्मि यौवने ॥२९  
 त्व यदो प्रतिपद्यस्व पाप्मान जरया सह ।  
 जरा मे प्रतिगृह्णीष्व त यदु प्रत्युवाच ह ॥३०  
 अनिदिष्टा मया भिक्षा ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुता ।  
 सा च व्यायाममाध्या र्षं न ग्रहीष्यामि ते जराम् ॥३१  
 जराया बहवा दोषा पान भोजनकारिणु ।  
 तस्माज्जरान ते राजन् ग्रहीणुमहमुत्सहे ॥३२

जो उदार बुद्धि वाला मुनि इन्द्रोत्त नाम से विरपात था उस इन्द्रोत्त और द्विजोत्तम शौनक न जनमेजय राजा का पावन होने के लिये अश्वमेध यज्ञ करने के लिए योजित किया था ॥२५॥ उस लोहगन्ध ने उसके शावास में आकर उस रथ का विनाश कर दिया था । और वह दिव्य रथ चेदिपति वसु से श्रीर इसके अनन्तर उससे वृहद्रथ तुष्ट होने वाले इन्द्र ने प्राप्त किया था । इसके पश्चात् भीम न जरासन्ध को मार कर उस उत्तम रथ को कौरव मन्दन ने परम प्रसन्नता से वासुदेव को दे दिया था ॥२६ २७॥ वह राजपि ययाति नहृप का पुत्र वृद्धावस्था को प्राप्त कर अपन ज्येष्ठ एवं वरिष्ठ पुत्र यदु से यह वचन बोला ॥२८॥ हे तात ! यह वृद्धता की अवस्था ने चारों धार से मुझे घेर लिया है पलित बना दिया है मेरी यह दशा उद्यना काव्य के शाप हो गई है और यौवन में अभी नृत्त नहीं हुआ है ॥२९॥ हे यदो ! तुम इस जरा अवधि के सहित पाप को ग्रहण करो नच यदु ने उत्तर दिया ॥३०॥ मैंने ब्राह्मण अनिदिष्ट भिक्षा की प्रतिज्ञा की है और वह व्यायाम के द्वारा ही साध्य है मैं इस आपकी वृद्धता को ग्रहण नहीं करूँगा ॥३१॥ इस वृद्धता के पान तथा भोजन करने वाले बहुत से दोष होने हैं इस कारण से हे राजन् ! मैं उसे ग्रहण करने को उत्साहित नहीं होना है ॥३२॥

सितश्मश्रुधरो दीनो जरया शिथिलीकृत ।  
 वलीसन्नतगात्रश्च दुर्दृशो दुबलाकृति ॥३३  
 अशक्त कायकरणे परिभूतस्तु यौवने ।  
 महोपभीतिमिश्रं व ता जराणाभिकामये ॥३४  
 सन्ति ते बहव पुत्रा मत्त प्रियतरा नृप ।  
 प्रतिगृह्य तु धर्मज्ञ पुत्रमन्य वृणीष्व व ॥३५  
 स एवमुक्तो यदुना तीव्रकोपसमन्वित ।  
 उवाच वदता श्र छो ज्येष्ठ त गहयन् सुतम् ॥३६  
 आश्रम वक्ष वान्योऽस्ति को वा धमविधिस्तव ।  
 मामनादृत्य दुर्वुद्धे यदात्थ नवदेशिक ॥३७  
 एवमुक्त्वा यदु राजा दशापन स मन्बुमान् ।  
 यस्त्व मे तृदयाज्जातो वय स्व न प्रयच्छसि ॥३८  
 तस्मात्त राज्यभाग मूढ प्रजा ते व भविष्यति ।  
 तुदसो प्रतिपद्यस्व पाप्मान जरया सह ॥३९  
 न कामये जरा तात कामभोगप्रणाशिनीम् ।  
 जराया बहवो दोषा पानभोजनवारिण ।  
 तस्माज्जरा न ते राजन् ग्रहीतुमहमुत्सहे ॥४०

वृद्धता स सकल दात्री मूढ बाला होकर दीन और गिथिय सा रहने  
 वाता-बलवान् भी सन्नत ( झुके हुए ) गात्रो कात्र दुर्दृश स युक्त एव दुबल  
 आकृति वाला यौवन म ही परिभूत होकर काय करने म धममय होजाता है  
 और उस महान् उरभीनियाँ हुआ करती हैं इन कारणों स मैं आपकी वृद्धता को  
 नहीं लना चाहता हूँ ॥३३ ३४॥ हे राजन् ! मुझन भी अधिक प्रिय आपके बहुत  
 स पुत्र हैं । हे धर्मज्ञ ! वे इन्ने पहण करेँ हमलिय किसी अन्य पुत्र का वरण  
 करेँ ॥३५॥ यदु व द्वारा इस प्रकार से कहा गया वह बहुत ही तीव्र कोप से  
 युक्त होकर बोलेने वालो म परम श्रेष्ठ भवन ज्येष्ठ पुत्र की निन्ना करता हुआ  
 बोला ॥३६॥ वीतनमा वह आश्रम है सपया वीतनी वह तपी धम की विधि है ?  
 हे दुष्ट बुद्धि वान ! हे मवन्गिव ! जोकि तू मेरा पनादर करके ऐसा बोल रहा

हे ॥३७॥ क्रोधते युक्त वह राजा इस प्रकार से कहकर उनन यद्रु को शाप दे दिया कि तू मेरे हृदय से उत्पन्न हुआ था और तू अपना जीवन मुझे नहीं दे रहा है ॥३८॥ हे मूढ ! तू इन कारणों से राज्य का भागी नहीं होया । हे तुर्वंगो ! तू मेरी वृद्धता के साथ मेरे दान पापको ग्रहण कर ॥३९॥ तुर्वंगु ने कहा—हे तान ! काम और भोग का नाश करने वाली इस वृद्धता को मैं नहीं चाहता हूँ । पान तथा भोजन करने वाल इस जगमे बहुत मे दोष हुआ करते हैं इसमें हे राजन् ! मैं इस जग को ग्रहण नहीं करना चाहता हूँ ॥४०॥

यस्त्व मे तृदयाज्जातो वय स्वन्न प्रयच्छसि ।

तस्मात् प्रजा समुच्छेद् तुर्वंगो तव यास्यति ॥४१

अमङ्कीर्णा च धर्मणा प्रतिलोमवरेषु च ।

पितृतादिषु चान्येषु मूढ राजा भविष्यति ॥४२

गुरुदारप्रसक्तेषु तिर्यग्योनिगतेषु वा ।

पशुधर्मेषु म्लेच्छेषु भविष्यति न मशय ॥४३

एवन्तु तुवमु शप्त्वा ययाति सुतमात्मन ।

शर्मिष्ठाया सुत द्रुहूमिद वचनमब्रवीत् ॥४४

द्रुह्यो त्व प्रतिपद्यस्व वरारूपविनाशिनीम् ।

जरा वर्षसहस्रं वं यौवन स्वन्ददस्व मे ॥४५

पूर्णे वर्षसहस्रे ते प्रतिदास्यामि यौवनम् ।

स्वञ्चादास्यामि भूयोऽह पाप्मानं जरया सह ॥४६

न गज न रथ नाश्व जीर्णो भुक्ते न च क्लियम् ।

न सङ्गश्चास्य भवति न जरा तेन कामये ॥४७

यस्त्व मे तृदयाज्जातो वय स्वन्न प्रयच्छमि ।

तस्माद्द्रुह्यो प्रियः कामो न ते सम्पत्स्यते वदचित् ॥४८

ययाति ने कहा— तू मेरे हृदय से उत्पन्न हुआ है और फिर भी अपना जीवन मुझे देना नहीं चाहता है इससे हे तुर्वंगु ! तेरी सन्तान का समुच्छेद हो जायगा ॥४१॥ तेरो प्रजा धर्म से प्रतिलोम वरो म अमङ्कीर्ण होगी । हे मूढ ! और धर्म पितृतादि मे राजा होया ॥४२॥ गुरु की शारा मे प्रसक्त प्रयवा

प्रयतिष्यामि देवेन्द्र तद्वितार्थं महाद्युते ।

यथा भागश्च राज्यश्च अचिरात् प्रतिपत्स्यसे ॥६६

तथा शक्र गमिष्यामि माभूत्ते विकलव मन ।

तत कर्म चकारास्य तेज सबद्धं न महत् ॥६७

तेपाच बुद्धिसमोहमकरोद्बुद्धिसत्तम ।

ते यदा समुता मूढा रागोत्पन्ना विधर्मिण ॥६८

ब्रह्मद्विपश्च सवृत्ता हृत्वीर्यंपराक्रमा ।

ततो लेभे मुरेश्वर्यमैन्द्रस्थान तद्योत्तमम् ॥६९

हत्वा रजिमुतान् सर्वात्कामकोधपरायणान् ।

य इद पावन स्थान प्रतिष्ठां सतक्रतो ।

श्रुगुणाद्वा रजेर्वापि न स दौ रात्म्यमाप्नुयात् ॥१००

हे ब्रह्मर्षे ! मेरे लिए बदरी फल (वेर) के बराबर पुरोदश करो जिनमें मैं तेज ने आप्पावित (वृत्त) होता हुआ ठहरे ॥६३॥ हे ब्रह्मर्ष ! मैं कुछ ही—उशास हूँ—छिने हुए राज्य वाला और छिने हुए भोजन वाला हूँ । रजि के पुत्रों के द्वारा हन शोक वाला—दुर्वल तथा मैं मूढ़ किया गया हूँ । आप मुझ पर प्रमत्त होइये ॥६४॥ बृहस्पति ने कहा—हे इन्द्र ! यदि इस प्रकार से तेरे द्वारा मैं पहिले ही प्रेरित होना तो हे अनघ ! तेरे प्रिय के लिये मेरा अर्क्षस्थ न होता ॥६५॥ हे देवेन्द्र ! हे महान् क्षुति वाले ! उन तेरे हिन के लिए मैं प्रयत्न करूँगा जिनमें दीप्त ही तेरा भाग और राज्य प्राप्त हो जायगा ॥६६॥ हे शक्र ! उस तरह से मैं जाऊँगा तू अपना मन विकलव पूर्ण मन करे । इसके पश्चात् इसके महान् तेज के बढाने वाला कर्म किया था ॥६७॥ बुद्धि में परम श्रेष्ठ ने उनकी बुद्धि का समोह कर दिया कि जिन समय में पुत्रों के महिन उत्पन्न राग बाने—मूढ़ तथा विधर्मों होगये ॥६८॥ वे वाग्दण्डों से द्वेष करने वाले और वीर्य तथा पराक्रम के नाश कर देने वाले होगये थे फिर इनके बाद देवों के ऐश्वर्य इन्द्र के स्थान को जोकि परमोत्तम था, प्राप्त कर लिया था ॥६९॥ कामवासना और क्रोध की भावना में तत्पर रजि के समस्त पुत्रों को मारकर जो यह पावन

स्थान और इन्द्र का प्रतिष्ठान था प्राप्त कर लिया था । रजि के इस इतिहास को जो भी कोई सुनता है वह कभी दुरात्मा को प्राप्त नहीं होता है ॥१००॥

### प्रकरण ५५—चन्द्रवंश कीर्तन (२)

मरुतेन कथं कन्या राज्ञे दत्ता महात्मना ।  
 किंवीर्याश्च महात्मानो जाता मरुतकन्यया ॥१  
 आहवन् त मरुत्सोममत्रवाम प्रजेश्वरम् ।  
 मासि मासि महातेजा पष्टिमवत्सरान् नृप ॥२  
 तेन ते मरुतस्तस्य मरुत्सोमेन तोपिता ।  
 अक्षय्यान्न ददु प्रीता सवकामपरिच्छदम् ॥३  
 अन्न तस्य सकृत्पक्वमहोरात्रे न क्षीयते ।  
 काटिशो दीयमान च सूर्य्यस्योदयनादपि ॥४  
 मित्राज्योतिस्तु कन्याया मरुतस्य च धीमत ।  
 तस्माज्जाता महामत्त्वा धमज्ञा मोक्षदर्शिन ॥५  
 सन्धस्य गृह्धर्माणि वैराग्य समुपस्थिता ।  
 यतिधममवाप्येह ब्रह्मभूयाय ये गता ॥६  
 अनपायस्ततो जातस्तदा धर्मं प्रदत्तवान् ।  
 क्षत्रधमस्ततो जात प्रतिपक्षो महातना ॥७  
 प्रतिपक्षमुतश्चापि शूलो नाम विश्रुत ।  
 सङ्गयस्य जय पुत्रो जयस्तस्य जग्मिवान् ॥८  
 विजयस्य जय पुत्रस्तस्य हयन्दत स्मृत ।  
 हर्यन्दुतस्ततो राजा सहदेव प्रतापवान् ॥९  
 सहदेवस्य धर्मात्मा अदीन इति विश्रुत ।  
 अदीनस्य जयत्मेनस्नस्य पुत्रोऽथ सकृति ॥१०

श्रुविगण ने कहा—महात्मा मरुत ने राजा को कन्या दत्ते दी थी ।  
 और महात्मा मरुत की कन्याएँ जो महान् आत्मा वाली थीं त्रिग प्रनार के बीच

वाणी हुई थी ॥१॥ श्री मूलश्री ने कहा—महान् नर ने धर्म की कामना रखते हुए प्रजेश्वर उग नाम का साहचर्य किया था । महान् तेज वाले राजा ने माग-माग में धर्मार्थ प्रत्येक मास में साठ वर्ष वर्षेन्द्र ऐसा किया था ॥२॥ इनमें से मरुत गोम के द्वारा तोरित किये गये थे और परम प्रमत्त होने हुए उन्होंने ममस्त कामताओं का परिचर्य धर्मार्थ धर्म द दिया था ॥३॥ उनका पुत्रवार पञ्चाया हुआ धर्म एव घटोत्तम म गीर्ण नहीं होता है और मूर्ख के उदय में भी बगोरी को दिया हुआ भी चाहे कभी नहीं क्षीण नहीं होता है ॥४॥ मुक्ति-मान् मरुत की कथा में विप्राज्योनि और उमने मोक्ष के देवने वाले धर्मरत्ना महा मत्त्व उत्पन्न हुए ॥५॥ वे गृह धर्मों का भनी-भानि त्याग करने वैराग्य को प्राप्त हुए वे धर्मो पनि धर्म को पाकर वे मय ब्रह्म के स्वरूप को पहुँच गये थे ॥६॥ इनके धर्मतर सापाव उत्पन्न हुआ मय उमने धर्मो प्रदक्षवात् पैदा हुआ उमने फिर क्षत्रधर्म पैदा हुआ और उमने महान् लक्ष ब्रह्म शनि पय ने जन्म ग्रहण किया था ॥७॥ पनिधर्म का पुत्र भी मयय दम नाम में प्रसिद्ध हुआ था । मयय के पुत्र का नाम जय था और उस जय के त्रिजय नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥८॥ विजय के पुत्र का नाम जय था और उमके पुत्र का नाम हर्षेन्द्रुत हुआ था हर्षेन्द्रु के पुत्र का नाम प्रताप वाला महदेव राजा था ॥९॥ महदेव के धर्मरत्ना अदीन दम नाम में विश्रुत हुआ था । अदीन के पुत्र का नाम जय-शेन हुआ और उनके सशुति नामक पुत्र हुआ था ॥१०॥

महत्तेरपि धर्मरत्ना कृतधर्मा महायया ।

इत्येते क्षत्रधर्माणा नहुपस्य निबोधत ॥११

नहुपस्य तु दायादा पडिन्द्रोपमतेजस ।

उत्पन्ना पितृकन्याया विरजाया महौजसः ॥१२

यतिर्ययाति मयातिरायाति पञ्च नुद्वय ।

यतिर्ज्यैष्टस्तु तेषा वै ययातिस्तु तनोऽनर ॥१३

कावुत्सपकन्या गा नाम लेभे पानी यतिस्तदा ।

सयातिर्मा क्षमास्याप ब्रह्मभूतोऽभवन्मुनि ॥१४



तेषां मध्ये तु पश्चाना ययाति पृथिवीपतिः ।

देवयानिमुदानसं मुता भार्यामवाप ह ॥१५॥

शर्मिष्ठा मामुरी चैव तनया वृषपर्वणा ।

यदुं च तुवंसुं चैव देवयानिर्व्यंजायत ॥१६॥

द्रुह्युश्चानुश्च पूरुश्च शर्मिष्ठा वार्यपर्वणी ।

अजीजनन्महावीर्यान् मुतान्देवमुतोपमान् ॥१७॥

रथन्यस्मै ददौ रुद्र प्रीतः परमभास्वरम् ।

असङ्गं काञ्चन दिव्यमक्षयो च महेषुधी ॥१८॥

मस्वृति के पुत्र का नाम धर्मात्मा एव महान् यश वाला वृत्तधर्मा हुआ था । ये इनने क्षत्र धर्म वाले हुए थे अब नहुष के वश में जो उत्पन्न हुए थे उनको समझ लो ॥११॥ नहुष के दायाद छंद हुए थे जोकि इन्द्र के समान तेजस्वी थे और वे सब महान् और वाले पितृ कन्या विरजा में उत्पन्न हुए थे ॥१२॥ जिनके नाम यति-ययाति-ययाति-प्रायानि और पञ्च एव तुदय थे । उन सबमें यति सबसे बड़ा था और ययाति उमसे छोटा था ॥१३॥ तब या नाम वाली काकुत्स्थ की कन्या को यति ने पत्नी के रूप में प्राप्त किया था । ययनि मोक्ष के कार्य में स्थित होकर ब्रह्मभूत मुनि होगया था ॥१४॥ उन पाँचों के बीच में ययाति जो था वह पृथिवी का स्वामी बना था । उमने उशान्त की पुत्री देवयानी को भार्या के रूप में प्राप्त किया था ॥१५॥ और मामुरी वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा को प्राप्त किया था । देवयानी ने यदु और तुवंसु का उत्पन्न किया था वार्यपर्वणी शर्मिष्ठा ने गुह्यमनु और तुरु की जन्म दिया था जोकि पुत्र महान् वीर्य वाले एव देव पुत्रों के समान थे ॥१७॥ उसके लिए परम प्रसन्न होने वाले भगवन् रुद्र ने अत्यन्त भास्वर-असङ्ग और काञ्चन दिव्य रथ प्रदान किया था तथा दो पक्षय महेषुधी दिये थे ॥१८॥

युक्तं मनो जर्जरश्वर्येण कन्या समुद्रहृत् ।

स तेन रथमुरयेन जिगाय च ततो महीम् ॥१९॥

ययातिमुं धि दुर्द्धर्षो देवदानवमानवं ।

पौरवाणा नृपाणाञ्च सर्वेषां मोक्षभवद्रथ ॥२०॥

नियंयोगिनि मे जाने वाले तथा यदा धर्मो मे एवं श्लेच्छो मे तू होगा—इसमे तनिक भी सशय नहीं है ॥४३॥ श्री गूतजी ने कहा—ययाति इन प्रवार से तुवंमु को शाप देकर जोकि धपना ही उसका पुत्र था फिर धमिष्ठा के पुत्र द्रुह्यु से यह वचन बोला ॥४४॥ हे द्रुह्यु ! तू इन मेरी यर्ण तथा रूप के विनाश करने वाली जरा को एक सहस्र वर्ष के लिये ग्रहण करने और धपना यौवन मुझे दे दे ॥४५॥ एक हजार वर्ष पूरे होजाने के पश्चान् तुझे तेरा यौवन वापिस दे दूंगा और मैं फिर अपने पाप के गहित वृद्धता को वापिस ले लूंगा ॥४६॥ द्रुह्यु ने कहा—जरासे जीर्ण पुरुष हाथी-घोडा-रथ और स्त्री किसी का भी भोग नहीं कर सकता है और इसका राग भी नहीं होता है अतएव मैं आपकी जरा को ग्रहण करना नहीं चाहता है ॥४७॥ ययाति ने कहा—ओ तू मेरे हृदय से उत्पन्न हुआ है और इन समय मुझे धपना यौवन नहीं देता है इससे हे द्रुह्यु ! क्यों भी तेरा प्रिय काम नहीं पूरा होगा ॥४८॥

नौपनवोत्तरसञ्चारस्तत्र नित्य भविष्यति ।

अराजध्राजवशस्त्व तत्र नित्य भविष्यति ॥४९॥

अनो त्व प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह ।

एव वर्षसहस्रन्तु चरेय यौवनेन ते ॥५०॥

जीर्णं शिशुवर दत्ते जरया ह्यगुचि सदा ।

न जुहोति स कालेऽग्नि ता जराग्नाभिधामये ॥५१॥

यस्त्य मे तृदयाज्जातो वय स्वन्न प्रयच्छसि ।

जरादोपस्त्वयोक्तोऽय तस्मात्ते प्रतिपत्स्यते ॥५२॥

प्रजा च यौवन प्राप्ता विनशिष्यत्यतस्तव ।

अग्निप्रस्वन्दनपरस्तः चाप्येव भविष्यसि ॥५३॥

पूरो त्वं प्रतिपद्यस्व पाप्मानञ्जरया सह ।

जरायली च मान्तात पलितानि च पर्यगु ॥५४॥

याव्यस्योदानसः दापान्न च तुप्तोऽस्मि यौवने ।

वञ्चित्कालञ्जरेय वं विपयान् वयसा तव ॥५५॥

पूर्णे वर्षसहस्रे ते प्रतिदास्यामि यौवनम् ।

स्वञ्चैव प्रतिपत्स्यामि पाप्मानञ्चरया सह ॥१६६

यहाँ पर नौकाप्लव का सञ्चार नित्य होगा और वहाँ तू धराज भ्राज वस बाला नित्य ही रहेगा ॥१६६॥ हे धनो ! मेरे पाप को जरा के साथ तू ग्रहण करमे । इस तरह एक सहस्र वर्ष तक मैं तेरे यौवन से घानन्द प्राप्त करूँ ॥१७०॥ अनु बोला—जरा से जीर्ण व्यक्ति सदा जरा ने श्रेष्ठ वातक अशुचिता दिया करता है । वह समय पर अग्नि म हवन नहीं कर पाता है इसलिये मैं ऐसी जरा की इच्छा नहीं करता हूँ ॥१७१॥ ययाति बोला—तू मेरे शरीर एवं हृदय से उत्पन्न हुआ है और मुझ अपने पिता को अपना यौवन नहीं देना चाहता है । तूने जो यह जरा के दोष बतला दिये हैं । अच्छा तू इन दोषो को प्राप्त करेगा ॥१७२॥ तेरी सन्तति जब यौवन को प्राप्त होगी तो मष्ट हो जायगी और तू भी अग्नि के प्रस्वन्दन में ही परायण रहेगा ॥१७३॥ हे पुरो ! तू मेरे पाप को जरा के साथ ग्रहण करले हे तात ! वह जरावन्धी ने मुझको नभ प्रात से पतित कर दिया है ॥१७४॥ उशना वाश्य के दाप के मैंने अपने यौवन में वृत्ति प्राप्त नहीं की है । तेरे यौवन से कुछ समय तक चरण करूँ और विषयो का उपभोग करूँ ॥१७५॥ एक महस्र वर्ष के पूरे होजाने पर तेरा यौवन मुझे दे दूँगा और अपने पाप के साथ जरा का वापिस ले लूँगा ॥१७६॥

एवमुक्त प्रत्युवाच पुत्र पितरमञ्जसा ।

यथानुमन्यसे तात चरिष्यामि तथैव च ॥१७७

प्रतिपत्स्यामि ते राजन् पाप्मानं जरया सह ।

गृहाण यौवनं मत्तश्चर वामान् यथेप्सितान् ॥१७८

जरयाह प्रतिच्छन्नो ययोत्पधरस्तव ।

यौवनं भवते दत्त्वा चरिष्यामि यथार्थम् ॥१७९

पुरो प्रीतोऽस्मि भद्रन्ते प्रीतश्चैव ददामि ते ।

सर्वेकामसमृद्धा ते प्रजा राज्ये भविष्यति ॥१८०

पुरोरनुमतो राजा ययाति स्वा जगन्तत ।

सन्नामयामास तदा प्रसादाद्दुर्गवरम् तु ॥१८१

यौवनेनाथ वयसा ययातिर्नहुपात्मज ।  
 प्रीतियुक्तो नरथ्रेष्ठश्चचार विषयान् स्वकान् ॥६२॥  
 यथाकाम यथोत्साह यथाकाल यथासुखम् ।  
 धर्माविरोधाद्राजेद्रो यथाहंति स एव हि ॥६३॥  
 देवानतपयद्यज्ञं पितृञ्छ्राद्धंस्तथैव च ।  
 दीनाश्चानुग्रहैरिष्टं कामंश्च द्विजसत्तमान् ॥६४॥  
 प्रतिथीनन्नपानैश्च वैश्याश्च परिपालनं ।  
 ग्रानृशस्येन शूद्राश्च दस्यून् सनिग्रहेण च ॥६५॥  
 धर्मेण च प्रजा सर्वा यथावदनुरञ्जयन् ।  
 ययाति पालयामास साक्षादिन्द्र इवापर ॥६६॥

श्री मूनजी ने कहा—इस प्रकार से कहे हुए पुत्र ने तुरन्त ही पिता से कहा—हे तात ! आप जो भी कहते हैं मैं उसी प्रकार से करूँगा ॥५७॥ हे राजन् ! मैं आपके पाप को जरा के सहित प्राप्त करूँगा । आप मुझसे मेरा यौवन ग्रहण कर लाजिये और यथेष्ट विषयो का उपभोग करे ॥५८॥ मैं इस जरा में प्रतिच्छन्न हाता हुआ तुम्हारी वय के रूप को धारण करने वाला आपको यौवन दकर यथावधि भी भाँति चरण करूँगा ॥५९॥ ययानि बोला—हे पुरो ! मैं तुमसे बहुत ही प्रसन्न हूँ तेरा कल्याण हो मैं प्रसन्न होकर तुम्हें वरदान देता हूँ कि राज्य में तेरी पत्नी समस्त कामनाओं से समृद्ध होगी ॥६०॥ श्री मूनजी ने कहा—पुरु से अनुमति होने वाले राजा ययाति ने इसके अनन्तर अपनी जरा को उस समय भागव के प्रसाद से सकामित कर दिया था ॥६१॥ नहुष का पुत्र ययाति इसके अनन्तर यौवन की अवस्था से वह नरथ्रेष्ठ परम प्रसन्नता युक्त होत हुए अपने विषयो के उपभोगो को करने लगा था ॥६२॥ यथा काम और उत्साह के अनुकूल—यथा समय और सुगानुगार धर्म के अनुरोध से वह राजेन्द्र जा भी शाय्य होता है वही करता है ॥६३॥ यथा क द्वारा देवों को वृत्त किया और श्राद्धों के द्वारा पितरों का सन्तुष्ट किया था और दीना पर उन्हें अनुग्रह करके तथा इक्ष्वा की शामना को पूरा करके द्विज श्रेष्ठा का सन्तुष्ट किया था ॥६४॥ अग्निधियो को अन्न दान तथा पान क द्वारा—वैश्यों को परि

पूणं वर्षसहस्रं ते प्रतिदास्यामि यौवनम् ।

स्वञ्च वै प्रतिपत्स्यामि पाप्मानञ्जरया सह ॥१६॥

यहाँ पर नौकाप्लव का सञ्चार नित्य होगा और वहाँ तू अराज भ्राज वंश वाला नित्य ही रहेगा ॥१६॥ हे अनो ! मेरे पाप को जरा के साथ तू ग्रहण करले । इस तरह एक सहस्र वर्ष तक मैं तेरे यौवन से आनन्द प्राप्त करूँ ॥१७॥ अनु बोला—जरा से जीणें व्यक्ति सदा जरा से श्रेष्ठ बालक अशुविता दिया करता है । वह समय पर अग्नि में हवन नहीं कर पाता है इसलिये मैं ऐसी जरा की इच्छा नहीं करता हूँ ॥१८॥ ययाति बोला—तू मेरे शरीर एवं हृदय से उत्पन्न हुआ है और मुझ अपने पिता को अपना यौवन नहीं देना चाहता है । तूने जो यह जरा के दोष बतला दिये हैं । अच्छा तू इन दोषों को प्राप्त करेगा ॥१९॥ तेरी सन्तति जब यौवन को प्राप्त होगी तो नष्ट हो जायगी और तू भी अग्नि के प्रस्फन्दन में ही परायण रहेगा ॥२०॥ हे पुरो ! तू मेरे पाप को जरा के साथ ग्रहण करले हे तात ! यह जरावली ने मुझको मव और से पतित कर दिया है ॥२१॥ उशना काव्य के शाप से मैंने अपने यौवन में वृत्ति प्राप्त नहीं की है । तेरे यौवन से कुछ समय तक चरण करूँ और विषयों का उपभोग करूँ ॥२२॥ एक सहस्र वर्ष के पूरे होजाने पर तेरा यौवन तुझे दे दूँगा और अपने पाप के साथ जरा को वापिस ले लूँगा ॥२३॥

एवमुक्त प्रत्युवाच पुत्र पितरमञ्जसा ।

ययानुमन्यसे तात करिष्यामि तद्यैव च ॥२४॥

प्रतिपत्स्यामि ते राजन् पाप्मानं जरया सह ।

गृहाण यौवनं मत्तश्चर कामान् यथेप्सितान् ॥२५॥

जरयाह प्रतिच्छन्नो वयोऽपघरस्तव ।

यौवनं भवते दत्त्वा चरिष्यामि यथार्थवत् ॥२६॥

पुरो प्रीतोऽस्मि भद्रन्ते प्रीतश्चैद ददामि ते ।

सर्वकामसमृद्धा ते प्रजा राज्ये भविष्यति ॥२७॥

पुरोरनुमतो राजा ययाति स्वा जरान्ततः ।

सक्रामयामास तदा प्रसादाद्भार्गवस्य तु ॥२८॥

कामो के उपभोग में व्यतीत हुए एक सहस्र वर्षों का स्मरण किया था ॥७०॥  
 और काल को तथा बला एव काष्ठाभो की परिगणना करके और उसी प्रकार  
 से काल को पूरा मानकर फिर अपने पुत्र पूरु से बोला ॥७१॥ हे अरिन्दम !  
 मुझ के अनुसार और यद्योत्साह तथा काल के अनुकूल मैं तुम्हारे जीवन के  
 द्वारा हे पुत्र ! विषयों को खूब सेवन किया है ॥७२॥ हे पूरो ! मैं तुम से बहुत  
 ही प्रसन्न हुआ हूँ तुम्हारा कल्याण हो अब तुम अपने जीवन को वापिस ग्रहण  
 करो । और साथ ही इस राष्ट्र को भी तुम ग्रहण करो तुम ही मेरे प्रिय करने  
 वाले पुत्र हो ॥७३॥ इस तरह नहुष के पुत्र ययाति राजा ने अपनी जरा को  
 प्राप्त कर लिया था और पूरु ने पुनः अपना जीवन प्राप्त कर लिया था ॥७४॥

अभिपेक्षुकामश्च नृप पूरु पुत्र कनीयसम् ।  
 ब्राह्मणप्रमुखा वर्णा इदं वचनमब्रुवन् ॥७५॥  
 कथं शुक्रस्य नभार देवयान्या सुत प्रभो ।  
 अथ ह्य यदुमतिक्रम्य पूरो राज्यं प्रदस्यसि ॥७६॥  
 यदुज्ज्वलस्तव सुतो जातस्तमनु तुवसु ।  
 शर्मिष्ठाया सुतो द्रुह्यस्तताञ्जु पूरुरेव च ॥७७॥  
 कथं ज्येष्ठानतिक्रम्य कनीयान् राज्यमहति ।  
 अत मन्वो वयामि त्वा धम्म समनुपालय ॥७८॥  
 ब्राह्मणप्रमुखा वर्णा सर्वे शृण्वन्तु मे वच ।  
 ज्येष्ठं प्रति यथा राष्ट्रं न देयं मं कथञ्चन ॥७९॥  
 माता पित्रा वचनकुरस हि पुत्र प्रशस्यते ।  
 मम ज्येष्ठेन यदुना नियोगो नानुपालित ॥८०॥  
 प्रतिशूलं पिनुयश्च न स पुत्र सता मत ।  
 स पुत्र पुत्रवद यश्च वत्तते पितृमातृषु ॥८१॥  
 यदुनाहमवज्ञातस्तथा तुवंसुनापि च ।  
 द्रुह्य गा चानुना चैवमप्यवज्ञा कृता भृशम् ॥८२॥

अपने छोटे प्रिय पुरु पुत्र को राज्याभिषेक करने की इच्छा वाले राजा  
 ययाति से ब्राह्मण प्रमुख सभी वर्ण वाच यह वचन बोले ॥७५॥ हे प्रभो ! सुक

पालन के द्वारा तथा शूद्रों को क्रूरता के अभाव के द्वारा एष दस्युघो को भली भाँति निग्रह के द्वारा सन्तुष्ट किया करता था ॥६५॥ धर्म पूर्वक अपनी समस्त प्रजा का अनुरञ्जन करते हुए साक्षात् दूसरे इन्द्र के समान राजा ययाति ने प्रजा का यथावत् पालन किया था ॥६६॥

स राजा सिंहविक्रान्तो युवा विषयगोचर ।  
 अविरोधेन धर्मस्य चचार सुखमुत्तमम् ॥६७  
 स मार्गमाणः कामानामन्तर्दोषनिदर्शनात् ।  
 विश्वासहेतो रेमे वै वैभ्राजे नन्दने वने ॥६८  
 अपश्यत्स यदा ता वै बद्धमाना नृपस्तदा ।  
 गत्वा पूरो सक्वाश वै स्वा जरा प्रत्यपद्यत ॥६९  
 स सम्प्राप्य तु तान् कामास्तृप्त खिन्नश्च पाथिव ।  
 काल वपंसहस्र वै सस्मार मनुजाधिपः ॥७०  
 परिसङ्ख्याय कालश्च कलाकाष्ठास्तथैव च ।  
 पूर्णं मत्वा तत काल पूरु पुत्रमुवाच ह ॥७१  
 यथासुख यथोत्साह यथाकालमरिदम ।  
 सेविता विषया पुत्र यौवनन मया तव ॥७२  
 पूरो प्रोतोऽस्मि भद्र ते गृहाण त्व स्वयौवनम् ।  
 राष्ट्रश्च त्व गृहाणेद त्व हि मे प्रियवृत्सुत ॥७३  
 प्रतिपेदे जरा राजा ययातिर्नृपात्मज ।  
 यौवन प्रतिपेदे च पूरु स्व पुनरात्मन ॥७४

वह राजा सिंह के समान विशाल—युवावस्था से पूरा विषय गोचर था किन्तु धर्म के विरोध न करने से उमने उत्तम सुख का चरण किया था ॥६७॥ वह कामों की अनुरोधों के निदर्शन से खोज करता हुआ अपने विश्वास के हेतु से वैभ्राज नन्दन वन में रहण करता था ॥६८॥ जब उस राजा ने उस काम-वासना को बढती हुई ही देखा तो उस समय पूरु के पास जाकर अपनी दुःखता का पुन उसने प्राप्त कर लिया था ॥६९॥ उस राजा ने उन कामों की भली-भाँति प्राप्त करके तृप्त हुआ और खिन्न भी हुआ । उस मनुजों के स्वामी ने अपने

दिशि दक्षिणपूर्वस्या तुर्वमुं तु न्यवेशयत् ।  
 दक्षिणापरतो राजा यदु श्रेष्ठ न्यवेशयत् ॥८८  
 प्रतीच्यामुत्तस्याश्च द्रुह्युश्चानुश्च तावुर्भौ ।  
 सप्तद्वीपा ययातिस्तु जित्वा पृथ्वी ससागराम् ।  
 न्यभजत् पञ्चधा राजा पुत्रेभ्यो नाहुपस्तदा ॥८९  
 तैरिय पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना ।  
 यथाप्रदेय धर्मज्ञैर्धर्मोण प्रतिपाल्यते ॥९०  
 एव विनृज्य पृथिवी पुत्रेभ्यो नाहुपस्तदा ।  
 पुत्रसकामितश्रोस्तु प्रीतिमानभवन्नृपः ॥९१  
 धनुर्न्यस्य पृपत्वाश्च राज्यञ्च व सुतेषु तु ।  
 श्री तमानभवद्राजा भारमावेभ्य बन्धुषु ॥९२

पूह ने मेरे वचन का पूर्ण पालन किया और मेरा पिता की भाँति विशेष रूप से सम्मान किया था । मेरा यह छोटा पुत्र है किन्तु इतने मेरी आज्ञा मानते हुए मेरी वृद्धता को स्वयं धारण किया था । पुत्रकारी पूह ने मेरा समस्त काम किया और सभी कुछ किया है ॥८३॥ और उभना काव्य शुरु ने स्वयं वरदान दिया था कि हे महामते ! जो पुत्र तुम्हारे अनुकूल व्यवहार करे वही राज्य का राजा होगा ॥८३॥ इस तरह से पूह आपका भी अनुमत है उसे राष्ट्र में अभिषिक्त कर दो । जो पुत्र गुणों से सम्पन्न हो और सदा माता-पिता का हित करने वाला हो वह छोटा भी प्रभु समस्त कल्याण प्राप्त करने के योग्य होता है ॥८५॥ पूह इस राष्ट्र के प्राप्त करने को योग्य है जो आपके प्रिय करने वाला और आपके प्रिय है । शुक के वरदान से अब कोई भी उत्तर कहा नहीं जा सकता है ॥८६॥ उस समय पीरजान पदों के द्वारा पूर्णगया मन्तुष्ट होते हुए नहुष के पुत्र ययाति इन प्रकार से कहे गये और उन्होंने अपने पुत्र पूह को राष्ट्र में अभिषिक्त करके दक्षिण पूव दिशा में तुर्वमु की निवेशित वर दिया था और दक्षिण में अग्न्य दिशा में राजा ने श्रेष्ठ यदु को निवेशित किया ॥८७ ८८॥ पश्चिम में और उत्तर में दृह्यु और अनु इन दोनों की को निवेशित किया था । ययाति ने मागर के महित मान द्वीप यात्री पृथ्वी को जीत कर पाँच प्रकार में उसका



के नाती और देवयानी के पुत्र श्रेष्ठ यदु का अतिक्रमण करके पूरु को राज्य किस तरह आप दे देंगे ? ॥७६॥ यदु आपका सबसे बड़ा पुत्र उत्पन्न हुआ था । उसके पश्चान् उससे छोटा तुवंसु पुत्र है । समिथा का पुत्र द्रुह्यु बड़ा है उसके पश्चान् उससे छोटा पूरु है ॥७७॥ आप बड़े पुत्रों का सबका अतिक्रमण करके छोटे पुत्र को राज्य कैसे देने को योग्य होते हैं ? इसनिये हम आपकी सम्पत्ति प्रकार से जान देने हैं कि आप धर्म का पूरुं पातन करें ॥७८॥ राजा ययानि ने कहा—हे ब्राह्मण प्रमुखी ? आप समस्त वर्ण वाले सब मरे वचन का श्रवण करें । जैसा कि ज्येष्ठ को राष्ट्र दिया जाता है किन्तु मुझे वह किसी प्रकार में भी नहीं देना है ॥७९॥ जो माता और पिता के वचनों का परिपालन करने वाला होगा है वह पुत्र प्रशस्तनीय माना जाता है । मेरे ज्येष्ठ पुत्र यदु ने मेरे नियोग का अनुपालन नहीं किया था ॥८०॥ जो पिता के प्रतिकूल हो वह मजन पुरुषो ने पुत्र नहीं माना है । पुत्र वह ही है जो पुत्र की भाँति पिता और माता के विषय में व्यवहार किया करता है ॥८१॥ यदु ने तथा तुवंसु इन दोनों ने मेरी श्रवणा करदी थी और छोटे द्रुह्यु ने भी इसी प्रकार से मेरी वदुन ही अधिक श्रवणा की थी ॥८२॥

पूरुणा तु कृत वाक्य मानितश्च विशेषत ।  
 कनीयान् मम दायादो जरा येन धृता मम ।  
 सर्वकाम सर्वकृत पूरुणा पुत्रकारिणा ॥८३॥  
 शुक्लेण च वरो दत्त काव्ये भांशनसा स्वयम् ।  
 पुत्रो यस्त्वानुवर्षेत स राजा ते महामते ॥८४॥  
 भवतोऽनुमतोप्येव पूरु राष्ट्रैऽभिपिच्यताम् ।  
 य पुत्रो गुणमम्पन्नो मातापित्रोर्हित सदा ।  
 सर्वमर्हति बहू ए कनीयानपि स प्रभु ॥८५॥  
 अर्ह पूरुरिद राष्ट्र य प्रिय प्रियकृत्तव ।  
 वरदानेन शुक्लस्य न शक्य वक्तुमुत्तरम् ॥८६॥  
 पौरजानपदस्तुष्टैरित्युक्तो नाहुपस्तनश ।  
 अभिपिच्य तत पूरु स्वराष्ट्रे सुतमात्मन ॥८७॥

नहीं हुआ करता है । बाना के उभोर में तो उन्हे के हवि दानने में धनि की  
 नानि धीर धरिष बड़ जाया करने है धर्यान् विदेष प्रदीप्त होजाये है ॥६५॥  
 ओ भी दग पृथिवी में श्रीहि-पय-मुवर्गु-पनु धीर धिचयी धारि है यह गव  
 एक को पुणं एव पर्याप्त नहीं है—यह देगने दृग् मोह को प्राप्त नहीं होता है ।  
 ॥६५॥ विम गमय मे गमयन भूगो मे पायक भाव करता है धीर यह भी बर्ध-  
 मन धीर यषन मनी प्रकाम मे दिया करता है तब यह धर्य को प्राप्त करता है  
 ॥६६॥ जब परमे नहीं करता है धीर स्वय धानने मे परको नहीं द्य देता है ।  
 जब कोई भी दूषण नहीं करता है धीर न द्वेष करता है तब धर्य को प्राप्त  
 करता है ॥६७॥ या दृग् बुद्धि बानो के द्वाग दुग्दर्य है धीर जो स्वय जीर्ण  
 होजाने पर जीर्ण नहीं होता है वह योगप्राणात्मिक गम है धर्यान् प्राणो के  
 धन्य गमय तब रहन धाम। गम होता है उम नृग्या के स्वाग करने धाने को  
 ही मुग होता है ॥६८॥ जग मे जीर्ण होने धाने पुण्य के केम भी जीर्ण होजाने  
 है तथा गाय ही जग की र्जागता व द-न जीर्ण-रीण हो जाया करते है विगु  
 एक जीवित रहन की भावा और धन प्राप्त करने की धावा जीर्ण होजाने पर  
 भी गृह की जीर्ण नहीं हुआ करती है ॥६९॥ ओ गमाय व कामोपभोग वा  
 मुग है धीर जो दिव्य महान् मुग है व नीनों मृग्या व स्वाग के मुग की  
 मानहवी बना व बगवर भी नहीं है ॥१००॥

एवमुक्त्वा स राजर्षि महार प्रस्थितो वनम् ।

भृगुमुद्ग्रे तपस्यत्पत्वा तत्रैव स महायशा ।

पालयित्वा प्रतप्त तत्रैव स्वर्गमाप्नुवान् ॥१०१॥

तस्य वशास्तु पश्चंते गुण्या देवपितरुताः ।

सैर्ध्यामा पृथिवी कृत्वा सूर्यस्यैव गभस्तिभिः । १०२

धन्य प्रजावानायुष्मान् कीर्तिमाश्च भवेन्नरः ।

ययातेभ्ररित्त मर्षं पठच्छुष्वन् द्विजोत्तम ॥१०३॥

राजर्षि ने द्वा प्रचार मे कहकर पत्नी के साथ वन मे प्रस्थान कर दिया  
 था । भृगु मुद्ग पर तप करके धीर महान् यश धाने ने वहाँ पर ही मी प्रजा  
 का पानन करके वहाँ पर ही स्वर्ग की प्राप्ति की थी ॥१०१॥ उनके ये पाँच

नहुष के पुत्र ने उम समय में पुत्रों के लिये विभाजन कर दिया था ॥८६॥ उनके द्वारा यह समस्त पृथ्वी त्रिगुण गत द्वीप है उमें पत्तनो ( नगरों ) के सहित प्रदेशों के धनुषार घर्म के ज्ञाताओं ने उने घर्म पूर्वक पालन किया था ॥८७॥ इस प्रकार से नहुष के पुत्र ययाति ने उम समय पुत्रों के ऊपर पृथ्वी का भार छोड़कर पुत्रों में राज्यभी को राकानित करने वाला राजा बहुत ही प्रमत्ता को प्राप्त हुआ था ॥८९॥ धनुष और पृषत्तों को त्याग कर तथा पुत्रों को राज्य को सौंप कर बन्धुओं पर अपना भार छोड़कर राजा बहुत ही प्रसन्न हुआ था ॥९२॥

अत्र गाथा महाराजा पुरा गीता ययातिना ।  
 योऽभिप्रेत्याहृन् कामान् कूर्मोऽज्ञानीव सर्वश ॥९३॥  
 न जानु कामः काम नामुपभोगेन शाम्यति ।  
 हविषा वृष्णावर्त्मैव भूय एवाभिवर्द्धते ॥९४॥  
 यत् पृथिव्या ग्रीहियव हिरण्य पञ्च स्त्रिय ।  
 नालमेकस्य तत्सर्वमिति पश्यन्न मुह्यति ॥९५॥  
 यदा तु कुर्वते भाव सर्वभूतेषु पावकम् ।  
 कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥९६॥  
 यदा परान्न विभेति यदा त्वस्मान्न विम्यति ।  
 यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते तदा । ९७॥  
 या दुस्त्यज्जा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यत ।  
 दोषाप्रणान्तिको रागस्ता तृष्णान्तपञ्जत सुखम् ॥९८॥  
 जीर्यन्ति जीर्यत केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः ।  
 जीविताशा घनाशा च जीर्यतोपि न जीर्यति ॥९९॥  
 यच्चाकाममुख लोके यच्च दिव्य महत् सुखम् ।  
 तृष्णास्य च मुखस्यैव कला नाहंति षोडशीम् ॥१००॥

यहाँ पर पहिले महान् राजा ययाति ने यह गाथा गाई है जिमने अभि-  
 प्राय करके समस्त कामनाओं को कूर्म के द्वारा अपने भङ्गों की भाँति सब ओरसे  
 सकुचित कर लिया था ॥९३॥ कभी भी कामों के उपभोग करने उनका समन

मुझमें उमें आप लोग जान लो ॥१॥ यदु के देव पुत्रा के समान पाँच पुत्र हुए थे । उनके नाम सहस्रजित्-श्रेष्ठ-बोष्णु नील-जित और लघु होते हैं ॥२॥ सहस्रजित् का पुत्र श्रीमान् शतजित् नाम वाला राजा हुआ था और शतजित् के परम धार्मिक तीन पुत्र विख्यात हुए थे ॥३॥ जिनके नाम हैहय-हय और वेणु-हय थे । हैहय का पुत्र धमतरव नाम वाला राजा हुआ था ॥४॥ उसके पुत्र धमतत्र-कीर्ति और सज्ञेय थे । सज्ञेय के पुत्र का नाम महिष्मान् राजा था ॥५॥ महिष्मान् के पुत्र का नाम भद्रश्रेय्य था जोकि बड़ा प्रताप वाला हुआ है । यह चारणखी का स्वामी राजा था जिगको कि पहिल ही बतार विद्या है ॥६॥ भद्रश्रेय्य का दायद दुमद नामक राजा था । फिर दुमद के धीमान् कनक नाम वाले पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था ॥७॥ कनक राज्य के चार लोक में परम प्रतिष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए थे जिनके नाम कृतवीर्य-यात्तवीर्य-वृत्तवर्मा और घोषा वृत्त है ॥८॥

कृतो जातश्चतुर्योऽभूत्कृतवीर्यात्ततोऽर्जुन ।  
जज्ञे वाहुसहस्र एा समद्वीपश्वरा नृप ॥८  
स हि वर्षयुत्त तप्त्वा तप परमदुश्चरम् ।  
दत्तमाराधयामास कात्तवीर्योऽत्रिसम्भवम् ॥९०  
तस्मै दत्तो वरान् प्रादाच्छतुरो भूरितेजस ।  
पूर्व वाहुमहस्रन्तु स वध प्रथम वरम् ॥११  
अधर्मे दीयमानस्य सद्भिस्तस्मान्निवारणम् ।  
धर्मेण पृथिवीञ्जित्वा धर्मेणैवानुपालनम् ॥१२  
सग्रामास्तु बहून् जित्वा हृत्वा चारीन् सहस्रश ।  
सग्रामे युद्धघमानस्य वध स्यादधिकद्रो ॥१३  
तेनेय पृथिवी कृत्वा सप्तद्वीपा सपत्तना ।  
सप्तोदधिपरिक्षिप्ता क्षात्रेण विधिना जना ॥१४  
तस्य वाहुसहस्रन्तु युद्धघतं किल धीमत ।  
घोडो च्चक्रो रथश्चैव प्रादुर्भवति मायया ॥१५

वदा है जो बड़े पुण्य है और देवपि के द्वारा सत्कार पाने वाले हैं जिनो यह समस्त भूमण्डल व्याप्त हो रहा है जिन प्रकार भूमि को तिरणो से समस्त पृथ्वी व्याप्त होती है ॥१०२॥ जो द्विज श्रेष्ठ राजा ययानि के इन समस्त वरिष्ठ को पढ़ना या सुनना है वह परम धर्म-प्रदावाला-धायु से युक्त और वह मनुष्य कीर्तिमान् होता है ॥१०३॥

### प्रकरण ५६ — कार्तवीर्य अर्जुन उत्पत्ति

यदोर्ध्वं प्रवक्ष्यामि श्रेष्ठस्योत्तमतेजस ।  
 विस्तरेणानुपूर्व्येण गदतो मे नियोधत ॥१  
 यदो पुत्रा बभूवुर्हि पञ्च देवमुतोपमा ।  
 सहस्रजिदय श्रेष्ठ क्रोष्टुर्नीनो जितो लघु ॥२  
 सहस्रजित्मुत श्रीमाञ्छतजिन्नाम पार्थिव ।  
 सतजित्मृता विख्यातास्त्रय परमधार्मिका ॥३  
 हैहयश्च हयश्चैव राजा वेणुहयश्च य ।  
 हैहयस्य तु दायादो धर्मतत्त्व इति श्रुति ॥४  
 धर्मतन्त्रस्तु कीर्तिस्तु सज्ञेयस्तस्य चात्मज ।  
 सज्ञेयस्य तु दायादो महिष्मान्नाम पार्थिव ॥५  
 आसीन्महिष्मत पुत्रो भद्रश्रेष्ठ्य प्रतापवान् ।  
 वाराणस्यविपो राजा कथित पूर्व एव हि ॥६  
 भद्रश्रेष्ठ्यस्य दायादो दुर्मदो नाम पार्थिव ।  
 दुर्मदस्य ततो धीमान् कनको नाम विश्रुत ॥७  
 कनकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकविश्रुताः ।  
 वृत्त वीर्यं कार्तवीर्यं वृत्तपर्मा तथैव च ॥८

श्री सूय बोले—अब मैं उत्तम तेज वाले-परम श्रेष्ठ यदु के वदा का नाम कर्त्तव्य और उसे विस्तार से तथा अनुपूर्वों के साथ बताऊँगा । कहने हुए

न नून कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति मानवा ।  
 यज्ञेर्दानैस्तपाभिश्च विक्रमंण श्रुतेन च ॥२०॥  
 द्वीपेषु सप्तसु स वै खड्गी वरशरासनी ।  
 रथी राजाप्यनुचरोऽभ्यागाच्चैवानुदृश्यते ॥२१॥  
 अनष्टद्रव्यश्च वासीत शोको न च विभ्रम ।  
 प्रभावेण महाराज प्रजा धर्म्मण रक्षत ॥२२॥  
 पञ्चाशीतिसहस्राणि वर्षाणा स नराधिप ।  
 सप्त सप्त वारात् सम्राट् चक्रवर्ती बभूव ह ॥२३॥  
 स एव पशुपालोऽभूत् दीनपालस्तथैव च ।  
 स एव वृष्ट्या पजन्यो योगित्वादज्जुनोऽभवत् ॥२४॥  
 स वै बाहुसहस्रेण ज्याघातकठिनेन च ।  
 भाति रसिमसहस्रेण शारदेनेव भास्कर ॥२५॥  
 स हि नागसहस्रेण माहिष्मत्या नराधिप ।  
 कर्कोटकसभाञ्जित्वा पुरी तत्र न्यवेशयत् ॥२६॥

उस राजा को बाघा को पचव तथा नारद गाथा करते थे जिहाने उस  
 राजपि के चरित और महिमा को देखा था ॥१६॥ यज्ञ-तप-दान और विक्रमों  
 के द्वारा तथा श्रुत के द्वारा मानव निश्चय ही वास्तु वीर्य की गति को नहीं जा  
 सकेंगे ॥२०॥ मातो द्वीपा में ऐसा अनुदृश्यमान होता है कि वह खड्गधारी-  
 श्रेष्ठ धनुर्धारी-रथी-राजा और अन्य अनुचर भी हुआ था ॥२१॥ धर्म पूर्वक प्रजा  
 की रक्षा करने वाले उम महान् राजा के प्रभाव से सब द्रव्य नष्ट न होने वाले  
 थे और कोई शोक तथा विभ्रम उसकी प्रजा में नहीं था ॥२२॥ वह नरो का  
 स्वामी पिचामी हजार वर्ष तक मात मात वार सम्राट और चक्रवर्ती हुआ था  
 ॥२३॥ वह ही पशुओं का पालन करने वाला हुआ—वह ही क्षेत्रों का पालक  
 हुआ और वृष्टि में वह ही पजन्य योगी होने के कारण हुआ था—वह ऐसा  
 मञ्जुन था ॥२४॥ वह महत्व बाहुओं से और ज्या (प्रत्यज्ञा) के पात कठिना  
 से शरपाल के महत्व किरणों से सूर्य के समान शोभा देता है ॥२५॥ उम

दशयज्ञसहस्राणि तेषु द्वीपेषु मत्सु ।  
 निरर्गला स्म निर्वृत्ता भ्रूयन्ते तस्य धीमता ॥१६॥  
 सर्वे यज्ञा महाबाहोस्तस्यासन् भृगितेजसा ।  
 सर्वे वाञ्छन्वेदोषाः सर्वे घूर्पञ्च वाञ्छन् ॥१७॥  
 सर्वे देवमंहाभागैर्विमानस्थैरलट्टता ।  
 गन्धर्वैरप्सरोभिश्च नित्यमेवोपशोभिता ॥१८॥

चतुर्थं पुत्र इत उत्तरम ह्यथा । इतमे कृत धीर्यं से अर्जुन उत्पन्न ह्यथा  
 त्रिसके एक सहस्र बाहु धी श्री मह मानो द्वीपो का श्वायी राजा ह्यथा या ।१।  
 उत वानर्वीर्यं ने दश हजार वर्षं तक अत्यन्त कठिन तपस्या करके अग्नि के पुत्र  
 दत्त की आराधना की थी ॥१०॥ उतके लिए दत्त ने अधिक तेज से युक्त चार  
 वरदान दिये । उसने सबसे प्रथम सहस्र बाहु के होजाने का वर बोला था ।११।  
 अघर्म में दीयमान का सत्पुरुषो के द्वारा उतमे निवारण करना । धर्म से समस्त  
 पृथ्वी को जीतकर धर्म के द्वारा ही उसका अनुपालन करना ॥१२॥ बहुत से  
 सग्रामो का जीतकर और सहस्रो शत्रुओं का हनन करके सग्राम में युद्ध करते  
 हुए का रणभूमि में अधिक से वध होना ॥१३॥ उसके द्वारा यह पृथ्वी समस्त  
 मात द्वीप और पत्तनों से युक्त मानो समुद्रो से परिक्षिप्त क्षात्र विधि से प्राप्त की  
 श्री इतका पालन किया था ॥१४॥ उत बुद्धिमान् के युद्ध करते हुए महस्र  
 बाहु-योद्धावज और रथ माया से प्रादुर्भूत होते थे ॥१५॥ ऐसा मुना जाता है  
 कि धीमान् उसके दश सहस्र यज्ञ उन सात द्वीपो में बिना ही अर्पिता वाले निवृत्त  
 हुए थे ॥१६॥ महा३ बाहु वाले उसके जोकि एक विशेष तेज वाला था, समस्त  
 यज्ञ सुवर्ण की वेशी वाले और सयम्त सुवर्ण के विरचिन भूरो से युक्त थे ।१७।  
 मव यज्ञ महान् भाग वाले देवो के द्वारा जोकि विमानो में स्थित होकर वहाँ आये  
 थ प्रलङ्कित हुए थे तथा गन्धर्व और अप्सराओ के द्वारा तो वे नित्य ही शोभित  
 रहा करते थे ॥१८॥

राज्ञो जगौ माथा गन्धर्वो नारदस्तथा ।  
 तस्य राजर्षेर्महिमान् निरीक्ष्य च ॥१९॥

कारण दुसह विद्ध फेनां के समुदाय मे गिर गये थे ॥३१॥ राजा ने अपने सहस्र बाहुओं के समूह से सागर को क्षोभ पैदा करते हुए देव और अमुरों के द्वारा परिक्षिप्त क्षीरोद सागर के समान उम अमुद्र को कर दिया था ॥३२॥ मन्दर पर्वत के क्षोभण से क्रिय हुए और अमृतोदक की शङ्का बाल भयानक उस नृपो मे श्रेष्ठ को देखकर डरे हुए तुरन्त उत्प्रादित हुए थे ॥३३॥ महान् उरण नीचे की ओर झुके हुए निश्चल मस्तक बाल होगये थे जिन तरह सन्ध्या के समय मे निर्वाण से स्तिमित बदली के पण्ड हो उसी तरह महान् बन गये थे ॥३४॥

स वै बद्ध्वा धनुर्मान उन्सिक्तः पञ्चभिः शतै ।

लङ्काया मोहयित्वा तु सबल रावण वलात् ।

निजित्य बद्ध्वा चानीय माहिष्मत्या बबन्ध तम् ॥३५॥

ततो गत्वा पुलस्त्यस्तु अर्जुनं च प्रसादयन् ।

मुमोच राजा पौलस्त्य पुलस्त्येनानुपालितम् ॥३६॥

तस्य बाहुसहस्रस्य बभूव ज्यातलस्वन ।

युगान्तोऽम्बुदवृक्षस्य स्फुटितस्वाशनेरिव ॥३७॥

अहो मृधे महावीर्यं भार्गवो यस्य सोऽच्छिनत् ।

मृधे सहस्रं बाहूना हेमतालवन यथा ॥३८॥

तृपितेन कदाचित्स भिक्षितश्चित्रभानुता ।

सप्त द्वीपाश्चित्रभानो प्रादाद्भ्रिदा विशाम्पतिः ॥३९॥

पुराणि घोपान् प्रामाश्च पत्तनानि च सर्वशः ।

जज्वाल तस्य वाग्नेषु चित्रभानुर्दिधक्षया ॥४०॥

स तस्य पुरुषेन्द्रस्य प्रभावेण महापशा ।

ददाह कार्तवीर्यस्य शैलाश्चापि वनानि च ॥४१॥

स शून्यमाश्रम सर्वं वरुणस्यात्मजस्य वै ।

ददाह सवनद्वीपाश्चित्रभानु महैहय ॥४२॥

वह पाँचसौ धनुर्मानों के द्वारा बाँधकर उत्तिवन हुआ और सबल रावण को लका मे मोह युक्त कराकर बलपूर्वक जीतकर तथा बाँधकर और माहिष्मती पुरी मे लाकर उसे बाँध दिया था ॥३५॥ इसके अनन्तर पुलस्त्य ऋषि वहाँ



नराधिप ने सहस्र नागों ने पृक्त माहिष्मती में बर्छोटक—सभा को त्रीतकर वहाँ पुरी को निवेशित कर दिया था ॥२६॥

स व वेगे समुद्रस्य प्रावट्कालाम्बुजेश्वरः ।  
 श्रीडन्निव मुखोद्विग्न प्रावट्कालश्चकार ह ॥२७॥  
 लुलिता श्रीडता तेन हेमस्रग्दाममालिनी ।  
 ऊर्मि भ्रूवुटिसन्नादा शङ्किताभ्येति नर्मदा ॥२८॥  
 पुरा स तामनुसरन्नवगादो महाराणवम् ।  
 चकारोद्वृत्त्य वेलान्त स काल प्रावृणोद्वनम् ॥२९॥  
 तस्य बाहु सहस्रेण क्षोभ्यमाणे महावधौ ।  
 भवन्ति लीना निश्चेष्टा पातालस्या महामुरा ॥३०॥  
 चूर्णोत्त महावीचिलीनमीनमहाविषा ।  
 पतिता विद्वेषेनोघमावर्त्तक्षित्तदुस्सहम् ॥३१॥  
 चकार क्षोभयान्राजा दो.सहस्रेण सागरम् ।  
 देवानुरपरिक्षित क्षीरोदमिव सागरम् ॥३२॥  
 मन्दरक्षोभणकृता ह्यमृतोदवशङ्किता ।  
 सहस्रोत्पादिता भीता भीम दृष्ट्वा नृपोत्तमम् ॥३३॥  
 नतनिश्चलमूर्धाना बभूवुश्च महोरगा ।  
 सायाह्ने कदलीपण्डा निर्वातस्तिमिता इव ॥३४॥

वर्षाकाल के कमल के समान नेत्रों वाल उमने समुद्र के वेग में मुख में उद्विग्न होते हुए खेप की भाँति प्रावृट् काल कर दिया था ॥२७॥ क्रीडा करते हुए उसने हेमस्रग्दाम मालिनी को लुलित कर दिया था । ऊर्मि रूपिणी भृङ्गुटियों के स्रग्द वाली नर्मदा शङ्किता होनी हुई जाती है ॥२८॥ प्राचीन काल में उसने उमका अनुसरण करने हुए महाराणव को अवपाठ दिया था । वेला के अन्त तक उद्वर्त्तित कर उम वाल ने वन को प्रावृण कर लिया था ॥२९॥ उमके एक सहस्र बाहुओं से महोदधि के क्षोभ्यमाण होने पर पाताल में रहने वाले महाअसुर निश्चेष्ट होकर खीन होगये थे ॥३०॥ चूर्ण किये हुए बड़ी तरङ्गों में लीन है मद्यनियों का महाविष जिनका ऐसे वे घावर्त्तो (अमर) से क्षित होने के

जयध्वजश्च वै पुना भवन्तिषु विद्यापते ।

जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घः प्रनापवान् ॥१०॥

पहिले वरुण ने भास्विन उत्तम पुत्र को प्राप्त किया था । वह वसिष्ठ नाम वाला मुनि जनो का आशय लेने वाला विख्यात मुना गया गया है ॥४३॥ यहाँ पर प्रापतियों आईं तो विनु ने क्रोध से भर्तुं न को दत्त किया था । हे हैहय ! यह तेरा वन जित्त कारगु से मेरे यहाँ बजित नहीं है ॥४४॥ इसी कारण से तेरा यह दुष्कर कर्म है और इसको कृतमन्य हनन करेगा । भर्तुं न नाम वाला कौन्तेय राजा नहीं होगा ॥४५॥ हे भर्तुं न ! प्रहार करने वाली मे परमश्रेष्ठ महान् धीर्यं वाले परशुराम जो बली है शीघ्र ही तुम्हको छेदकर तेरी सहाय बाहुओं को प्रमथित करेंगे ॥४६॥ महान् बलवान् तपस्वी और ब्राह्मण तेरा बध करेगा । धीमान् उमके मृत्यु क्षण मे उम समय राम थे ॥४७॥ उम राजा ने पहिले स्वय ही वर प्राप्त किया था । उसके सी पुत्र थे जिनमे वहाँ पाँच महारथ थे ॥४८॥ अस्त्रों के प्रश्याम करने वाले—बलयुक्तर—दूरवीर—यशस्वी और धर्मत्मा वे सब थे । दूर और दूमेन—वृष्टबाद्य और वृष तथा जयध्वज अश्विनियो मे उम विद्यापति के पुत्र थे । जयध्वज का पुत्र तालजङ्घ प्रतापवान् था ॥४९-५०॥

तस्य पुत्रदात ह्येव तालजङ्घा इति श्रुतम् ।

तेषा पञ्च गणा ख्याता हैहयाना महात्मनाम् ॥५१॥

वीरहोत्र ह्यसङ्घघाना भोजाश्रावतंयस्तथा ।

तुण्डिवेराश्व विमान्तास्तानजङ्घास्तथैव च ॥५२॥

वीरहोत्रमुनश्चापि अनन्तो नाम पाथिव ।

दुर्जयस्तस्य पुत्रस्तु बभूवामिश्रदर्शन ॥५३॥

अनष्टद्वयता चैव तस्य राज्ञो बभूव ह ।

प्रभावेण महाराज. प्रजास्ता. पर्यंपातयन् ॥५४॥

न तस्य वित्तनाशश्च नष्ट प्रतिलभेत स ।

पातंवीर्यस्य या जन्म कथयेदिह धीमन ॥५५॥

गये और उन्हेंने अर्जुन को प्रमत्त किया था । तब राजा ने पुलस्त्य के द्वारा अनुपालित उम पीलस्य (रावण) को छोड़ दिया था ॥३६॥ उमने बाहु सहस्र का ज्या तल का शब्द युग के अन्त में स्फुटित अम्बुद वृक्ष के वज्र की भांति था ॥३७॥ अहो ( बड़े आश्चर्य की बात है ) युद्ध में महान् वीर्य वाले जिसके बाहुओं के सहस्र को हेमताल वन के समान युद्ध में भागव ने छेदन कर दिया था ॥३८॥ किसी समय प्यामे चित्रभानु ने उममें भिक्षा माँगी थी । विशाम्पनि ने चित्रभानु को सात द्वीपों की भिक्षा दे दी थी ॥३९॥ चित्रभानु ने दिग्भ्रता से उराके बाणों में पुर-घोष-ग्राम और पत्तनों को नब और से जला दिया था ॥४०॥ उस पुरुषेन्द्र के प्रभाव से महान् पशु वाले उसने कार्तवीर्य के शैल और वनों को भी दग्ध कर दिया था ॥४१॥ हैहय के साथ उस चित्रभानु ने वस्त्र के आत्मज के समस्त शून्य आश्रम का और वनों के सहित द्वीपों को जला दिया था ॥४२॥

सलेभे वरणं पुनं पुरा भास्विनमुत्तमम् ।

वसिष्ठनामा स मुनि रपातश्चाप श्रित श्रुत ॥४३

तत्रापदस्तदा क्रोधादर्जुन शप्तवाँवमु ।

यस्मान्न वज्रितमिद वन ते मम हैहय ॥४४

तस्मात् ते दुष्कर कर्म कृतमन्यो हनिष्यति ।

अर्जुनो नाम कौन्तेयो न च राजा भविष्यति ॥४५

अर्जुन त्वा महावीर्यो राम प्रहरता वर ।

छिन्वा बाहुसहस्र वै प्रमथ्य तरसा बली ॥४६

तपस्वी ब्राह्मणश्चैव बधिष्यति महाबलः ।

तस्य रामस्तदा ह्यासीन्मृत्युशापेन धीमत ॥४७

राज्ञा तेन वरश्चैव स्वयमेव वृत पुरा ।

तस्य पुत्रशत ह्यासीत् पञ्च तत्र महारथा ॥४८

कृतास्त्रा बलिन शूरा घर्मात्मानो यशस्विन ।

शूरश्च शूरसेनश्च वृष्ट्याद्य नृप एव च ॥४९

जयध्वजश्च धे पुत्रा अवन्तिपु विशांपते ।

जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घः प्रतापवान् ॥१०॥

पहिले वरुण ने भास्विन उत्तम पुत्र को प्राप्त किया था । वह वसिष्ठ नाम वाला मुनि जनो का आश्रय लेने वाला विस्वात मुना गया गया है ॥४३॥ वहाँ पर प्रापत्तियों आईं तो विभु ने क्रोध से अर्जुन को सप्त दिया था । हे हैहय ! यह तेरा वन जिस कारण से मेरे यहाँ बर्जित नहीं है ॥४४॥ इसी कारण से तेरा यह दुष्कर कर्म है और इसको कृतमन्य हनन करेगा । अर्जुन नाम वाला कौन्त्य राजा नहीं होगा ॥४५॥ हे अर्जुन ! प्रहार करने वालो मे परमश्रेष्ठ महान् वीर्य वाले परशुराम जो बली है शीघ्र ही तुमको छेदकर तेरी सहस्र बाहुओं को प्रमथित करेंगे ॥४६॥ महान् बलवान् तपस्वी और ब्राह्मण तेरा वध करेगा । धीमान् उसके मृत्यु क्षण में उस समय राम थे ॥४७॥ उस राजा ने पहिले स्वय ही वर प्राप्त किया था । उसके सौ पुत्र थे जिनमें वहाँ पाँच महारथ थे ॥४८॥ अस्त्रों के अभ्यास करने वाले—बलदुवन्—शूरवीर—यशस्वी और धर्मात्मा थे सब थे । शूर और धूर्सेन—वृष्टचाच और वृष तथा जयध्वज अवन्तियो म उग विशाम्पति के पुत्र थे । जयध्वज का पुत्र तालजङ्घ प्रतापवाला था ॥४९-५०॥

तस्य पुत्रदात ह्येव तालजङ्घा इति श्रुतम् ।

तेषा पञ्च गणा ख्याता हैहयाना महात्मनाम् ॥११॥

वीरहोत्र ह्यसङ्घचाता भोजाश्चावर्तयस्तथा ।

तुण्डिकेराश्च विमान्तास्तालजङ्घास्तथैव च ॥१२॥

वीरहोत्रमुतश्चापि अनन्तो नाम पार्थिव ।

दुर्जयस्तस्य पुत्रस्तु बभूवामिन्द्रसंन ॥१३॥

अनष्टद्रव्यता चैव तस्य राज्ञो बभूव ह ।

प्रभाषेण महाराजः प्रजास्ता. पर्यंपालयत् ॥१४॥

न तस्य वित्तनागश्च नष्टं प्रतिनभेत स ।

शातंवीर्यस्य यो जन्म कथयेदिह धीमत ॥१५॥

वित्तवान् भवत्यत्रैव धर्मश्चास्य विवर्द्धते ।

त्वष्टा भवेत् यथा दाता तथा स्वर्गे महीपते ॥५६॥

उमके सो पुत्र ही तालजङ्ग थे यह हमने सुना है । उन महात्मा हैहयो के पाँच गण परम विश्वात थे ॥५१॥ वीरहोत्र-सस्रस्यात भोज-आवर्त्तय-तुष्टिकेर तथा विक्रान्त तालजङ्ग थे ॥५२॥ वीरहोत्र का पुत्र भी राजा अनन्त नाम वाला हुआ था । उसका पुत्र दुर्जय था जोकि अमित्र दर्शन हुआ था ॥५३॥ उस राजा के कभी नाश को न प्राप्त होने वाले घन का होना था । यह महाराज उन समस्त प्रजाओं का प्रभाव से परिपालन किया करता था ॥५४॥ उसका वित्त का कभी नाश नहीं होता है और जो कुछ कभी नष्ट भी होगया हो तो वह उसे प्राप्त कर लेता है । यहाँ बुद्धिमान् कार्तवीर्य के जन्म की कथा को जो कोई कहता है वह वित्त वाला यहाँ पर ही होजाता है और इसके धर्म की वृद्धि होती है । वह जिस प्रकार से त्वष्टा और दाता हो उसी तरह से स्वर्ग में प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥५५-५६॥

### प्रकरण ५७—ज्यामघ वृत्तान्त कथन

विमर्षं भुवन दग्धमपवस्य महात्मनाम् ।

कार्तवीर्येण विक्रम्य तत्र प्रब्रूहि पृच्छताम् ॥१॥

रक्षिता स तु राजर्षि प्रजानामिति न श्रुतम् ।

कथं स रक्षिता भूत्वानाशयत्तत्तपोवनम् ॥२॥

आदित्यो विप्ररूपेण कार्तवीर्यमुपास्यत ।

तृप्तिकाम प्रयच्छान्नमादित्योऽहं न तस्य ॥३॥

भगवन् केन ते तृष्टिर्भवेद् ब्रूहि दिवाकर ।

कीदृशं भोजनं दधि श्रुत्वा च विदधाम्यहम् ॥४॥

स्यावर देहि मे सर्वमाहारं ददता वर ।

तेन तृप्तो भवेयं वै न तुष्यन्त्येन पाथिव ॥५॥

न शक्य स्यावर सर्व्वं तेजसा मानुषेण तु ।  
 निर्द्दग्धु तपसा श्रेष्ठ त्वामेव प्रणमाम्यहम् ॥६॥  
 तुष्टस्तेऽहं शरान् दक्षि श्रक्षयान् सर्वंत सुखान् ।  
 प्रक्षिप्ताः प्रज्वलिष्यन्ति मम तेजःसमन्विताः ॥७॥  
 घ्रादिष्टं तेजसा मेघसागर शोषयिष्यति ।  
 शुष्क भस्म करिष्यामि तेन प्रीतां नराधिप ॥८॥

शूरियो ने कहा—बाल्मीक्य ने विव्रम करके महात्माओं के अपवश्य भुवन को किस निचे जलाया था—वह सब पूछने वाले हमको घाप बतलाइये ॥१॥ हमने गुना है कि वह राजपि तो प्रजाओं की रक्षा करने वाला था फिर वह रक्षक होकर किस कारण से उमने तपोवन का नाश किया था ॥२॥ मूनजी ने कहा—सूर्यं भगवान् शाह्यण के रूप में बाल्मीक्य के पास उपस्थित हुए थे—मैं तृप्ति की कामना माना हूँ—मुझे अन्न दो—मैं प्रादित्य हूँ । इगमे कुछ भी मगय नहीं है ॥३॥ राजा ने कहा—हे दिवाकर ! यह बतलाइये घापकी तुम्हें किससे होगी । मैं आपको किस प्रकार का भोजन दूँ और यह मुनकर मैं करूँगा ॥४॥ सूर्य ने कहा—हे दान देने वाले म श्रेष्ठ ! मुझे समस्त आहार स्यावर हा । उममे मेरी तृप्ति होगी हे पार्थिव ! अन्य किसीसे भी मैं सन्नुष्ट नहीं होऊँगा ॥५॥ राजा ने कहा—हे तपने वाला मे श्रेष्ठ ! मानुष तेज से समस्त स्यावर निर्द्दग्ध किया नहीं जा सकता है । मैं आपको ही प्रणाम करता हू । ६॥ प्रादित्य ने कहा—तुष्ट हुआ मैं तुम्हें सर्व्व ओर से गुण प्रद—अक्षय दारों को देता हूँ वे फेंके हुए मेरे तेज से समन्वित होने वाले प्रज्वलित हो जायेंगे ॥७॥ हे नराधिप ! तेज से घ्रादिष्ट मेघ-सागर को शोषित कर देगा । उससे प्रसन्न मैं शुष्क को भस्म कर दूँगा ॥८॥

तत शरानघादित्यस्त्वजुं नाय प्रयच्छति ।  
 तत मप्राप्य मुमहृतस्यावर सर्व्वमेव हि ॥९॥  
 आश्रमानय ग्रामाश्च घोषाश्च नगराणि च ।  
 तपोवनानि न्यागि वनान्यपवनानि च ॥१०॥

एव प्राचीनमदहत्ततः सूर्यप्रदक्षिणम् ।  
 निर्वृक्षा निस्तृणा भूमिर्दग्धा सूर्येण तेजसा ॥११  
 एतस्मिन्नेव काले तु यपो निलयमाश्रित ।  
 ददादपसहस्राणि जलवासा महानृपि ॥१२  
 पूर्णे व्रते महातेजा उदतिष्ठत्तपोधनः ।  
 सोऽपस्यदाश्रम दग्धमर्जुनेन महानृपि ।  
 क्रोधाच्छशाप राजपि कीर्तित वो यथा मया ॥१३

इसके अनन्तर आदित्य अर्जुन क लिये गरो को दे देता है । फिर उड़ पाकर सुमहान् ममस्त त्यागर को-आश्रमो को-घोषा को और नगरो को-नपो-ननो को-रम्पनम वनो को और उपवनो को सबको इस प्रकार स प्राचीन को सूर्य प्रदक्षिण का दाह कर दिया था । ममस्त यह भूमि बिना वृक्षो वाली-नृण रहित सूर्य के तेज से जली हुई होगई थी ॥६-१०-११॥ इसी समय मे महान् ऋषि जल के घर मे आश्रित होगया और दश सहस्र वष तक जल म ही वाप करने वाले हुए थे ॥१२॥ व्रत के पूर्ण होजाने पर महान् तेज वाले तपोवन उठकर खड़े हुए थे । उन महान् ऋषियो ने अर्जुन के द्वारा दग्ध आश्रम को देखा था । तब क्रोध से राजपि को शाप दे दिया था जैसा कि मैंने तुमसे कहा था ॥१३॥

क्षोष्टो ऋणुत राजर्षेर्वंशमुत्तमपूरपम् ।  
 यस्यान्ववाये मभूतो वृष्टिणवृष्टिणकुलादह ॥१४  
 क्षोष्टोरेकोऽभवत् पुत्रो वृजिनीवान् महायशा ।  
 वाजिनीवतमिच्छन्ति स्वाहि स्वाहोवता वरम् ॥१५  
 स्वाहे पुत्रोऽभवद्राजा रशादुर्दंढता वरः ।  
 घृतम्प्रसूतमिच्छन्ति रशादोरग्ध् मात्मजम् ॥१६  
 महाकतुभिरीजे स विविधैराज्ञदक्षिणं ।  
 चित्रं श्चित्ररथस्तस्य पुत्र कर्मभिरन्वित ॥१७  
 एव चित्ररथो वीरो यज्ञान् विपुलदक्षिणान् ।  
 दशविन्दु पर वृत्तो राजर्षीणामनुष्ठित ॥१८

चक्रवर्ती महासत्त्वो महावीर्यो बहुप्रज ।  
 तत्रानुवशश्लोकोज्य यस्मिन् गीत पुराविदैः ॥१६  
 शशविन्दोस्तु पुत्रारणा शतानामभवच्छतम् ।  
 धीमतामनुरूपाणा भूरिद्रविणतेजसाम् ॥२०

सूनजी ने कहा—भव राजपि ब्रोट्टु के उत्तम पूरप वाणे वश वा श्रवण  
 करो जिसके श्रवण मे वृष्णि वृत्र का उद्ग्रह वृष्णि उत्पन्न हुआ था ॥१४॥  
 क्रोट्टु के एक ही पुत्र था जोकि वृजिनी बाल्य और महान् यशवाला था जो  
 वाजिनी बाल स्वाहि को स्वाहो वालो म श्रेष्ठ को चाहता था ॥१५॥ स्वाहि  
 का पुत्र दान देने वालो म उत्तम रमादु का सबसे पहिला पुत्र घृत प्रसूत हुआ  
 था ॥१६॥ उसने बड़े बड़े महान् शत्रुओं के द्वारा यजन किया था जिनमे बहुत  
 ही अधिक दक्षिणा प्राप्त की गई थी तथा अनेक प्रकार के थे । उसका पुत्र कर्भो  
 ने अश्विन चित्ररथ हुआ था ॥१७॥ इस प्रकार से चित्ररथ वीर ने विशेष  
 अधिक दक्षिणा वाले यज्ञो को करके राजपियो द्वारा अनुष्ठित शशविन्दु नाम  
 वाला पुत्र प्राप्त किया था ॥१८॥ वह शशविन्दु महान् सत्त्व वाला—चक्रवर्ती—  
 महावीर्य और बहुत सी सन्तति वाला हुआ था । वहाँ पर उसके वश का  
 यह श्लोक पुरा वेसाभो के द्वारा गाया गया है ॥१६॥ शशविन्दु के परम बुद्धि-  
 मान्—बहुत धन एक तेजवाले तथा अनुरूप सो पुत्र हुए थे ॥२०॥

तेषा पट् च प्रधानास्तु पृथुपाट्का महाबला ।  
 पृथुश्रवा पृथुयशा पृथुधर्म्मा पृथुञ्जय ॥२१  
 पृथुकीर्त्ति पृथुन्दाता राजान. शाशिबिन्दवा ।  
 शसन्ति च पुराणानि पार्थश्रवसमन्तरम् ।  
 अन्तरः स पुरा यस्तु यज्ञस्य तनयोऽभवत् ॥२२  
 उशना सुतधर्म्मात्मा अवाप्य पृथिवीभिमाम् ।  
 ग्राजहाराश्रमेधाना शतमुत्तमधार्म्मिक ॥२३  
 मरुत्तस्तस्य तनयो राजर्षीणामनुक्षित ।  
 वीर कम्बलर्वाहस्तु मरुत्ततनय स्मृत ॥२४



पुत्रस्तु स्वमकवचो विद्वान् कम्बलवहिपः ।  
 निहत्य स्वमकवच पुरा कवचिनो रणे ॥२५॥  
 धन्विनो निशितैर्वाणैरवाप श्रियमुत्तमम् ।  
 ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तमश्वमेधमहायशा ॥२६॥  
 राज्ञस्तु स्वमकवचादपरावृत्त्य वीरहा ।  
 जज्ञिरे पञ्च पुत्रास्तु महासत्त्वा महाबला ॥२७॥  
 स्वमेपु पृथुस्वमश्च ज्यामघ परिषो हरिः ।  
 परिषश्च हरिश्चैव विदेहे स्थापयत्पिता ॥२८॥

उन सौ पुत्रों में महान् बल वाले पृथुपाठक छँ पुत्र प्रधान थे जिनके नाम ये हैं—पृथुश्रवा—पृथुयशा—पृथुधर्मा—पृथुञ्जय—पृथुकीर्ति और पृथुन्दाता, ये सब शांतिविन्दव राजा थे । पुराण पृथुश्रवा के अन्तर नामक पुत्र को बतलाते हैं । अन्तर वह था जो पहिले यज्ञ का पुत्र हुआ था ॥२१-२२॥ मुनधर्मा का आत्मा उसना ने इस पृथ्वी को प्राप्त करके उत्तम धार्मिक उमने सौ ब्रह्ममेध यज्ञ किये थे ॥२३॥ राजर्षियों का अनुष्ठित मरुत नाम वाला उसका पुत्र हुआ था । मरुत का पुत्र वीर कम्बलवहि कहा गया है ॥२४॥ कम्बलवहि का पुत्र परम विद्वान् स्वम कवच हुआ था । स्वम कवच ने पहिले अपने तीसे वाणों के द्वारा रण म धन्वी तथा कवच धारियों को मारकर उत्तम थी को प्राप्त किया था और सश्व-मेधों से महान् यश वाले उतने बहुत सा धन ब्राह्मणों को दान में दे दिया था ॥२५-२६॥ राजा स्वम कवच से महान् सत्त्व वाले तथा महान् बल वाले पाँच पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया था ॥२७॥ जिनके नाम स्वमेपु—पृथुधर्म—ज्यामघ—परिष और हरि ये थे । परिष को और हरि को पिता ने विदेह में स्थापित किया था ॥२८॥

ब्रह्मपुरभवद्राजा पृथुस्वमस्तदाश्रयः ।  
 तेभ्य प्रव्रजितो राज्या ज्य्यामघोऽभवदाश्रमे ॥२९॥  
 प्रशान्तस्तु वने घोरे ब्राह्मणेनावबोधितः ।  
 जगाम धनुरादाय देशमध्य रथी ध्वजी ॥३०॥

नम्मंदानूप एकान्ती मेक नावृत्तिका अपि ।  
 ऋक्षवन्त गिरि गरवा शुक्तिमन्यामयाविशत् ॥३१  
 ज्यामघस्याभवद्भार्या शैव्या बलवती भृशम् ।  
 अनुश्रोऽपि स वै राजा भार्यामन्या न विन्दति ॥३२  
 तन्म्यासीद्विजयो युद्धे तत कन्यामदाप स ।  
 भार्यामुवाच राजा स स्तुपेति तु नरेदवर । ३३  
 एवमुक्त्वाऽब्रवीदेव काम्ये यन्ते स्तुपेति सा ।  
 यस्ते जनिष्यते पुत्रस्तस्य भार्या भविष्यति ॥३४  
 तस्य सा तपमोग्रेण शैव्या वैश प्रमूयत ।  
 पुत्र विदभं सुभगा शैव्या परिणता सती ॥३५  
 राजपुत्री तु विद्वासी स्तुपाया ऋषुकीशिकी ।  
 पुत्री विदभोऽजनयच्छूरी रणविशारदौ ॥३६

ब्रह्मोपु राजा हुमा या उमक आश्रम म रहने वाला पृषुहम था । राज्य  
 से प्रव्रजित ज्यामघ आश्रम म हुमा था ॥२१॥ घोर वन में प्रयान्त धीर ब्राह्मण  
 क द्वारा अवशोभित वह रथ नया ध्वज वाता धनुष लेकर देव के मध्य म गया  
 था ॥३०॥ नर्मदा के अनूप म एकान्ती मङ्गला वृत्तिवाला ऋषवान् पर्वत म  
 जाकर एक अन्य शुक्ति म प्रवेश कर गया था ॥३१॥ ज्यामघ की भार्या बहूत  
 ही बल वाली शैव्या थी वह राजा पुत्र हीन भी था चिन्तु उमन दूमरी भार्या  
 को प्राप्त नहीं किया था ॥३२॥ उमकी युद्ध म विजय हुई थी । इसके परवान्  
 उमने एक कन्या प्राप्त की थी । वह नरेश्वर राजा अपनी भार्या से यह स्तुपा  
 है—ऐसा बोला था ॥३३॥ इन प्रकार से कही जल वाली उमने कहा यह  
 धारी हुई आपकी स्तुपा है तो जो आपका पुत्र उत्पन्न होगा यह उमकी भार्या  
 होगी ॥३४॥ उमके उष तामे शैव्या ने वैश को प्रमूत किया था । परिणत सती  
 शैव्या ने विदभं नामक पुत्र को उत्पन्न किया ॥३५॥ विदभं ने स्तुपा म विद्वान्  
 ऋषु धीर शौनिक दो रात्रपुत्रों को उत्पन्न किया था जोकि राणु के विशारद  
 तथा बड़े ही शूरवीर थे ॥३६॥

लोमपाद तृतीयन्तु पञ्चाङ्गजे सुधामिक ।

लोमपादात्मशोवन्तुगहृदिस्तस्य चारुमज ॥३७

कौशिकस्य चिदि पुत्रस्तस्मान्नेशा नृपा. स्मृताः ।  
 क्रयोविदभंपुत्रस्तु कुन्तिस्तस्यात्मजोऽभवत् ॥३८  
 कुन्तैर्धृष्टसुतो जज्ञे पुरोधृष्टः प्रतापवान् ।  
 धृष्टस्य पुत्रो धर्मरिमा निवृत्ति परवीरहा ॥३९  
 तस्य पुत्रो दशाहंस्तु महाबलपराक्रम ।  
 दशाहंस्य सुतो व्योमा ततो जीमूत उच्यते ॥४०  
 जीमूतपुत्रो विकृतिस्तस्य भीमरथ सुत ।  
 अथ भीमरथस्यासीत् पुत्रो रथवर बिल ॥४१  
 दाता धर्मरतो नित्य शीलसत्यपरायण ।  
 तस्य पुत्रो नवरथस्ततो दशरथ स्मृत. ॥४२  
 तस्य चंकादशरथ शकुनिस्तस्य चात्मजः ।  
 तस्मात् करम्भको धन्वी देवरातोऽभवत्तत ॥४३  
 देवक्षत्रोऽभवद्राजा देवरातिर्महायशा ।  
 देवक्षत्रसुतो जज्ञे देवन क्षत्रनन्दन ॥४४

तीसरा पुत्र लोमपाद नाम वाला पीछे उत्पन्न हुआ था जो बहुत ही  
 धार्मिक वृत्ति वाला था । लोमपाद का पुत्र वस्तु हुआ और उसका मात्मज  
 आहूति हुआ था ॥३७॥ कौशिक का पुत्र चिदि था उससे चैय राजा कहे गये  
 हैं । क्रयु का पुत्र विदभं हुआ और उसका पुत्र कुन्ति नाम वाला हुआ था । ३८।  
 कुन्ति के धृष्टि सुत ने प्रताप वाला पुरोधृष्ट उत्पन्न किया था । धृष्ट का पुत्र  
 धर्मरिमा परवीरहा निवृत्ति हुआ था ॥३९॥ उसका दशाहं हुआ था जो बल  
 तथा पराक्रम में महात् था । दशाहं का पुत्र व्योमा नामक था और फिर उसका  
 पुत्र जीमूत नाम वाला कहा जाता है ॥४०॥ जीमूत का पुत्र विकृति नामक हुआ  
 उस का पुत्र भीमरथ हुआ था । इसके अनंतर भीमरथ का पुत्र रथवर  
 था ॥४१॥ यह बहुत ही दान देने वाला तथा धर्म में रति रखने वाला  
 । र नित्य ही शील एवं सत्य में परायण रहा करता था । उसका पुत्र नव  
 था और फिर उसका पुत्र दशरथ हुआ था ॥४२॥ उसके पुत्र का नाम  
 शरथ था तथा उसने आत्मज शकुनि नाम वाले ने जन्म ग्रहण किया

था । उमसे धन्वी करम्भक हुमा और इसके पश्चात् उसके देवरान पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥४३॥ देवरात्र राजा हुआ था और देवरानि महान् यश वाला था । देवरात्र के मुत ने क्षत्रियो को प्रानद देने वाला देवन पुत्र को जन्म दिया था ॥४४॥

देवनात् सु मधुर्जज्ञे यस्य मेघार्यसम्भवः ।

मघोश्चापि महातेजा मनुर्मनुवशस्तथा ॥४५॥

नन्दश्च महातेजा महापुरवशस्तथा ।

श्रामीत् पुरुवशात् पुत्र. पुरुद्वान् पुरपोधम. ॥४६॥

जज्ञे पुरद्वत् पुत्रो भद्रवत्या पुरुद्वह. ।

ऐशावी त्वभवद्भार्या सत्त्वस्तस्यामजायत ।

सत्त्वात् सत्त्वगुणो पेत सात्त्वत कीर्तिवर्द्धन ॥४७॥

इमां विमृष्टि विज्ञाय ज्यामघस्य महात्मन. ।

प्रजावानेति सायुज्य राज्ञ सोमस्य धीमत ॥४८॥

देवन से मधु ने जन्म ग्रहण किया जिसका मेघार्य सम्भव है । मधु के

भी महान् तेज था मनु तथा मनुवश हुआ ॥४५॥ और नन्दन तथा महान् तेज था महा पुरुवश हुआ था । पुरुवश से पुरुपोत्तम पुरु विद्वान् पुत्र हुआ था ॥४६॥ पुरद्वान् से भद्रवती से पुरुद्वह पुत्र ने जन्म लिया था । उसकी भार्या ऐशावी हुई थी उमसे सत्त्व पैदा हुआ था । सत्त्व से सत्त्वगुण से युक्त कीर्तिवर्द्धन सात्त्वत हुआ था ॥४७॥ महात्मा ज्यामघ की इस विशेष मृष्टि का ज्ञान प्राप्त करने पुरुष प्रजा वाला होना है और धीमान् राजा सोम से सायुज्य को प्राप्त करता है ॥४८॥

प्रकरण—५८ त्रिपुत्र वंश वर्णन

मातृवती ऋगम्पद्मं वीरान्या मुपुवे गुणम् ।

भजिन भजमानं च दिव्य देवावृष तृणम् ॥१॥

अन्धवन्ध महाभोज तृप्तिगन्ध यदुनन्दनम् ।

तेषां द्वि सर्गाश्चत्वार शृणुष्व विन्तरेणु सं ॥२॥

भजमानस्य शृङ्खल्या वाह्यश्चोपरि वाह्यक ।  
 शृङ्खल्यस्य सुते द्वे तु वाह्यकस्ते उदावहत् ॥३॥  
 तस्य भार्ये भगिन्यौ ने प्रामूतेति सुतान् बहून् ।  
 निमिश्च पणवश्चैव वृष्टिण परपुञ्जय ॥४॥  
 ये वाह्यकार्यं शृङ्खल्यया भजमाना द्विजज्ञिरे ।  
 अयुतायुतसाहस्रशतजिदथ वामक ॥५॥  
 वाह्यकार्याभगिन्या ये भजमाना द्विजज्ञिरे ।  
 तेषा देवावृधो राजा चचार परम तप ॥६॥  
 पुत्र सर्वंगुणोपेतो मम भूयादिति स्म ह ।  
 सयोज्यात्मानमेव सर्वर्णा सा जलमस्पृशत् ॥७॥  
 सा चोपस्पर्शनात्तस्य चचार ऋषिमापगा ।  
 कल्याणञ्च नरपतेस्तस्य सा निम्नगोत्तमा ॥८॥

श्री सूत जी ने कहा—सात्वी कौशल्या ने रूप मे सम्पन्न सुत का प्रसव किया था । भजिन—भजमान दिव्य देवावृध नृप को उत्पन्न किया था ॥१॥  
 अथक—सहाभोज और वृष्टिण यदुनदन को उत्पन्न किया था । उनके चार सर्व हुए थे उनको प्रव विस्तार से सुनो ॥२॥ भजमान के शृङ्खली म वाह्य और बाद मे वाह्यक हुए । शृङ्खल्य के दो पुत्री थी उन दोनों के साथ वाह्यक ने विवाह कर लिया था ॥३॥ उसकी दोनों बहिन भार्याओ ने बहुत से पुत्रो को जन्म दिया था । निमि—पणव—वृष्टिण और परपुरञ्जय थे ॥४॥ जो वाह्यक की आप शृङ्खली म भजमान से उत्पन्न हुए थे । अयुत—अयुत साहस्र—शतजिन्—नामक थे ॥५॥ जो वाह्यक की भार्ये भगिनी म भजमान से उत्पन्न हुए थे । उनका देवावृध नाम वाला राजा था जिसने परम तपस्या की थी ॥६॥ मेरे समस्त सद्गुणों से युक्त पुत्र उत्पन्न होंगे—इस प्रकार से अपने आपको सयोजित करके सर्वर्णा उसने जल का स्पर्श किया था ॥७॥ उस आपगा ने उमके उप स्पर्शन से ऋषि की किया था और उम निम्नगोत्तमा ने उस नरपति का कल्याण किया था ॥८॥

चिन्तयाभिपरीताङ्गा जगामाय विनिश्चयम् ।  
 नाधिगच्छामि ता नारी यस्यामेवविध. सुत ॥६  
 भवेत्सर्वगुणोपेतो राज्ञो देवावृधस्य हि ।  
 तस्मादस्य स्वयं चाह भवाम्यद्य सहव्रता ।  
 जज्ञे तस्या. स्वयं हस्तो भावस्तस्य यथेरितः ॥१०  
 प्रय भूत्वा धुमारो तु सावित्री परम वच ।  
 चिन्तयामास राजानं तामिवेष स पार्थिव ॥११  
 तस्यामाधत्त गर्भं स तेजस्विनमुदारधी ।  
 अथ सा नवमे मासि सुपुत्रे सरितावरा ॥१२  
 पुत्र सर्वगुणोपेत यथा देवावृधेप्सित ।  
 तत्र वने पुराणज्ञा गाथा गायन्ति वं द्विजा ॥१३  
 गुणान् देवावृधस्यापि कीर्त्तयन्तो महात्मन ।  
 यथैव शृणुते दूरात् सपश्यति तथा-तिवात् ॥१४  
 बभ्रु श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृध मम ।  
 पुरया पञ्चपष्टिश्च सहस्राणि च ममति ।  
 येऽमृतावमनुप्राप्ता बभ्रु देवावृधादपि ॥१५  
 यज्ञा दानपतिर्षीरो ब्रह्मण्यः सत्यवाग् बुध ।  
 कीर्त्तिमाश्च महाभाग सात्त्वताना महारथ ॥१६

किन्ना मे अभिपरीत घट्टो वाली उमने विदेय रूप मे निश्चय दिया था  
 कि उम नारी का अधिगमन नहीं करता हूँ त्रितम इग प्रकार का पुत्र हो ॥६॥  
 राजा देवावृध का ममन्द गुणों से उन्नत होवेगा गो पात्र इगकी स्वयं ही मैं  
 सत्पत्नी हो जाऊँ । इसके स्वयं हस्त ने जन्म दिया था उमका भाव जैसा ईरित  
 हुआ था ॥१०॥ इसके अनन्तर सावित्री कुमारो होकर परम वचन का राजा  
 का चिन्तन करने लगी थी । यह राजा स्वयं उमको लाहना था ॥११॥ उदार  
 बुद्धि वाले उमने उममे तेजसी गर्भ धारण किया था । इसके अनन्तर नवम  
 मास मे उम भक्तिवरा ने प्रसव दिया था ॥१२॥ जैसा देवावृध के द्वारा ईच्छित  
 था वैसा ही समय गुणों मे सुप्त पुत्र को उमने जन्म दिया था । वही वंश मे

पुराण के ज्ञाता द्विजगण गाथा का गान किया करते हैं ॥१३॥ महान् आत्मा वाले देववृष के भी गुणों का कीर्तन करते हुए जैसा ही दूर से सुनते हैं वैसा ही गभीर म आकर देरते हैं ॥१४॥ वञ्च मनुष्यो म श्रेष्ठ देवो के समान देववृष था । पाँच हजार मत्सर वर्ष तक जो पुण्य अभूतस्व को प्राप्त हुये थे । वञ्चुदेव वृद्ध स भी अधिवा यज्वा-दानपति-वीर-ब्रह्मण्य-मत्स्यवचन खाना-परिदत्त-शीतिमान् और महान् भाग वाला मास्त्रतो म महारथ का ॥१५ १६॥

तस्यान्ववाये सुमहाभोजयेमार्तिकावला ।

गान्धारी चैव माद्री च वृष्णोर्भार्य्ये वभूवतु ॥१७

गान्धारी जनयामास सुमित्र मित्रनन्दनम् ।

माद्री युधाजित पुत्र सा तु वै देवमीदृषम् ॥१८

अनमित्र मुतश्चैव तावुभौ पुत्रपोत्तमौ ।

अनमित्रमुतो निघ्नो निघ्नस्य द्वौ वभूवतु ॥१९

प्रसेनश्च महाभाग शक्रजिह्व सुतावुभौ ।

तस्य शक्रजित पूर्यं गत्वा प्राणसमोऽभवत् ॥२०

स कदाचिन्निशापाये रथेन रथिनावर ।

तोयकूलादप स्पष्टमुपस्थातु ययौ रविम् ॥२१

तस्योपतिष्ठत सूर्यो विवस्वानग्रतः स्थित ।

अस्पष्टमूर्तिर्भगवा स्तेजोमण्डलवान् विभु ॥२२

अथ राजा विवस्वन्तमुवाच स्थितमग्रत ।

यथैव व्योम्नि पश्यामि त्वामह ज्योतिषाम्पते ॥२३

तेजोमण्डलिनश्चैव तथै वाप्यग्रत स्थितम् ।

को विशेषो विवस्वस्ते साक्षादुपगतेन वै ॥२४

उमके अन्ववाय म शक्ति करने वाली अबलाएँ भलीभाँति भोग के योग्य थी थी । गान्धारी और माद्री ये दो भार्या वृष्णि की हुई थी ॥१७॥ गान्धारी मित्रो को आनन्द देने वाला सुमित्र पुत्र को उत्पन्न किया था । माद्री ने धाजित पुत्र को जन्म दिया था और उसने तो देवमीदृष को उत्पन्न किया था १८॥ और अनमित्र पुत्रको जन्म दिया था । वे दोनों उत्तम पुत्र थे । अनमित्र

का पुत्र विष्णु हुमा और विष्णु के दो पुत्र हुए थे ॥१६॥ प्रसेन और महाभाग  
 शक्रजित् दो पुत्र थे । उग्र शक्रजित् दा पूर्व प्राण के समान सखा हुआ था । २०।  
 वह किसी समय निदा के समाप्त होजाने पर रथियो मे श्रेष्ठ रथ के द्वारा जल  
 के दिनारे से जलका स्पर्श करने को और रवि का उपस्थान करने के लिये गया  
 था ॥२१॥ उपस्थान करने वाले उसके आगे विवस्वात् सूर्य स्पष्टता मे रहित  
 मूर्तिवासे-विभु और तेज के मण्डल वाले भगवान् थे ॥२२॥ इसके अनन्तर  
 आगे स्थित रहने वाले विवस्वान् मे राजा बोला-जिस प्रकार से आवाग मे मे  
 प्राणो देयता हूँ हे ज्योतिषो के स्वामिन् ! उसी प्रकार से तेज के मण्डल वाले  
 प्राणो आगे स्थित होते हुए भी देख रहा हूँ । हे विवस्वन् प्राणके साक्षात् जाने  
 पर भी क्या विशेषता हुई है ? ॥२३-२४॥

एतच्छ्रुत्वा स भगवान् मणिरत्न स्यमन्तकम् ।

स्वकण्ठादवमुच्यथ बयन्ध नृपते स्तदा ॥२५

ततो विग्रहवन्त त ददर्श नृपतिस्तदा ।

प्रतिमामथ ता दृष्ट्वा मुहूर्त्तं कृतवाग्तथा ॥२६

तमतिप्रस्थित भूयो विवस्वन्त स शक्रजित् ।

प्रोवाचाग्निसवर्णं त्व येन लोकान् प्रयास्यति ।

तदेव मणिरत्न तन्मा भवान् दातुमर्हति ॥२७

स्यमन्तक नाम मणिं दत्तवास्तस्य भास्वर ।

स तमावद्वच्य नगर प्रविशेन महीपतिः ॥२८

त जनाः पर्यघायन्त गुर्योऽय गच्छतीति ह ।

सभा विस्माययित्वाथ पुरीमन्त पुर तथा ॥२९

त प्रमेनिजिते दिव्य मणिरत्न स्यमन्तकम् ।

ददौ आने नरपति श्रेष्ठा शक्रजित्तमम् ॥३०

स्यमन्तको नाम मणिर्यस्य राष्ट्रे स्थितो भवेत् ।

वात्सवर्णो च पर्जन्यो न च व्याधिभय तदा ॥३१

तिष्ठां चरं प्रमेनात्तु मणिरत्न स्यमन्तकम् ।

योविन्दो न च स तेभ्योऽपि न जह्य च ॥३२



यह सुनकर उन भगवान् सूर्यदेव ने स्यमन्तक नाम वाली श्रेष्ठ मणि को अपने कण्ठ से उतार कर राजा के कण्ठ में उस समय बाँध दी थी ॥२५॥ तब तो उस समय में राजा ने देहधारी उनका दर्शन किया था । इसके बाद उन प्रतिमा को देखकर मुहूर्त्त भर राजा ने बैठा ही किया ॥२६॥ फिर अति प्रस्थित उन सूर्यदेव से शक्रजित् ने कहा—अग्नि के सबल आप जिससे भोको को जायने उस समय वह मणि रत्न आप मुझे देने के योग्य होते हैं ॥२७॥ भास्कर ने स्यमन्तक नाम वाली मणि उठाको देवी थी और वह राजा उसे अपने कण्ठ में बाँध कर नगर में प्रविष्ट हुआ था ॥२८॥ मनुष्य उनके चारो घोर दौड लगते थे कि यह सूर्य जा रहा है । राजा ने अपनी पूरी सभा को विस्मय में डालते हुए तथा पूरी पुरी को विस्मित करके फिर वह अन्त पुर में गया था ॥२९॥ उस परम दिव्य उत्तम मणिरत्न स्यमन्तक को राजा शक्रजित् ने प्रेम से अपने भाई प्रसेनजित् को देदी थी ॥३०॥ जिसके राज्य में स्यमन्तक नाम वाली मणि स्थित रहती है वहाँ पर पर्जन्य (भेष) समय पर बपने वाले होते हैं और तब फिर कोई भी व्याधि का भय नहीं रहता है ॥३१॥ भगवान् गोविन्द ने प्रसेन से उस स्यमन्तक मणि के स्वयं प्राप्त करने की लिप्सा की थी किन्तु उसे नहीं प्राप्त किया था और सर्वतो भाव से शान्ति सम्पन्न होते हुए भी उसका हरण नहीं किया था ॥३२॥

कदा चिन्मृगया यात प्रसेनस्तेन भूपित ।  
 स्यमन्तककृते सिंहाद्वय प्राप्त मुदारुणम् ॥३३॥  
 जाम्बवानृक्षराजस्तु त सिंह निजघान च ।  
 आदाय च मणि दिव्य स्व बिल प्रविवेश ह ॥३४॥  
 तत्कर्म वृष्णस्य ततो दुष्ण्यन्धकमहत्तरा ।  
 मणौगृध्नुन्तु मन्वानास्तमेव विशशङ्कुरे ॥३५॥  
 मिथ्याभिर्नास्ति तेम्यस्ना बलवानरिसूदन ।  
 अमृध्यमाणो भगवान् घन स विचचार ह ॥३६॥  
 स तु प्रसेनमृगयामचरत्तत्र चाप्यथ ।  
 प्रसेनस्य पद गृह्य पुरुषे रातवारिभिः ॥३७॥

ऋक्षवन्त गिरिवर विन्ध्यश्च नगमुत्तमम् ।  
 अन्वेपणपरिथान्त स ददर्शं महामना ॥३८  
 सार्व हत प्रसेन त नाविन्दत्तत्र दं मणिम् ।  
 अथ सिंह प्रसेनस्य शरीरस्याविदूरत ॥३९  
 ऋक्षेण निहतो दृष्ट पादं ऋक्षस्य सूचिताम् ।  
 पदेरन्वेपयामास गुहामृक्षस्य यादव- ॥४०

बिही समय उस स्यमन्तक मणि को धारण कर भूपित हाते हुए गिवार करने के लिये गया था और स्यमन्तक के लिये ही मुदाहरण वध को सिंह से प्राप्त होगया था ॥३८॥ रीछो के राजा जाम्बवान् ने उस प्रमेन के वध करने वाले सिंह को मार डाला और उस दिव्य मणि को लेकर अपनी गुहा में प्रविष्ट होगया था ॥३९॥ इसके पश्चात् उस कर्म की कृष्ण का सभी दृष्टि-अन्धक महत्तर यादव लोग बहने लगे और मणि के लेने वाले कृष्ण को मारते हुए उही पर चढ़ा करते थे ॥३५॥ उन सभी लोगों की इस तरह अयवाद पूर्ण भूली चर्चा को बलवान् भगिसूदन भगवान् सहन न करते हुए वन में विचरण करने लगे ॥३६॥ और उनने प्रमेन की खोज करने का काम किया था । प्रसेन के चरण बिन्ही को दण्ड कर प्राप्तकारी पुरुषो क द्वारा बताये जाने पर गिरियो में शंभु ऋक्षवान् तथा उत्तम पर्वत विन्ध्य को खोज स थके हुए उन महामन वाले ने देखा था ॥३८॥ अथ क सहित मरे हुए उस प्रमेन को देखा किन्तु उस मणि को नहीं देखा था । इसके पश्चात् प्रमेन के मृत शरीर के निकट ही ऋक्ष के द्वारा मार हुए सिंह को देखा । रीछ के चरण बिन्हा में सूचिन भगवान् श्रीकृष्ण ने अक्षराज की गुहा की खोज की थी ॥३९-४०॥

महत्यतिबिले वाणी सुश्राव प्रमदेरिताम् ।  
 धात्र्या कुमारमादाय सुत जाम्बवतो द्विजा ।  
 प्रीतिमत्याय मणिना मारोदीरित्युदीरिताम् ॥४१  
 प्रसेनमवधीत् सिंह गिहो जाम्बवता हन ।  
 मुकुमारक मारोदीस्तव ह्येप स्यमन्तक ॥४२

व्यक्तीकृतश्च शब्द त तूर्णं सोऽपि ययौ विलम् ।  
 अपश्यच्च विलाम्याशे प्रसेनमवदारितम् ॥ ४३  
 प्रविश्य चापि भगवास्तदृक्षविलमञ्जसा ।  
 ददर्श ऋक्षराजान जाम्बवन्तमुदारधीः ॥ ४४  
 युयुधे वासुदेवरतु विले जाम्बवता सह ।  
 बाहुम्यामेव गोविन्दो दिवसानेकविंशतिम् ॥ ४५  
 प्रविष्टे च विल कृष्णे वासुदेव पुर सरा ।  
 पुनर्द्वारवतीमेत्य हत कृष्ण न्यवेदयन् ॥ ४६  
 वासुदेवस्तु निर्जित्य जाम्बवन्त महाबलम् ।  
 लेभे जाम्बवती कन्यामृक्षराजस्य सम्भतान् ॥ ४७  
 भगवत्तेजसा प्रस्तो जाम्बवान् प्रसभ मणिम् ।  
 सुता जाम्बवतीमाशु विष्वक्सेनाय दत्तवान् ॥ ४८

उस बहुत बड़ी गुफा में प्रमदा के द्वारा बही हुई बाणी को सुना था ।  
 कोई धात्री कुमार पुत्र को लेकर है द्विजगण । जाम्बवान् की प्राप्ति वाली मणि  
 के द्वारा ( मर्त्यान् उसे दिखाते हुए ) यह कह रही थी कि बच्चे ! रोदन मत  
 करे । इस प्रकार कही हुई बाणी श्री कृष्ण ने सुनी थी ॥४१॥ धात्री ने कहा—  
 सिंह ने प्रसेन को मार दिया और जाम्बवान् ने उस सिंह को मार डार डाला  
 है । हे गुह्यकार ! अब तू रुदन मत कर—यह मणि स्वयन्तक लेरी ही है ॥४२॥  
 उस शब्द को स्पष्ट तथा सुनकर सीधे ही वह श्रीकृष्ण विल में अन्दर घागे गये  
 थे और विल के मभीर में अवदारित प्रसेन को देखा था ॥४३॥ भगवान् ने उस  
 गुफा में प्रवेश करके आँकिक ऋक्षराज के रहने की भी उग उदार बुद्धि वाले  
 श्रीकृष्ण ने रीछो के राजा जाम्बवान् का वहाँ देखा था ॥४४॥ वासुदेव ने उस  
 गुफा में दूसरीत दिन तब जाम्बवान् के साथ बाहुओं से मुठ किया था ॥४५॥  
 वासुदेव के पुरस्कार साथ में जाने वाले लोगो ने गुफा में श्रीकृष्ण के प्रवेश करने  
 पर दारवा में घणित आकर कृष्ण मारे गये ऐसा सबको कह दिया था ॥४६॥  
 वासुदेव ने उस महान् बातवाद् जाम्बवान् की जीतकर ऋक्षराज के द्वारा सम्भन  
 जाम्बवती कन्या की प्राप्ति की थी ॥४७॥ भगवान् के तेज से परत हो जाने

आन जाम्बवान् ने बनात् स्यमन्तक मणि को और अपनी पुत्री जाम्बवती को विष्णुसेन के लिए दे दिया था ॥४८॥

मणि स्यमन्तक चैव जग्राहात्मविशुद्धये ।  
 अनुनीय श्रुत्वा राज निर्णयो च तदा विलात् ॥४९  
 एव स मणिमादाय विदोद्धधात्मानमात्मना ।  
 ददौ सत्राजिते त वं मणि सात्वतसनिधौ ॥५०  
 धन्या पुनर्जाम्बवतीमुवाच मधुसूदन ।  
 तस्मान्मिथ्याभिशायात् स व्यमुच्यत जनार्दन ॥५१  
 इमा मिथ्याभिशास्ति य कृष्णस्येह व्यपोहिताम् ।  
 वेद मिथ्याभिगस्ते स नाभिशस्यति क्वहिचिद् ॥५२  
 दश स्वमृम्यो भार्याभ्यः शत्रुजित्त शत सुता ।  
 रूपातिमन्तस्त्रयस्तेषा भङ्गकारस्तु पूर्वज ।  
 वीरो द्रुतपतिश्चैव ह्यपस्वान्तश्च सुप्रिय ॥५३  
 अथ द्वारवती नाम भङ्गकारस्य सुप्रजा ।  
 सुपुत्रे सा कुमारीस्तु तिस्रा रूपगुणान्विता ॥५४  
 सत्यभामोत्तमा स्त्रोणा द्रुतिनीव दृढव्रता ।  
 तथा तपस्विनी चैव पिता कृष्णस्य ता ददौ ॥५५  
 यत्तन् मत्राजित कृष्णो मणिरत्न स्यमन्तकम् ।  
 प्रादात्तदाहरद्रत्न भोजेन शतघन्वना ॥५६  
 तदा हि प्राचयामास सत्यभामामनिन्दताम् ।  
 अक्रूरो रत्नमन्विच्छन् मणिश्चैव स्यमन्तकम् ॥५७  
 भद्रकार तता हत्वा शतघन्वा महाबल ।  
 रात्री त मणिमादाय तनाऽक्रूण्य दत्तवान् ॥५८

अनी धारणा की विमुक्ति के लिए स्यमन्तक मणि का उनसे ग्रहण किया था और अश्वराज से उसका निये अनुनय किया था । इसके पश्चात् वह उस पुरा से बाहर निकल गये थे ॥४९॥ इन तरह उनने मणि को साकर अपने धारणा के द्वारा अपने धारणा बाद का दोषन करके समस्त मातृका की सन्निधि

मे उग्र स्वयम्ना मणि को सप्राजित् को दे दिया था ॥१५०॥ फिर मधुसूदन ने  
 जाम्बवती नाम वाली पत्न्या से कहा कि उन मिथ्या अभिजात से जादिन भयति  
 मैं भय विमुक्त होगया हूँ ॥१५१॥ इस कृष्ण के उग्र व्योम्भिन मिथ्याभिजाति  
 का कोई जानना है भयति इसे पटना था मुनता है वह कभी भी मिथ्या कथा  
 से हूयित नहीं होता है ॥१५२॥ दश बहिन भार्याओं ने सप्राजित् के मो पुत्र बहुत  
 ही प्रसिद्धि पाये हुए थे उनमें भङ्गहार सबसे बड़ा था । वह शौर-व्रतपति-  
 शयम्पान्न शौर मुश्रिय था ॥१५३॥ इसके अनन्तर भङ्गहार की सुन्दर सन्तति  
 द्वारवती नाम वाली न तीन रूप शौर गुण से युक्त कुमारियों का प्रसव किया था  
 ॥१५४॥ स्निग्धो मे घनि उत्तम व्रत वाली की भक्ति दृढ व्रतवाची मत्यभामा थी  
 जो परम तपस्विनी थी उनमें उनके पिता ने धीकृष्ण को दे दिया था ॥१५५॥  
 जो मणिको जे सर्वे जे स्वयम्नाक मणि कृष्ण ने सप्राजित् को दे दी थी उसे शत-  
 धका ने भोज से हरण कर लिया था ॥१५६॥ उस समय स्वयम्नाक मणि को चाहते  
 हुए प्रकूर ने प्रतिदिन सत्यभामा से प्रार्थना की थी ॥१५७॥ तब शतधन्वा ने  
 जोवि महाद् बनवान् था, भद्रद्वार को मारकर रात्रि में उस मणि को लेकर  
 प्रकूर का दे दी थी ॥१५८॥

प्रकूरस्तु तदा रत्न मादाय स नरपंथ ।

समय कारण चक्रे वोष्यो नान्यैस्त्वयेत्युत ॥१५९

वयमभ्युपपत्स्याम कृष्णेन त्व प्रघापित ।

मम च द्वारका सर्वा वरो तिष्ठन्त्यसशयम् ॥१६०

हते पितरि दु खार्त्ता सत्यभामा यशस्विनी ।

प्रययौ रथमारुह्य नगर वारणावतम् ॥१६१

सत्यभामा तु सद्बुद्ध भोजस्य शतधन्वने ।

ततस्त्वरितमागम्य द्वारका मधुसूदन ।

पूर्वज हलिन श्रीमानिद वचनमब्रवीत् ॥१६४

हत प्रमेन मिहेन सत्राजिच्छतधन्वना ।

स्यमन्तकमह मार्गे तस्य प्रहर हे प्रभो ॥६५

तदारोह रथ शीघ्रम् भोज हत्वा महाबलम् ।

स्यमन्तरो महाबाहो तदास्माक भविष्यति ॥६६

उप नरो मे धेष्ट अक्रूर ने उस समय उप रथन को लेकर प्रतिज्ञा पढ़ाई या घात कराली थी कि इसके प्राप्त होनेका कारण तुझे अन्य किसी को भी नहीं जान कराना चाहिए ॥६५॥ हम अभ्युपपन्न करेंगे । तुझको कृष्ण ने प्रथमिन किया है । अब यह समस्त द्वारका निस्सन्देह मेरे वश में रहेगी ॥६०॥ अपने पिता के मारे जाने पर यक्षस्विनी सत्यभामा दुःख से पीड़ित हुई रथ पर सवार होकर बाल्यावन नगर में गई थी ॥६१॥ सत्यभामा ने शतधन्वा भोज का वह गमस्त वृत्त भर्ता मे निवेदन किया और दुःख ने घात होकर पाप में मग्न होने हुए अधुपात किया था ॥६२॥ दग्ध हुए पाण्डवों की उदक क्रिया को हरि । पूर्ण करने भाइयों के तुल्य अर्थ में मातृपति को नियोजित किया था ॥६३॥ शक पश्चान् मधुसूदन तुरन्त ही द्वारका में आकर अपने बड़े भाई बलरामजी ने यह वचन बाल—॥६४॥ हे प्रभो ! गिह न प्रमेन की मार दिया था और शतधन्वा ने मन्त्राजित् को मार दिया है । उसके स्यमन्तक को मैं खोजता हूँ, आप प्रहार करिये ॥६५॥ हा अब प्राण रथ पर आगेहूँ करिये और महाद्वान् को आज की शीघ्र मार कर हे महाबाहो । तब यह स्यमन्तक हमारी हो जायगी ॥६६॥

तत प्रवृत्ते युद्धे तु तुमुले भोजवृष्णयो ।

शतधन्वा न चाक्रूरमवंधत् सवंतो दिशि ॥६७

अनष्टा श्वायरोहन्तु कृत्वा भोजजनाईनी ।

सत्तोऽपि गाध्याद्वाद्धं वयाप्राक्रू गोऽभ्युपपद्यत ॥६८

अपयाने तनो बुद्धि भूयश्चक्रे भयान्वितः ।

योजनाना शत माप्र यथा च प्रत्यपद्यत ॥६९

विज्ञानतद्दद्या नाम शतयोजनगामिनी ।

भोजस्य यद्वयादिभ्यो यथा कृष्णमयोपयत् ॥७०

प्रवद्धवेगा बड्वा त्वध्वना शतयोजनम् ।  
 दृष्टा रथगतिस्तस्य शतघन्वानमर्हयत् ॥७१॥  
 ततस्तस्य हृषास्ते तु श्रमात् खेदाच्च वै द्विजा ।  
 समुत्पेतू रथप्राणा वृष्णो राममथाब्रवीत् ॥७२॥  
 तिष्ठस्वेह महाबाहो दृष्टदोषा मया हया ।  
 पद्भ्यां गत्वा हरिध्यामि भणिरत्न स्यमन्तकम् ॥७३॥  
 पद्भ्यामेव ततो गत्वा शतघन्वानमच्युत ।  
 मिथिलाधिपतिं तं वै जघान परमास्त्रवित् ॥७४॥

इसके पश्चात् भोज शीघ्र कृष्ण का तुमुल युद्ध प्रवृत्त हो जाने पर गत  
 धवा ने समस्त दिशाओं में शक्र को नहीं देखा था ॥६७॥ भोज शीघ्र जनादन  
 नष्ट न होने वाले शक्रों का श्वरोह करके शक्त होते हुए भी साध्य वापव्य से  
 शक्र समुत्पन्न नहीं हुआ ॥६८॥ भय में युक्त होते हुए फिर उसने श्रमण  
 करने में बुद्धि की थी । सो योजन माने जिससे प्रतिपन्न होगया ॥६९॥ विज्ञात  
 हृदया-श्म नाम वाली सो योजन तक गमन करने वाली भोज की बड्वा थी  
 जिसके द्वारा उसने श्रीकृष्ण के साथ युद्ध किया था ॥७०॥ बड़े हुए वेग वाली  
 बड्वा (घोड़ी) थी जिसने उसके रथ की गति माग के सो योजन में देखी थी  
 उसने शत-गवा का श्रित कर दिया था ॥७१॥ हे द्विजगण ! इसके पश्चात्  
 रथ के प्राण स्वरूप उसके घाटे श्रम से शीघ्र खेद के होने से आकाश में उड़ गये  
 थे । श्रीकृष्ण राम से बोले ॥७२॥ हे महाबाहो ! यहाँ पर ठहरो मैंने शक्रों के  
 दोषों को देव किया है । मैं पैंरो से जाकर भणिरत्न स्यमन्तक का हर्ण करूँगा  
 ॥७३॥ इसके पश्चात् पैंरो में ही जाकर श्रमण ने मिथिला के अधिपति शत  
 धवा को शक्र विद्या के परम परिणत श्रीकृष्ण ने मार दिया था ॥७४॥

स्यमन्तकं न वापदयद्धत्वा भोज महाबलम् ।  
 निवृत्त चाब्रवीत् कृष्ण रत्न देहीति लाङ्गली ॥७५॥  
 तास्तीति कृष्णश्चोवाच तता रामा ह्यान्वित ।  
 धिक्छद्मसकृत् पूर्वं प्रत्युवाच जनाह नम् ॥७६॥

भ्रातृत्वान्मर्षंयाम्येष स्वस्ति तेऽस्तु ब्रजाम्यहम् ।

कृत्य न मे द्वारकया न त्वया न च वृष्णिभि ॥७७

प्रविवेश ततो रामो मिथिलामरिमर्दनं ।

मर्षं कामं संपहृतैर्मैथिलैर्नैव पूजितः ॥७८

एतस्मिन्नेव काले तु बभ्रुर्मतिमतावर ।

नानारूपान् क्रतून् सर्वानाजहार निरगंलान् ॥७९

दीक्षामय सकवच रक्षार्थं प्रविवेग ह ।

स्यमन्तकवृते राजा गाधिपुत्रो महायशाः ॥८०

अर्थान् रत्नानि चाग्र्याणि द्रव्याणि विविधानि च ।

पष्टिवपंगते काले यज्ञेषु विन्ययोजयत् ॥८१

अक्रूरयज्ञ इत्येते रूपातास्तस्य महात्मन ।

बह्वन्नदक्षिणा सर्व्वं सर्व्वकामप्रदायिन ॥८२

श्रीर महाद् बलवान् भोज को मार कर स्यमन्तक मणि को नही देखा था । लोटे हुए कृष्ण से लाङ्गलधारी बलराम ने कहा रत्न को देदो ॥७५॥ श्रीकृष्ण ने कहा यह मणि नहीं है । तब तो बलराम क्रोध से युक्त हो उठे । बार बार धिक्—इस शब्द को पहिले कहते हुए जनार्दन से बोले ॥७६॥ मेरे भाई के होने के कारण से मैं यह सहन करता हूँ । तुम्हारा कल्याण हो—मैं तो भव जाता हूँ । मुझे द्वाका से कोई काम नहीं है न तुम्हने श्रीर न वृष्णियो से कुछ प्रयोजन है ॥७७॥ इसके पश्चात् बलराम ने जोकि शत्रुघो के मर्दन करने वाले थे मिथिला में प्रवेद किया था श्रीर वहाँ समस्त कामना वाले उपहृतो के द्वारा मैथिल से ही पूजित हुए थे ॥७८॥ इसी बीच में बुद्धिमानो में श्रेष्ठ बभ्रु ने अनेक रूप वाले निरगंल सभी क्रतुघो को धाहत किया था ॥७९॥ महान् यश वाले राजा गाधि पुत्र ने स्यमन्तक के लिये दीक्षामय सरवच को रक्षा के लिये प्रविष्ट किया था ॥८०॥ साठ वर्ष के काल में यज्ञो में धनो को—रत्नो को श्रीर उत्तम विविध भाति के द्रव्यो को विनियोजित किया था ॥८१॥ उस महान् आत्मा वाले थे तब 'अक्रूर यज्ञ' इस नाम से ख्यात हुए थे । जिनमें बहूत भा अन्न और दक्षिणा वाले तथा समस्त कामनाघो को देने वाले थे यज्ञ थे ॥८२॥



अथ दुर्योधनो राजा गत्वाऽथ मिथिला प्रभु ।  
 गदाशिक्षा ततो दिव्या बलभद्रादवाप्तवान् ॥८३॥  
 प्रसाद्य तु ततो विप्रा वृष्ण्यन्धकमहारथं ।  
 आनीतो द्वारकामेव कृष्णेन च महात्मना ॥८४॥  
 अक्रूरमन्धकै साद्धंमुपायात् पुरुषर्षभ ।  
 युद्धे हत्वा तु शत्रुघ्न सह बन्धुमता बली ॥८५॥  
 श्वफल्कतनवायान्तु नराया नरसत्तमौ ।  
 भङ्गवारस्य तनयो विश्रुतो सुमहाबली ॥८६॥  
 जज्ञातेऽन्धकमुख्यस्य शत्रुघ्ना बन्धुमाश्च तौ ।  
 वधार्थं भङ्गकारस्य वृष्णो न प्रीतिमात् भवेत् ॥८७॥  
 शांतिभेदभयाद्भीत समुपेक्षितवास्तथा ।  
 अघयाते तथाक्रूरे नावपत्पावशासन ॥८८॥  
 अनावृष्ट्या हत राष्ट्रमभवत्तद्वधोचितम् ।  
 तत प्रसादयामासुरक्रूर वुकुरान्धका ॥८९॥  
 पुनर्द्वारवती प्राप्ते तदा दानपती तथा ।  
 प्रववर्ष सद्भ्राक्ष कुक्षौ जलनिधेस्तत ॥९०॥

इसके पश्चात् प्रभु राजा दुर्योधन ने मिथिला में जाकर बलभद्र से गि  
 गदा की शिक्षा को प्राप्त किया था ॥८३॥ हे विप्र वृन्द ! इसके अनन्तर वृष्णि  
 आयक और महारथों के द्वारा बलरामजी को प्रसन्न करने महारथ वृष्ण  
 द्वारा उन्हें फिर द्वारकापुरी में ही वापिस ल आये वध थे ॥८४॥ उस पुरुषो  
 श्रेष्ठ बली बलराम ने युद्ध में वशुमात् के साथ में शत्रुघ्न को मार कर अथ  
 के साथ अक्रूर के पास पहुँचे थे ॥८५॥ श्वफल्क की तनया में नरामे भङ्ग वा  
 नरश्रेष्ठ महान् बल बाल एव प्रसिद्ध दा तनय हुए ॥८६॥ उस अधवा में मु  
 शत्रुघ्न और वशुमात् वे दो पुत्र थे । भङ्गकार के वध के लिये वृष्ण प्रीति वा  
 नहीं हुए थे ॥८७॥ शांति के भेद के भय से डरे हुए उसकी उस प्रकार स उर  
 करदी थी । अक्रूर के अघयात होजाने पर इन्द्र ने वर्षा नहीं की थी ॥८८॥  
 अनावृष्टि से हत हुए राष्ट्र ने उसके वध कराने की तैयारी की थी । तब वुकुरा

को ने अश्रु को प्रमत्त किया था ।८६। तब उस समय फिर दानपति के द्वारवा पुगे में प्राप्त हो जाने पर फिर जतनिधि की कुक्षि में द्रव्य देव ने मूव वर्ष की थी ॥६०॥

वन्याञ्च वामुदेवाय स्वसार शीलसम्मनाम् ।  
 अरूरः प्रददौ श्रीमान् प्रीत्यर्थं यदुपुद्भव\* ॥६१  
 अथ विज्ञाय योगेन वृष्णो बभ्रुगत मणिम् ।  
 सभामध्ये तदा प्राह तमरूर जनादेन ॥६२  
 यच्च रत्न मणिवर तव हस्तगत प्रभो ।  
 तत् प्रयच्छस्व मानार्हं विमतिश्चात्र मा वृथा ॥६३  
 पट्टिवर्षगते काले यद्रोपोऽभून्दा मम ।  
 सुसंरुद्धं सवृत् प्राप्तस्तत्कालाश्रित्य स महान् ॥६४  
 तत कृष्णस्य वचनात् सर्व्वसात्वतससदि ।  
 प्रददौ त मणि वभ्रुरवलेदो न महामति ॥६५  
 तान धार्ज्जवसप्राप्तवभ्रु हस्तादरिन्दम ।  
 ददौ प्रत्क्षुष्टमनसा त मणि वभ्रवे पुन ॥६६  
 स कृष्णहस्तात् सप्राप्य मणि रत्न स्यमन्तवम् ।  
 धावद्धुध गान्दिनीपुत्रा विरराजाशुमानिव ॥६७  
 इमा मिथ्याभिदास्ति यो विशुद्धामपि चोत्तमाम् ।  
 वेद मिथ्याभिदास्ति स न श्रेष्ठं वयश्चन ॥६८

यदुपो में श्रेष्ठ अश्रु ने अपनी वन्या और शील से सम्मत वहिन को वागुदेव के लिये उनकी प्रीति के लिये ददी थी ॥६१॥ इसके अनन्तर श्रीकृष्ण न योग के द्वारा वभ्रु के पाग मणि होने को जानकर जनादेन ने सभा के मध्य में उस अश्रु से कहा ॥६२॥ हे प्रभो ! और रत्न श्रेष्ठ मणि तुम्हारे हाथ लग गई है हे मानार्ह ! उसे अब देदो और इस काम में पटी कोई भी विमति मन करो ॥६३॥ साठ वर्ष के समय में तब जो मुझे रोप हुआ है एक बार प्राप्त होजाने वाला वह इस लक्ष्ये का न का महारा पावर वह बहुत ज्यादा होते हुए भरी भक्ति के रुद्ध होगया है ॥६४॥ इसके पदवात् सम्मत गारवणो की मन्द में श्रीकृष्ण के

इन वचनों से महा बुद्धि वाले बभ्रु ने बिना किसी क्लेश के उस मणि को दे दिया था ॥६५॥ इसके पश्चात् सरलता से बभ्रु के हाथ से प्राप्त हुई उस मणि को अरिन्दम ने बड़े ही प्रसन्न मन से पुनः उस मणि को बभ्रु को दे दी थी ॥६६॥ उस गान्दिनी पुत्र ने श्रीवृष्णि के हाथ से उस मणिरत्न इयमन्तव को पाकर और कण्ठ में बाँधकर अशुमान् की तरह सुसोभित हुए ॥६७॥ इस मिथ्याभि-  
दासित को जो कोई विशुद्ध को भी उत्तम को जानेगा वह कभी मिथ्याभिदासित को प्राप्त नहीं होगा ॥६८॥

अनिमित्राच्छनिर्जज्ञे कनिष्ठाद्वृष्णिगणन्दनात् ॥६९

सत्यवाक् सत्यसम्पन्न सत्यवस्तरय चात्मज ।

सात्यकियुं युधानस्य तस्य भूति सुतोऽभवत् ॥१००

भूतेषु गन्धर पुत्र इति भोत्वा प्रकीर्त्तिताः ।

जज्ञाते तनयां पृश्ने श्वफल्कश्चित्रकश्च य ॥१०१

श्वफल्कस्तु महाराजो धर्मात्मा यत्र वर्तते ।

नास्ति व्याधिभय तत्र न चावृष्टिभय तथा ॥१०२

कदाचित् काशिराजस्य विभोस्तु द्विजसत्तमा ।

श्रीणि वर्षाणि विषये नावर्षत्पाकशासन ॥१०३

स तत्र वासयामास श्वफल्क परमाचितम् ।

श्वफल्कपरिवासेन प्रावर्षत्पाकशासन ॥१०४

श्वफल्क काशिराजस्य सुता भार्यामनिन्दिताम् ।

गान्दिनी नाम सा हि ददौ विप्राय नित्यम् ॥१०५

सा मातुश्चरत्था वै बहुवर्षं शतान् किल ।

वसति स्म न वै जज्ञे गर्भस्थान्ता पिताव्रवीत् ॥१०६

राजा अनिमित्र से शिवि का जन्म हुआ जोकि वृष्णि का सबसे छोटा पुत्र था ॥६९॥ उनके पुत्र सत्यवाक्—सत्यसम्पन्न और सत्यक थे । युधान का सात्यकि पुत्र हुआ था । और उसका पुत्र भूति नाम दाता उत्पन्न हुआ था ॥१००॥ भूति का पुत्र युगन्धर नामक हुआ । ये सब सुसार में नीत्य इस नाम से प्रसिद्ध हुए थे । अस्ति के श्वफल्क और चित्रक ये दो पुत्रों का जन्म हुआ था

॥१०१॥ जहाँ महाराज अफल्क तो घर्माया हुए हैं । वहाँ पर किसी भी व्याधि का कभी कोई भय ही नहीं हुआ था तथा न कभी अनावृष्टि ( वर्षा होने का प्रभाव ) ही हुई थी ॥१०२॥ हे द्विजगण ! किसी समय में विष्णु काशिराज के समय में तीन वर्षों तक देश में इन्द्रदेव ने वर्षा ही नहीं की थी ॥१०३॥ उमने वहाँ पर अफल्क को भली भाँति समर्पित करके बसाया था । फिर अफल्क के परिनिवास होने से पाकशामन ने वर्षा की थी ॥१०४॥ अफल्क ने काशिराज की मुत्ता को मानन्दित भार्या गान्दिनी नाम काही की थी । वह एक गो रोज ही ब्राह्मण को दिया करती थी ॥१०५॥ वह माता के उदर में ही बहुत से सैंकड़ों वर्ष तक स्थित रही थी और उसने जन्म ही ग्रहण नहीं किया था तब उदर में स्थित उससे उसके पिता ने कहा था ॥१०६॥

जायस्व शीघ्रं भद्रन्ते किमर्थं चापि तिष्ठसि ।

प्रोवाच चैन गर्भस्था सा वन्या गौदिने दिने ॥१०७

यदि दत्ता तदा स्या हि यदि स्पामीहता पित ।

तथेत्युवाच ता तस्या पिता काममपूपुरत् ॥१०८

दाता यज्वा च दूरश्च श्रुत्वानतिविप्रिय ।

तस्या पुत्र स्मृतोऽक्रूरः श्वफल्को भूरिदक्षिण ॥१०९

उपमगुस्तथा मगुमृदुरश्चारिमेजयः ।

गिरिरक्षस्ततो यक्ष शत्रुघ्नो वारिमर्दनः ॥११०

धर्मभृच्च श्रृष्टचयो वगंमोचस्तथापर ।

भावाहप्रतिवाहो च वगुदेवा वराङ्गना ॥१११

अक्रूरादुग्रसेन्यान्तु मुतो द्वौ कुलनन्दिनौ ।

देवश्चानुपदेवश्च जज्ञाते देवसमिता ॥११२

चित्रकस्याभवन् पुत्रा पृथुविपृथुरेव च ।

भद्रव्रीवोऽववाहश्च सुपाद्वनगवेपथौ ॥११३

परिष्टनेमिरद्वश्च सुवर्मा वमंचर्मभृत् ।

प्रभूमिर्वहूमिश्रश्च विष्टाश्वरौ स्त्रियौ ॥११४

हे पुत्रो ! तुम जन्म घटण करो, तुम्हारा बन्धन होगा । क्या कारण है किमने तुम उदर से बाहिर नहीं निकल रही हो और वहाँ पर बँटी हो ? तब उम गर्भ में रियत बन्धा ने इम अपने पिता में कहा था कि यदि रोज-रोज गो का दान करने वाला हो तो मैं जन्म लूँगी । हे पिता ! मैं यही चाहती हूँ । तब उनके पिता ने 'ऐसा ही होता'—यह कहकर उसी वामना को पूर्ण किया था ॥१०७-१०८॥ उग्रदा पुत्र अरुण अश्वत्थ वरुण दाता—यज्वा—सूर—मास्त्रो का माता—वरुण दक्षिणा देने वाला और धनिदियो का प्रिय हुआ था ॥१०९॥ उपमगु—मगु—मृदुर—आग्निमेजव—गिरिरक्ष और उनसे यक्ष—मनुष्य—वारि मदन—धर्मभृत्—मृष्टचप तथा दूगरा नर्ममोक्ष—आवाह और प्रतिवाद तथा बरगङ्गा समुद्रवा हुए थे ॥११०-१११॥ अरुण से उग्रमेनी में कुल को धानदिल करने वाले दो पुत्र पैदा हुए थे जिनका नाम देव और अनुपदेव था और वे दोनों देवों के समान थे ॥११२॥ चित्रक के पृथु—विपृथु—अश्वघोष—अश्ववाह—गुपासर्वक—गवेषण—परिष्टनेमि—अश्व—सुवर्मा—वर्मचर्यभृत्—अभूमि—वटभूमि पुत्र उत्पन्न हुए थे । श्विष्ठा और श्वरणा दो किराँयी ॥११३-११४॥

सत्यवात् कागिदुहिता लेभे सा चतुरः सुतान् ।  
 वकुद भजमानश्च शमीववलवहिपो ॥११५  
 वकुदस्य सुतो वृष्टिर्गृष्टेस्तु तनयोऽभवत् ।  
 वपोतरोमा तस्याथ रेवतोऽभवदात्मजः ॥११६  
 तस्यासीत्सुम्बुरसखा विद्वान् पुत्रोऽभवत्किल ।  
 स्यायते यस्य नाम्ना स चन्दनोदकदुन्दुभिः ॥११७  
 तस्माच्चाभिजित पुत्र उत्पन्नस्तु पुनर्वसु ।  
 अश्वमेधन्तु पुत्रार्थे आजहार नरोत्तम ॥११८  
 तस्य मध्येऽतिरात्रस्य सदोमध्यात्समुत्थितम् ।  
 ततस्तु विद्वान् धर्मज्ञो दाता यज्वा पुनर्वसु ॥११९  
 तस्यापि पुत्रमिथुन बाहुवाणाजित किल ।  
 आहुकश्चाहुकी चैव स्याती मतिमतावरो ॥१२०

इमाश्चोदाहरन्त्यथ श्लोकान् प्रति तमाह्वयम् ।

सोपासद्भानुवर्षाणा सध्वजाना वरुधिनाम् ॥१२१॥

रथाना भेषधोपाणा सहस्राणि दशैव तु ।

नामन्यवादी त्वासीत्तु नायज्या नामह्वयदः ॥१२२॥

गाधुचिर्नाप्यधर्मात्मा नाविद्वान्न वृसोऽभवत् ।

आह्वयस्य घृतिः पुत्र इत्यमेवमनुशुश्रुम् ॥१२३॥

मस्यैव मे वाणि दुहिता ने चार पुत्रो यो प्राप्त किया था किन्तु नाम वबुद-भजमान और शमीव तथा बलवर्हिष ये ॥११५॥ वबुद का पुत्र वृष्टि नाम धाना हुआ और वृष्टि का पुत्र वपोनराम हुआ या और उमका पुत्र रेवत हुआ था ॥११६॥ उमके बुबुद मत्स्य परम विद्वान् पुत्र उत्पन्न हुआ था जिसके नाम मे चन्दनोदक दुन्दुभि प्रसिद्ध होता है ॥११७॥ और उसमे प्रभिक्षित् पुत्र हुआ और पुनर्वसु उत्पन्न हुआ था ? उस नरोत्तम ने पुत्र व निय शश्वमेध यज्ञ किया था ॥११८॥ उम अतिरात्र के मध्य मे मदोमध्य मे समुपित हुआ था । उमसे परम विद्वान्-दान देने वाला-यज्ञ का जाता और यज्ञा पुनर्वसु हुआ था ॥११९॥ उमके भी पुत्रा का जोडा बाहु वागाजिन हुआ जोकि आह्वय और आहुति-इन नामा स मतिमानो मे परमश्रेष्ठ स्थान हुए थे ॥१२०॥ यहाँ पर उम आहुक के प्रति ये श्लोक उदाहृत होते हैं । उमके उपानयन मुकपण के सहित तथा ध्वजाग्रो के सहित वरुधियो के और भेषधोप वाले रथो व दश मत्स्य थे । वह अमत्यवादी नहीं था वह अयज्या तथा असहस्रद नहीं था, न वह प्रधुचि और न अधर्मात्मा ही था, वह भविद्वान् तथा भवृग भी नहीं हुआ था । आहुन का पुत्र घृति हुआ था—यही हम सुनते हैं ॥१२१ १२२-१२३॥

श्वेतेन परिचारेण विशोरप्रतिमान् हयान् ।

अशीतियुक्तनिमुनान्याहुकप्रतिमोज्ज्वलत् ॥१२४॥

पूर्वस्यान्दिसि नागाना भोजस्य प्रतिरेजिरे ।

रुप्यकाश्चनकक्षाणा सहस्राण्येकविंशति ॥१२५॥

तावन्त्येव सहस्राणि उत्तरस्यान्तथा दिशि ।

भूमिपालस्य भोजस्य उत्तिष्ठेत् किङ्किणो विल ॥१२६॥

आहुकश्चाहुकान्वाय स्वसार त्वाहुकीन्ददौ ।  
 आहुकान्धस्य दुहिता द्वौ पुत्री सम्बभूवन् ॥१२७॥  
 देवकश्चोपसेनश्च देवगर्भसमावुभौ ।  
 देवकस्य सुता वीरा जज्ञिरे त्रिदशोपमा ॥१२८॥  
 देवानामपि देवश्च सुदेवो देवरञ्जिता ।  
 तेषा स्वसार सप्तमन् वसुदेवाय ससदौ ॥१२९॥  
 वृकदेवोपदेवा च तथान्या देवरक्षिता ।  
 श्रीदेवा शान्तिदेवा च महादेवा तथापरा ॥१३०॥  
 सप्तमी देवकी तासा सुनामा चारुदर्शना ।  
 नवोपसेनस्य सुता वसस्तेपान्तु पूर्वज ॥१३१॥

श्वेत परिवार में युक्त किशोर प्रतिमा वाले अस्ती की मर्या से युक्त  
 नियुक्त अश्वो को लेकर आहुक प्रतिमा जाया करना था ॥१२४॥ पूर्व दिशा में  
 चाँदी और मुवर्ण की कथा वाले भोज के नागो की इक्कीस हजार गन्था प्रति-  
 रञ्जित हुई थी ॥१२५॥ उत्तर दिशा में भी उतनी ही मर्या थी । भूमि के  
 पालक भोज की किङ्किणी उठनी थी ॥१२६॥ आहुक ने आहुकान्ध के लिये  
 आहुकी बहिन को दे दिया था । आहुकान्ध की दुहिता और दो पुत्र हुए थे ।  
 देवक और उपसेन ये दोनों देवगर्भ के समान थे । देवक के देवो के समान वीर  
 पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया था ॥१२७-१२८॥ देवो के भी देव—गुदेव और देव  
 रञ्जित हुए थे । उनके गान बहिनें थीं जोकि वसुदेव के लिए देदी थीं ॥१२९॥  
 उनके नाम वृकदेवा—उपदेवा—देवरक्षिता—श्रीदेवा—शान्तिदेवा तथा महादेवा एव  
 उनमें मानकी देवकी थी जो मुन्दर नाम दानी और देगने में बहूत मुन्दर थी ।  
 उपसेन के नौ पुत्र थे उन सब में कम सबसे बड़ा था ॥१३०-१३१॥

न्यग्रोधश्च सुनामा च वट्टशकुञ्ज भूमयः ।  
 मूननू राष्ट्रानश्च युद्धतुष्ट गुपुष्टिमान् ॥१३२॥  
 तेषा स्वमार पश्चय कर्मधर्मवती तथा ।  
 यताङ्कू राष्ट्रपाला च वृद्धा चैव यराङ्गना ॥१३३॥

उग्रसेनो महापत्यो विरयात् कुकुरोद्भव ।  
 कुकुराणामिम वश धारयन्मितीजसान् ।  
 आत्मनो विपुल वश प्रजावाश्च भवेत्तर ॥१३४  
 भजमानस्य पुत्रस्तु रथिमुख्यो विदूरथ ।  
 राज्याधिदेव शूरश्च विदुरश्च सुतोऽभवत् ॥१३५  
 तस्य शूरस्य तु सुता जज्ञिरे बलवत्तरा ।  
 वातश्चैव निवातश्च शोणित श्वेतवाहन ॥१३६  
 शमी च गदवर्मा च निदात शक्रशक्रजित् ।  
 शमिपुत्र प्रतिक्षिप्त प्रतिक्षिप्तस्य चात्मज ॥१३७  
 स्वयम्भोज स्वयम्भोजाद्दृदिक सम्बभूव ह ।  
 हृदिकस्य सुतास्त्वाप्तन् दश भीमपराक्रमा ॥१३८  
 कृतवर्मा कृतस्तेषा शतधन्वा तु मध्यम ।  
 देवाहश्च वनाहश्च भिषग द्वैतरथश्च य ॥१३९  
 सुदान्तश्च धियान्तश्च नववान् कनकीद्भव ।  
 देवाहंस्य सुतो विद्वान् जज्ञ कम्बलवर्हिष ॥१४०  
 घ्नममौजा सुतस्तस्य सुमहौजाश्च विश्रुत ।  
 घजावपुत्राय तत प्रददावसमोजसे ।  
 सुदष्टश्च मुरूपश्च कृष्ण इत्यन्धका स्मृता ॥१४१  
 अन्धकानामिम वश कीलयानस्तु नित्यश ।  
 आत्मानो विपुल वश लभते नात्र सशय ॥१४२

उग्रसेन के नाम ये हैं—न्यग्रोध—सुनात—कङ्काकु—भूमय—सुतनु—राष्ट्रपाल  
 सुदृष्टुष्ट धीर सुपुत्रिमान् ये ॥१३२॥ उनकी पाँच कम धमवती—शताद्भु—राष्ट्र  
 पाना—कुह्ला धीर वराङ्गना ये बहिनें थी ॥१३३॥ कुकुरोद्भव उग्रसेन बहुत  
 अधिक मन्तति वाला विख्यात था । कुकुरो के इन महान् वश को जोकि महान्  
 धोज वालो का वश है धारण एव श्रवण करने वाला मनुष्य अपने बड़े वश को  
 धारण करने वाला तथा सतति सम्पन्न हुआ करता है ॥१३४॥ भजमान का  
 पुत्र रथियो म मुख्य विदूरथ था जो राज्य का अधिदेव धीर शूर था । उत्तका



विदुर पुत्र हुआ था । उस दूर के अधिर बलवान् पुत्र उत्पन्न हुए थे जिनके नाम वात-निवात-शोणित-स्वतवाहन-शमी-गदवर्मा-निहात-घोर-शक्रशक्रजित् थे । शमी के पुत्र प्रतिक्षित हुआ और प्रतिक्षित का आत्मज स्वयम्भोज हुआ तथा स्वयम्भोज स हृदिक पुत्र उत्पन्न हुआ था । हृदिक के भीम के समान पराक्रम वाल दस पुत्र हुए थे ॥१३५ से १३८॥ उनके नाम ये हैं—कृतवर्मा-कृत जाकि-उनम-मध्यम-था—देवाह-वनाह-निपक्-द्वैतरथ-सुदान्त-धियान्त-नकवान्-कनोद्भव ये नाम हैं । देवाह का पुत्र बडा विद्वान् कम्बलवह्निप नाम वाला हुआ था ॥१३९ १४०॥ उसका पुत्र असमोज और सुमहोजा विश्रुत हुए अपुत्र असमोजम के लिये अन्न दिये थे । मुदष्ट-मुख्य और कुष्ण ये सब अन्नक कहे गये हैं ॥१४१॥ अन्नको के इस वश का तिर्य ही कीर्तन वाला पुष्प अपना बहुत वश प्राप्त किया करता है—इसम कुछ सत्य नहीं है ॥१४२॥

अस्मक्या जनयामास शूरो वै देवमानुषिम् ।

माध्यान्तु जनयामास शूरो वै देवभीटुपम् ॥१४३

माध्यान्तु जज्ञिरे शूराद्भोजाया पुष्या दश ।

वसुदेवो महाबाहु पूवमानकदुन्दुभि ॥१४४

जज्ञ तस्य प्रसूतस्य दुन्दुभि प्राणददिवि ।

अनवानाञ्च सहाद सुमहानभवदिवि ॥१४५

पपात पुष्पवगञ्च धूरस्य भवने महत् ।

मनुष्यलोके कृत्स्नेऽपि रूपे नास्ति समो भुवि ॥१४६

यस्यासीत् पुरुपाग्र्यस्य कीर्तिश्चन्द्रमसो यथा ।

देवभागस्ततो जज्ञे ततो देवथवा पुन ॥१४७

अनादृष्टिःडश्चैव नन्दनश्चैव भृञ्जिन ।

श्याम शमीको गण्डूप क्षतस्रस्तु वराङ्गना ॥१४८

पृथा च श्रुतवदा च श्रुतकीर्ति श्रुतथवा ।

राजाविदेवी च तथा पश्चैता वीरमातर ॥१४९

पृथा दुहितर चक्रे कुन्तिस्ता पाण्डुरावहत् ।

अनपत्याय गृध्राय कुन्तिभोजाय ता ददौ ॥१५०

शूर ने अस्मकी मे देव मानुषी को जन्म दिया था । और मापी मे शूरने देवमीदुष को समुत्पन्न किया था ॥१४३॥ मापी मे भोजा मे शूर से दश पुरुषो ने जन्म ग्रहण किया था । महान् बाहु वाले वसुदेव पहिले ग्रानक दुन्दुभि हुए ॥१४४॥ उमके प्रसून होने के समय मे देवलोक मे दुन्दुभि बजाई गई थी और ग्रानको का बडा भाी मरद दिवि मे हुआ था ॥१४५॥ उम समय शूर के भवन मे पुण्या की वर्षा हुई थी । समस्त मनुष्य सीक मे रूप मे उसके समान कोई भी नही था ॥१४६॥ उस पुरुषों मे श्रेष्ठ की कीर्ति चन्द्रमा के समान थी । इसके पश्चान् देवभाग ने जन्म लिया और फिर देवधवा ने जन्म ग्रहण किया था ॥१४७॥ अनाहृदि कद-नन्दन-भृञ्जिन-श्याम-समीक-गरुडूप और चार बराङ्गना जोकि नाम से पृथा-श्रुतवेदा-श्रुतकीर्ति-श्रुतश्रवा और राधिदेवी ये पाँच वीर मातायें हुई हैं ॥१४८-१४९॥ दुहिता पृथा कुन्ति को पारदु ने व्याहा वा । अनपत्य अर्थान् विना सन्तति वाले वृद्ध कुन्ति भोज के लिये उसको दे दिया था ॥१५०॥

तस्मात् कुन्तीति विख्याता कुन्तीभोजात्मजा पृथा ।

कुरुवीर' पाण्डुमुख्यस्तस्माद्भार्यामविन्दत ॥१५१॥

पृथा जज्ञे तत पुत्रान् त्रीनग्नि समतेजस ।

लोकेऽप्रतिरथान् वीरान् शक्रतुल्यपराक्रमान् ॥१५२॥

धर्माद्युधिष्ठिर पुत्र भारुनाञ्च वृकोदरम् ।

इन्द्राद्धनञ्जयञ्चैव पृथा पुत्रानजीजनत् ॥१५३॥

माद्रवत्यान्तु जनितावाशिवनादिति विश्रुतम् ।

नकुन सहदेवश्च रूपसत्त्वगुणान्वितौ ॥१५४॥

जज्ञे च श्रुतदेवाया तनयो वृद्धशर्मणः ।

करुपाधिपतिर्धीरो दन्तवक्रो महाबल ॥१५५॥

कैकेया श्रुतकीर्त्यान्तु जज्ञे सन्तदन पुन ।

चेकितानवृहत्क्षत्री तथवान्यौ महाबलौ ॥१५६॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ भ्रातरो मुमहाबलौ ।

श्रुतश्रवाया चञ्चस्तु शिशुपालो वभूव ह ॥१५७॥

दमघोषस्य राजपः पुत्रो विख्यातपोरप ।

य पुरासीद्दशग्रीव सबभूवारिमर्दन ॥१५८

इसी कारण से वह कुन्ती-इस नाम से विख्यात हुई थी क्योंकि वह कुत्तिभोज की घातमजा पृथा थी । कुम्भो में वीर पाण्डुमुख्य ने इससे उसे भार्या के रूप में प्राप्त किया था ॥१५१॥ उससे पृथा ने अग्नि के समान प्रदीप्त तेज वाले तीन पुत्रों को जन्म दिया था जोकि ससार में अप्रतिरथ-धीर और इन्द्र के समान पराक्रम वाले हुए थे ॥१५२॥ पृथा ने धर्म से युधिष्ठिर पुत्र को मारुत से वृकोदर को और इन्द्र से धन्ञ्जय को इस तरह से पृथा ने पुत्रों को जन्म दिया था ॥१५३॥ माद्रवती में दो अश्विनो-इस नाम से विधृत रूप तथा गुण से अन्वित भकुल और सहदेव उत्पन्न हुए थे ॥१५४॥ और श्रुतदेवा में वृद्धसर्मा का पुत्र करुण वा अधिपति-धीर एव महान् बलवाला दन्तवक्त्र उत्पन्न हुआ था ॥१५५॥ केकेय श्रुत कीर्ति में फिर मन्तर्दन उत्पन्न हुआ था । तथा अन्य महान् बल वाले वैकितान और नृहत्क्षत्र उत्पन्न हुए थे ॥१५६॥ विन्द और अनुविन्द अन्त में उत्पन्न होने वाले अर्थात् सबसे छोटे सुमहान् बल वाले दो भाई थे । श्रुतधवा में चँच शिशुपाल हुआ था ॥१५७॥ यह राजपि दमघोष का विख्यात पोरप वाला पुत्र था जो पहिले शत्रुघ्नो का मर्दन करने वाला दशग्रीव रावण हुआ था ॥१५८॥

यदुथवानुजस्तस्य रुजकन्योऽनुजस्तथा ।

पत्न्यस्तु वसुदेवस्य त्रयोदश वराङ्गना ॥१५९

पौरवी रोहिणी चैव मदिरा चापरा तथा ।

तथैव भद्रा वैशाखी देवकी सप्तमी तथा ॥१६०

सुगन्धर्वनराजी च द्वे चान्ये परिचारिके ।

रोहिणी पौरवी चैव वाल्मीकस्यात्मजाभवत् ॥१६१

ज्येष्ठा पत्नी महाभागा दयितानकदुन्दुभे ।

ज्येष्ठ लेभे सुत राम सारण निशव तथा ॥१६२

दुर्द्धम दमन शुभ्र पिण्डारवकुशीतकी ।

चिना नाम कुमारीश्च रोहिण्यष्टौ व्यजायत ॥१६३

पौत्री रामस्य जज्ञाते विज्ञातो निशितोत्सृक्तौ ।  
 पार्श्वी च पार्श्वनन्दी च शिशु सत्यघृतिस्तथा ॥१६४  
 मन्दवाह्योऽथ रामाणगिरिकी गिर एव च ।  
 शुक्लगुल्मेति गुल्मश्च दरिद्रान्तक एव च ॥१६५  
 कुमायंश्चापि पञ्चाद्या नामतस्ता निबोधत ।  
 अचिध्मती मुनन्दा च सुरसा सुवचास्तथा ॥१६६  
 तथा शतवला चैव सारणस्य मुतास्त्विमा ।  
 भद्रश्वो भद्रगुप्तिश्च भद्रविघ्नस्तथैव च ॥१६७  
 भद्रावाहृर्भद्ररथो भद्रकल्पस्तथैव च ।  
 सुपाश्वक कीर्त्तिमाश्च रोहिताश्वश्च भद्रज ॥१६८  
 दुर्मन्दश्चाभिभूतश्च रोहिण्या कुलजा स्मृता ।  
 नन्दोपनन्दी मित्रश्च कुक्षिमित्रस्तथाचल ॥१६९  
 विजोपचित्रे कश्ये च स्थित पुष्टिरथापर ।  
 मदिराया सुता ह्येते सुदेवोऽथ विजज्ञिरे ॥१७०

उमका अनुज यदुधवा या तथा अनुज रुजकन्या हृष्मा या । वसुदेव की  
 षर अङ्ग वाली तरह पत्नियां थी ॥१५९॥ जन पत्नियो के नाम इस प्रकार हैं—  
 पौरवी—रोहिणी और अन्य अमरा तथा मदिरा थी । उनी प्रकार स भद्रा—  
 वैशाखी—सालवी देवकी थी ॥१६०॥ सुगन्धी—वनराजी और दा अन्य परिवारि  
 काये थी । राट्टिणी और पौरवी वाल्मीकि की आत्मजा थी ॥१६१॥ अनाक  
 दुन्दुभि की ज्येष्ठ पत्नी महभाग वाली दयिता थी । उसने ज्येष्ठ पुत्र राम को  
 तथा सारण और निनय को प्राप्त किया था ॥१६२॥ दुर्मन्द—दमन—पुत्र—शिरडा-  
 रक और कुनीतक और कुमारीचित्रा का इस तरह रोहिणी ने आठ को उत्पन्न  
 किया था ॥१६३॥ राम के दो पौत्र प्रसिद्ध निशित और उत्सुक नाम दाने  
 उत्पन्न हुए थे । पार्श्वी—पार्श्वनन्दी—शिशु सत्यघृति—मन्दवाह्य—रामाण—गिरिक  
 और गिर—शुक्लगुल्मा—और गुल्म दरिद्रान्तक ये पुत्र तथा पांचाद्य कुमारियां भी  
 उत्पन्न हुई थी जिनको नाम से समझ लो । अचिध्मती—मुनन्दा—सुरसा—सुवचा  
 तथा शतवला ये सारण की पुत्रियां थी । भद्राश्च—भद्रगुप्ति—तथा भद्रविघ्न—भद्र-

वाहू-भद्ररथ-भद्रबल्प-सुपार्श्व-कीर्तिमान् शौर रोहिताश्र शौर भद्रज-दुमद-  
शौर अभिभूत य सव रोहिणी के कुमज बहे गये हैं । नन्द-उपनन्द-मित्र-कुभि-  
मित्र-तथा बचल-चित्रा शौर उपचित्रा दो कन्यायें-गिघत शौर दूमरा पुष्टि य  
पुत्र मरिचा के उत्पन्न हुए थे शत्रुके अनन्तर सुदव हुआ था ॥१६४ १६५-१६६-  
॥१६७-१६८-१६९-१७०॥

उपविम्बोऽथ विम्बश्च सत्त्वदन्तमहौगसी ।

चत्वार एते विस्थाता भद्रापुत्रा महाबलाः ॥१७१

वंशात्प्या समदाच्छौरि पुत्र वीशिकमुत्तमम् ।

देवक्या जज्ञिरे शौरि सुपेण कीर्तिमानपि ॥१७२

तदयो भद्रसेनश्च यजुदायश्च पञ्चम ।

पष्टो भद्रविदेकश्च कम सर्वाङ्गघान तान् ॥१७३

अथ तस्यामवस्थायामायुष्मान् सबभूव ह ।

लोक नाथः पुनर्विप्लु पूर्वकृष्ण प्रजापतिः ॥१७४

अनुजाताऽभवत् कृष्णा सुभद्रा भद्रमापिणी ।

कृष्णा सुभद्रेति पुनर्व्यस्थाता वृष्णिनन्दिनी ॥१७५

सुभद्राया रथी पार्थादिभिर्न्युरजायत ।

दमुदेवस्य भार्यासु महाभागामु सप्तसु ।

ये पुत्रा जज्ञिरे शूरा नामतस्तानिबोधत ॥१७६

अताऽथ सह देवाया शूरो जज्ञम्भयासह ।

ज्ञाङ्गदेवाजनत्तम्यु शौरी जज्ञ कुलोद्बहम् ॥१७७

उपसङ्ग वसुञ्चापि तनयौ देवरक्षितौ ।

एव दश सुतास्तस्य कसस्तानप्यघातयत् ॥१७८

उपविम्ब-विम्ब-सत्त्वदन्त-महोजा ये चार पुत्र जो महान् बल वाले थे

के मुत्र बहे गये थे ॥१७१॥ वंशात्प्री म समद से शौरनि ने उत्तम वीशिक  
को उत्पन्न किया था । देवकी म शौरि-सुपेण-कीर्तिमान्-तदय-भद्रसेन-

३- पौववा तथा छटा भद्रविदेक था । कस न उन सभी पुत्रों को मार दिया

था ॥१७२ १७३॥ इसक अनन्तर उस अवस्था म आयुष्मान् हुआ था । लोक-

नाथ-फिर विष्णु-पूर्व कृष्ण और प्रजापति हुए ॥१७४॥ पीछे उत्पन्न होने वाली कृष्णा-सुभद्रा-भद्रभाषिणी-कृष्णा-सुभद्रा ये फिर व्याख्यात कृष्णि नन्दिनी थी ॥१७५॥ सुभद्रा मे पार्य (अर्जुन) से रथी अभिमन्यु उत्पन्न हुआ था । वसुदेवकी महान् भाग वाली सात भार्याओं मे जो पुत्र उत्पन्न हुए थे उन्हें अब नाम से समझ लो ॥१७६॥ इसलिये इसके सहदेवा मे शूर अभयासख उत्पन्न हुआ था । शौरी ने कुल का उद्धार करने शान्तिदेवाजनन्तम्बु की जन्म दिया था ॥१७७॥ उपसङ्ग और वसु भी दो तनय (पुत्र) थे जो देवी के द्वारा रक्षित हुए थे । इन प्रकार से बसक दश पुत्र थे । नम न उनको भी मार गिराया ॥१७८॥

विजय रोचनश्चैव वर्द्धमान तथैव च ।

एतान् सर्वान् महाभागानुपदेवा व्यजायत ॥१७९

स्वगाहव महात्माना वृत्र दंवी राजायत ।

आगाही च स्वसा चैव सुरुषा शिशिरायिणी ॥१८०

सप्तम देवकीपुत्र सुनासा सुपुत्रे भुवम् ।

गवेषण महाभाग सङ्ग्राम चित्र योधितम् ॥१८१

श्राद्धदेव पुरा येन वने विरचिता द्विजा ।

शंभ्यायामवदच्छौरिः पुत्र कोशिवमव्ययम् ॥१८२

सुगन्धी वनराजो च शौरेरास्ता परिग्रह ।

पुण्ड्रश्च कपिलश्चैव वसुदेवात्मजो हि तो ।

तयो राजाऽभवत् पुण्ड्रः कपिलम्बु वन ययो ॥१८३

तस्या ममभवद्वीरः वसुदेवात्मजो वली ।

रात्रा नाम निवादोऽपी प्रथम स धनुर्द्धरः ॥१८४

विख्यातो देवरातस्य महाभाग सुनाऽभवत् ।

पण्डिताना मत प्राहुरेवैवश्रवसमुद्भवम् ॥१८५

अस्मक्या लभते पुत्रमनार्हति पशस्विनम् ।

निवर्त्तं शत्रुगुण्ठन श्राद्धदेव महाबलम् ॥१८६

उपदेवा ने विजय-रोचन-वर्द्धमान इन सारको महान् भाग वाली

वाहु-भद्ररथ-भद्रवल्ग-सुपाश्र्व-कीर्तिमान् और रोहिताश्व और भद्रज-दुर्मद-  
और अभिभूत ये सब रोहिणी के कुलज बड़े गये हैं । नन्द-उपनन्द-मित्र-कुम्भि-  
मित्र-तया बचल-वित्रा और उपवित्रा दो कन्यायें-रिषत और दूमरा पुष्टि ये  
पुत्र मदिरा के उत्पन्न हुए थे इसके अनन्तर सुदव हुआ था ॥१६४-१६२-१६६-  
॥१६७-१६८-१६९-१७०॥

उपविम्बोऽथ विम्बश्च सत्त्वदन्तमहोजसौ ।

चत्वार एते विस्थाता भद्रापुत्रा महाबलाः ॥१७१

वंशाख्या समदाच्छीरि पुत्र कौशिकमुत्तमम् ।

देवक्या जज्ञिरे शौरि सुषेण कीर्तिमानपि ॥१७२

तदयो भद्रसेनश्च यजुदायश्च पञ्चम ।

पद्मो भद्रविदेकश्च कसः सर्वाञ्जघान तान् ॥१७३

अथ तन्यामवस्थायाभायुष्मान् सबभूव ह ।

लोक नाथः पुनर्विष्णु पूर्वंकृष्ण प्रजापतिः ॥१७४

अनुजाताऽभवत् कृष्णा सुभद्रा भद्रभाषिणी ।

कृष्णा सुभद्रेति पुनर्व्याख्याता वृष्णिणन्दिनी ॥१७५

सुभद्राया रथी पार्थीदभिमन्थुरजायत ।

वसुदेवस्य भार्यासु महाभागसु सप्तसु ।

ये पुत्रा जज्ञिरे शूरा नामतस्तान्निबोधत ॥१७६

अताऽस्य सह देवाया शूरो जज्ञभयासख ।

शाङ्गदेवाजनत्तम्बु शौरी जज्ञे कुलोद्बहम् ॥१७७

उपसङ्ग वसुश्चापि तनयो देवरक्षितौ ।

एव दण सुतास्तस्य कसस्तानप्यचातयत् ॥१७८

उपविम्ब-विम्ब-सत्त्वदन्त-महोजा य चार पुत्र जो महान् बल वाले थे  
के सुन कहे गये थे ॥१७१॥ वंशाखी ने समदा से शौरि ने उत्तम कौशिक  
को उत्पन्न किया था । देवकी ग शौरि-सुषेण-कीर्तिमान्-तदय-भद्रसेन-  
पञ्चम तया छटा भद्रविदेक था । कस न उन सभी पुत्रों को मार दिया  
॥१७२ १७३॥ इसके अनन्तर उस अवस्था में आयुष्मान् हुआ था । लोक-

देवक्या वसुदेवेन तपसा पुण्डरेक्षणम् ।

चतुर्बाहुं स विज्ञायो दिव्यरूपं श्रियान्वितम् ॥१६३॥

प्रकाशो भगवान् योगी कृष्णो मानुषमागतः ।

अव्यक्तोऽव्यक्तनिर्झरस्थः स एव भगवान् प्रभुः ॥ १६४ ॥

वयोकि ऐमा श्रुत है कि श्राद्धदेव नियम के पहिले हुमा था । महान् वीर वाला एतन्व्य निपाने के द्वारा परिवर्द्धित किया गया था ॥१६७॥ विना सन्तति वाले गरुड के लिये सत्पुत्र कृष्ण ७ दोनो पुत्र दे दिये थे । ये दोनो चार देखे और साम्ब थे जो कृतात्स्य एव शस्त्र लक्षण वाले थे ॥१६८॥ तन्तिज और तनिमाल वस्तावनि कनक व अपने दो पुत्रो को प्रतापवान् वसुदेव ने पुत्र हीन के लिए दे दिया था और सौमि ने वीर गौरि और कौशिक पुत्र का दे दिया था ॥१६९॥ तथा—कोधनु विरजा—याम और मृद्धिम हुए उनम श्याम सन्तति हीन था सो वह श्यामव वन म चला गया था । भोजत्व की जुगुप्सा करता हुआ उमने राजपि होन का पद प्राप्त कर लिया था ॥१६०॥ जो इस कृष्ण के जन्म का नियम प्रत बाना होते हुए पत्नी है और किसी शत्रु को हमे श्रवण कराता है वह महान् मुक्त को प्राप्त किया करता है ॥१६१॥ महान् तेज वाले देवो के भी देव प्रजावति कृष्ण पहिले विहार करने के लिय प्रभु नारायण ने मनुष्या म जन्म ग्रहण किया था ॥१६२॥ वसुदेव स देवकी मे तप के द्वारा पुण्डर के समान मुग्ध नेत्रो वाला—श्री से श्रवित—चार भुजाभा स युक्त तथा दिव्य रूपधारी वह विज्ञय है ॥१६३॥ प्रकाश योगी भगवान् कृष्ण मनुष्य के स्वरूप म प्राप्त होगये थे । वह प्रभु भगवान् ही जो अव्यक्त हैं और अव्यक्त चिह्नो म स्थित है मानुष रूप म प्राप्त थे ॥१६४॥

नारायणा यतश्चक्र प्रभव चाव्ययो हि सः ।

देवो नारायणो भूत्वा हरिरासीत्पनातनः ॥१६५॥

याऽमृजत्त्वादिपुरम् पुरा चक्र प्रजापतिम् ।

अदितेरपि पुत्रत्वमेत्य यादवनन्दनः ।

देवा विश्वरुरिति रयात् सत्रादवरजाऽभवत् ॥१६६॥



उत्पन्न किया था ॥१७६॥ वृद्धदेवी ने महान् आत्मा वाले स्वगाह्व को उत्पन्न किया था । आगाही एक स्वसा भी थी जो सुन्दर रूप वाली शिशिरावली थी ॥१८०॥ मुनासा ने सार्वे देवकी के पुत्र को भुव को प्रसूत किया था । गवेपरा महाभाग और सशाम मे चित्रदोधी और आद्धदेव को उत्पन्न किया था जिसने कि पहिले वन म द्विज बनाये थे । शंख्या मे शौरि ने प्रव्यय कौशिक पुत्र नो दिया था ॥१८१-१८२॥ सुगण्डि और वनराजी मे शौरि का परिग्रह था । पूरुड और कपिल मे दो वसुदेव के पुत्र थे । उन दोनों मे पूरुड तो राजा हुआ था और कपिल वन मे चला गया था ॥१८३॥ उसमे धीर वसुदेव का पुत्र हुआ था जो बहुत बल वाला था । यह निपाद नाम वाला राजा था जो प्रथम धनु धरं हुआ था ॥१८४॥ देवरात का महाभाग विध्यात पुत्र हुआ था । देवश्व म समुद्रुव वाला परिहृतो का मन कहते हैं ॥१८५॥ निवत्त ने अस्मकी म मना दृष्टि-वपस्विनी-शक्र रात्रुधो के नायक एव महा बलवान् आद्धदेव पुत्र को प्राप्त किया था ॥१८६॥

अजायत आद्धदेवो निपघादिर्यत श्रुत ।

एकलव्यो महावीर्यो निपादं परिर्वाद्धत ॥१८७

गण्डूपायानपत्याय वृष्यस्तुष्टोऽदवन् सुते ।

चारुदेष्णश्च साम्बश्च कृताम्बी रास्तलक्षणी ॥१८८

तन्तिजस्तन्तिमालश्च स्वपुत्री वनवस्य तु ।

वस्तावनेस्त्वपुत्राय वसुदेव प्रतापवान् ।

सौतिर्ददौ सुत वीर शौरि कौशिकमेव च ॥१८९

तपाश्च क्रोधनु श्रं व विरजा श्यामचृक्षिमी ।

अनपत्योऽभवच्छ्याम श्यामवस्तु वन ययौ ।

जुगुप्समानो भोजत्व राजपित्वमवाप्नुयान् ॥१९०

य इद जन्म वृषणस्य पठते नियतव्रत ।

श्रावयेद्ब्राह्मणश्चापि मुमहृत्मुत्तमाप्नुयान् ॥१९१

देवदेवो महातेजा पूर्व्यं वृष्यं प्रजापतिः ।

विहारार्यं मनुष्येणु जज्ञे नारायण प्रभु ॥१९२

देवक्या वसुदेवेन तपसा पुष्करेक्षणम् ।

चतुर्बाहुः स विज्ञेयो दिव्यरूपः श्रियान्वितः ॥१६३

प्रकाशो भगवान् योगी कृष्णो मानुषमागतः ।

अव्यक्तोऽप्रकृतलिङ्गस्य स एव भगवान् प्रभु ॥ १६४

क्योंकि ऐसा श्रुत है कि धादशदेव निषध के पहिले हुआ था । महान् वीर्यं वाला एकलव्य निषादों के द्वारा परिवर्द्धित किया गया था ॥१६७॥ विना मन्तनि वाले गण्डरूप के लिये सन्तुष्ट कृष्ण ने दोनों पुत्र दे दिये थे । ये दोनों चार देष्ण और माम्ब थे जो कृनास्त्र एवं शस्त्र लक्षण वाले थे ॥१६८॥ तन्तिज और तन्निमाल वस्तावनि बनव के अपने दो पुत्रों को प्रतापवान् वसुदेव ने पुत्र हीन के लिए दे दिया था और सीति ने वीर और और और कौशिक पुत्र को दे दिया था ॥१६९॥ तपा-कोरनु विरजा-श्याम और मृञ्जिम हुए उनमें श्याम मन्तनि हीन था सो वह श्यामव वन में चला गया था । भोजत्व की जुगुप्सा करता हुआ उमने राजपि होन का पद प्राप्त कर दिया था ॥१६०॥ जो इस कृष्ण के जन्म को नियत वन वाला होने हुए पडता है और किसी ब्राह्मण को इसे श्रवण कराता है वह महान् मुन को प्राप्त किया करता है ॥१६१॥ महान् तेज वाले देवों के भी देव प्रजापति कृष्ण पट्टिन विहार करने के लिये प्रभु नारायण ने मनुष्यों में जन्म ग्रहण किया था ॥१६२॥ वसुदेव से देवकी में तप के द्वारा पुष्कर के समान मुन्दर नत्रों वाला—धी म अन्विन—चार भुजाओं से युक्त तथा दिव्य रूपधारी वह विज्ञेय है ॥१६३॥ प्रशान्त, योगी, भगवान् कृष्ण मनुष्य के स्वरूप में प्राप्त होगय थे । वह प्रभु भगवान् ही जो अव्यक्त हैं और अव्यक्त चित्तों में स्थित हैं, मानुष हृद में प्राय थे ॥१६४॥

नारायणो यतश्चक्र प्रभव चाव्ययो हि स ।

देवो नारायणो भूत्वा हरिरासीत्ननानन ॥१६५

योऽमृजद्वादिपुर्य पुग चक्रे प्रजापतिम् ।

अदिनेरपि पुत्रत्वमेत्य यादवनन्दनः ।

देवो विष्णुरिति ग्यातः शत्रादवरजोऽभवत् ॥१६६

प्रसादज यस्य विभोरदित्या पुत्रकारणम् ।  
 यथार्थं सुरशत्रूणा दैत्यदानवरक्षसाम् ॥१६७  
 ययातिवशजस्याय वसुदेवस्य धीमत ।  
 कुल पुण्य यत् कर्म भेजे नारायण प्रभु ॥१६८  
 सागरा समवम्पन्त चेलुश्च घरणीधरा ।  
 जज्वलुश्चाग्निहोत्राणि जायमाने जनार्दने ॥१६९  
 शिवाश्च प्रवबुर्वाता प्रशान्तिमभवद्रज ।  
 ज्योतीप्यम्यधिक रेजुर्जायमाने जनार्दने ॥ २००  
 अभिजिन्नाम नक्षत्र जयन्ती नाम शर्वरी ।  
 मुहूर्त्तो विजयो नाम यत्र जातो जनार्दन ॥२०१  
 अव्यक्तं शाश्वतं कृष्णो हरिर्नारायण प्रभु ।  
 जायते स्मैव भगवान् नयनैर्मोहयन् प्रजा ॥२०२

क्योंकि अव्यक्त नारायण ने प्रभव किया अर्थात् जन्म ग्रहण किया था देवनारायण होकर सनातन हरि हुए थे ॥१६५॥ जिनमे पहिले आदि पुरुष प्रजापति का मृजन किया था वह यादव नन्दन अदिति के भी पुत्र के स्वरूप को प्राप्त कर देव विष्णु नाम से प्रसिद्ध हुए थे और इंद्र के छोटे भाई बन गये थे ॥१६६॥ जिन विभु के अदिति के पुत्र होने का कारण केवल प्रसाद ही है । जोकि देवो के शत्रु दैत्य-दानव और राक्षसो के वध करने के लिये ही हुआ था ॥१६७॥ राजा ययाति के वध म ज म लेने वाले धीमान् वसुदेव का कुल बहुत पुराय शान्ती है और पवित्र है जिनमे कि प्रभु नारायण ने जन्म ग्रहण कर वम किया था ॥१६८॥ भगवान् जनार्दन के उत्पन्न होने के समय मे समस्त सागर कम्पमान हागये थे और मधु पवन चलायमान हागये थे और चारो ओर अग्नि-ज्वलित हागये थे ॥१६९॥ कल्पान्त कर वायु घटन करन लगी रज ने ॥ प्राप्त करली भी भगवान् जनार्दन के जायमान होने पर ज्योतिर्वा अत्य-रूप से प्रकाश वालो होकर शोभित हो रही थी ॥२००॥ उन समय मे अभिजिन् नाम वाला नक्षत्र था—जयन्ती नाम की शर्वरी थी और विजय नाम वाला मुहूर्त्त था जिन समय म भगवान् जनार्दन ने अपना जन्म ग्रहण किया

था ॥२०१॥ अश्वत्थ-शाश्वत्-प्रभु नारायण हरि श्रीकृष्ण भगवान् नेत्रो वे  
द्वारा प्रजा को मुग्ध करते हुए उत्पन्न हुए थे ॥२०२॥

आकाशात् पुण्यवृष्टीश्च ववर्ष त्रिदशेश्वर ।

गोभिर्मङ्गलयुक्ताभि स्तुवन्तो मधुसूदनम् ।

महर्षय मगन्धर्वा उपतस्थु सहस्रश ॥२०३

वसुदेवस्तु त रात्रौ जात पुत्रमधाशजम् ।

श्रीवत्सलक्षण दृष्ट्वा दिवि दिव्यं सुलक्षणं ।

उवाच वसुदेव स्व रूप सहार वै प्रभो ॥२०४

भीताऽह कसतस्तात एतदेव ब्रवाम्यहम् ।

मम पुत्रा हतास्तेन ज्येष्ठास्तेऽद्भुतदशना ॥२०५

वसुदेववच श्रुत्वा रूप स हृतवान् प्रभु ।

अनुज्ञात पिता स्वन नन्दगापगृह गत ।

उग्रसेनमते तिष्ठन् यशोदाय तदा ददौ ॥२०६

तुल्यकालन्तु गर्भिण्यौ यशोदा देवकी तथा ।

यशोदा नन्दगोपस्य पत्नी सा नन्दगोपते ॥२०७

त्रिदशेश्वरो ने आकाश म पुण्यो की वर्षा की थी और भगवान् मधु-  
सूदन की मङ्गलमयी वाणियो क द्वारा स्तुति की थी । उस समय सहस्रा ही  
महर्षिगण-गचद लाग वहाँ पर स्तवन गान करन के लिये उपस्थित होगय थे  
॥२०३॥ वसुदेव ने तो रात्रि के समय म भगवान् अधोशज को पुत्र के रूप म  
उत्पन्न हुए देवत्वर जोकि श्रीवत्स के निह्ल म युक्त और समस्त अन्य दिव्य  
लक्षणों से अचित थे वसुदेवजी न कहा—ह प्रभो ! इन समय आप इन अपने  
स्वरूप का सहस्रण वगिय ॥२०४॥ हे तात ! मैं राजा कम से भयभीत ही रहा हूँ  
यही कारण है कि मैं इस समय आपम यह निषेदन कर रहा हूँ । इस काल न  
अद्भुत दर्शन वादे मेरे आपम ज्येष्ठ पुत्रो को मार डारा है ॥२०५॥ वसुदेव के  
इम विनिवदित वचन गो मुनत्तर भगवान् ने अपने उम स्वरूप का सवरण कर  
लिया था । उनके द्वारा पिता वसुदेव अनुज्ञात होकर इतको लेकर नन्दगोप के  
गृह पर चर गय थे । उपमन क मत में रहत हुए उस समय उन्हें यशोदा के

लिये दे दिया था ॥२०६॥ यगोत्तम और देवकी दोनों ही एक ही समय में गर्भिणी हुई थी । वह यगोदा गापति नद की पत्नी थी ॥२०७॥

यामेव रजनी कृष्णो जज्ञ वृष्णि कुलप्रभु ।

तामेव रजनी कन्या यशोदापि व्यजायत ॥२०८

त जात रक्षमाणस्तु वसुदेवा महायशा ।

प्रादात् पुत्र यशादायै कन्या तु जगृहे स्वयम् ॥२०९

दत्त्वेन नन्दगापस्य रक्ष मामिति चाब्रवीत् ।

सुतन्त सव्वकल्याणो यादवाना भविष्यति ।

अथ स गर्भो देवक्या अस्मत्त्वलेशान् हनिष्यति ॥२१०

उग्रसनात्मजायाञ्च कन्यामानकदुन्दुभे ।

निवेदयामास तदा कन्येति शुभलक्षणा ॥२११

स्वसाया तनय कसो जात नवावधारयत् ।

अथ तामपि द्रुष्टात्मा ह्युत्समज मुदावित ॥२१२

हता वै या यदा य या जपत्येव वृथामिति ।

कन्या सा ववृधे तत्र वृष्णिसद्यनि पूजिता ॥२१३

पुत्रवत्परिपाल्यन्ता देवा देवान् यथा तदा ।

तामेव विधिनोत्पन्नमाहु कन्या प्रजापतिम् ॥२१४

एकादशा तु जज्ञ व रक्षार्थं केशवस्य ह ।

ता वै सर्वे सुमनस पूजयिष्यन्ति यादवा ।

देवदेवो दिव्यवपु कृष्ण मरक्षिनोऽनया ॥२१५

वृष्णि कुल के स्वामी त्रिम रात्रि म उत्पन्न हुए थे उभी रात म यगोत्तम ने भी एक कन्या को जन्म दिया था ॥२०८॥ उन समुत्पन्न श्रीकृष्ण बालक की रक्षा करते हुए वसुदेवजी न जिनका महान् यग था वह बाल कृष्ण पुत्र तो श्री यगोत्तम को द दिया था और उन यगोत्तम के गर्भ म प्रसूत कन्या को स्वयं ग्रहण कर लिया था । २०९॥ इस बालकृष्ण बालक को नन्दगोप को देकर वसुदेवजी ने कहा—मरी रक्षा करिये । तुम्हारा यह पुत्र ममन्त कल्याणो क करने वाला है जोरि मात्स्य का मङ्गल करतवाला हाण यह देवकी का बहन्म है जा

ममस्तु हमारे बलेशो का हनन कर देया ॥२१०॥ श्रीर उग्रसेन की आत्मजा देवकी को आनक दुन्दुभि ने वह कन्या लाकर दे दी थी और उस समय में वह कन्या शुभ लक्षण वाली उत्पन्न हुई है—ऐसा ज्ञात कराया गया था ॥२११॥ कस ने प्रपनी बहिन के पुत्र हुआ है—यह निश्चय नहीं किया था । इसके अनन्तर उस दुष्टात्मा ने मुदान्वित होते हुए उसको भी उन्मृष्ट कर दिया था । जिस समय में जो कन्या हन हुई यह वृथा बुद्धि वाला मन में विचार करता है कि वृष्णि के घर में पूजित वह कन्या बड़ी हुई है ॥२१२-२१३॥ उस समय देवो की भक्ति देव पुत्र के समान परिपालन करते हुए विधि के द्वारा उत्पन्न कन्या को प्रजापति में बोले ॥२१४॥ यह ग्यारहवीं केशव की रक्षा के लिये उत्पन्न हुई है । उनको फिर सभी सुमनस यादव पूजेंगे कि देवो के देव कृष्ण इनके द्वारा रक्षित हुए हैं ॥२१५॥

किमर्था वसुदेवस्य भोज कमो नगाधिप ।

जघान पुत्रान् बालान् वै तन्ना व्यस्य्यातुमर्हन्नि ॥२१६

शृणुष्व वै यथा कस पुत्रानानकदुन्दुभे ।

जाताञ्जाताञ्छूनून् सर्वान् निष्पिपेप वृथामति ॥२१७

भयाद्यथा महाबाहुर्जाति वृष्णा विवासित ।

तथा च गोपु गोविन्द सवृद्ध पुरुषोत्तम ॥२१८

उक्त हि विल देवकया वसुदेवस्य धीमत ।

सारथ्य कृतवान् कसो युवराजस्तदाऽभवत् ॥२१९

तनोऽन्तरिक्षे वागासीद्दिव्या भूतस्य कस्यचित् ।

कसो यथा सदा भीत पुष्कला लोकसाक्षिणी ॥२२०

यामेता वहसे कस रथेन परकारणात् ।

अस्या य सप्तमो गर्भं स ते मृत्युर्भविष्यति ॥२२१

ता श्रुत्वा व्यथितो वाणी तदा कसो वृथामति ।

निष्कम्य खड्गं ता कन्या हन्तुवामोऽभवत्तदा ॥२२२

तमुवाच महाबाहुर्वसुदेव प्रतापवान् ।

उग्रमेनात्मजं कम सौतृदात्प्रण येन च ॥२२३

ऋषियो ने कहा—नरो के स्वाधी भोजन का ने दिन लिये वसुदेव के बायन पुत्रो को मार डाला था—यह बात पूरी तरह से ध्यास्या करके हम गमभाने के योग्य हाने हैं ॥२१६॥ श्री गूनजी बोन—मुनो, जिन तरह मे वृषा युद्ध वाले का ने भाग्य दुःखुभि के पैदा होने वाले सभी शिशुषो को निष्पष्ट कर दिया था ॥२१७॥ जिन तरह भय मे महाबाहु कृष्ण उत्पन्न होने हुए ही विवामित कर दिये गये थे धर्मान् अन्य स्थान गोकुल म भेज दिये गये थे । और उनी प्रकार मे गोविन्द पुरुषोत्तम वही गोत्रो मे सवधिन हुए थे ॥२१८॥ देवकी और धीमान् वसुदेव के यह का मारवि का काम करता था उम समय म यह युवराज ही था—ऐसा कहा गया है ॥२१९॥ उम समय म किमी प्राणी की धारा म दिव्य वाणी हुई थी जिनमे मदा भयभीत रहा करता था क्योंकि वह ममस्त सोच की माशी पुष्पल वाणी हुई थी ॥२२०॥ आकाश म होन वाली वाणी यह थी हे कम ! पर कारण मे जिनको तू रथ के द्वारा बहन कर रहा है धर्मान् रथ मे बिठा कर ले जा रहा है इसका जो मायवां गर्भ होगा वह तरा मृ दु होगा अर्थात् वही तुझे मारने वाला होगा ॥२२१॥ उम धारा म होने वाली दिव्य वाणी को मुनकर वह कम बहन ही व्यवित हुआ था क्योंकि वह वृषा युद्ध वाला उम समय मे था । उमने अपना खड्ग निकाल कर उम समय मे उमके मार देने की इच्छा की थी ॥२२२॥ उम समय म महाबाहु प्रतापी वसुदेव ने उमने कहा और उम उपरोक्त के पुत्र कम मे बडे ही सौहार्द तथा प्रणय का प्रदर्शन करते हुए निवेदन किया था ॥२२३॥

न स्त्रिय क्षत्रियो जातु हन्तुमर्हति कश्चन ।

उपाय परिदृष्टोऽत्र मया यादवनन्दन ॥२२४

योग्या भविष्यति गर्भं सप्तम. पृथिवी पते ।

तमहन्ते प्रयच्छामि तत्र कुटर्षा यथाक्रमम् ॥२२५

त्व त्विदानी यथेष्टत्व वर्तया भूरिदक्षिण ।

सर्वान्म्यास्तु वै गर्भान् सत्य नेष्यामि ते वनम् ॥२२६

एव नरश्रेष्ठ वाणी नमामिध्या भविष्यति ।

एवमुक्त्वाऽनुनीतः स जग्राह तनयास्तदा ॥२२७

वसुदेवश्च ता भार्यामवाप्य मुदितोऽभवत् ।  
 वसश्चास्यावधीत् पुनान् पापकर्मा वृथामतिः ॥२२८  
 क एष वसुदेवश्च देवकी च यशस्विनी ।  
 नन्दगोपस्तु कस्त्वेष यशोदा च महायज्ञा ।  
 यो विष्णु जनयामास या चैन चाम्यवर्द्धयत् ॥२२९

हे वादव नन्दन ! कोई भी क्षत्रिय कभी भी किमी स्त्री को मार देने के योग्य नहीं होता है । इस भय के जोकि तुम्हारे हृदय में उत्पन्न होगया है मैंने उसका निवारण का उपाय भली भाँति देख लिया है ॥२२४॥ हे पृथिवी के पति ! इसका जो सातवाँ गर्भ होगा उसको मैं आपको देदूँगा । उसमें आप यथाक्रम कर ॥२२५॥ हे भूरि दक्षिण ! इस समय आप जैसा चाहिए वैसा ही व्यवहार करे । इसके सभी गर्भों को आपके वश में प्राप्त कर दूँगा ॥२२६॥ हे नर श्रेष्ठ ! इस प्रकार से यह वाली मिथ्या नहीं होगी । इस तरह अनुनय किये हुए उसने सब पुत्रों को ग्रहण कर लिया था ॥२२७॥ और वसुदेव तो उस घण्टी भार्या को प्राप्त कर बहुत प्रसन्न हुए । और कम ने जाति पाप कर्म करने वाला तथा वृथा बुद्धि से युक्त था, इनके पुत्रों का मार डाला था ॥२२८॥ ऋषिषा ने कहा—यह वसुदेव कौन था और यशस्विनी देवकी कौन थी, नन्दगोप कौन था तथा महान् यशोदा कौन थी ? जिग्ने विष्णु को उदास किया था और जिसने इनका पूण रूप में अभिवर्द्धन किया था ॥२२९॥

पुरुषाः कश्यपस्यामनादित्यास्तु स्त्रियाम्तवा ।  
 अथ कामान् महाबाहुर्देवक्या समवर्द्धयत् ॥२३०  
 अचरत् स मही देव प्रविष्टो मानुषो तनुम् ।  
 मोहयन् सर्वभूतानि योगात्मा योगमायया ॥२३१  
 नष्टे धर्मो तदा जज्ञे विष्णुवृत्तिबुद्धे स्वयम् ।  
 वतुं धर्मव्यवस्थानमसुराणा प्रणाशनम् ॥२३२  
 आरहता रुक्मिणी कन्या सत्या नग्नजितस्तदा ।  
 सात्राजिनी मत्स्यभामा जाम्बवत्यपि रोहिणी ॥२३३



शत्रियो मे बद्धा—नरो के स्वापी भोजन का ने रिगु निवे वसुदेव के पासक पुत्रो की मार डाला था—यह घाप पूरी तरह मे व्याख्या करके हमे समझाने के योग्य होने है ॥२१६॥ थी मूनजी बोन—मुनो, जिम तरह से वृषा बुद्धि वाले का ने आनक दुन्दुभि के पैदा होने वाले सभी शिशुओं को निष्पिष्ट कर दिया था ॥२१७॥ जिम तरह भय मे महाबाहु कृष्ण उत्पन्न होने हुए ही विवाहित कर दिये गये थे धर्मान् धन्य स्थान गोबुल मे मंत्र दिये गये थे । और उमी प्रपार मे गोविन्द पुरोत्तम वहाँ गीघो मे मशघिन हुए थे ॥२१८॥ देवकी और धीमान् वसुदेव के यह कम मारधि का काम करता था उम समय में यह युवराज ही था—ऐसा कहा गया है ॥२१९॥ उम समय मे किमी प्राणी की घातक मे दिग्ग वाणी हुई थी जिममे मश भयभीत रहा करता था क्योंकि वह समस्त मोंक की साथी पुष्पल वाणी हुई थी ॥२२०॥ आकाश म होने वाली वाणी यह थी हे कम । पर पारण मे जिमको तू रय के द्वारा बहन कर रहा है धर्मान् रय मे पिडा कर ले जा रहा है इसका जो मानवी गर्भ होगा वह तेरा मृःपु होगा अर्थात् वही तुझे मारने वाला होगा ॥२२१॥ उम घातक मे होने वाली दिग्ग वाणी को मुनकर वह कम बहुत ही व्यथित हुआ था क्योंकि वह वृषा बुद्धि वाला उम समय मे था । उमने अपना खल्ल निकाल कर उम समय में उमके मार देने की इच्छा की थी ॥२२२॥ उम समय में महाबाहु प्रतापी वसुदेव ने उममे कहा और उत उपमेन के पुत्र कम से बडे ही मोहार्द तथा प्रणय का प्रदर्शन करते हुए निवेदन किया था ॥२२३॥

न स्त्रिय शत्रियो जातु हन्तुमर्हति वञ्चन ।

उपाय परिदृष्टोऽत्र मया यादवनन्दन ॥१२४

योऽभ्या भविष्यति गर्भं सप्तमः पृथिवी पते ।

तमहन्ते प्रयच्छामि तत्र कुर्या यथाक्रमम् ॥२२५

त्व त्रिदानी यथेष्टत्व वर्तेया भूरिदक्षिण ।

सर्वानस्यास्तु वै गर्भान् सत्य नेष्यामि ते वशम् ॥२२६

एव नरश्रेष्ठ वाणी नैरामिथ्या भविष्यति ।

एवमुक्त्वाऽनुनीतः स जग्राह तनयास्तदा ॥२२७

वसुदेवश्च ता भार्यामप्याप्य मुदितोऽभवत् ।  
 वसश्चास्यावधीत् पुत्रान् पापकर्म्मि वृथामतिः ॥२२८  
 क एष वसुदेवश्च देवकी च यशस्विनी ।  
 नन्दगोपस्तु वस्त्वेष यशोदा च महायज्ञाः ।  
 यो विष्णुं जनयामास या चंन चाम्यपद्धयत् ॥२२९

हे यादन नन्दन ! कोई भी दायिप वभी भी किसी स्त्री को मार देने के योग्य नहीं होता है । इस मय के जोकि तुम्हारे हृदय में उत्पन्न होगया है मैंने उसके निवारण का उपाय भली-भाँति देख लिया है ॥२२४॥ हे पृथिवी के पति ! इसका जो मातवां गर्भ होगा उसको मैं आपकी देदूँगा । उसमें आप पषाक्रम करं ॥२२५॥ हे भूरि दक्षिण ! इस समय आप जैसा चाहिए वैसा ही व्यवहार करे । इसके सभी गर्भों को आपके वश में प्राप्त कर दूँगा ॥२२६॥ हे नर धेष्ट ! इस प्रकार से यह वाली मिच्छा नहीं होगी । इस तरह अनुनय किये हुए उसने सब पुत्रों को ग्रहण कर लिया था ॥२२७॥ और वसुदेव तो उस अग्नी भार्या को प्राप्त कर बहुत प्रसन्न हुए । और कम ने जोकि पाप कर्म करने वाला तथा वृथा बुद्धि म युक्त था, इसके पुत्रों का मार डाला था ॥२२८॥ श्रुतियों ने कहा—यह वसुदेव कौन था और यशस्विनी देवकी कौन थी, नन्दगोप कौन था तथा महान् यशस्वी यह यशोदा कौन थी ? जिनने विष्णु को उत्पन्न किया था और जिम्ने इनका पूण रूप से अभिवर्द्धन किया था ॥२२९॥

पुरुषाः कश्यपस्यामन्नादित्यास्तु स्त्रियास्तथा ।  
 अथ कामान् महाबाहुर्देवकया समवद्धयत् ॥२३०  
 यन्नरत् स महो देव प्रविष्टो मानुषो तनुम् ।  
 मोहयन् सर्वभूतानि योगात्मा योगनाथया ॥२३१  
 नष्टे धर्म्मं तदा जज्ञे विष्णुर्गृणिण्डुले स्वयम् ।  
 कर्तुं धर्म्मव्यवस्थानमसुराणां प्रणाशनम् ॥२३२  
 आहृता रविमणी कन्या सत्या नग्नजितस्तदा ।  
 सान्नाजिती सत्यभामा जाम्बवत्यपि रोहिणी ॥२३३

शंघ्या गुदेयी माद्री च मुनीना नाम चापरा ।

वालन्दी मित्रविन्दा च लक्ष्मणा जालवामिनी ॥२३४

एवमादीनि देवाना महस्याणि च योद्धवः ।

चतुर्दश तु ये प्रोक्ता गणाभ्रामरना दिवि

विचिन्त्य देवैः साकण विगिष्टास्त्रिह प्रेषिताः ॥२३५

सूत्रो ने कहा— कश्यप के पुराण में शीर प्रतिनि की कियी थीं । इनके अनन्तर महाबाहु ने देवी के नामों का तात्पर्यन किया था ॥२३०॥ योगात्मा उसने अपनी योगमाया से समस्त प्राणियों को मोहित करते हुए मानुष शरीर में प्रवेश करते उस देव ने भूमि में विवरण किया था ॥२३१॥ धर्म के नष्ट हो जाने पर भगवान् विष्णु ने स्वयं वृद्धि कुत में उस समय जन्म लिया । वह जन्म घटण धर्म की व्यवस्था करने के लिये तथा समुद्र का विनाश करने के लिये ही हुआ था ॥२३२॥ मिमगी कन्या का प्राहरण किया गया था उस समय में नाना जिनकी गन्या सथात्रि की मरपभामा, जाम्बवती शीर रोहिणी साईं गई थी ॥२३३॥ शंघ्या—गुदेयी—माद्री—मुनीना—वालन्दी—मित्रविन्दा—लक्ष्मणा—जालवामिनी—एवमादि देवों की मोलह हजार थी । चौदह ही दिवनों में अनन्तराप्रो के गण कहे जाते थे, देवों के द्वारा शीर इन्द्र के द्वारा विशेष रूप से चिन्तन करने को विगिष्ट थी वे यहाँ प्रेषित करदी गई थी ॥२३४-२३५॥

पत्न्यर्थं वासुदेवस्य उत्पन्ना राजवेश्मसु ।

एता पत्न्यो महाभागा विष्वक्सेनस्य विश्वुता ॥२३६

प्रद्युम्नश्चारुदेवश्च सुदेव्या शरभ स्तथा ।

चारुश्च चारुभद्रश्च भद्रचागस्तथाऽप्यर ॥२३७

चारुविन्ध्यश्च रुक्मिण्या कन्या चारुमती तथा ।

मानुर्भानुस्तथाक्षश्च रोहितो मन्त्रयस्तथा ॥२३८

जराधकस्तथाभवशा भौभरिश्च जरन्धम ।

चतस्रो जज्ञिरे तेषा स्वसरो गृहध्वजात् ॥२३९

भानुर्भौमरिका चैव तादृशर्णी जरन्धमा ।

सत्यभामामुतानताञ्जाम्बवत्या प्रजा शृणु ॥२४०

भद्रश्च भद्रगुप्तश्च भद्रविन्द्रस्तथैव च ।  
 सप्तवाहृश्च विख्यात वन्या भद्रावती तथा ।  
 सम्बोधनी च विख्याता ज्ञेया जाम्बवतीमुता ॥२४१॥  
 सप्रामजिच्च शतजित् तथैव च सहस्रजित् ।  
 एते पुत्रा मुदेव्याश्च विष्वक्सेनस्य कीर्तिता ॥२४२॥  
 वृको वृकाश्वो वृकजिद्वृजिनी च तुराङ्गना ।  
 मिश्रवाहू सुनीथश्च नाम्नाजित्या प्रजास्त्विवहू ॥२४३॥

ये सब यहाँ राजाओं के भक्तों में वामुदेव की पत्नी बनने के लिये उत्पन्न हुई थी । ये महान् भाग वाली पत्नियाँ विश्वसेन की प्रसिद्ध हुई थीं ॥२३६॥ प्रद्युम्न—चारदेवण—मुदेवण—शरभ—चारु—चारुभद्र और चारविन्ध्य शक्तिमती में पुत्र उत्पन्न हुए तथा एक चारुमती नाम वाली कन्या उत्पन्न हुई थी । मानुर्वानु—अन्न—रोहित—मन्त्राय—जरान्धक—ताम्रवधा—भीमरि और जरन्धम ये सत्यभामा के पुत्र हुए थे और इनकी चार बहिनें गरुडध्वज से उत्पन्न हुई थी जिनके नाम मानु—भीमरिका—ताम्रवर्णा और जरन्धमा थे—सत्यभामा के सुत तो बतला दिये गये हैं अब जाम्बवती के पुत्रों को श्रवण करो ॥२३७-२३८-२३९-२४०॥ भद्र—भद्रगुप्त—भद्रविन्द्र—सप्तवाहू ये सब जाम्बती के विख्यात पुत्र थे । भद्रावती कन्या थी जाकि सम्बोधनी—इम नाम से विख्यात जाम्बवती के जानने योग्य थे ॥२४१॥ सपाम जित्—शतजित्—सहस्रजित् ये मुदेवी के पुत्र थे जोकि विष्वक्सेन के कहे गये हैं ॥२४२॥ वृक—वृकाश्व—वृकजित् और वृजिनी सुराङ्गना—मिश्रवाहू—सुनीथ ये नाम्नाजिती की सम्पत्ति यहाँ पर हुई थी ॥२४३॥

एवमादीनि पुत्राणा सहस्राणि निबोधत ।  
 प्रयुतन्तु समाख्यात वामुदेवस्य ये मुता ॥२४४॥  
 अयुतानि तथाष्टौ च शूरा रमाविशारदा ।  
 जनार्दनस्य वशो व कीर्तितोऽप्य यथातथम् ॥२४५॥  
 बृहती नर्तकोन्नेधी मुनये सङ्गता तथा ।  
 कन्या सा वृहदुच्छस्य शौनेयस्य महात्मनः ॥२४६॥

अतिरुद्धश्च पञ्चते वदावीरा प्रवीतिता ।  
 सप्तर्षय कुबेरश्च यक्षो मणिवरस्तथा ॥२  
 शालवी वदरश्चैव विद्वान् धन्वन्तरिस्तथा ।  
 नन्दिनश्च महादेव शालङ्कायन उच्यते ।  
 आदिदेवस्तदा जिष्णुरभिश्च सह दैवते ॥३  
 विष्णु विमर्षं सम्भूत स्मृता सम्भूतय कति ।  
 भद्रिप्या कति वान्य तु प्रादुर्भावा महात्मन ॥४  
 ब्रह्मक्षेत्रे युगान्तेषु विमर्षमिह जायते ।  
 पुन पुनम्मनुष्येषु तत्र प्रग्रही पृच्छताम् ॥५  
 विस्तरेणैव सर्वाणि वर्गाणि रिषुधातिन ।  
 श्रोतुमिच्छामहे सम्यग् देहै कृष्णस्य धीमत ॥  
 वम्भयामानुषूष्यंश्च प्रादुर्भावाश्च य प्रभो ।  
 या चास्य प्रकृति सूत ताश्चास्मान् वक्तुमहसि ॥७  
 वया स भगवान् विष्णु सुरेप्वरिनिपूदन ।  
 वसुदेवकुले धीमान् वामुदेवत्व मागत ॥८

मनुष्य की प्रकृति वाले देवो को भव बतलाया जाता है उन कीर्त्यमानो को भती भाँति समझ लो । मद्गुण्य-वामुदेव-प्रभुम्न-साप्व और अनिरुद्ध ये पाँच वक्षशीर कहे गये है । सप्तर्षि कुबेर-यक्ष-मणिवर-शालवी-वदर-विद्वान् धन्वन्तरि-नन्दिन-महादेव और शालङ्कायन कहे जाते हैं । उस समय इन देवो के साथ जिष्णु आदि देव थे ॥१ २ ३॥ ऋषिया ने कहा—भगवान् विष्णु न किम प्रयोजन की सिद्धि के विषये जन्म ग्रहण किया था और उनक कितने जन्म वतार हैं तथा महान् आत्मा वादे विष्णु के धन्य कितने प्रादुर्भाव भविष्य में होने वाले हैं ? ॥४॥ युगालो में ब्रह्मक्षेत्र में यहाँ किस कारण से जन्म लेते हैं मनुष्या में बार बार जन्म मानवा से लिया करते है इसका क्या कारण यह पूछने वाले हमना सब बतलाइये ॥५॥ शत्रुओं के धात करने वाले कृष्ण व शरीरो के द्वारा जो कम होते हैं उन सबको विस्तार के साथ लोग मुनता चाहते हैं ॥६॥ हे प्रभा ! उनके बर्षों की आनुपूर्वी-प्रादुर्भाव

और जो इनकी प्रकृति है वह सब हे मूतजी ! हमको आप बताने की योग्य होने हैं ॥७॥ वह भगवान् गुरो म शत्रुओ के नाश करने वाले धीमान् विष्णु वसुदेव के कुन म वामुदेवत्व को कैसे प्राप्त हुए थे ? ॥८॥

अमरं सूत किं पुण्यं पुण्यकृद्भिरलकृतम् ।

देवलोकसमुत्सृज्य मर्त्यलोकमिहागतं ॥९॥

देवमानुषयोर्नृता भूर्भुव प्रसवो हरिः ।

किमर्थं दिव्यमात्मानं मानुषे समवेशयत् ॥१०॥

यश्चक्र वर्तयत्येको मनुष्याणां मनोमयम् ।

मनुष्ये स कथं बुद्धिं चक्रे चक्रभृता वर ॥११॥

गोपायन यः कुरुते जगतां सार्वभौतिकम् ।

स कथं गतौ विप्रगुणोपमन्वकरोत्प्रभु ॥१२॥

महाभूतानि भूतात्मा यो दधार चकार ह ।

श्रीगर्भं स कथं गर्भे स्त्रिया भूचरया घृतं ॥१३॥

येन लोकान् क्रमैर्जित्वा त्रिभिस्त्रीस्त्रिदशोप्सया ।

स्थापिता जगतो मार्गास्त्रिवर्गप्रवरास्त्रय ॥१४॥

योऽन्तकाले जगत्पीत्वा कृत्वा तोयमयं वपुः ।

लोकमेकार्णवचक्रे दृश्यादृश्येन वर्त्मना ॥१५॥

यं पुराणे पुराणात्मा वाराहवपुरास्थितः ।

ददौ जित्वा वसुमतीं सुराणां सुरसत्तम ॥१६॥

हे मूतजी ! पुराण करने वाले देवों से अलकृत पुण्यवत् दवनाद का

त्याग करके यहाँ मनुष्य लोक में आय थे अर्थात् विष्णु ने मनुष्यों में अवतार लिया था ॥९॥ भूर्भुव प्रसव हरि जो देव और मनुष्यों के नता हैं उनसे किस लिये अपने दिव्य आत्मा को मनुष्य रूप में सन्निविष्ट किया था ॥१०॥ जो एक मनुष्यो ने मनोमय चक्र को चलाता है उस चक्रभृता में परम श्रेष्ठ ने मनुष्य बुद्धि कैसे की थी ॥११॥ जो प्रभु जगत् को सार्वभौतिक गोपायन अर्थात् सरक्षण किया करता है वह प्रभु विष्णु किस निमित्त से भूमि में जाकर अर्थात् मानुषावतार लेकर गोप का मनुकरण करता था ? ॥१२॥ जो भूतो की आत्मा

महामुनी को बनाता है और धारण किया करता है श्रीगर्भ वह भूचरी के द्वारा गर्भ में कैसे धारण किया गया था ? ॥१३॥ देवों की इच्छा से जिसने तीन प्रदमो से अर्थात् तीन पैँड में तीन लोको को जीतकर जगन् के त्रिवर्ग प्रवर तीन भाग स्व्यापित किया थे ॥१४॥ जो अन्न समय में तोयपूर्ण शरीर बनाकर इस समस्त जगत् का पान कर लोक को दृश्य और अदृश्य मार्ग से एक मनुष्य के स्वरूप में कर देता था ॥१५॥ जो पुराण में पुराण प्रारम्भ वाला है और वायु के शरीर में स्थित हुआ था तथा सुरों में श्रेष्ठ ने वसुमती को जीत कर जिसने सुरों को देदी थी ॥१६॥

येन संह वपु कृत्वा द्विधा कृत्वा च यत्पुन ।

पूर्व्वदेत्यो महावीर्यो हिरण्यकशिपुहंत ॥१७

य पुराह्यनलो भूत्वा और्व्वं सवत्तको विभु ।

पातालस्थोऽर्णवगत पपो तोयमय हवि ॥१८

सहस्रचरण देव सहस्राणु सहस्रश ।

सहस्रशिरस देव यमाहुर्वे युगे युगे ॥१९

नाभ्यारण्या समुद्भूत मय पैतामह गृहम् ।

एकार्णवगते लोके तत्पङ्कजमपङ्कजम् ॥२०

येन ते निहता देव्या संग्राम तारकामये ।

सर्व्वदेवमय कृत्वा सर्वायुषधर वपु ॥२१

गरुडस्थेन चोत्सिक्त कालनेमिनिपादित ।

उत्तराशे समुद्रस्य क्षीरोदस्यामृतोदधे ।

य शेते शाश्वत योगमास्थाय तिमिर महन् ॥२२

पुरारग्नी गर्भमघत्त दिव्य तप प्रकर्पादिति पुरा यम् ।

शक्रश्च यो दैत्यगणावरुद्ध गर्भाविमानेन भृश चकार ॥२३

जिसने अम्भ को फाँटकर अपना बिह और मर का दो प्रकार का स्वरूप बनाया था और पहिले दैत्य महान् पराक्रमी हिरण्य कशिपु को मार डाला था ॥१७॥ जो पहिले सवत्तक विभु और्व्वं अर्थात् पृथ्वी पर अन्नल छोकर पाताल में स्थित तथा अर्णव गत होता हुआ तोयमय हवि का पान कर गया था ॥१८॥

युग-युग म जिमकी सृष्टि चरण वाला देव-सृष्टि अगु मे युक्त-महस्र शिर वाला  
 वृक्ष है ॥१६॥ जिमकी नाभि की अरणी से अर्थात् कमल नाल से पितामह  
 का घर उत्पन्न हुआ था और वह बिना ही पशु के उत्पन्न होने वाला पशुज  
 एराणव लोच मे था ॥२०॥ जिमने तारकामय सग्राम मे सर्वदेव पूर्ण और  
 समस्त आयुधा के धारण करने वाले अगु को बनाकर दैत्यों का हनन किया था  
 ॥२१॥ गहड़ पर स्थित जिमने अमृत का उदधि क्षीर सागर समुद्र के उत्तराश  
 मे उन्मिक्त बाननभि को निपातित कर दिया था जो मद्गन् विमिर (अन्धकार)  
 म पाग मे घास्थित होकर शाश्वत गयन किया करता है ॥२२॥ पहिले अरणी  
 ने जिमको शिव गर्भ के रूप मे धारण किया था और तपस्या के प्रकर्ष से  
 जिमको अग्नि न गर्भ धारण किया था । जिमने गर्भ के अवमान मे इन्द्र को  
 शिव के द्वारा अवन्द्य किया था ॥२३॥

यदानिषो लात्रपदानि त्हात्त्र चकारदंत्यान् मलिलेशयास्तान् ।  
 कृत्वादिदेवस्त्रिदिवस्य देवाश्चक्र सुरेश पुम्हूतमेव ॥२४  
 गार्हपत्यन विधिना अन्वाहाद्यर्थेण कर्मणा ।  
 अग्निमाहवनीयश्च वेदिर्श्व व कुगन्त्रम् ॥२५  
 प्रोक्षणोय न्युवश्चैव अवभृथ तथैव च ।  
 अथ त्रीनिह यश्चके हृद्यभाग प्रदान्ममे ॥२६  
 ह्यथादाश्च मुराश्चक्र कव्यादाश्च रितृनपि ।  
 भागार्थं यजविधिन। यो यज्ञा यज्ञकर्मणि ॥२७  
 यूपान् समित्युव सोम पवित्र परिधीनपि ।  
 यज्ञिपानि च द्रव्याणि यज्ञीयाश्च तथाननान् ॥२८  
 सदम्यान् यजमानाश्च अश्वमेधान् अनूत्तमान् ।  
 विवभाज पुरा यश्च पारमेष्ठ्येन कर्मणा ॥२९  
 युगानुरूप य कृत्वा त्रीन्लोरान् हि यथाक्रमम् ।  
 शणा निमेषा याशाश्च कलास्त्रैकालमेव च ॥३०  
 मुहुर्त्तांस्तथयो माता दिनसवत्सरास्तथा ।  
 अत्रैव बालयोगाभ्य प्रमाण विविधन्तथा ॥३१



आयु क्षेत्राण्युपचय लक्षण रूपसौष्ठवम् ।

मेधा वित्त च शौर्यश्च शास्त्रस्यैव च पारणम् ॥३२

जब प्रतिल ने लोक पदों का हरण करके उन दैत्यों को सनिलेशय कर दिया था तब आदि देव ने त्रिदिव के देवों को करके पुरुहूत को ही गुरों का ईश कर दिया था ॥२४॥ गार्हपत्य विधि से घोर शन्वाहार्यं वम स अग्नि को आहवनीय को घोर वेदि को, कुण्डलव को—प्रोक्षणीय स्रुव को तथा अवभृथ को जिसने वहाँ तीन को मख म ह्वय भाग को देने वाला किया था ॥२५-२६॥ घोर ह्वय के लेने वाले देवों को बनाकर कव्य के लेने वाले पितृघो का किया था । यज्ञ के कर्म में यज्ञ की विधि से भोग के तिये जो यज्ञ स्वरूप है ॥२७॥ यूप-समित्-स्रुव-पवित्र सोम और परिधिर्घों को यज्ञिय द्रव्यों को और यज्ञीय अन्नलो को—सदस्यो का घोर यजमानो को—ध्रष्ट क्रतु प्रश्वमेधा पारमेष्ठ्य कर्म से जो पहिले विभ्राजित करता था ॥२६॥ जो युगों के अनु रूप घणाक्रम तीन लोकों को बनाकर क्षण-निमेष-काण्ड-कला और तीन वालों को जिसने बनाया था ॥३०॥ मुहूर्त-तिथियाँ-माग-दिन-सम्बत्सर-श्रुतुए-काल-योग और तीन प्रकार के प्रमाण जिसने सृजित किये थे ॥३१॥ आयु-क्षेत्र उपचय-सक्षण-रूप का सौष्ठव-मेधा-वित्त-शूरता और शास्त्र का पारण जिसने रचा था ॥३२॥

प्रयो वर्णास्त्रयो लोकास्त्रं विद्य पाववास्त्रत ।

ध्रंवात्य श्रीणि कर्म्मणि तिस्रो मायास्त्रयो गुणा ॥३३

सृष्टा लोका सुराश्चैव येनात्मन्तेन कर्म्मणा ।

सर्व्वभूतगणा मृष्टा सर्व्वभूतगणात्मना ॥३४

नृणामिन्द्रियपूर्व्वण योमेन रमते च य ।

गवागताना यो नेता सर्व्वत्र विविधेश्वर ॥३५

यो गतिर्धमयुक्तानामगति पापकर्म्मणाम् ।

चातुर्वर्ण्यस्य प्रभवश्चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता ॥३६

चातुर्विद्यस्य यो वेत्ता शतुराधमसश्रय ।

दिगन्तर नभो भूमिरापो वायुविभावसु ॥३७

चन्द्रमूर्ध्नाद्वय ज्योतिर्युगेश क्षणदाचरः ।  
 य पर श्रूयते देवो य पर श्रूयते तप ॥३८  
 यः परन्तपसः प्राहुर्य परम्परमात्मवान् ।  
 आदित्यादिस्तु यो देवो यश्च दंत्यान्तको विभु ॥३९  
 युगान्तेष्वन्तको यश्च यश्च लोकान्तकान्तक ।  
 सेतुर्यो लोकसेतूना मेध्यो यो मेध्यवर्म्मणाम् ॥४०  
 वेद्यो यो वेदविदुषा प्रभुर्य प्रभवात्मनाम् ।  
 सोमभूतस्तु भूतानामग्निभूतोऽग्निवर्चणाम् ॥४१  
 मनुष्याणा मनोभूतस्तपोभूतस्तपस्विनाम् ।  
 विनयो नयतृप्राना तेजस्तेजस्विनामपि ॥४२

तीन वरुण—तीन लोक—तीन विद्या—तीन पावक—तीन बाल—तीन कर्म—  
 तीन माया और तीन गुण जिसने निमित्त किये थे ॥३३॥ जिसने अरयन्त कर्म  
 में लोहो और सुगो का मृश्रन किया था । सर्वभूषण गणारामा ने समस्त भूतगणों  
 को बनाया था ॥३४॥ नरो के इन्द्रिय पूर्ण योग से जो रमण करता है गत और  
 भागतो का जो विविधेश्वर सर्वत्र नेता है ॥३५॥ जो धर्म में युक्तों का गति है  
 और पाप कम बानो का अगति है । चातुर्वर्ण्य का जो प्रभव है और चारो  
 वर्णों का जो रक्षक करने वाला है ॥३६॥ जो चार विद्याओं का जानने वाला  
 और चारो आश्रमों का मध्य है जो दिशाओं का अन्तर—नभ—भूमि—जल—वायु—  
 विभावम् है ॥३७॥ जो चन्द्र और सूर्य दोनों की ज्योति—युगो का स्वामी—  
 क्षणदाचर है और जो परदेव सुना जाता है और जो पर तप सुना जाता है  
 ॥३८॥ जो परन्तपस और जो परम्परमात्मवान् कहा जाता है । जो देव आदि-  
 त्यादि है जो विभु दंत्यान्तक है ॥३९॥ युगो के अन्त में अन्त करने वाला है  
 और जो लोकों के अन्तक का भी अन्त करने वाला है । लोकसेतुओं का जो  
 सेतु है और जो मेध्य कर्मों का मेध्य है ॥४०॥ वेद के विद्वानों का जो जानने के  
 योग्य है और जो प्रभवात्मियों का प्रभु है । भूतों का जो सोमभूत है और अग्नि-  
 वर्चणों का जो प्रति भूत है ॥४१॥ जो मनुष्यों का मनोभूत और तपस्वियों

का तपोभूत है । जब से नृस पुरुषो का विनय और तेजस्वियो का भी जो तेज है ॥४२॥

विग्रहो विग्रहाणा यो गतिर्गतिमतामपि ।  
 आकाश प्रभवो वायुर्वायुप्राणा हुताशनः ॥४३  
 दिवा हुताशन प्राणा प्राणोऽग्नेर्मधुसूदन ।  
 रसोऽभवच्छोणित वै शोणितान्मासमुच्यते ॥४४  
 मामात्तु भेदसो जन्म भेदसोऽस्य निरूप्यते ।  
 अरुणा मज्जा समभवन्मज्जात शुक्रसम्भव ॥४५  
 शुक्राद्य भं समभवद्रसमूलेन कर्मणा ।  
 तथापि प्रथमश्चापस्ता सोम्यराशिरुच्यते ॥४६  
 गर्भोऽसम्भवो ज्ञेयो द्वितीयो राशिरुच्यते ।  
 शुक्रं योमात्मक विद्यादात्तं च पावकात्मकम् ॥४७  
 भावो रसानुगावेतो वीर्यं च अग्निपावको ।  
 कफवर्गोऽभवच्छुक्र पित्तवर्गं च शोणितम् ॥४८  
 कफस्य रूढय स्थान नाम्या पित्तं प्रतिष्ठितम् ।  
 देहस्य मध्ये रूढय स्थानन्तु मनस स्मृतम् ॥४९  
 नाभिकोष्ठान्तर यत्तु तत्र देवो हुताशन ।  
 मनः प्रजापतिर्ज्ञेय कफ सोमो विभाव्यते ॥५०

जो विग्रहो का विग्रह है और गतिमानो का भी गति है । आकाश में उत्पन्न होने वाला वायु है और वायु प्राण बना हुताशन (अग्नि) है ॥४३॥ हुताशन का प्राण दिवा है और अग्नि का प्राण मधुसूदन है । रस में शोणित (रक्त) हुआ और शोणित भाग को कहा जाता है ॥४४॥ मांस से भेद की उत्पत्ति होती है और भेद में अग्नि निरूपित की जाती है । अस्थि से मज्जा हुई और मज्जा में शुक्र का जन्म हुआ करना है ॥४५॥ शुक्र से गर्भ रस मूल वर्ण से हुआ था । वहाँ पर भी प्रथम आप (जल) है वह सोम्य राशि कहा जाता है ॥४६॥ प्रीति की उत्पत्ति में सम्भव वाला द्वितीय राशि है । शुक्र की मोमात्मक जानी और अन्तर्ध की पावकात्मक जानना चाहिए ॥४७॥ रसानुग दे दोनो भाव

होने हैं और वीर्य में शक्ति तथा शक्ति है । कफ वर्ग में शुक्र होना है और पित्त वर्ग में शक्ति होता है ॥४८॥ कफ का स्थान हृदय है और पित्त नाभी में प्रतिष्ठित रहा करता है । देह के मध्य में हृदय होता है जो मन का स्थान कहा गया है ॥४९॥ नाभिकोप का अन्तर जो होता है वहाँ देव हुताशन रहता है । मन को प्रजापति जानना चाहिए और कफ सोम विभाजित किया जाता है ॥५०॥

पित्तमग्नि स्मृतावेतावग्निसोमात्मक जगत् ।

एव प्रवर्तितो गर्भो वर्त्ततेऽम्बुदसन्निभ ॥५१॥

वायु प्रवेदान चक्रे सङ्गत परमात्मना ।

स पञ्चधा शरीरस्यो विद्यते वर्द्धयेत् पुनः ॥५२॥

प्राणापानौ समानश्च उदानो व्यान एव च ।

प्राणोऽस्य परमात्मान वर्द्धयन् परिवर्त्तते ॥५३॥

अपान पश्चिम वायमुदानोर्द्ध शरीरगः ।

व्यानो व्यानस्यते येन समान सत्त्वमन्त्रिणु ॥५४॥

भूतावामिस्ततस्तस्य जायतेन्द्रियगोचरा ।

पृथिवी वायुराकाशमापा ज्यातिश्च पञ्चमम् ॥५५॥

सर्वेन्द्रिया निविष्टान्त स्व स्व याग प्रचक्रिरे ।

पार्थिव देहमाहुस्त प्राणात्मान च माहृतम् ॥५६॥

द्विद्राण्याधाश्वीनीनि जलान्ना प्रवर्त्तने ।

नेत्रश्चक्षु र्विक्ता ज्योत्स्ना तेषा यन्नामत स्मृतम् ।

मङ्गामा विषयाश्चैव यस्य वीर्यात्प्रवर्त्तिता ॥५७॥

इत्येतान् पुरुष मन्त्रान् मृज्जेलोकान् सगानत ।

नेधनेऽग्निम् कथ नोके नरत्वं विष्णुगगन ॥५८॥

पित्त अग्नि है । ये शरीर अग्नि और नाम के स्वरूप वाता उगन् कहा

गया है । इस प्रकार में प्रवर्तित गर्भ सम्बुद्ध (मन) के समान होता है ॥५१॥

परमात्मा के सम्बुद्ध वायु के प्रवेदान किया था । वह वायु शरीर में स्थित पाँच

प्रकार का होता है और फिर बढ़ाया है ॥५२॥ प्राण-अपान-समान-उदान

और स्थान के पाँच वायु है । इनका साथ परमात्मा को वर्द्धित करता हुआ परि-

वर्तित होता है ॥५३॥ अथान पीछे को शरीर के और उदान आधे शरीर में गमन करने वाला होता है । ध्यान वह है जिससे यह व्यानस्पमान किया जाता है और शरीर की समस्त सन्धियों में रहा करता है ॥५४॥ इसके पश्चात् उसकी भूतावाप्ति इन्द्रिय मोचर होती है । पृथिवी-वायु-आकाश-जल और पाँचवाँ ज्योति ये भूत होते हैं ॥५५॥ समस्त इन्द्रिया उसमें निविष्ट होती हुई अपने अपने योग को किया करती हैं । उसको पारिव देह कहते हैं और माह्न को प्राण स्वरूप कहने हैं ॥५६॥ छिद्र आकाश योनि होते हैं जिनमें जलासाव प्रवृत्त होता है । तेज चक्षुषो में होता है जो नाम में उनकी ज्योत्स्ना कही गई है । सप्राण और विषय ही में जिसके बोरों से प्रवर्तित होते हैं ॥५७॥ सनातन प्रभु इन सब लोको को सृष्ट करता हुआ इस नैधन (मृत्युशील) लोक में विष्णु कैसे आगये थे ? ॥५८॥

एष न सशयो धीमन्नेष वै विस्मयो महान् ।  
 कथ गतिर्गतिमत्तानापन्नो मानुषी तनुम् ॥५९  
 श्रोतुमिच्छामहे विष्णो कर्माणि च यथाक्रमम् ।  
 आश्चर्याणि पर विष्णोर्वेदे श्र कथ्यते ॥६०  
 विष्णोरत्पन्निमाश्चर्यं कथयस्व महामते ।  
 एतदाश्चर्यं मास्थान कथ्यता वै सुखावहम् ॥६१  
 प्रख्यातबलवीर्यस्य प्रादुर्भावा महात्मनः ।  
 कर्मणाश्चर्यभूतस्य विष्णो सत्त्वमि होच्यताम् ॥६२  
 अहञ्च कीर्त्तयिष्यामि प्रादुर्भावि महात्मन  
 यथा स भगवाञ्जातो मानुषेषु महातपा ॥६३  
 सप्तमत्तप प्रोक्ता भृगुशापेन मानुषे ।  
 जायते च युगान्तेषु देवकार्यैर्यसिद्धये ॥६४  
 तस्य दिव्यतनु विष्णोर्गदतो मे निबोधत ।  
 युगधर्मो परावृत्ते काले च शिथिले प्रभु ॥६५  
 कनु धर्मं व्यवस्थान जायते मानुषेष्विह ।  
 भृगो शापनिमित्तं न देवासुरकृतेन च ॥६६

कथ देवासुरकृते अध्याहारमवाप्नुयात् ।  
 एतद्वेदितुमिच्छामो वृत्तं देवासुर वचम् ॥६७  
 देवासुर यथावृत्तं ब्रुवतस्तन्निवोधत ।  
 हिरण्यकशिपुर्देत्यस्त्रं लोक्य प्राक् प्रशासति ॥६८

हे धीमान् ! यह ही हमारा एक बहुत भारी मंशय है और एक बहुत अधिक विस्मय भी होता है । गतिमानो की मानुषी तनु की गति को कैसे प्राप्त हुआ था ? ॥५९॥ हम सब भगवान् विष्णु के कर्मों को यथाक्रम सुनना चाहते हैं । विष्णु ही इस परम आश्रयो को जानते हैं और वेदों के द्वारा बहे जाते हैं ॥६०॥ हे महामते ! विष्णु की उत्पत्ति एक बड़ा आश्चर्य है उसे आप बताइये यह आश्रयान आश्चर्य पूर्ण है सो सुख देने वाले इसे आप कहे । ॥६१॥ प्रख्यात बल और वीर्य वाले महान् आत्मा से युक्त भगवान् विष्णु के जोकि कर्म से आश्चर्य भूत हैं, प्रादुर्भावो को और उसके सत्त्व को यहाँ बनाइये । श्री सूनजी ने कहा—मैं जब महान् आत्मा वाले के प्रादुर्भाव को कहूंगा जिस तरह महानप वाले वह भगवान् मनुष्यों में उत्पन्न हुए थे ॥६३॥ मत्त मत्त तप बहे गय भृगु के शाप ने मानुष लोक में युशो के अन्त समयो में देवों के कार्यों की मिद्धि के लिये जन्म ग्रहण करते हैं ॥६४॥ बतलाते हुए मुझसे तुम नोग उस विष्णु के दिव्य तनु को भली-भाँति समझ लो । प्रभु युग धर्म व परावृत्त हा जाने पर और काल के विचल होन पर धर्म की व्यवस्था करने के लिये यहाँ मनुष्यों में जन्म निया करते हैं वह जन्म ग्रहण भी देवासुरों के हाग हुन और भृगु के शाप के निमित्त से होना है ॥६६॥ ऋषियों ने कहा—देवासुर कुत युद्ध म कैसे अध्याहार को प्राप्त होते हैं । हम यह जानना चाहतेहैं कि देवासुर युद्ध कैसे हुआ था ? ॥६७॥ सूनजी बोले—देवासुर युद्ध जिस तरह से हुआ था यह बताने वाले मुझसे सब तुम जान लो । पहिल हिरण्यकशिपु राजा तीनों लोकों पर प्रशासन करता था ॥६८॥

बलिनाधिष्ठित राष्ट्र पुनर्लोकत्रये क्रमात् ।  
 सख्यमासीत्पर तेषा देवानामसुरैः सह ॥६९

युग वै दशसङ्कीर्णमासीदव्याहृत जगत् ।  
 निदेशस्थायिनश्चैव तयोर्देवासुराभवन् ॥७०॥  
 वनवान् वै दिवादोऽप्य सप्रवृत्त मुदारुणः ।  
 देवासुराणां च तदा घोरक्षयकरो महान् ॥७१॥  
 तेषां दायनिमित्तं वै सग्रामा बहवोऽभवन् ।  
 वाराहेऽस्मिन् दश द्वौ च पण्डामाकोत्तरा स्मृता ७२  
 नामतस्तु समासेन शृणुष्व तान् विवक्षत ।  
 प्रथमो नारसिंहस्तु द्वितीयश्चापि वामन ॥७३॥  
 तृतीय स तु वाराहश्चतुर्थोऽमृतमन्थन ।  
 सग्राम पञ्चमश्चैव मुघोरस्तारकामयः ॥७४॥  
 पष्ठो ह्याडीवकस्तेषां सप्तमस्यै पुर स्मृतः ।  
 अन्धकारोऽष्टमस्तेषां ध्वजश्च नवम स्मृत ॥७५॥  
 वार्तश्च दशमो ज्ञेयस्ततो हान्वाहल स्मृतः ।  
 स्मृतो द्वादशमस्तेषां घोरकोलाहलोऽपर ॥७६॥

फिर राजा बलि ने क्रम से तीनों लोकों में राष्ट्र को घणने प्रभिष्टित कर  
 लिया था । उन समय उन देवों का अगुगों के साथ पर्यधिक मरुप भाव था  
 ॥६९॥ युग दश सङ्कीर्ण घोर जगत् अव्याहृत था । उन दोनों के निदेश स्थायी  
 देव घोर अगुग हुए थे ॥७०॥ यह एक बड़ा जबरदस्त एवं मुदारुण विवाद सग्र  
 वृत्त होगया था घोर उम समय यह देवों तथा अगुगों का घोर एवं महान् क्षय  
 करने वाला होगया था ॥७१॥ उनके दाय के निमित्त स बहुत से सग्राम हुए  
 थे । इन वाराह में वाराह पण्डा नारकोत्तर कहे गये हैं ॥७२॥ नाम से सशेष में  
 कहने हुए मुभने उनका श्रवण कर लो । प्रथम नारसिंह है घोर द्वितीय दायन  
 है ॥७३॥ तृतीय वह वाराह है घोर चौथा अमृत का मन्थन करने वाला होता  
 है । पञ्चम मुघोर तारकामय सग्राम है ॥७४॥ छठा घाडीवक घोर सप्तम अगुग  
 कहा गया है । अन्धकार घाठवा है घोर उनमें नवम ध्वज कहा गया है ॥७५॥  
 वार्त दशम जानना चाहिए इनके परवान् कथाहन ग्यारहवा कहा गया है ।  
 वार्तवाँ उनमें घोर कोलाहल ज्ञेया है ॥७६॥

हिरण्यवशिपुर्देत्यो नरमिहेन मूढित ।  
 वामनेन बलिबद्धस्त्रै लोक्पाक्रमणे कृते ॥७७  
 हिरण्यक्षो हतो द्वन्द्वे प्रतिवादे तु देवतं ।  
 महाबलो महासत्त्व सग्रामेध्वराजित ॥७८  
 दष्टायान्तु वराहेण समुद्राद्भूर्यदा कृता ।  
 प्रह्लादा निर्जितो युद्धे इन्द्रेणामृतमन्थने ॥७९  
 विराचनस्तु प्रह्लादिर्नित्यमिन्द्रबधोद्यत ।  
 इन्द्र एतं स विक्रम्य निहतस्त्वारकामये ॥८०  
 भवादबध्यताप्राप्य विनेपास्त्रादिभिस्तु य ।  
 सञ्जभो निहत पञ्चे शक्राविष्टेन विष्णुना ॥८१  
 अशक्नुवता देवेषु पुर गोप्सु त्रिदैवतम् ।  
 निहता दानवा सर्वे त्रिपुरस्यम्बकेण तु ॥८२

हिरण्यवशिपु नाम बाला दैत्य नरमिह क द्वारा मारा गया था ।  
 वामन के द्वारा राजा बलि बाँधा गया था जबकि इस शैलेश्वर का आक्रमण  
 किया गया था ॥७७॥ महान् वन वाला और महान् मत्त्व से युक्त सग्राम म  
 ध्वराजित हिरण्यक्ष प्रतिवाद म देवताओं के द्वारा द्वन्द्व म मारा गया था  
 ॥७८॥ त्रिम ममय म यह भूमण्डल समुद्र म वराह क द्वारा दष्टा म किया गया  
 था प्रह्लाद अमृत के मन्थन म इन्द्र क द्वारा युद्ध म निर्जित हुआ था ॥७९॥  
 प्रह्लादि विरोधन ता नित्य ही इन्द्र के साथ युद्ध करने के लिये उत्थन रहा करता  
 था । इन्द्र क द्वारा ही वह तारकामय म विक्रम करके मारा गया था ॥८०॥  
 जो त्रिपुर अस्त्र आदि म भव (सिद्ध) मे अशक्यता का प्राप्त कर छत्रों म इन्द्र  
 म अविष्ट हुए विष्णु के द्वारा सञ्जभ मारा गया था ॥८१॥ त्रिदैवत पुर की  
 रक्षा करने मे देवो म अशक्य हो जाने वाले समस्त दानव मारे गए थे और  
 त्रिपुर अस्यत् के द्वारा मारा गया था ॥८२॥

अष्टमे त्वनुराश्र्वं व राक्षसाभ्रान्धवारका ।  
 जितदेवमनुष्यैस्तु पितृभिश्चैव सङ्गतान् ॥८३



संवृतान् दानवाश्च व सङ्गतान् कृत्स्नशश्च तान् ।  
 तथा विष्णुमहायेन महेन्द्रेण निर्वहिता ॥८४  
 हतो ध्वजो महेन्द्रेण मायाच्छद्रश्च योधयन् ।  
 ध्वजे लक्ष्य समाविश्य विप्रवर्त्तिमंहाभुज ॥८५  
 दंत्याश्च दानवाश्चैव सहतान् कृत्स्नशश्च तान् ।  
 रजिः कोलाहले सर्वान् देवैः परिवृतोऽजयत् ।  
 यज्ञामृतेन विजितो पण्डामाको तु देवतं ॥८६  
 एते देवासुरा वृत्ताः सग्रामा द्वादशैव तु ।  
 देवासुरक्षयकरा प्रजानामशिवाय च ॥८७  
 हिरण्यकशिपू राजा वर्षाणामबुंद वभौ ।  
 तथा शतसहस्राणि ह्यधिकानि द्विसप्ततिं ।  
 अनीति च महस्त्राणि त्रैलोक्यस्येश्वरोऽभवत् ॥८८  
 पर्यायि तस्य राजाऽनु बलिवर्षाबुंद पुन ।  
 पष्टि चैव सहस्राणि त्रिंशत् निपुतानि च ॥८९  
 बले राज्याधिकारस्तु यावत्काल बभूव ह ।  
 प्रह्लादेन गृहीतोऽभूत्तावत्काल तदासुरै ॥९०

अष्टम में असुर-राक्षस और अन्धकारक जीत हुए मनुष्य और देवी  
 तथा विवृण्यो में सङ्गत तथा संवृत दानवों को और पूर्ण रूप से सङ्गत उन  
 सबको विष्णु की महायत्ता प्राप्त करने वाले इन्द्र ने निर्वहित किया था ॥८३-  
 ८४॥ माया में आधु-अध्वज युद्ध करते हुए महेन्द्र ने मारा था । ध्वज में लक्ष्य  
 को समावेश करके महाभुज विप्रवर्त्ति हुआ था ॥८५॥ दंत्या और पूर्ण रूप में  
 सहन ममस्त दानवों को देवों के द्वारा परिवृत रजि न कोलाहल में जीता था  
 यज्ञामृत में देवों ने पण्डामाकों को जीता था ॥८६॥ ये इनने प्रजाओं के  
 करन के लिये देव और असुरों के क्षय करने वाले बारह महाम हुए थे  
 जोकि देवासुर इस नाम से कहे गये हैं ॥८७॥ हिरण्यकशिपु राजा एक अर्बुद  
 वर्ष तक मुद्योभित रहा था और इसी प्रकार से ही महस्त्र-बहुतर अधिक और  
 अस्ती महस्त्र तक त्रैलोक्य ३१ स्वामी रहा था ॥८८॥ पर्याय में उसके परवान्

राजा बलि फिर एक प्रबुद्ध वर्ष तक तथा साठ हजार तीन सौ नियुक्त पर्यन्त रहा था ॥६१॥ बलि का राज्याधिरार जितने समय तक रहा था तक उस समय धमुरो से वह प्रह्लाद के द्वारा गृहीत रहा था ॥६०॥

इन्द्रास्त्रयस्ते विख्याता असुराणा महोजस ।

दैत्यसस्यमिदं सर्वमासीद्दशयुगं किल ॥६१

असपत्न तत सर्वं राष्ट्रं दशयुग पुरा ।

त्रैलोक्यमव्ययमिदं महेन्द्रेण तु पात्यते ॥६२

प्रह्लादस्य तनश्चादस्त्रै लोकेय कालपर्ययात् ।

पययिण च सप्राप्ते त्रैलोक्ये पाकशासनः ॥६३

ततोऽमुरान् परित्यज्य यज्ञे देवा उपागमन् ।

यज्ञे देवानय गते काव्य ते ह्यसुराद्भवन् ॥६४

कृत नो मिपता राष्ट्रं त्यक्त्वा यज्ञ पुनर्गता ।

स्यातु न शक्नुमो ह्यद्य प्रविशामो रसातलम् ॥६५

एवमुक्तोऽब्रवीदेतान् विषण्ण सान्त्वयन् गिरा ।

माभैश्च धारयिष्यामि तेजसा स्वेन चासुरा ६६

वृष्टिरोपधयश्चैव रसा वसु च यद्द्वयम् ।

कृत्स्ना मयि च विष्ठन्ति पादस्तेषा सुरेषु वै ।

युष्मदर्थं प्रदास्यामि तत्सर्वं धार्यते मया ॥६७

ततो देवासुरान् दृष्ट्वा घृतान् काव्येन धीमता ।

अमन्त्रयस्तदा ते वै मविम्ना विजिगीषया ॥६८

वे महान् शौच वाले धमुरो के तीन इन्द्र विख्यात हुए थे । यह समस्त दश युग तक दैत्यो के कब्जे में रहा था ॥६१॥ पहिले यह समस्त राष्ट्र शत्रुघो से रहित रहा था । यह अव्यय त्रैलोक्य महेन्द्र के द्वारा ही पातित होता था ॥६२॥ इसके पश्चात् प्रह्लाद के कालपर्यय से इस त्रैलोक्य पर पर्याय से पाक-धापन (इन्द्र) ने शासन प्राप्त कर लिया था ॥६३॥ इसके अनन्तर धमुरो का त्याग कर देवगण यज्ञ में उपागत हुए थे । देवो के यज्ञ में जाने पर काव्य (शुक्र) से धमुरो ने कहा ॥६४॥ राष्ट्र को त्याग कर भूल करने वाले हमारे

क्रिय हुए यज्ञ को पुनः चले गये । आज हम टहर नहीं सकते हैं रसातल में प्रवेश करे ॥६५॥ इस प्रकार स कहे गये विपाद युक्त युक्त ने इनसे वाणी द्वारा सान्त्वना देते हुए कहा—डरो मत, वह सब हे अगुरो ! मेरे द्वारा अग्ने तेज से धारण किया जा रहा है ॥६६॥ वृषि-रस-श्रीपथियां और जो दोना प्रवार का धन है ये सब पूर्ण मुझमें ही रहा करते हैं उनका चतुर्थं नाग देवगण में रहता है । तुम्हारे लिये मैं दूंगा । वह अब मरे द्वारा धारण लिये जाते हैं ॥६७॥ इसके अनन्तर धीमान् काव्य के द्वारा घृत देवामुरो को देखकर तब जन्तान विशेष रूप में जीतन की इच्छा से मविान होने हुए मन्त्रणा की थी ॥६८॥

एष काव्य इदं सर्वं व्यावर्त्तयति नो बलात् ।  
 साधु गच्छामहे तूर्णं क्षीणान्नाप्याययस्व तान् ।  
 प्रसह्य हत्वा शिष्टान् वै पातालं प्रापयामहे ॥६९॥  
 ततो देवा सुमरुधा दानवानभिमृत्य वै ।  
 जघ्नुस्तं वैध्यमानास्ते काव्यमेवाभिद्रुद्रुः ॥१००॥  
 तत काव्यस्तु तान्द्रुष्ट्वा तूर्णं देवैरभिद्रुतान् ।  
 समरेऽऽर्त्तक्षतास्तान् देवेभ्यस्तान् दिते सुतान् १०१॥  
 काव्यो दृष्ट्वा स्थितान् देवान् तत्र देवोऽभ्यचिन्तयत् ।  
 तानुवाच ततो ध्यात्वा पूर्ववृत्तमनुस्मरन् ॥१०२॥  
 त्रैलोक्यं विजितं सर्वं वामनं त्रिभिः क्रमं ।  
 बलिर्वद्धो हतो जम्भो निहतश्च विरोचन ॥१०३॥  
 महार्हेषु द्वादशसु मग्रामेषु सुगृहंता ।  
 तंस्तैरुपार्यम् शिष्टा निहता य प्रधानत ॥१०४॥  
 विश्विच्छिष्टास्तु वै यूय युद्धं प्वन्त्येषु वै स्वयम् ।  
 नीतिं वो हि विधास्यामि कालं कश्चित्प्रनीक्ष्यताम् ॥१०५॥

यह काव्य इस सबको बलसे हमको बचा देये । अच्छी बात है शीघ्र और उन क्षीणों को भी तृप्त करे बलपूर्वक शिष्टों का हरण करके पाताल में प्रवेश करा देवे ॥६९॥ इनके देवों न सुसंरम्य होने हुए दानवों पर अभि-

करण करके मार दिया था और उन देवों के द्वारा बध्द्यमान वे बाध्य वे ही पाम होते थे ॥१००॥ इसके पश्चान् देवों के द्वारा भगाये गये उनको शुक ने शीघ्र देखकर जोकि मभर अस्त्रों के दाता से दुस्तिन थे और वे दिति के पुत्र देवों के द्वारा अभिद्रुत किये हुए थे ॥१०१॥ वहाँ पर स्थित हुए देवों को बाध्य ने देखकर सोचा और फिर ध्यान करके पूर्व वृत्त का अनुस्मरण करते हुए उनसे बोले ॥१०२॥ शम्भु ने इन ममस्त शैलोक्य को तीन कदमों से ही जीत लिया है । वनि को बांध दिया गया है और जम्भ तथा विरोचन को मार दिया गया है ॥१०३॥ महाहं बारह सप्राप्तों में देवों के द्वारा ये सब मारे गये हैं । जो प्रधान थे वे उन-उन उपायों के द्वारा बहून से मारे गये हैं । तुम लोग कुछ थोड़े से शेष रह गये हो । अब अन्तिम युद्ध में आपकी नीति को मैं स्वयं ही धारण करूँगा कुछ समय प्रतीक्षा करो ॥१०४-१०५॥

यास्याम्यह महादेव मन्त्रार्थं विजयाय व ।

अग्नि माप्याययेद्धीता मन्त्रैरेव बृहस्पति ॥१०६॥

ततो यास्याम्यह देव मन्त्रार्थं नीललोहितम् ।

मुष्मानुग्रहीध्यामि पुन पश्चाद्विहागत ॥१०७॥

यूय तपश्चरध्व वै स्रुता वल्कलवने ।

न वै देवा बधिष्यन्ति यावदागमन मम ॥१०८॥

अप्रतीपास्ततो मन्त्रान् देवात् प्राथ महेश्वरात् ।

योत्स्यामहे पुनर्देवास्तत प्राप्स्यथ वै जयम् ॥१०९॥

ततस्ते वृत्तसंवादा देवान् बुस्ततोऽमुरा ।

न्यस्तवादा वय सर्वे लोवान् यूय क्रमन्तु वै ॥११०॥

वय तपश्चरिष्याम, स्रुता वल्कलवने ।

प्रह्लादस्य वच श्रुत्वा सत्यव्याहरण तु तत् ॥१११॥

ततो देवा निवृत्ता वै विज्वरा मुदिताश्च ह ।

न्यस्तनाश्रेषु देवेषु स्वान् वै जग्मुयंभागतान् ॥११२॥

तनस्तान्प्रवीतनाय्य बन्धित्वा लमुपास्यताम् ।

निग्लुहंस्तपोमुक्त वान् वार्याधिमापके ।

विनुममाश्रमस्या वै सर्वे देवा सवागवा ॥११३॥

ग सन्दिश्यामुरान् वाय्यो महादेव प्रपद्य च ।  
प्रणम्येनमुवावाय जगत्प्रभवमीश्वरम् ॥११६॥

मैं आप लोगों की विजय के लिए मन्त्रार्थ में महादेव के पास जाऊँगा ।  
होना वृहस्पति मन्त्रों से ही अग्नि को प्राच्छादित करते हैं ॥१०६॥ इससे मैं  
मन्त्रार्थ के लिए नील सोहित (महादेव) के गभीर में जाऊँगा । आप लोगों के  
ऊपर अनुग्रह करूँगा और फिर पीछे यही आऊँगा ॥१०७॥ तुम लोग वन में  
पत्थरों में गवृत्त होने हुए अर्थात् वृक्षों की छाल के वस्त्र पहिनते हुए तपस्या  
करो फिर देवता लोग बध नहीं करेंगे जब तक कि भेरा भागमन यहाँ होगा  
है ॥१०८॥ महेश्वर देव से अग्रतीर्थ मन्त्रों को प्राप्त करके अर्थात् शत्रु नाशक  
मन्त्रों को जानकर के फिर देवा के साथ युद्ध करेंगे और फिर अवश्य ही विजय  
प्राप्त करेंगे ॥१०९॥ इसके अनन्तर सम्वाद करने वाले अमुर देवगण स जाने—  
हम लोग सब भगवा छोड़ने वाले हो गये हैं अब तुम साग समस्त लोगों को  
प्राप्त कर भोग करो ॥११०॥ हम लोग सब तपस्या करते हैं और बलवत्  
वमनों से सवृत्त होत हैं । प्रह्लाद के वचन को सुनकर जो कि वित्कुल सद्य ही  
कथन था ॥१११॥ इसके पश्चात् दुःख रहित एवं परम प्रसन्न देवता लोग  
निवृत्त होगय थे । दैत्यों के दास्य त्याग देने वाले हो जाने पर देवगण अपने  
स्थानों की जैसे वे पाये थे चले गये थे ॥ ११२ ॥ इसके अनन्तर शुक्राचार्य न  
उन से (दैत्यों से) कहा कि तुम लोग कुछ समय तक निरुन्मुक्त-तप से युक्त  
और कार्यार्थ के साधक होते हुए उपामना करो । इन्द्र के सहित समस्त देव  
गण इन समय में मेरे पिता के आश्रम में स्थित हैं ॥११३॥ यह वाक्य (शुक्र  
चार्य-दैत्य गुरु) अमुरों को सन्देश देकर महारथ के पास गय और वहाँ पहुँच  
कर हमकी प्रणाम करके समस्त जगत् प्रभव ईश्वर महादेव से कहा—॥११४॥

मन्त्रानिच्छाम्यह देव मे न सन्ति वृहस्पती ।  
पराभवाय देवानामसुरेष्वभयावहान् ॥११५॥  
एवमुक्तोऽब्रवीद्देवो मन्त्रानिच्छति वै द्विज ।  
व्रतं चर मयोद्दिष्टं ब्रह्मचारी समाहितः ॥११६॥

पूर्णं वर्षसहस्रं वै कुण्डधूममवाक्षिराः ।  
 यद्युपास्यसि भद्रन्ते मत्तो मन्थमवाप्त्यसि ॥११७॥  
 तथाक्तो देव देवेन स शुक्रस्तु महातपा ।  
 पादौ सस्पृश्य देवस्य वाढमित्यम्यभापत ॥११८॥  
 व्रत चराम्यह शेष यथोद्दिष्टोऽस्मि वै प्रभो ।  
 ततो नियुक्तो देवेन कुण्डधारोऽस्य धूमकृत् ॥११९॥  
 असुराणां हितार्थाय तस्मिञ्छुक्ते गते तदा ।  
 मन्त्रार्थं तत्र वसति ब्रह्मचर्यं महेश्वरः ॥१२०॥  
 तद् बुध्वा नातिपूर्वन्तु राज्यं न्यस्त तदामुरैः ।  
 तस्मिञ्छिद्रे तदामर्षा देवास्तान् समभिद्रवन् ।  
 निशितात्तायुधा सर्वे वृहस्पतिपुरोगमा ॥१२१॥  
 दृष्ट्वासुरगणा देवान् प्रगृहीतायुधान् पुनः ।  
 उत्पेतु सहसा सर्वे सन्त्रस्तास्ते ततोऽभवन् ॥१२२॥

हे देव ! मैं मन्त्रों को चाहता हूँ वृहस्पति के रहते हुए मेरे पाप मन्त्र नहीं हैं मैं ऐसे मन्त्रों को चाहता हूँ जो असुरों को अभय देने वाले हों और देवों का पराभव करने वाले हों ॥११७॥ जब इस तरह से महादेवजी से कहा गया तो महादेव बोले—हे द्विज ? यदि इस प्रकार क मन्त्रों को चाहने हो तो मेरे बताये हुए व्रत का ब्रह्मचारी और पूर्ण समाहित होते हुए आचरण करो ॥११८॥ पूरे एक सहस्र वर्ष तक धूमकृत् मंत्र होते हुए कुण्ड धूप की यदि उपामना करोगे तो तुम्हारा बलयाण होगा और मुझ से मन्त्रों को प्राप्त कर लोगे ॥११७॥ उस प्रकार से देवों के देव महादेव के द्वारा कहे जाने पर महान् तपस्वी गुणगर्भ ने महादेव के चरणों का स्पर्श करके "बहुत अच्छा"—यह कहा था ॥११८॥ मैं शेष व्रत का चरण करूँगा हे प्रभो ! जैसा भी आपके द्वारा आदि किया गया है । इसके पश्चात् महादेव ने इसको धूम इत कुण्ड धार नियुक्त किया था ॥११९॥ असुरों के हित के लिये तब उस शुक्राचार्य के पदों जाने पर मन्त्र के लिए महेश्वर वहाँ ब्रह्मचर्य में निवास करने हैं ॥१२०॥ यह जानकर कि प्रति पूर्व में तब असुरों के द्वारा राज्य नहीं ध्यस्त किया गया

था । उस द्विद मे उनके अर्घ्य वाले देवो ने बृहस्पति को अग्रगामी बनाकर श्रीर तीक्ष्ण आयुषा का ग्रहण करके उन असुरो को लदेड दिया था ॥ १२१ ॥ तब असुरो ने दवो को पुन आयुष ग्रहण करने वाले देखकर सहसा सब उत्पन्न करने लग श्रीर के एकदम सत्रस्त्र हो गय के अर्घ्यो बहुत ही डर गये थे ॥१२२॥

न्यस्ताशस्त्रे जये दत्ता आचार्यव्रतमास्थिते ।  
 सन्त्यज्य समय देवास्ते सपत्नजिघासव ॥१२१॥  
 अनाचार्यास्तु भद्र वो विश्वस्तास्तपसि स्थिता ।  
 चीरवल्काजिनधरा निष्क्रिया निष्परिग्रहा ॥१२४॥  
 रणे विजेतु देवान् वै न शक्याम कथञ्चन ।  
 अशुद्धेन प्रपद्याम शरण काव्यमातरम् ॥१२५॥  
 ज्ञापयामस्ततमिद यावदागमन गुरो ।  
 विनिवृत्ते तत काव्ये योत्स्यामी युधि तान् सुरान् ॥१२६॥  
 एवमुक्त्वा सुरान् योग्य शरण काव्यमातरम् ।  
 प्रापद्यन्त ततो भीतास्तदा चंच तदाऽभयम् ॥१२७॥  
 दत्तन्तेपान्तु भीताना दैत्या नामभयार्थिनाम् ।  
 न भेतव्य नभेतव्य भयन्त्यजत दानवा ॥१२८॥  
 मत्सन्निधौ वतंता वो न भीर्भदितुमहति ।  
 भयाच्चाप्यभिपन्नास्तान् दृष्ट्वा देवासुरास्तदा ॥१२९॥  
 अभिजग्मु प्रमह्यं तानविचार्य वलाबलम् ।  
 तास्त्रस्तान् वध्यमानाश्च देवंदृष्ट्वासुरास्तदा ॥१३०॥  
 दैवी क्रुद्धाब्रवीदेनाननिद्रत्व करोम्यहम् ।  
 सस्तम्य शीघ्र सरम्मादिन्द्र साऽभ्यचरत्तत ॥१३१॥

असुरो द्वारा शस्त्रो के त्याग देने पर जप के दे देने पर श्रीर आचार्य व्रत मे आस्थित होने पर उन देवताओ ने शस्त्र का त्याग करके शत्रुओ के ल की इच्छा करली थी ॥१२३॥ आचार्यताव म हीन-आपका बल्याण हो इस

तरह से पूर्ण विश्वस्त तपश्चर्या में स्थित-चीर और बल्कलो के धारण करने वाले, क्रिया से रहित और बिना परिग्रह वाले हम किसी प्रकार से भी देवों को युद्ध में जीत नहीं सकेंगे इसलिये अब भृगु के द्वारा काव्य की माता के शरण में चलें ॥१२५॥ जब तक गुरु का आगमन हो इस मत को ज्ञापित करें । शुक्राचार्य के वापिस लौट आने पर हम उनसे देवों से रण भूमि में युद्ध करेंगे ॥१२६॥ इस प्रकार से देवों से कहकर योग्य शरण (रक्षक) शुक्राचार्य की माता की शरणागति में प्राप्त हुए थे उस समय वे एकदम डरे हुए थे । अभय के चाहने वाले भीत उन दैत्यों को उस समय में ही अभय दिया गया । हे धानवो ! मत डरो-मत डरो, भय का त्याग कर दो ॥१२७-१२८॥ आप लोग मेरे पास रहो, आपको कोई भी भय नहीं हो सकता है । भय से अभिपन्न उन देवामुरों को उस समय में देखकर देवी ने ऐसा कहा था ॥१२९॥ बलाबल का विचार न करके इनके ऊपर बल करके अभिगमन किया था । उस समय में डरे हुए और देवों के द्वारा वृध्यमान होते हुए उन भ्रमुरों को देखकर क्रुद्ध होते हुए देवी इनसे बोली मैं अनि-द्रव्य अर्थात् इन्द्र का सर्वथा भनाश कर दूंगी । उसने शीघ्र ही इन्द्र को सम्भ से (क्रोध से) स्तम्भित करके अभिचरण किया था ॥१३१॥

तत सस्तम्भित दृष्ट्वा शक्र देवास्तु रूपवत् ।  
व्यद्रवन्त ततो भीता दृष्ट्वा शक्र वशीकृतम् ॥१३२॥  
गतेषु सुरसधेषु विष्णुरिन्द्रमभाषत ।  
मां त्व प्रविश भद्रन्त नेध्यामि त्वा सुरेश्वर ॥१३३॥  
एवमुक्तस्ततो विष्णु प्रविवेश पुरन्दर ।  
विष्णुना रक्षित दृष्ट्वा देवी क्रुद्धा वचोऽवदत् ॥१३४॥  
एषा त्वा विष्णुना सार्द्धं दहामि मघवानिव ।  
मिपता सर्वभूताना दृश्यता मे तपोबलम् ॥१३५॥  
तयाभिभूतो तो देवादिन्द्रविष्णू जजल्पतु ।  
इय मुच्येव सहितो विष्णुरिन्द्रमभाषत ॥१३६॥



था । उस छिद्र में उसवे अमर्य वाले देवों ने बृहस्पति को अग्रगामी बनाकर  
 और तीक्ष्ण आयुधों को ग्रहण करके उन असुरों को छेद दे दिया था ॥ १२१ ॥  
 तब असुरों ने देवों को पुनः अग्र्युध ग्रहण करने वाले देखकर सहमा सब उत्पन्न  
 करने लगे और वे एकदम सत्रस्त हो गये थे अथान् बहुत ही डर गये थे  
 ॥१२२॥

न्यस्तशस्त्रे जये दत्ते आचार्यव्रतमास्थिते ।  
 सन्त्यज्य समय देवास्ते सपत्नजिघाषय ॥१२२॥  
 अनाचार्यास्तु भद्र वो विश्वस्तास्तपसि स्थिता ।  
 चीरयत्वाजिनधरा निष्क्रिया निष्परिग्रहा ॥१२४॥  
 रणो विजेतु देवान् वै न शक्याम कथञ्चन ।  
 अशुद्धेन प्रपद्याम शरणं काव्यमातरम् ॥१२५॥  
 ज्ञापयामस्ततमिदं यावदागमनं गुरो ।  
 विनिवृत्ते तत काव्ये योत्स्यामो युधि तान् सुरान् ॥१२६॥  
 एवमुक्त्वा सुरान् भोग्यं शरणं काव्यमातरम् ।  
 प्रापद्यन्त ततो भीतास्तदा चंच तदाऽभयम् ॥१२७॥  
 दत्तन्तेपान्तु भीतानां दैत्या नामभयार्थिनाम् ।  
 न भेतव्यं नभेतव्यं भयन्त्यजत दानवा ॥१२८॥  
 मत्सन्निधौ यतता वो न भीर्मवितुमर्हन्ति ।  
 भयाच्चाप्यभिपन्नास्तान् दृष्ट्वा देवामुरास्तदा ॥१२९॥  
 अभिजग्मुः प्रसह्यं तानविचार्यं बलायत्नम् ।  
 तास्त्रस्तान् वध्यमानांश्च दवंहंष्ट्वामुरास्तदा ॥१३०॥  
 देवीं श्रुत्वाब्रवीदेनाननिन्द्रत्वं करोम्यहम् ।  
 मस्तभ्यं शीघ्रं सरग्भादिन्द्रं साऽभ्यचरत्तत ॥१३१॥

असुरों द्वारा दानों के त्याग करने पर जब वे दे देने पर और आचार्य  
 के व्रत में आस्थित होने पर उन देवताओं ने दानों का त्याग करके अशुधों के  
 मार्ग की इच्छा करनी ली ॥१२३॥ आचार्यत्व में हीन भावना के त्याग हो इन

तरह से पूर्ण विस्वस्त तपस्वर्या में स्थित-धीर और बलवती के धारण करने वाले, क्रिया से रहित और बिना परिग्रह वाले हम किसी प्रकार में भी देवों को युद्ध में जीत नहीं सकेंगे इसलिये अब असुद्ध के द्वारा वाय्व की माता के धारण में चले ॥१२५॥ जब तक गुरु का प्रागमन ही हम मत को ज्ञापित करें । शुक्राचार्य के वाणिम लौट जाने पर हम उनसे देवों से राण भूमि में युद्ध करेंगे ॥१२६॥ इस प्रकार से देवी से कहकर योग्य धारण (रक्षक) शुक्राचार्य की माना का धारणापति में प्राप्त हुए थे उस समय वे एकदम डरे हुए थे । अभय के चाहन वाले भीत उन दैत्यों को उस समय में ही अभय दिया गया । हे शानवी ! मत डरो-मन डरो, भय का त्याग कर दो ॥१२७-१२८॥ आप लोग मेरे पास रहो, घ्रापको कोई भी भय नहीं हो सकता है । भय से अभिपन्न उन देवामुरों को उम समय में देखकर देवी ने ऐसा कहा था ॥१२९॥ बलाबल का विचार न करके इनके ऊपर बल करके अभिगमन किया था । उस समय में डरे हुए और देवों के द्वारा वृष्णमान होत हुए उन असुरों को देखकर क्रुद्ध होते हुए देवी इनसे बोली मैं अनिन्दरत्व भर्षान् इन्द्र का सर्वथा अभय कर दूँगी । उसने क्षीघ्र ही इन्द्र को सम्भ से (क्राप से) स्तम्भित करके अभिचरण किया था ॥१३१॥

तत सस्तम्भित दृष्ट्वा शक्र देवास्तु यूपवत् ।  
व्यद्रवन्त ततो भीता दृष्ट्वा शक्र वशीकृतम् ॥१३१॥  
गतेषु सुरस्रष्टेषु विष्णुरिन्द्रमभापत ।  
माँ त्व प्रविश भद्रन्ते नभ्यामि त्वा सुरेश्वर ॥१३३॥  
एवमुत्तस्ततो विष्णु प्रविवेश पुरन्दर ।  
विष्णुना रक्षित दृष्ट्वा देवी क्रुद्धा वचोऽवदत् ॥१३४॥  
एषा त्वा विष्णुना साद्धं दहामि मघवानिव ।  
मिपता सर्वभूताना दृश्यता मे तपोबलम् ॥१३५॥  
तयाभिभूती ती देवाविन्द्रविष्णु जजल्पतु ।  
वथ मुच्येव सहितो विष्णुरिन्द्रमभापत ॥१३६॥

इन्द्रोऽादीज्जहि ह्येना गवत्री न दहेद्विभो ।  
 विशपेणाभिभूतोऽहमतस्त्वञ्च हि मा चिरम् ॥१३७॥  
 तत समीक्ष्य ता विष्णु स्त्रीवध वक्तु मास्थित ।  
 अभिध्याय ततश्चक्रमापन सत्वर प्रभु ॥१३८॥  
 तस्या सत्वरमत्स्याया शीघ्रकारी मुरारिहा ।  
 स्त्रिया विष्णुस्ततो देव्या क्रूर बुद्धा चित्रीपितम् ।  
 मृदुस्तदस्त्रमाविद्ध च शिरश्चिच्छेद मापव ॥१३९॥

इमक धनन्तर देवी न यूप की भाति इन्द्र की सत्तन्मित दलकर डरे हुए होकर चक्र को वशीकृत देखकर वे यहाँ त भाग दिये थे ॥१३७॥ देव समूह के चले जाने पर विष्णु इन्द्र से बोले—हे सुरेश्वर । तुम मुझ में प्रवेश कर जाओ—तरा बना होगा—मैं तुमको न जाऊँगा ॥१३८॥ इस प्रकार मैं विष्णु क द्वारा कहने पर इन्द्र ने विष्णु में प्रवेश किया था । विष्णु क द्वारा रक्षित इन्द्र की देखकर देवी ने क्रुद्ध होकर यह वचन कहा ॥१३९॥ यह मैं घात समस्त भूनी क देखते हुए मघवान् की तरह तुमको विष्णु क साथ जलाती हूँ यह मेरा उपोषल देलो ॥१३५॥ उस देवी के द्वारा अभिभूत वे दोनों देव इन्द्र और विष्णु बोले । सहित दानो कैंने छोड़ें यह विष्णु ने इन्द्र से कहा था ॥१३६॥ इन्द्र ने कहा वधियो ! इसे त्याग दो जब तक हम दोनों दग्ध न हों । मैं विशेष रूप से अभिभूत हूँ और तुम अधिक मत होओ ॥१३७॥ इस क पदवात् उस देवी को देखकर भगवान् विष्णु स्त्री का वध करने के लिए अभिषिक्त हो गये थे । यह कहकर इमक उपगत प्रभु विष्णु ने शीघ्र चक्र को उठाया था ॥ १३८ ॥ सत्वरपाण्य उससे भी शीघ्रकारी मुर शत्रु को नाशक विष्णु ने देवी स्त्री के क्रूर चित्रीपित को जानकर बोध किया और उस अश्व को चलाकर मापव ने गिर काट डाला था ॥१३९॥

त दृष्ट्वा स्त्रीवध घोर चुकोप भृगुरीश्वर ।  
 ततोऽभिगस्त भृगुणा विष्णुर्भयावधे तदा ॥१४०॥  
 यस्मात्तो जानता धर्मानवध्या स्त्री निपूदिता ।  
 तस्मात्त्व सप्तदृत्वा वै मानुष्यु प्रपत्स्यमि ॥१४१॥

ततस्तेनाभिशापेन नष्टे धर्मो पुन पुनः ।  
 लोके सर्वंहितायाय जायते मानुषेस्त्वह ॥१४२॥  
 अनुव्याहृत्य विष्णु स तदादाय शिर स्वयम् ।  
 समानीय तत काये अपो गृह्येदमब्रवीत् ॥१४३॥  
 एष त्वा विष्णुना सत्ये हता सजीवयाम्यहम् ।  
 यदि कृत्स्नो भया धर्मश्ररितो जायतेऽपि वा ।  
 तेन सत्येन जीवस्व तद्धि सत्य ब्रवीम्यहम् ॥१४४॥  
 रात्याभिव्याहृता तस्य देवी सजीविता तदा ।  
 तदा ता प्रोक्ष्य भीताभिरद्भिर्जीविति सोऽब्रवीत् ॥१४५॥  
 ततस्ता सर्भभूतानि दृष्ट्वा सुप्रोक्षितामिव ।  
 साधु साध्वित्यदृश्याना वाचस्ता सस्वतुदिशः ॥१४६॥  
 दृष्ट्वा सञ्जीवितामेव देवी ता भृगुणा तदा ।  
 निपता सर्वभूताना नदद्भूतमिवाभवत् ॥१४७॥  
 असभ्रान्तेन भृगुणा पत्नी सञ्जीविना तत ।  
 दृष्ट्वा शक्रो न लेभेऽप्य धर्म काव्यभयात्तत ॥१४८॥  
 प्रजागरे तनश्चेन्द्रो जयन्तीमात्मन सुताम् ।  
 प्रोवाच मतिमान् वाक्य स्वा कन्या पावशासन ॥१४९॥  
 एष काव्यो ह्यनिन्द्राय चरते दाहण तप ।  
 तेनाह ध्याकुल पुत्रि वृत्तो धृतिमता दृढम् ॥१५०॥

उस घोर स्त्री के वध को देखकर ईश्वर भृगु बड़े ही क्रोधित हुए थे फिर उस समय में भार्या के वध हो जाने पर भृगु के द्वारा विष्णु को अभिशाप दिया गया था ॥१४०॥ क्योंकि धर्मों को जानने वाले, तुमने न वध करने के योग्य स्त्री का वध किया है इनलिये मैं यह शाप देता हूँ कि तुम सात बार मानुषों में उत्पन्न होकर रहोगे ॥१४१॥ इनके अनन्तर उस अभिशाप से तोरु में बार-बार पर्य के नष्ट हो जाने पर सब के हित सम्पादन के लिए यहाँ मनुष्यों में भगवान् जन्म लिया करते हैं ॥१४२॥ उसने इस तरह विष्णु से अनुग्रह-रण कर के उस समय स्वयं भार्या के उस गिर का लेकर उसे शरीर पर समा-

नीत करके जल लेकर यह बोले ॥१४३॥ यह विष्णु के द्वारा सत्य मेहनत तुम्हें मैं सजीवित करता हूँ। यदि मैंने पूर्ण धर्म का आचरण किया है और धर्म को जान रखता हूँ तो उस सत्य से जीवित हो जा—यदि मैं यह सत्य बोलता हूँ ॥१४४॥ सत्य से अभिव्याहृत उसकी देवी उस समय संजीवित होगई थी। फिर इसके पश्चात् उस समय उसका शीतल जल से प्रोक्षण करके 'जीवित रहो'—यह शुक्राचार्य ने कहा था ॥१४५॥ इसके अनन्तर समस्त प्राणीद्वन्द्व सोकर उठी हुई की भाँति उन देवी को देखकर—“साधु साधु” बर्षा बहुत अच्छा-प्रच्छा ऐसी वाणियाँ जो महारथ थे उनही मन्त्र दिशाप्रो से मुनाई दी थी ॥१४६॥ इस प्रकार से भृगु ने उस समय में उस देवी को सजीवित देस कर समस्त प्राणियों के देखते हुए वह कार्य एक अद्भुत की तरह हुआ था ॥१४७॥ असम्भ्रान्त भृगु के द्वारा उनकी पत्नी को सजीवित देखकर काव्य के भय से फिर शान्ति प्राप्त नहीं की थी ॥१४८॥ प्रजागर में इन्द्र ने अपनी पुत्री जयन्ती से कहा। जयन्ती उस मतिमान् पाक नासन की बन्धी थी। उमने कहा यह शुक्र इन्द्र के अभाव के लिये दारण तप कर रहे हैं। हे पुत्रि! इस कारण से मैं बहुत ही अधिक व्याकुल हूँ। उस धृतिमान् ने यह पक्का इगदा कर लिया है ॥१५०॥

गच्छ सम्भावयस्वेन ध्रमापनयनैः शुभैः ।

तंस्तमंनोनुक्त्वैश्च ह्युपचारैरतन्द्रिता ॥१५१॥

देवी सा हीन्द्रदुहिता जयन्ती शुभचारिणी ।

युक्तव्यानश्च शाम्य' त दुबलं धृतिमास्थितम् ॥१५२॥

पित्रा यथोक्तं वाक्यं सा काव्ये कृतवती तदा ।

गोभिर्दक्षैवानुक्त्वाभिः स्तुवती बल्युभापिणी ॥१५३॥

गात्रसवाहनैः काले सेवमाना मुखावहै ।

शुश्रूषन्त्यनुक्त्वा च जेवास बहुलाः समा ॥१५४॥

पूर्णे धूमव्रते चापि घोरे वर्षसहस्रिके ।

वरेण च्छन्दयामास काव्यं प्रीतोऽभवत्तदा ॥१५५॥

एव द्रुवंस्त्वयैकेन चीर्णं नान्येन केनचित् ।  
 तस्मात्त्व तपसा जुद्धया श्रुतेन च बलेन च ॥१५६॥  
 तेजसा चापि विबुधान् सर्वानभिभविष्यसि ।  
 यच्च किञ्चिन्मम ब्रह्मन् विद्यते भृगुनन्दन ॥१५७॥  
 साङ्गञ्च सरहस्यञ्च यज्ञोपनिषदान्तया ।  
 प्रतिभास्यति ते सर्वं तच्चाद्यन्त न कस्यचित् ॥१५८॥

सो तुम वहाँ जाओ और इसको पुत्र धर्म के धनधानों के द्वारा सम्भावित करो । उन-उन उनके मन के अनुकूल उपचारों से उमे प्रसन्न करो किन्तु इस कार्य में अतन्द्रित अर्थात् आलस्य रहित होकर लग जाना ॥ १५१ ॥ वह देवी इन्द्र की दुहिता जयन्ती शुभ चारिणी थी । युक्त ध्यान गान्ता जाम्य-दुर्वल-धृति में आस्थित उम काव्य का जैसा पिता के द्वारा कहा गया था उसने काव्य के विषय में उम समय किया । अनुकूल वाशियों के द्वारा बल्युभाषिणी उसने उसकी स्तुति की थी ॥१५२-१५३॥ गुण प्रदान करने वाले पात्र मवाहनों के द्वारा समय पर सेवा करती हुई और शुश्रूषा करती हुई तथा अनुकूल रहती हुई बहुत वर्षों तक उमने बड़ी निधाम किया ॥ १५४ ॥ एक सहस्र वर्ष वाले परम घोर घुमघत के पूर्ण हो जाने पर तब महादेव ने प्रसन्न होकर काव्य के वरदान में समन्वित किया था ॥१५५॥ वरदान देने के समय में ऐसा कहें हुए कि यह घन तुम्हें एक ने किया है अन्य किसी ने पूर्ण नहीं किया है । इस लिए तू तप, बुद्धि, श्रुत, बल और तेज से भी समस्त देवों को अभिभूत क देगा और जो भी कुछ है भृगुनन्दन । है ब्रह्मन् । मेरे पास है साङ्ग और रहस्य के सहित यह सब तथा यज्ञोपनिषद् तुम्हें प्रतिभासित हो जायेंगे और वह धारा से अन्ततक किसी को भी नहीं होते है ॥१५६॥१५७॥१५८॥

सर्वाभिभावी तेन त्व द्विजश्रेष्ठो भविष्यति ।  
 एव दत्त्वा वरास्तस्मै भार्गवाय पुन पुनः ॥१५९॥  
 अजेयस्व घनेशत्वमवध्यत्व च वै ददौ ।  
 एतान् सङ्गवा वरान् काव्य सम्प्रहृष्टनुरूह ॥१६०॥

हर्षात् प्रादुर्बभौ तस्य देवस्तोत्रं महेश्वरम् ।  
 तदा तिर्यक्स्थितस्त्वेव तुष्टुवे नीललोहितम् ॥१६१  
 नमोऽस्तु शितिकण्ठाय सुरापाय सुवर्चसे ।  
 रिरिहाणाय लोषाय वत्सराय जगत्पते ॥१६२  
 कपर्दिने ह्यूर्द्धं रोम्णे ह्याय करणाय च ।  
 सस्कृताय सुतीर्थाय देवदेवाय रहसे ॥१६३  
 उष्णीपिणे सुवक्त्राय सहस्राक्षाय मीढुपे ।  
 वसुरेताय रुद्राय तपसे चौरवाससे ॥१६४  
 ह्रस्वाय मुक्तकेशाय सेनान्ये रोहिताय च ॥१६५  
 कवये राजवृद्धाय तक्षकक्रीडनाय च ।  
 गिरिशायाकनेत्राय यतिने जाम्बवाय च ।  
 सुवृत्ताय सुहस्ताय धन्विने भार्गवाय च ॥१६६

इसमें तू सबको अभिभूत करने वाला द्विजश्रेष्ठ हो जायगा । इस प्रकार  
 से भार्गव के लिये बार-बार बरो को देकर अजेयत्व-घनेशत्व और अवध्यत्व का  
 भी वरदान दे दिया था । इन समस्त बरो को प्राप्त कर काव्य सम्ग्रह तनूल्हो  
 वाला अर्थात् अत्यन्त प्रसन्नता से प्रफुल्लित होगये ॥१५९-१६०॥ हर्ष के अतिरेक  
 होने से उसके हृदय में महेश्वर हेमस्तोत्र का प्रादुर्भाव हुआ । तब तिरछा स्थित  
 होकर इस प्रकार से नीललोहित की स्तुति की थी ॥१६१॥ सुरापान करने वाले  
 सुन्दर वर्चस वाले तथा शितिकण्ठ से युक्त के लिये नमस्कार है । रिरिहाण-  
 लोप-वत्सरा और जगत् के पति के लिये नमस्कार है ॥१६२॥ कपर्दी-उर्द्धं रोम  
 वाले-ह्य-और करण के लिये नमस्कार है । सस्कृत-सुतीर्थ-रह और देवो के  
 भी देव के लिये नमस्कार है ॥१६३॥ उष्णीपी सुवक्त्र वाले-सहस्र नेत्रो वाले-  
 मीढुप-वसुरेता-तप-चौरों के वस्त्र धारण करने वाले रुद्र के लिये नमस्कार है  
 ॥१६४॥ ह्रस्व-मुक्त केशो वाले-सेनानी-रोहित के लिये नमस्कार है ॥१६५॥  
 कवि-राजवृद्ध-तक्षक के खिलौने वाले-गिरिश-अर्द्धनेत्र-यति-जाम्बव के लिये  
 नमस्कार है ॥१६६॥

सहस्रबाह्वे चैव सहस्रामलचक्षुषे ।  
 सहस्रकुक्षये चैव सहस्रचरणाय च ॥१६७  
 सहस्रशिरसे चैव बहुरूपाय वेधसे ।  
 भवाय विश्वरूपाय श्वेताय पुरपाय च ॥१६८  
 निपङ्गुणे कवचिने सूक्ष्माय क्षपणाय च ।  
 ताम्राय चैव भीमाय उग्राय च शिवाय च ॥१६९  
 बभ्रवे च पिशङ्गाय पिङ्गलायारणाय च ।  
 महादेवाय शर्व्वाय विश्वरूपशिवाय च ॥१७०  
 हिरण्याय च शिष्टाय श्रेष्ठाय मध्यमाय च ।  
 पिनाकिने चेषुमते चित्राय रोहिताय च ॥१७१  
 दुन्दुभ्यायैवपादाय अर्हाय बुद्धये तथा ।  
 मृगव्याधाय सर्पाय स्थाणवे भीषणाय च ॥१७२  
 बहुरूपाय चोग्राय त्रिनेत्रायेश्वराय च ।  
 कपिलायैकवीराय मृत्युवे अम्बकाय च ॥१७३  
 वास्तोष्पते विनाकाय शङ्कराय शिवाय च ।  
 आरण्याय गुहस्थाय यतिने ब्रह्मचारिणे ॥१७४

सहस्र बाहुओं वाले—सहस्र निर्मल नेत्रों वाले—सहस्र कुक्षि और सहस्र  
 चरणों वाले के लिये नमस्कार है ॥१६७॥ सहस्र शिर वाले—बहुत से रूप वाले  
 वेध—भय—विश्वरूप—श्वेत और पुरुष के लिये नमस्कार है ॥१६८॥ निपङ्गी—  
 कवची—सूक्ष्म—क्षपण—ताम्र—भीम—उग्र और शिव के लिये नमस्कार है ॥१६९॥  
 बभ्रु—विणङ्ग—पिङ्गल—अरण—महादेव—शर्व्व और विश्वरूप शिव के लिये  
 नमस्कार है ॥१७०॥ हिरण्य—शिष्ट—श्रेष्ठ—मध्यम—पिनाकी—दुन्दुमान्—चित्र और  
 रोहित के लिये नमस्कार है ॥१७१॥ दुन्दुभ्य—एकपाद—अर्हबुद्धि—मृगव्याध—सर्प—  
 स्थाणु और भीषण के लिये नमस्कार है ॥१७२॥ बहुरूप—उग्र—त्रिनेत्र—ईश्वर—  
 कपिल—एकवीर—मृत्यु और अम्बक के लिये नमस्कार है ॥१७३॥ वास्तोष्पति—  
 विनाक—शङ्कर—शिव—प्राणेश—गुहा में स्थित रहने वाले—यति और ब्रह्मचारी  
 के लिये नमस्कार है ॥१७४॥



साह्वयाय चैव योगाय ध्यानानि दीक्षिताय च ।  
 अन्तर्हिताय शर्वाय मान्याय मालिने तथा ॥१७५॥  
 बुद्धाय चैव शुद्धाय मुक्तये केवलाय च ।  
 रोधमे चेकितानाय ब्रह्मिष्ठाय महर्षये ॥१७६॥  
 चतुष्पादाय मेध्याय घर्मिणो शीघ्रगाय च ।  
 शिखण्डिने कपालाय दष्टिणो विश्वमेघसे ॥१७७॥  
 अप्रतीघाताय दीप्ताय भास्कराय सुमेघसे ।  
 क्रूराय विकृतायैव बीभत्साय शिवाय च ॥१७८॥  
 सौम्याय चैव पुण्याय धार्मिकाय शुभाय च ।  
 अवध्याय मृताङ्गाय नित्याय शाश्वताय च ॥१७९॥  
 साद्याय शरभायैव शूलिने च त्रिचक्षुषे ।  
 सोमपायाज्यपायैव धूमनायोष्मपाय च ॥१८०॥  
 शुचये रेरिहाणाय सद्योजाताय मृत्यवे ।  
 पिशिताशाय खर्वाय मेघाय वैश्रुताय च ॥१८१॥  
 व्याथ्रिताय श्रविष्ठाय भारतायान्तरिक्षये ।  
 क्षमाय सहमानाय सत्याय तपनाय च ॥१८२॥  
 त्रिपुरघ्नाय दीप्ताय चक्राय रोमशाय च ।  
 तिग्मायुधाय मेध्याय सिद्धाय च पुलस्तये ॥१८३॥

राख्य-योग-ध्यानी-दीक्षित-अन्तर्हित-शर्व-मान्य तथा माली के लिये  
 नमस्कार है ॥१७५॥ बुद्ध-शुद्ध-मुक्ति-केवल-रोधा-चेकितान-ब्रह्मिष्ठ और  
 महर्षि के लिये नमस्कार है ॥१७६॥ चतुष्पाद-मेध्य-घर्मि-शीघ्र गमन करने  
 वाले-शिखण्डी-कपाल-दष्टी और विश्वमेघा के लिये नमस्कार है ॥१७७॥  
 अप्रतीघात-दीप्त-भास्कर-सुमेघा-क्रूरविकृत-बीभत्स और शिवके लिये नमस्कार  
 है ॥१७८॥ सौम्य पुण्य धार्मिक-शुभ-अवध्य-मृताङ्ग-नित्य और शाश्वत के  
 लिये नमस्कार है ॥१७९॥ साद्य-शरभ-शूली-सीन नेत्रो वाले-सोमपान करने  
 वाले-श्रुतपान करने वाले-धूमय-ऊष्मप के लिये नमस्कार है ॥१८०॥ शुचि-  
 रेरिहाणा-सद्योजात-मृत्यु-मास वा घटन करने वाले-खर्व-मेघ और वैश्रुत के

लये नमस्कार है ॥१८१॥ व्याघ्रिन-ध्रुविष्ठ-भारत-अन्तरिक्षि-क्षम-सहमान-  
सत्य और तपन के लिये नमस्कार है ॥१८२॥ त्रिपुर के नाश करने वाले-दीप्त-  
वक्र-रोगघ-तिग्मबायुध वाले-मेघ-निद्ध और पुनस्ति के लिये नमस्कार  
है ॥ १८३ ॥

रोचमानाय खण्डाय स्फीताय ऋषभाय च ।

भोगिने पुञ्जमानाय शान्तायैवोद्धं रेतसे ॥१८४

अघघ्नाय मल्लघ्नाय मृत्यवे यज्ञियाय च ।

कुशानवे प्रचेताय बह्वये विश्वाय च ॥१८५

सिकत्याय प्रसन्नाय वरेण्यायैव चक्षुषे ।

क्षिप्रगवे सुधन्वाय प्रमेध्याय पिवाय च ॥१८६

रक्षोघ्नाय पशुघ्नाय विघ्नाय शयनाय च ।

विभ्रान्ताय महन्ताय अन्तये दुर्गमाय च ॥१८७

दक्षाय च जघन्याय लोकानामीश्वराय च ।

अनामयाय चोर्द्धाय संहत्याधिष्ठिताय च ॥१८८

हिरण्यवाहवे चैव सत्याय शमनाय च ।

अमिकल्याय माषाय रीरिण्यायैकचक्षुषे ॥१८९

श्रेष्ठाय वामदेवाय ईशानाय च धीमते ।

महाबल्पाय दीप्ताय रोदनाय हृसाय च ॥१९०

वृतधन्वने कवचिने रथिने च वरुथिने ।

भृगुनाथाय शुक्राय वह्निरिष्टाय धीमते ॥१९१

अघाय अघशसाय विप्रियाय प्रियाय च ।

दिग्वास कृत्तिवासाय भगघ्नाय नमोऽस्तु ते ॥१९२

रोचमान-हरद-स्फीत- ऋषभ-भोगी- पुञ्जमान-शान्त -- उद्धं रेतस-  
घयो के नाशक-मल्ल के नाश करने वाले-मृत्यु- यज्ञिय-कृशानु- प्रचेत-वह्नि और  
विश्वस्य के लिये नमस्कार है ॥१८४ १८५॥ मिकत्य-प्रसन्न-वरेण्य चक्षु-  
क्षिप्रगु-सुधन्वा-प्रमेध्य-पिब-रक्षोघ्न-पशुघो के हनन करने वाले-विघ्न-शयन  
विभ्रान्त-महन्त-अन्ति और दुर्गम के लिये नमस्कार है ॥१८६-१८७॥ दक्ष-

जघन्य-लोको ने ईश्वर-अनामय-ऊर्ध्वं श्रीर सद्धार का अधिष्ठित होने वाले के लिये नमस्कार है ॥१८८॥ द्विरण्यबाहु-सत्य-शमन-अमिकल्प-माघ-रीरिण्य-एकचक्षु-श्रेष्ठ-वामदव-ईशान-धीमान्-महाकल्प-शीत-गोदन श्रीर इसके लिये नमस्कार है ॥१८९-१९०॥ वृत्तधन्वा-वचन धारण करने वाले-रथी-बर्च्य-भृगुनाथ-शुक-बह्निगिष्ठ-और धीमान् के लिये नमस्कार है ॥१९१॥ धम-प्रघ सशाय-विप्रम-प्रिय-दिग्वासा-वृत्तिवासा-भगध्न के लिये नमस्कार है ॥१९२॥

पशूनां पतये चैव भूताना पतये नमः ।

प्रणवे ऋग्यजु साम्ने स्वधाय च सुधाय च ॥१९३

वपटकारतमार्यव तुम्यमन्तात्मने नम ।

स्रष्ट्रे धात्रे तथा होत्रे ह्नो च क्षपणाय च ॥१९४

भूतभव्यभवार्यैव तुम्य कालात्मने नम ।

वमवे चैव साध्याय रुद्रादित्याश्विनाय च ॥१९५

विश्वाय मरुते चैव तुम्यन्देवात्मने नम ।

अग्निसोमत्विनिज्याय पशुमन्त्रौपधाय च ॥१९६

दक्षिणावभृथार्यैव तुम्य यज्ञात्मने नम ।

तपसे चैव सत्याय त्यागाय च शमाय च ॥१९७

अहिंसायाप्यलोभाय सुवेशायातिशाय च ।

सर्वभूतात्मभूताय तुम्य योगात्मने नम ॥१९७

पृथिव्यौ चान्तरिक्षाय दिवाय च महाय च ।

जनस्तपाय सत्याय तुम्य लोकात्मने नम ॥१९९

अध्यक्तायाय महते भूतार्यैवेन्द्रियाय च ।

तन्मात्राय महान्ताय तुम्य तत्त्वात्मने नम ॥२००

नित्याय चार्थलिङ्गाय सूक्ष्माय चेतनाय च ।

गुद्धाय विभवे चैव तुम्य नित्यात्मने नम ॥२०१

नमस्ते त्रिषु तोत्रेषु स्वराण्तेषु भवादिषु ।

सत्याण्तेषु महान्तेषु चतुर्षु च नमोऽस्तु ते ॥२०२

नम स्तोत्रे मया ह्यस्मिन् मदसव्याहृत विभो ।

मद्भक्त इति ब्रह्मण्य सर्वन्तत् क्षन्तुमर्हसि ॥२०३

पशुओं के पतिके लिये और भूतो के पति के लिये नमस्कार है । प्रणव-  
शुक्-यजु और सामवेद के लिये-स्वधा और मुख के लिये नमस्कार है ॥१६॥  
वषट्कार तम के वास्ते और अज्ञात्मा तुम्हारे लिये नमस्कार है । शश-घाता-  
होना-हर्ता और क्षण के लिये नमस्कार है ॥१६४॥ भूत-भव्य-भव तुम्हारे  
वात्मा के लिये नमस्कार है । वसु-साध्य-ह्यद्रादित्यादिवन के लिये नमस्कार  
है ॥१६५॥ विद्व-मस्त-देवात्मा तुम्हारे लिये नमस्कार है । अग्निमोम-  
शुक्लवक्-इज्य-पशुमन्व और ओषध के लिये नमस्कार है ॥१६६॥ दक्षिणा  
वभृय-यज्ञात्मा तुम्हारे लिये नमस्कार है । तप-मत्य-त्याग-शम के लिये  
नमस्कार है ॥१६७॥ अहिंस-अनोभ-मुवेश-प्रतिश-सर्व प्राणियों के आत्मभूत-  
योगस्वरूप तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥१६८॥ पृथिवी-घन्तरिक्ष-दिव-मह-  
जनस्तप-मत्य और लोकात्मा के लिये नमस्कार है ॥१६९॥ अव्यक्त-महाद्-  
भूत-इन्द्रिय-तन्मात्र-महान्त तत्वात्मा तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥२००॥ निष्य-  
अर्षलिङ्ग-मुष्टम-चेतन-शुद्ध-त्रिभु और नित्यात्मा तुम्हारे लिये नमस्कार है  
॥२०१॥ तीनों लोको में-स्वरान्तो में-अवादिम-सत्यान्तो में और चारों महान्तों  
में तुम्हारे लिये नमस्कार है । हे विभो ! मैंने इस स्तोत्र में जो भी मद और  
अमन् कहा है ऐसे तुम्हारे लिये नमस्कार है । मेरा भक्त है—ऐसा जानकर हे  
ब्रह्मण्य ! वह सब क्षमा करने के आप योग्य होत है ॥२०२-२०३॥

### प्रकरण ६०—त्रिपुणु माहात्म्य कीर्तन

एवमाराध्य देवेशमीशान नीललोहितम् ।

ब्रह्मेति प्रणतस्तस्मिं प्राञ्जलिविषयमब्रवीत् ॥१

वाक्यस्य गात्र सस्पृश्य हस्तेन प्रीतिमान् भव ।

निकामं दर्शनं दत्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥२

ततः सोऽन्तर्हिने तस्मिन् देवेशानुचरे तत्रा ।  
 तिष्ठन्ती प्राञ्जलिभूर्त्वा जयन्तीमिदमब्रवीत् ॥३  
 कस्य त्व सुभगे का वा दुःखिते मयि दुःखिता ।  
 महता तपसा युक्त किमर्थं माञ्जुगोपसि ॥४  
 अनया सतत भक्त्या प्रथयेण दमेन च ।  
 स्नेहेन चैव मुश्रोणि प्रीतोऽस्मि वरवर्णिनि ॥५  
 किमिच्छसि वरारोहे वस्ते काम. मभृध्यताम् ।  
 त ते सपूरयाम्यद्य यद्यपि स्यात् सुदुर्लभम् ॥६  
 एवमुक्त्वाऽऽब्रवीदेनं तपसा ज्ञातुमर्हसि ।  
 चिकीर्षित मे ब्रह्मिष्ठ त्व हि वेत्थ ययातयम् ॥७

श्री मूतजी ने कहा—इस प्रकार से देवों के ईश नीललोहित ईशान की आराधना करके उसके लिये ब्रह्म इव भावसे प्रणत हुआ था और हाथ जोड़कर बोला ॥१॥ महादेव ने परम प्रीति युक्त होकर अपने हाथ से गुणाचार्य के शरीर का स्पर्श किया था और पूर्ण रूप से दर्शन देकर फिर वह वहाँ पर ही पन्तर्धान होगये थे ॥२॥ इसके पश्चात् देवेशानुचर उसके पन्तर्हित होजाने पर यह सामने खड़ी हुई जयन्ती से प्राञ्जलि होकर यह बोला—॥३॥ हे सुभगे ! तू जिसकी है और कौन है अथवा दुःखित होरही है ? महान् तपसे युक्त मुझको तू किस प्रयोजन के लिये रसा करती है ? ॥४॥ इस तेरी निरन्तर होने वाली भक्ति से—प्रथम—दमन और स्नेह से हे मुश्रोणि ! हे वरवर्णिनि ! मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ हूँ ॥५॥ हे वरारोहे ! तू क्या चाहती है और तेरी क्या कामना खड़ी हुई है ? मैं तेरे उम मनोरथ को पूर्ण करूँगा चाहे भजे ही वह कौन भी दुर्लभ वयो न हो ॥६॥ जब इस प्रकार से वह जयन्ती बड़ी गई तो उसने छुक से कहा अथ मेरे मनोरथ को तपोव्रत से जानने के योग्य होने हैं । हे ब्रह्मिष्ठ ! अथ मेरे चिकीर्षित को ठीक-ठीक जानते हैं ॥७॥

एवमुक्त्वाऽब्रवीदेना दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा ।  
 माहेन्द्री त्व वरारोहे मद्धितार्थमिहागता ॥८

मया सह त्व सुश्रोणि दश वर्षाणि भामिनि ।  
 अदृश्य सर्वभूतस्तु सप्रयोगमिहेच्छसि ॥९  
 देवेन्द्रानलवर्णाभि वरारोहे सुलोचने ।  
 इम वृणीश्व काम ते मत्तो वै बल्लुभापिणि ॥१०  
 एव भवतु गच्छामो गृहान् वै मत्तकाशिनि ।  
 ततः स्वगृहमागम्य जयन्त्या सहितः प्रभु ॥११  
 स तथा सब सद्देव्या दश वर्षाणि भागशः ।  
 अदृश्य सर्वभूताना मायया सवृतस्तदा ॥१२  
 कृतार्थमागत दृष्ट्वा काव्य सर्वे दितेः सुता ।  
 अभिजग्मुर्गृह तस्य मुदितास्ते दिदूक्षव ॥१३  
 गता यदा न पश्यन्तो जयन्त्या सवृत गुरुम् ।  
 दाक्षिण्य तस्य तद्बुध्वा प्रतिजग्मुर्मथागतम् ॥१४

जब जयन्ती ने इस तरह शुक से कहा तो उमने दिव्य चक्षु से देख कर इससे कहा—हे वरारोहे ! तू महेन्द्र की पुत्री है और मेरे हितके लिये ही यहाँ पर आई है ॥९॥ हे भामिनी ! हे सुश्रोणि ! तू मेरे साथ जोकि ममस्त प्राणियो से अदृश्य रहगा, दश वर्ष तक सम्प्र योग की इच्छा करती है ॥१०॥ हे देवेन्द्र ! अनल प्रभो ! हे वरारोहे ! हे मुन्दर नेत्रो वाली ! हे बल्लुभापण करने वाली ! तब ही तू मुझसे इस कामना को प्राप्त कर ॥१०॥ हे मत्तकाशिनी ! ऐसा होवे भवगृहो को चले । इसके अनन्तर अपने घर में आकर प्रभु शुक जयन्ती के साथ रहे ॥११॥ फिर वह उस देवी के साथ भागश दश वर्ष तक निवास कर रहे थे और उस समय वह ममस्त प्राणियो के अदृश्य तथा माया में सवृत रहते थे ॥१२॥ ममस्त दिनि के पुत्र दैत्य सफल होकर आये हुए काव्य को देखकर उसके घर में देखने की इच्छा रखते हुए परम प्रसन्न होकर गये थे ॥१३॥ वे सब वहाँ गये तो जयन्ती के द्वारा सवृत गुरु को उन्होंने जब नहीं देखा था तो उसके उस दाक्षिण्य को जान कर जैसे ही आये थे वापिस चले गये ॥१४॥

वृहस्पतिस्तु सख्य ज्ञात्वा काव्य चकार ह ।

पित्रर्थे दश वर्षाणि जयन्त्या हितकाम्यया ॥१५

बुद्ध्वा तदन्तर सोऽथ दैत्यानामिव चोदित ।  
 काव्यस्य रूपमास्थाय सोऽसुरान्समभाषत ॥१६॥  
 तत समागतान् दृष्ट्वा बृहस्पतिरुवाच तान् ।  
 स्वागत मम याज्याना सप्राप्तोऽस्मि हिताय च ॥१७॥  
 अहं बोध्यामिपिप्यामि प्राप्ता विद्या मया हि सा ।  
 ततस्ते रदृष्टमनसो विचार्यमुपपेदिरे ॥१८॥  
 पूर्णकामस्तदा तस्मिन् समये दशवर्षिके ।  
 ययौ च समकाल स सद्योत्पन्नमतिस्तदा ॥१९॥  
 समयान्ते देवयानी सद्यो जाता मुता तदा ।  
 बुद्धिं चक्रे ततश्चापि याज्याना प्रत्यवेक्षणे ॥२०॥

बृहस्पति ने तो यह जान लिया था कि हित की कामना व ली जयनी के द्वारा पिता के लिए काव्य को सरुद्ध किया गया है ॥१६॥ इसके अनन्तर वह जानकर दैत्यों की भाँति प्रेरित होकर काव्य के स्वरूप को धारण कर अमुरों से बोला ॥१६॥ फिर आये हुए उनमें बृहस्पति ने कहा—मेरे याज्य अर्पण यज्ञमालो का स्वागत है । मैं तुम्हारे सबके हित सम्पादन करने के लिये यहाँ आगया है ॥१७॥ मैंने जो वहाँ विद्या प्राप्त की है उसे आप लोगो को सबकी बताऊँगा । इसके प्रसन्न वित्त वाले वे सब अमुर विद्या ग्रहण करने के लिये उपस्थित हुए थे ॥१८॥ उस समय में दश वर्षिक समय में पूर्ण काम सद्योत्पन्न मति वाला समकाल ही मैं वहाँ गया था ॥१९॥ समय के अन्त में तब देवयानी मुता मद्य उत्पन्न हुई थीर इसके पश्चात् याज्यों के प्रत्यवेक्षण करने के समय में अपनी बुद्धि की थी ॥२०॥

देवि गच्छामहे द्रष्टुं तव याज्यान् शुचिस्मिते ।  
 विभ्रान्तप्रेक्षिते साध्वं त्रिवर्णयितलोचने ॥२१॥  
 एवमुक्त्वाऽऽरवीद्देवी भज भक्तान् महाप्रत ।  
 एष ब्रह्मन् सता धर्मो न धर्मं लोपयामि ते ॥२२॥  
 ततो गत्वामुरान् दृष्ट्वा देवाचार्येण धीमता ।  
 वञ्चितान् काव्यरूपेण वेधसाऽमुग्धप्रवीत् ॥२३॥

काव्य मा तात जानीध्व एष ह्याङ्गिरसो भुवि ।  
 वञ्चिता वत यूयं वै मयि शक्ते तु दानवा ॥२४  
 श्रुत्वा तथा ब्रूवाणन्त सम्भ्रान्ता दितिजास्तत ।  
 प्रेक्षन्ते स्म ह्य भौ तत्र सितासितशुचिस्मितौ ॥२५  
 सम्प्रमूढा स्थिताः सर्वे प्रापद्यन्त न विश्वन ।  
 तनस्तेषु प्रमूढेषु काव्यस्तान् पुनरब्रवीत् ॥२६  
 आचार्य्यो वो ह्यह काव्यो देवाचार्य्योऽयमङ्गिराः ।  
 अनुगच्छन्त मा सर्वे त्यजर्तन वृहस्पतिम् ॥२७

श्री गुरु ने कहा—हे देवि ! हे शुचिस्मित बानी ! तेरे याज्यो को देखने के लिये अब जाने हैं हे विश्रान्त प्रेक्षित वाली ! हे माद्वि ! हे त्रिवर्णियन लोचने हम चलते हैं ॥२१॥ जब इस प्रकार देवी ने कहा गया तो वह बानी हे महाजन ! अपने भक्तों को देखो ! हे ब्रह्मन् ! यह मत्स्युख्यो का धर्म होता है और मैं आपके धर्म का लोप नहीं करूंगी ॥२२॥ सूनवी ने कहा—इसके पश्चात् शुक्राचार्य ने जाकर भ्रमुरो को देवा जोकि परम धीमान् देवो के प्राचार्य वृहस्पति के द्वारा वञ्चन किये गये थे और काव्य के स्वरूप को धारण करके यह प्रवचनना की थी । तब वेधा भ्रमुरो से बोले ॥२३॥ हे तात ! मुझे ही यथार्थ में काव्य समझो यह तो भूमि में अगिरा का पुत्र वृहस्पति है । हे दानवो ! आप लोग समर्थ मेरे रहते हुए वञ्चन किये गये हो ॥२४॥ उस तरह से खोलते हुए उनका वचन सुनकर उग समय में दिति के पुत्र सब बहून ही भानि में पूर्ण होगये थे । तब वे वहाँ उन समय में उन दोनों को जो मिन एव अग्नि शुचिस्मित बाने थे उनको देख देन रहे थे ॥२५॥ वे सब सम्प्रमूढ होन हुए म्यिन होगय और किसी निशुंय पर नहीं प्राप्त हुए । इसके अनन्तर उनके प्रवृष्ट मन से मूढ़ हो जाने पर काव्य ने उनसे पुन कहा ॥२६॥ आपका प्राचार्य मैं हूँ और यह अङ्गिरा देवाचार्य है । आप सब मेरा अनुपमन करो और इस वृहस्पति का त्याग कर दो ॥२७॥  
 एवमुक्तामुराः सर्वे तावुभौ समवेदत ।  
 तदाऽमुरा विनोपन्तु न व्यजानन्तयोद्धयो ॥२८



बृहस्पतिरुवाचैतानसम्भ्रान्तोऽयम्ङ्गिरा ।  
 पाब्धोऽहं यो गुरुरेत्वा मद्रूपोऽयं बृहस्पति ॥२६  
 स मोहपतिरूपेण मामकेनेप योऽसुरा ।  
 श्रुत्वा तस्य ततन्ते वै समन्थार्यवचोऽश्रुवन् ॥३०  
 अथप्रो दश वर्षाणि सततं शास्ति वै प्रभुः ।  
 एष वै गुरुरस्मात्प्रमन्तरेऽसुरय द्विज ॥३१  
 ततस्ते दानवा सर्वे प्रणिपत्याभिवाद्य च ।  
 वचनं जगृह्मस्तस्य चिराभ्यासेन मोहिता ॥३२  
 ऊबुस्तमसुराः सर्वे क्रुद्धाः सरत्तलोचनाः ।  
 अथङ् गुरुरहितेऽस्माकं गच्छ त्वं नासि नो गुरु ॥३३  
 भार्गवोऽङ्गिरसो वाय भवत्वैवेप नो गुरुः ।  
 स्थिता वयं निदेशेऽस्य गच्छ त्वं साधु मा चिरम् ॥३४  
 एवमुक्त्वासुरा सर्वे प्रापद्यन्त बृहस्पतिम् ।  
 यदा न प्रतिपद्यन्ते तेनोक्तं तन्महद्विदितम् ॥३५

इस तरह से बड़े गये सब असुर उन दोनों को देखने लगे । तब असुरों  
 ने उन दोनों में विशेषता कुछ भी नहीं जानी थी ॥२६॥ बृहस्पति ने इन असुरों  
 से कहा—यह अंगिरा है और मेरा स्वरूप इसने धारण कर लिया है ऐसा इसे  
 बृहस्पति समझो । हे दैत्यो ! जो तुम्हारा गुरु है वह मैं ही वाव्य हूँ ॥२६॥  
 हे असुरो ! यह वह है जो मेरे रूप से आपको मोहित कर रहा है । इनके  
 पश्चात् उन्होंने अथवा कर और उसके अर्थ वचन को भली भाँति विचार कर  
 के बोले ॥३०॥ इसने दश वर्ष तक निरन्तर प्रभु ने हमको शिक्षा दी है । इसी  
 हेतु से यही हमारा गुरु है और यह द्विज अन्तरेष्णु है ॥३१॥ इसके अनन्तर वे  
 समस्त दानव प्रणिपात एव अभिवादन करके चिरकाल से मोहित होते हुए उनके  
 अर्थात् बृहस्पति के वचन को धरण करने लगे थे ॥३२॥ समस्त असुर लाल  
 नेत्रों वाले धरणात् क्रुद्ध होते हुए उससे बोले—यह हमारे हित में गुरु है तुम  
 चले जाओ, तुम हमारे गुरु नहीं हो ॥३३॥ चाहे भार्गव हो अथवा अङ्गिरस  
 ही हमारा यह ही गुरु है । हम इनके ही निदेश में ही स्थित हैं, तुम जाओ अब

भलाई इसी में है कि अपने चले जाने में विलम्ब मत करो ॥३४॥ इस प्रकार  
शुक्र से समस्त अगुरो ने कहकर वे बृहस्पति को ही प्राप्त हुए थे । वे प्रतिपन्न  
नहीं होते हैं जब उसने उनका महान् हित कहा था ॥३५॥

चुषोप भार्गवस्तेषामवलेपेन वै तदा ।

बोधिता हि मया यस्मान्न मा भजत दानवा ॥३६

तस्मात् प्रनष्ट सजा वै पराभवङ्गमिव्यय ।

इति व्यावृत्त्य तान् काव्यो जगामाय यथागतम् ॥३७

शास्त्राऽभिज्ञस्तान्पुरान् काव्येन तु बृहस्पतिः ।

कृतार्थः स तदा दृष्टः स्व रूप प्रत्यपद्यत ।

बुद्ध्वाभ्युरास्तदा भ्रष्टान् कृतार्थोऽन्तरधीयत ॥३८

तत प्रनष्टे तस्मिंस्ते विभ्रान्ता दानवास्तदा ।

अहो धिग्वश्विता स्मेह परस्परमथाद्भुवन् ॥३९

पृष्ठतो विमुखाश्चैव ताडिता वेधसा वयम् ।

दग्धाश्चैववोपयोगाच्च स्वेस्वे चार्थेषु मायया ॥४०

ततोऽगुरा परित्रस्ता देवेभ्यस्त्वरिता ययुः ।

प्रहनादमग्रत वृत्वा काव्यस्यानुगम पुनः ॥४१

तब तो भार्गव गर्व से उन अगुरो पर अत्यन्त क्रोधित हुए । मैं उन्हें  
शुभ्र गमभाया तो भी दानव मुझको नहीं भजते हैं ॥३६॥ इस कारण से सजा  
नष्ट करने वाले निगन्देह वे पराभव को प्राप्त होगे । काव्य ने इस तरह ये वचन  
उन अगुरो से कहे और जैसे ही वह धार्ये थे बले गये ॥३७॥ काव्य के द्वारा  
अभिज्ञान अगुरो को बृहस्पति ने जानकर अपने धारको परम सपन्न समझते  
हुए धारपन्न प्रनष्ट होकर अपने ही स्वल्प को प्राप्त हुए । तब अगुरो को भ्रष्ट  
जानकर कृतार्थ हुए घनर्द्धान होगये थे ॥३८॥ इसके बाद उमने प्रनष्ट होने पर  
उग गमय दानव विभ्रान्त होगये और वे धारपन में बहने लगे कि हम लोगों को  
धरिहार है धार वनिन होगये हैं ॥३९॥ पीछे ने हम विमुक्त होगये और वेधा  
के द्वारा हम ताड़ित हुए हैं । और अपने-अपने उपयोग से हम अर्थों में माया से

दग्ध होगये हैं ॥४०॥ इसके अनन्तर देवों से परिपस्त अमुर प्रह्लाद को भाग करके शीघ्रता वाले होकर काव्य के अनुष्ठान को पुन गये ॥४१॥

ततः काव्य समासाद्य अभितस्थु र्वाङ्मुखाः ।

तानागतान् पुनर्दृष्ट्वा काव्यो याज्यानुवाच ह ॥४२

मयापि बोधिता काले यतो मानाभिनन्दय ।

ततस्तेनावलेपेन गता यूय पराभवम् ॥४३

प्रह्लादस्तमपोवाच मान त्व त्यज भार्गव ।

स्वान् याज्यान् भजमानाश्च भक्ताश्चैव विशेषत ॥४४

त्वया पृष्टा वय तेन देवाचार्येण मोहिता ।

भक्तानहसि नस्त्रातु ज्ञात्वा दीर्घेण चक्षुषा ॥४५

यदि नस्त्व न कुरुषे प्रसाद भृगुनन्दन ।

अपध्यायास्त्वव्या ह्यद्य प्रवेक्ष्यामो रसातलम् ॥४६

ज्ञात्वा काव्यो यथातस्व कारुष्येनानुक्म्पया ।

एवमुक्तोऽनुनीतः स स्तुत बोध न्ययच्छत ॥४७

उवाचेदन्न भेनव्यं न गन्तव्य रसातलम् ।

अवश्यम्भावी ह्यर्थोऽय प्राप्तो वो मयि जगति ॥४८

इसके अनन्तर वायु के समीप में जाकर नीचे की ओर मुझ वाले होने हुए बैठ गये । उन याज्यों को फिर आये हुए देखकर काव्य उनसे बोले ॥४२॥ मेरे द्वारा भली भाँति समझाये हुए भी तुम लोगो ने समय पर जिस कारण से अभिनन्दन नहीं किया था उमी हेतु के फल से तुम अभिमान के वश होकर पराभव की प्राप्ति हुए हो ॥४३॥ इसके उपरान्त प्रह्लाद ने उनसे कहा—हे भार्गव ! आप अत्र मान को परित्याग कर बीजिएगा और अपने याज्यों को जो यजमान हैं और विशेष रूप से भक्त हैं अङ्गीकार कीजिएगा ॥४४॥ आपन जब पूछा था उस समय हम उस देवाचार्य वृहस्पति के द्वारा मोहित होगये थे । अब दूर की सम्झी दृष्टि से सभी बात जानकर हम भक्ता की रक्षा करने के आप योग्य होते हैं ॥४५॥ हे भृगु नन्दन ! यदि आप हमारे ऊपर प्रसन्न नहीं होने हैं तो हम अब आपके द्वारा अथ ध्यान हाते हुए आज ही रसातल में प्रवेष्ट कर जायेंगे ॥४६॥

सूतजी ने कहा—काय ने यथा तत्त्व को सब कुछ जानकर करुणा और कृपा से इस तरह कहे जाने पर बहुत अनुनय किया हुआ होकर तथा स्तुन होने हुए उसने जो असुरों पर बड़ा भारी क्रोध हो रहा था उसको त्याग दिया ॥४७॥ और वह यह बोला—डरा मत और रनातल को भी नहीं जाना चाहिए । मेरे जाग्रत रहते हुए भी यह कुछ अवश्यभावी अर्थ ही था जोकि आप लोगों को प्राप्त होगया है ॥४८॥

न शनयमन्यथा कर्तुं दिष्ट हि बलवत्तरम् ।

सजा प्रतप्ता या बोध्य काम ता प्रतिलप्स्यथ ॥४९

प्राप्त पर्यायकालो व इति ब्रह्माऽभ्यभाषत ।

भद्रप्रसादाच्च युष्माभिर्भुक्तं नैलोक्यमूर्ज्जितम् ॥५०

युगाख्यो दश सपूर्णा देवानाकर्म्य सूद्धंनि ।

तावन्तमेव कालं वै ब्रह्मा राज्यमभाषत ॥५१

सार्वाणिके पुनस्तुभ्यं राज्यं किल भविष्यति ।

लोकानामोश्वरो भावी पीत्रस्तत्र पुनश्चलि ॥५२

एव किलमहं प्रोक्तं पीत्रस्ते ब्रह्मणा स्वयम् ।

तथाऽष्टतेषु लोकेषु तपोऽन्यं न किलाभवत् ॥५३

यस्मात् प्रवृत्तयश्चास्यं न कामानभिसन्धिता ।

तस्मादजेन प्रीतेन दत्तं सार्वणिकेऽन्तरे ॥५४

देवराज्यं वलेर्भाव्यमिति मामोश्वरोऽज्जवीत् ।

तस्माददृश्यो भूतानां कालाकाङ्क्षी स तिष्ठति ॥५५

प्रीतेन चामरत्वं वै दत्तं तुभ्यं स्वयम्भुवा ।

सम्मात्रिरुत्सुकस्त्वै वै पर्यायं महं माकुल ५६

अब अन्यथा नहीं किया जा सकता है क्योंकि भाग्य सबसे अधिक बनवान् होता है । आज जो आप लोगो की मजा प्रतप्त हुई उनको फिर कामना पूर्णक प्राप्त करलोगे ॥४९॥ आपका पर्याय काल प्राप्त होगया है—यह ब्रह्मा ने कहा—और मेरे प्रसाद में इस उज्जित नैलोक्य का आप लोगो ने भोग किया है ॥५०॥ देवों को प्राकान्त करके उनके मूर्तों पर संपूर्ण दश युगाख्य होगया

है । उतने ही काल तक ब्रह्मा ने राज्य बोला था ॥५१॥ सार्वलोकिक मनु के समय में फिर तेरे लिये राज्य होगा । तुम्हारा पौत्र बलि फिर खाँफो का ईश्वर होने वाला होगा । ५२॥ ब्रह्मा के द्वारा स्वयं तेरा पौत्र इम तरह से मुझे बहा गया है । तथा आह्वरण किये गये लोको म इसका तप निश्चय ही नहीं हुआ था ॥५३॥ त्रिदश कारण से इसकी प्रवृत्तियाँ कामो को अभिमन्वित नहीं थी इससे प्रसन्न होने वाले ब्रह्म ने सार्वलोकिक धन्तर मे दिया है ॥५४॥ ईश्वर ने मुझसे कहा है कि बलि का देवराज्य होगा । इससे भूतो को अहदय वह काल की आकाङ्क्षा रखने वाला स्थित है ॥५५॥ रव्यम्भू ने परम प्रसन्न होकर तेरे लिये अमरत्व को प्रदान किया है इग्निये निहस्तुक तू पर्याय को सहन कर और बेचैन मत हो ॥५६॥

न च शक्य मया तुभ्य पुरस्ताद्धं विसर्पितुम् ।  
 ब्रह्मणा प्रतिपिद्धोऽस्मि भविष्य जानता प्रभो ॥५७  
 इमो च शिष्यो द्वौ मह्य तुल्यावेती बृहस्पते ।  
 दैवते सह सरब्धान् सर्वान् वो धारयिष्यतः ॥५८  
 एवमुक्तास्तु दंतेया काव्येनाकिलष्टकर्मणा ।  
 ततस्ताम्या ययु साद्धं प्रह्लादप्रमुखास्तदा ॥५९  
 अवश्यम्भावमर्थंश्च श्रुत्वा शुक्राच्च दानवाः ।  
 सकृदाशसमानास्ते जयं काव्येन भाषितम् ॥६०  
 दक्षिता सायुधा सर्वे ततो देवान् समाह्वयन् ।  
 अथ देवासुरान् दृष्ट्वा सग्रामे समुपस्थितान् ॥६१  
 ततः सवृत्तसन्नाहा देवास्तान् समयोधयन् ।  
 देवासुरे ततस्तस्मिन् वर्तमाने शत सभा ।  
 अजयन्नमुरा देवान् भग्ना देवा अमन्त्रयन् ॥६२  
 पण्डामाकंप्रभाव न जानीमस्त्व सुरैर्वयम् ।  
 तस्माद्यज्ञ समुद्दिश्य कार्यं चात्महितञ्च यत् ॥६३  
 तज्ज्ञानादहतावेती कृत्वा जेष्यामहेऽमुरान् ।  
 अथोपामन्त्रयन् देवा पण्डामाकीं तु तावुभौ ॥६४

मुझसे तेरे लिये पहिले विमर्षण नहीं किया जा सकता है ब्रह्मा के द्वारा मैं प्रतिपिद्ध किया हुआ हूँ हे प्रभो । क्योंकि ब्रह्माजी समस्त भविष्य में होने वाली बातों को जानते हैं ॥१७॥ वे दो शिष्य मेरे लिये बृहस्पति के तुल्य हैं देवों के साथ मरव्य आप सबको धारण करेंगे ॥१८॥ अत्रिलष्ट वर्मा वाव्य के द्वारा इस तरह कहे गये दिति के पुत्र उम समय वे सब जिनमें प्रह्लाद प्रमुख थे उन दोनों के साथ उम समय चले गये थे ॥१९॥ दानवों ने शुक्राचार्य गुह से भवस्यम्भाव अर्थात् को मुनिकर वाव्य के द्वारा भाषित जय को एकवार कहते हुए जा रहे थे ॥२०॥ दशिन और आयुधो से मुमजित उन्होंने देवों का समाह्वान किया । इसके पश्चात् सग्राम भूमि में उपस्थित असुरों को देखकर मधृत सन्नाद देवगण ने उनसे वहाँ आकर युद्ध किया था । उम देवानुर सग्राम में जो लगा-तार सौ वर्ष तक चरता रहा था असुरों ने देवों को जीत लिया था और भग्न हुए देवों ने विचार किया था ॥२१-२२॥ देवों ने कहा—हम असुरों से द्वारा पराधीन का जो प्रभाव है उसे नहीं जानते हैं हमसे यज्ञ का उद्देश्य करके और जो अस्मिन्हीन हों उसे ही करना चाहिए ॥२३॥ सो इन दोनों को जाना-हुन करके असुरों को जीत लेंगे । इसके उपरांत दवगण ने उन दोनों पराधीनों को उपामन्त्रित किया था ॥२४॥

यज्ञे समाह्वयिष्यामस्त्यजतमनुरान् द्विजौ ।  
 ग्रहं त वा ग्रहीष्यामो ह्यनुजित्य तु दानवान् ॥२५॥  
 एव तत्यजनुस्ती तु पण्डामावीं तदासुरान् ।  
 ततो देवा जयं प्राप्ता दानवाश्च पराभवम् ॥२६॥  
 देवानुरान् पराभाव्य पण्डामाव विपागमन् ।  
 वाव्यगोपाभिभूताश्च ह्यनाधाराश्च ते पुन ॥२७॥  
 वध्यमानाम्नादा देवैर्विविशुस्ते रसातलम् ।  
 एव निरुद्यमास्ते वै कृतं शक्रेण दानवा ।  
 ततःप्रभृति शापेन भृगुनैमित्तिकेन च ॥२८॥  
 जज्ञे पुन पुनविद्युर्गर्जे च मिथिले प्रभु ।  
 वतुं धर्मैर्ध्वयन्थानमधर्मस्य च नाशनम् ॥२९॥

प्रह्लादस्य निदेशे तु येऽमुरा न व्यवस्थिताः ।  
 मनुष्यवध्यास्तान् सर्वान् ब्रह्मा व्याहारयत् प्रभुः ॥७०॥  
 धर्मान्नारायणस्तस्मात् सम्भूतश्चाक्षुषेऽन्तरे ।  
 यज्ञ प्रवर्तयामास चैत्ये वैवस्वतेऽन्तरे ॥७१॥

हे द्विजो ! हम आप दोनों को यज्ञ में बुलायेंगे अतः अमुरों को छोड़ दो । अथवा उस ग्रह को दानवों को जीत कर ग्रहण कर लेंगे ॥६५॥ इस तरह से उस समय में उन दोनों पराडामाकं ब्राह्मणों ने अमुरों को त्याग दिया था । इसके पश्चात् देवता जप को प्राप्त होगये और दानव सब पराभूत होगये थे ॥६६॥ देवामुरों को पराभूत कराके पराडामाकं आगये थे किन्तु वे काव्य के शाप से अभिभूत और फिर वे निराधार होगये थे ॥६७॥ तब उस समय में देवगणों के द्वारा वध्यमान होते हुए वे अमुर रसातल में प्रवेश करने लगे थे । इस तरह से उद्यमहीन उन अमुरों के समूह इन्द्र के द्वारा बेकार कर दिये गये थे । तब से लेकर वे भृगु विमितक शाप से पूर्ण प्रभावित होगये थे ॥६८॥ भगवान् विष्णु ने बार बार यज्ञों के शिथिल हो जाने पर धर्म की व्यवस्था करने के लिए तथा अधर्म का समूलोन्मूलन करने के लिये जन्म ग्रहण किया था ॥६९॥ जो अमुर प्रह्लाद के निदेश में स्थित नहीं रहे थे उन सबको प्रभु ब्रह्मा ने मनुष्यों के द्वारा वध्य करने के योग्य बताया था ॥७०॥ चाधुष अन्तर में धर्म से नारायण सम्भूत हुए थे और वैवस्वत अन्तर में चैत्य में उन्होंने यज्ञ को प्रवृत्त कराया था ॥७१॥

प्रादुर्भवत् तदान्यस्य ब्रह्मवासीत् पुरोहितः ।  
 चतुर्थ्यान्तु युगाख्यायामापन्नैष्वमुरेष्वथ ॥७२॥  
 सम्भूतः स समुद्रान्ताहिरण्यवशिपोर्वधे ।  
 द्वितीयो नरसिंहोऽभूद्ब्रह्म नुरपुरस्सरः ॥७३॥  
 बलिसस्थेषु लोकेषु श्रेताया सप्तमे युगे ।  
 देत्यैस्त्रैलोक्ये आक्रान्ते तृतीयो वामनोऽभवत् ॥७४॥  
 सक्षिप्यात्मानमङ्गेषु वृहस्पतिपुररसरम् ।

यजमानन्तु दैत्येन्द्रमदित्याः कुलनन्दन ।  
 द्विजो भूत्वा शुभे काले बलि वैरोचनम्पुरा ॥७५  
 अत्र लोक्यस्य भवान् राजा त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।  
 दानुमर्हसि मे राजन् विक्रमास्त्रीनिति प्रभु ॥७६  
 ददामीत्येव त राजा बलिर्वैरोचनोऽप्रवीत् ।  
 वामनन्त च विज्ञाय ततोऽनुमुदितः स्वयम् ॥७७  
 स वामनो दिव स्र च पृथिवी च द्विजोत्तमा ।  
 त्रिभि ब्रह्मैविश्वमिद जगदाक्रामत प्रभु ॥७८  
 अत्यरिच्यत भूतात्मा भास्वर स्वेन तेजसा ।  
 प्रकाशयन् दिग सर्वां प्रदिशश्च महायया ॥७९

इसके उपरान्त चतुर्था युगाद्या म ब्रह्मणो के आगम हान पर उम समय  
 मय के प्रादुर्भाव होने पर ब्रह्मा ही पुत्रोहित हुए थे ॥७२॥ त्रिरण्यवशिषु के  
 वष में वह समुद्र के मध्य में मग्भूत हुए थे । द्वितीय मुर पुरस्मर रत्र नगसिह  
 हुआ था ॥७३॥ महम युग में प्रेता म लोको के बलियस्य होत पर दैत्यो के  
 द्वारा तीना लोको को आक्रान्त कर लेने पर तृतीय वामन के रूप में अवतीर्ण  
 हुए थे ॥७४॥ बृहस्पति के पुरस्मर भवा म जाने आगम नक्षिप्त करके अदिति  
 के कुल नन्दन न दैत्यो के स्वामी बलि को यजमान बनाया था । स्वयम् द्विज  
 होकर शुभ समय पहिल वैरोचन बलि के पास पहुँचे थे । ७५॥ घोर राजा बलि  
 ने वामन देव ने एक ब्राह्मण के स्वरूप में जाकर कहा—आप तीना लोक के  
 राजा हैं । आपम सभी कुछ प्रतिष्ठित है अर्थात् आपने पास सभी कुछ है । ह  
 राजन् ! प्रभु आप मुझे तीन पैद भूमि को दान देन क योग्य होत हैं ॥७६॥  
 उम समय में वैरोचन राजा बलि ने उनसे यह बचन कहा—हाँ मैं आपको  
 तीन पैद भूमि का दान देता हूँ । घोर उम ब्राह्मण का वामन (बीना) जानकर  
 स्वयं अनुमुदिन हुआ था ॥७७॥ हे द्विजगणो ! उम वामन देव न दिव-आकाश  
 घोर पृथिवी को तीन ही पैदो में प्रभु न इन विश्व ममस्त जगत् को आशान्त  
 कर लिया था ॥७८॥ उम भूनों के आत्मा ने अपने तत्र म भाग्यर को भी



और विश्वामित्र को पुरस्कार करने वाला छत्र भवनार था ॥६०॥ चौबीसवें  
वैशाख्युग में पुरोहित बमिष्ठ के द्वारा श्रीराम हुए थे । यह दशरथ महारथ के  
पुत्र श्री राघव रावण के लिये अर्घ्य दशग्रीव के वध करने के लिये सातवाँ  
अवतार हुआ था ॥६१॥ अर्द्धार्दशवें युग में द्वापर में पराशर से विष्णु का  
आठवाँ अवतार हुआ था । इसके पश्चात् जानूक्युं पुरस्कार श्री वेद व्यास ने  
जन्म ग्रहण किया था ॥६२॥ उसी प्रकार से त्रयोदशवें ऋषि का पुत्र अर्दिनि  
से विष्णु का अवतार हुआ था ॥६३॥

अप्रमेयो नियोज्यश्च यत्र कामचरो दशी ।  
क्रीडते भगवाँल्लोके बाल क्रीडनकैरिव ॥६४  
न प्रमातुं महाबाहुः शक्योऽसौ मधुसूदन ।  
पर परममेतस्माद्विश्वरूपाद्य विद्यते ॥६५  
अष्टाविंशतिं तद्ददद्वापरस्याशसङ्क्षये ।  
नष्टे धर्मो तदा जज्ञे विष्णुवृंष्टिकुले प्रभुः ॥६६  
कनुं धर्मव्यवस्थानमसुराणां प्रणाशनम् ।  
मोहयन् सर्वभूतानि योगात्मा योगमायया ॥६७  
प्रविष्टो मानुषी योनिं प्रच्छन्नञ्जरे महीम् ।  
विहारार्थं मनुष्येषु सान्दीपनिपुर सरम् ॥६८  
यत्र कसञ्च शाकञ्च द्विविदञ्च महामुरम् ।  
अरिष्ट वृषभञ्चैव पूतना केशिन ह्यम् ॥६९  
नाग कुचलयापीड मल्लराजगृहाघियम् ।  
देत्यान् मानुषदेहस्थान् सूदयामास वीर्यवान् ॥१००

षमुदेव से देवकी में द्रष्टु और मार्ग को पुरस्कार करने वाला अवतार  
हुआ था जो अप्रमेय अर्घ्य बुद्धि में ग माने के योग्य और नियोज्य था । त्रिम  
अवतार में कामचर वशी भगवान् वाल स्वरूप में लियत होते हुए लोक में क्रीडन  
को अर्घ्य स्निहानो में क्रीडा किया करने हैं ॥६५॥ यह महाबाहु मधुसूदन  
भगवान् प्रमा का विषय नहीं हो सकता है । इस विश्वरूप से परम पर कोई भी  
नहीं है ॥६५॥ अर्द्धार्दशवें उम द्वापर युग के घात के मक्षर के समय में पर्य के

नष्ट हो जाने पर उस समय में प्रभु विष्णु ने वृष्णियों के कुल में अपने जन्म को ग्रहण किया था ॥६६॥ भगवान् विष्णु ने बिनष्ट धर्म को सस्थापित करने की व्यवस्था करने के लिये श्रीर महान् दुष्ट असुरों का नाश करने के हेतु योगात्मा ने अपनी योग माया से ममस्त प्राणियों को मोहित करते हुए इस मानुषी योनि में प्रवेश किया था और वह प्रच्छन्न होते हुए ही भूमण्डल में विचरण करते हैं । मन्दीपनि के पुरस्सर मनुष्यों में विहार करने के लिये ही उनके जन्म लिया था ॥६७-६८॥ जहाँ पर कस-शाल्व-द्विविद महासुर-अरिष्ट-वृषभ-पूतना-हृषिकेशी-कुबलयपीड हाथी-मत्तराजशृहाधिप इन सब मानुष देह में स्थित दैत्या की वीर्यवान् न निहत किया था ॥६९-१००॥

छिन्न वाहुसहस्रञ्च बाणस्याद्भुतकर्मण ।

नरकश्च हत सङ्घे यवनश्च महाबल ॥१०१

दृष्टानि च महीपाना सर्वरत्नानि तेजसा ।

दुराचाराश्च निहता पार्थिवा ये रमातले ॥१०२

एते लोक द्वितार्थय प्रादुर्भावा महात्मन ।

अस्मिन्नेव युगे क्षीणे सन्ध्यादिलेष्टे भविष्यति ॥१०३

कल्किविष्णुयज्ञा नाम पाराशर्यं प्रतापवान् ।

दशमो भाव्यसम्भूतो याज्ञवल्क्यपुर सर ॥१०४

अनुकपन् सर्वसेना हस्त्यश्वरथसङ्कुलाम् ।

प्रगृहीतायुधंविप्रैर्वृत दत्तसहस्रशः ॥१०५

नात्पर्यं धार्मिका ये च ये च धर्मद्विप क्वचित् ।

उदीच्यान्मध्यदेशाश्च तथा विन्ध्यापरान्तिकान् ॥१०६

तथैव दक्षिणात्याश्च द्रविडान् सिंहलं सह ।

मान्धारान् पारदाश्चैव पहलवान् यवनाञ्छान् ॥१०७

तुपारान् बर्बराश्चैव पुलिन्दान् दरदान् खसान् ।

लम्पाकानन्धकान् रुद्रान् विराताश्चैव स प्रभुः ॥१०८

प्रवृत्तचक्रो बलवान् म्लेच्छानामन्तवृद्धवली ।

अदृश्य सर्वभूताना पृथिवी विचरिष्यति ॥१०९

अत्यन्त अद्भुत कर्म करने वाले वायु के सहस्र बाहुओं का छेदन किया था और युद्ध भूमि में नरकामुर का वध कर दिया था तथा महान् बलवान् यवन का हनन किया था ॥१०१॥ अपने तेज से महीपालो के समस्त रत्नो का हरण कर लिया था । जो रसातल में दुष्ट आचार वाले राजा थे वे सब मार डाले थे ॥१०२॥ महान् आत्मा वान विष्णु भगवान् के समस्त प्रादुर्भाव लोको के हित-सम्पादन के हुए थे । विष्णु का यह अवतार इस ही युग में सन्ध्या से श्लिष्ट एव क्षीण हो जाने पर होगा ॥१०३॥ विष्णुयुग नाम वाला प्रतापवाना पाराशर्य कल्कि वचन याज्ञवल्क्य पुरस्तर अत्तम्भूत है जोकि भविष्य में होने वाला है ॥१०३॥ आपुत्र ग्रहण करने वाले सहस्रो की संख्या में ग्राह्याणो में युक्त पर्याप्त घिरे हुए कल्कि न हाथी-अश्व और रथों से सज्जित समस्त सेना को अनु कर्षित कर दिया था ॥१०५॥ जो राजा अत्यन्त धार्मिक नहीं थे और जो नहीं धर्म में द्वेष करने वाले लग थे । उत्तर दिशा में होने वाले—मध्य देश के रहने वाले तथा जो विन्ध्यापरातिक थे और उसी प्रकार से दक्षिणात्य एव मिहनों के साथ द्रविड थे गान्धार-पारद-पङ्कज-यवन-शङ्ख-तुषार-बबंर-पुलिङ्ग-दरद-सम-अम्पक-अन्धक-रुद्र और किरान इन सबको उस प्रभु ने ध्वस्त करने के लिये जो चक्र को चलाने वाले—महाबल वाले—बली और म्लेच्छो में धन करने वाले थे, समस्त प्राणियों के द्वारा न देखने के योग्य होने हुए पृथिवी पर विचरण करेंगे ॥१०६ से १०६॥

मानव स तु सज्जो देवम्यासेन धामत ।

पूर्वजन्मनि विष्णुर्य प्रमितिर्नाम वीर्यवान् ॥११०

माश्रेण वै चन्द्रमम पूर्णो कलियुगेऽभवत् ।

इत्येतास्तस्य देवस्य दश सम्भूतय स्मृता ॥१११

त त वालश्च कार्यश्च तत्तदुद्दिश्य वारणम् ।

असेन त्रिषु लोकेषु तास्ता योनि प्रपत्स्यते ॥११२

पञ्चविशोत्थिते बल्पे पञ्चविंशति वै समा ।

विनिघ्नन् सर्व्वभूताति मानुषानेव सर्व्वंश ॥११३

कृत्वा बीजावशेषान्तु मही क्रूरेण वर्मणा ।  
 मत्तातपित्वा वृषान् प्रायशम्भानपार्श्विणान् ॥११४  
 ततः स वं तदा वन्विश्रितार्थं गमैनिव ।  
 वर्मणा निहता ये तु सिद्धास्ते तु पुन स्वयम् ११५  
 धवस्मान् कुपितान्घोन्य भविष्यन्ति च मोहिताः ।  
 धारयित्वा तु तान् सर्वान् भाविनार्थेन चोदितान् ॥११६  
 गङ्गायमुनयोर्मध्ये निष्टा प्राप्स्यति मानुषः ।  
 ततोऽप्यनीते वन्वी तु गामान्यं सह गैर्निकः १११७  
 नृपैरथ विनष्टेषु तदा स्वप्रग्रहा प्रजा ।  
 रथागे विनिवृत्ते तु हत्या चान्घोन्यमाहवे ॥११८

परस्पररहताश्वासा निराक्रन्दा. मुदु.ग्विता. ।

पुराणि हित्वा ग्रामाश्च तुल्यास्ता निधरिग्रहा ॥११९

प्रनेष्टृत्विधर्माश्च नष्टधर्माश्चिमास्तथा ।

ह्रस्वा अल्पायुषश्च वनोवस इमे स्मृताः ॥१२०

सरित्पवंतसेविन्यः पत्रमूलफलाशना. ।

चीर पत्राजिनधरा. सङ्कर घोरमास्थिता ॥१२१

अल्पायुषो नष्टवार्ता बहुवाधाः सुदु खिताः ।

एव वष्टमनुप्राप्ताः कगितन्ध्यशके तदा ॥१२२

प्रजा. क्षय प्रयास्यन्ति साद्धं कलियुगेन तु ।

क्षीणे कलियुगे तस्मिन् प्रवृत्ते च कृतं पुन ॥१२३

प्रपत्स्यन्ते यथान्याय स्वभावादेव नान्यथा ।

इत्येतत् कीर्तित सर्वं देवासुरविषैष्टितम् ॥१२४

यदुवशप्रसङ्गेन महद्भो वैष्णव यत् ।

तुवमोस्तु प्रवक्ष्यामि पुरोद्गुह्योरनोस्तथा ॥१२५

परस्पर मे रहताश्वास-निराक्रन्द मर्षान् निरन्तर रदन करने वाले और परम दु खित लोग नगरो को घोर ग्रामो को त्याग करके सब समान निष्परिग्रह हो जायेंगे ॥११९॥ सब लोग ऐसे हो जायेंगे जिनका श्रुतिधर्म नष्ट होगया है घोर आथम धर्म नष्ट होजाने वाले हैं-बद मे बहुत ही छोटे-अल्प आयु वाले एकतरह जगली जीवा की भांति ये बहे गये हैं ॥ १२० ॥ नदी घोर पवंतो पर रहने वाले-पत्ते-मूल और पत्तों को भक्षण करने वाले-चीर पत्र तथा चर्म को धारण करने वाले घोर पदम घोर सङ्कर अवस्था मे आसिप्त हो जायेंगे ॥१२१॥ बहुत ही थोड़ी उम्र वाले नष्ट वार्ता वाले-बहुत बाधाओं से युक्त-अत्यन्त दु खित होते हुए उम्र समय मे कलियुग की सन्धि के प्रथम मे सब लोग कष्ट को प्राप्त होने वाले होंगे ॥१२२॥ इस घोर कलियुग के साथ ही समस्त प्रजा क्षय को प्राप्त हो जायगी । उस कलियुग के क्षीण होजाने पर घोर पुन कृत युग की प्रवृत्ति श्रोती है ॥१२३॥ जब वृत्त युग प्रवृत्त होगा तो फिर ग्याय के अनुसार स्वभाव से ही सब ठीक होजायेंगे और कोई भी मन्त्र या मन्त्री

हेगा । यह समस्त देवानुर विवेष्टित का वर्णन कर दिया है ॥१२४॥ भव मे  
मदुबन के प्रमङ्ग से धान लोको से महान् बंध्यव यश तुवंगु-पूरु-द्रुह्यु धीर  
भनु वा यश वर्णन करेगा ॥१२५॥

### प्रकरण ६१—अनुपङ्गपाद समाप्ति

तुवंसांस्तु सुतो वह्निवंहो गोभानुरात्मजः ।  
गोभानोस्तु सुतो वीरस्त्रिसानुरपरजित ॥१॥  
करन्धमस्त्रिमानोस्तु भरुत्तस्तस्य चात्मजः ।  
अन्यस्त्वर्षीक्षितो राजा भरुत्त कथितः पुरा ॥२॥  
अनपत्यो भरुत्तस्तु स राजासीदिति श्रुतम् ।  
दुष्टुत पौरव चापि सर्वे पुत्रमवरूपयन् ॥३॥  
एव ययातिनापेन जराया मक्रमेण तु ।  
तुवंसो पौरव वश प्रविवेश पुरा किल ॥४॥  
दुष्टुतस्य तु दायादः शरुयो नाम पार्थिव ।  
शरुयात्तु जनापीडश्चत्वारस्तस्य चात्मजा ॥५॥  
पाण्ड्यश्च केरलश्चैव चोल दुत्यस्तर्धव च ।  
तेषा जनपदा कुल्या पाण्ड्याश्रिता सकेरला ॥६॥  
द्रुह्योस्तु तनयो वीरो बभूवुः सेतुश्च विश्रुतो ।  
अरुद्ध सेतुपुत्रस्तु बाभवो रिपुरुच्यते ॥७॥  
यौवनाश्वेन समिति वृद्धेण निहतो यत्नी ।  
युद्धं मुमहदासोतु मामान् परि चतुर्दश ॥८॥

श्री गूजरी ने कहा—तुवंगु वा पुत्र वह्नि वा धीर वह्नि वा चात्मज  
गोभानु हुआ था । फिर गोभानु वा पुत्र अपराजित तथा वीर त्रिसानु नाम माना  
उपरम हुआ था ॥१॥ त्रिसानु वा पुत्र भरुत्तम हुआ धीर उसका पुत्र भरुत्त  
नामक उत्पन्न हुआ । पहिले भरुत्त राजा अन्यस्त्वर्षीक्षित कहा गया था ॥२॥

वह मरुत्त राजा सन्तान हीन था— ऐसा सुना गया है । दुष्कृत और पीरव ने भी सबने पुत्र को कल्पित किया था ॥३॥ इस प्रकार से ययाति के शाप से जरा के सक्रमण से तुर्वंसु से पीरव वश में पहिले प्रवेश किया था ॥४॥ दुष्कृत का दायाद अर्थात् पुत्र शरह्य नाम बाला राजा हुआ और शरह्य से जनार्णव हुआ । उसके चार पुत्र हुए थे ॥५॥ पाण्ड्य—केरल—चोल और कुल्य ये उन चारों के नाम थे । उनके जनपद भी कुल्य—पाण्ड्या—चोल और सकेरल इन्हीं नामों से हुए थे ॥६॥ द्रुह्यु के दो वीर पुत्र हुए थे जो बभ्रु और सेतु इन नामों से प्रसिद्ध थे । सेतु का पुत्र अरुद्ध था और बभ्रु का रिपु इम नाम से कहा जाता है ॥७॥ यौवनाश्र के द्वारा समिति कठिनाई से बली सिंहत हुआ था और चौदह मास तक बहुत बड़ा युद्ध हुआ था ॥८॥

अरुद्धस्य तु दायादो गान्धारो नाम पार्थिवः ।  
 ख्यायते यस्य नाम्ना तु गान्धारविषयो महान् ॥९  
 गान्धारदेशजाश्चापि तुरगा वाजिना वरा ।  
 गान्धारपुत्रो घर्म्मस्तु घृतस्तस्य सुताऽभवत् ॥१०  
 घृतस्य दुर्दमो जज्ञे प्रचेतास्तस्य चात्मजः ।  
 प्रचेतस पुत्रशत राजानः सर्वे एव ते ॥११  
 म्लेच्छराष्ट्राधिपाः सर्वे ह्युदीची दिशमाश्रिता ।  
 अनो पुत्रा महात्मानस्त्रयः परमधार्म्मिकाः ॥१२  
 सभानरश्च पक्षश्च परपक्षस्तथैव च ।  
 सभानरस्य पुत्रस्तु विद्वान् कालानलो नृप ॥१३  
 कालानलस्य घर्म्मर्मा मृञ्जयो नाम धार्मिकः ।  
 मृञ्जयस्याभवत् पुत्रो वीरो राजा पुरञ्जय ॥१४  
 जनमेजयो महासत्त्व पुरञ्जयसुताऽभवत् ।  
 जनमेजयस्य राजपुत्रमहाशालोऽभवन्नृपः ॥१५  
 आसीदिन्द्रसमो राजा प्रतिष्ठितयशा दिवि ।  
 महामनाः सुतस्तस्य महाशालस्य धार्मिकः ॥१६

प्रच्छ वा दायाद गान्धार नाम वाला नृप हृषा था । त्रिकके नाम मे एत बहून् बडा देग प्रसिद्ध है । ६॥ गान्धार देग मे उत्पन्न होने वाले पौंडो मे परम श्रेष्ठ नुरग होते हैं । गान्धार का पुत्र धर्म या घोर उमाका मुत्र घृन नामक हृषा था ॥१०॥ घृन के दुर्दम ने जन्म लिया घोर दुर्दम ने जन्म लिया घोर दुर्दम का पुत्र प्रचेता हृषा । प्रचेता के एक ही पुत्र हुए थे घोर के सभी राजा हुए थे ॥११॥ ये सब स्तेच्छ राज्ञो के स्वामी हुए थे और उनसे उत्तर दिशा का आश्रय लिया था । धनु के परम धार्मिक महान् आत्मा बाने तीन पुत्र हुए थे ॥१२॥ उन तीनों के नाम सभानर-पश घोर पर पश थे । सभानर के यहाँ उाका पुत्र परम विद्वान् बालानन नृप हृषा था ॥१३॥ बालानन का धर्मिणा गृञ्जय नाम धाना धार्मिक पुत्र हृषा था । गृञ्जय का पुत्र वीर पुरञ्जय ? राजा हृषा था ॥१४॥ महान् मत्त वाला जनमेजय पुरञ्जय का पुत्र उत्तम हृषा था । शत्रुवि जनमेजय का पुत्र महानाव नाम वाला नृप हृषा था ॥१५॥ यह राजा दिवलांक प्रविष्टि पश बाला इन्द्र के गमान हृषा था । उम महा-धावता महावता नामक परम धार्मिक पुत्र हृषा था ॥१६॥

मनद्वीपेदरगो राजा चक्रवर्ती महायना ।  
 महामनाम्नु पुत्री द्वी जनयामाम विधुती ॥१७  
 उनीनरश्च धमश तितिधुश्च धार्मिकम् ।  
 उनीनरस्य पत्न्यस्तु पश राजपियनरा ॥१८  
 मृगा कृमी नवा दर्वा पशमी च हृषद्वती ।  
 उनीनरस्य पुत्रास्तु पश तानु कुत्रोदहा ।  
 तपसा से मुमहता जातमृदाश्च धार्मिका ॥१९  
 मृगायाम्नु मृग पुत्रा नवाना नय एव तु ।  
 कृम्या कृमिन्नु दर्वाया मुद्रतो नाम धार्मिक ॥२०  
 हृषद्वतीमुतत्रापि निधिगोनीनरो द्विजा ।  
 निधे निषुर म्यात गोपेयन्तु मृगस्य तु ॥२१  
 नरस्य नरराष्ट्रन्तु कृमेस्तु कृमिना पुरो ।  
 मुत्रास्य तपसा कृता निधिपुत्रानिरोधन ॥२२



शिवेस्तु शिवय पुत्राश्चत्वारो लोकसम्मता ।  
 वृषदर्भं सुवीरस्तु केकयो मद्रवस्तथा ॥२३॥  
 तेषाञ्जनपदा स्फीता. केकया माद्रकास्तथा ।  
 वृषदर्भा सूचिदर्भास्तिक्षो शृगुत प्रजा ॥२४॥

यह महामना सातो द्वीपो का स्वामी महान् यश वाला चक्रवर्ती राजा हुमा था । उस महामना ने परम प्रसिद्ध दो पुत्रों को जन्म दिया था धर्मार्थ उत्पन्न किया था ॥१७॥ एक का नाम धर्म का जाता उशीनर था और दूसरा परम धार्मिक तिलक्षु हुमा था । उशीनर की राजपियों के वंश में उत्पन्न होने वाली पाँच पत्नियाँ थी ॥१८॥ उनके नाम मृगा—कृमी—नवा—दर्वा और पाँचवी दृशद्वती था । उशीनर के उन पत्नियों में कुलके उद्बहन करने वाले पाँच पुत्र हुए थे । वे महान् तपसे जातवृद्ध और धार्मिक हुए थे ॥१९॥ मृगा के मृग पुत्र था और नवा के नव—इस नाम वाला ही पुत्र हुमा था । कृमी के कृमि और दर्वा के धार्मिक सुवत पुत्र हुमा ॥२०॥ हे द्विजगणो ! दृपद्वती का पुत्र भी भीशीनर शिवि हुमा था । शिवि का शिवपुर और मृग का योदेय पुर हुए ॥२१॥ नव का नवराष्ट्र था और कृमी की कृमिला नाम वाली पुत्री थी । सुवत की वृषा पुरी थी । धर्म शिवि के पुत्रों को बतलाया जाता है उन्हें समझ लो ॥२२॥ राजा शिवि के शिवय नाम के चार पुत्र लोक सम्मत हुए थे जिनके नाम— वृषदर्भ—सुवीर—केकय और मद्रक य थे ॥२३॥ उनके बड़े ही विस्तृत (पँले हुए) जनपद केकय—माद्रक—वृषदर्भ और सूचिदर्भ इन नामों वाले हुए थे । धर्म आगे तिलक्षु के सन्तान के विषय में थवण करो ॥२४॥

तंतिक्षुरभवद्राजा पूर्वस्यान्दिशि विश्रुत ।  
 उन्नद्रयो महाबाहुस्तस्य हेम मुतोऽभवत् ॥२५॥  
 हेमस्य मुतपा जज्ञे गुत मुतयशा बली ।  
 जातो मनुष्ययोऽन्या वं क्षीण वशे प्रजेष्मया ॥२६॥  
 महायोगी स तु बलिर्वन्दो य स महामना ।  
 पुत्रानुत्पादयामास चानुर्ष्यंकरान् भुवि ॥२७॥

अङ्ग स जनयामास वङ्गं सुहृत् तथैव च ।  
पुण्ड्र कलिङ्गञ्च तथा बालेय क्षत्रमुच्यते ॥२८  
बालेया ब्राह्मणाश्चैव तस्य वशकरा प्रभो ।  
यलेस्तु ब्राह्मणा दत्ता वरा प्रीतेन धीमते ॥२९

महायोगित्वमायुश्च कल्पायु परिमाणकम् ।  
सग्रामे चाप्यजेयत्व धर्मं चैव प्रभावना ॥३०  
त्रैलोक्यदर्शनञ्चैव प्राधान्य प्रमवे तथा ।  
बले चाप्रतिमत्व वै धर्मतत्त्वाद्यं दर्शनम् ॥३१  
चतुरो नियतान् वर्णान् त्व वी स्थापयित्तेति च ।  
इत्युक्तो विभुना राजा बलि शान्तिम्परा ययौ ॥३२

तितिक्षु पूर्वं दिना मे परम प्रसिद्ध राजा हुमा था । उग्रद्वय महाबाहु  
उसका हेम पुत्र हुमा था ॥२५॥ हेम का सुतपा बनी सुतयदा उत्पन्न हुमा था ।  
जो वश के क्षीण होजाने पर प्रजा की इच्छा से मनुष्य की योनि में उत्पन्न हुमा  
था ॥२६॥ बद्धबनि जो पा वह महामना और महायोगी था । उसने भूमि मे  
चारो वर्णों के करने वाले पुत्रा को उत्पन्न किया था ॥२७॥ उसने अङ्ग-वङ्ग-  
मुह्ल-पुण्ड्र-कलिङ्ग तथा बालेय को जन्म दिया था जो क्षत्र कहे जाते हैं ।  
बालेय और ब्राह्मण उम प्रभु के वश करने वाले थे । बुद्धिमान् बनि के लिये  
प्रसन्न होने वाले ग्रहा ने वह दान दिये थे ॥२८॥ वे वरदान मे थे—महान्  
योगि व वा होना और कल्पायु परिमाण वाली आयु-सग्राम म अजेय रहना  
और धर्म मे प्रवृष्ट नावना का रहना ॥३०॥ त्रैलोक्य का दर्शन और प्रसव मे  
प्रापाय-बल मे मनुष्य होना तथा धर्म के तत्त्वाद्य का दर्शन-ये वरदान देने  
हुए ब्रह्माजी ने कहा था तुम नियत चार वर्णों का स्थापित करने वाले हो-  
इम तरह मे विभु क द्वारा जब कहा गया तो राजा बनि को परम शान्ति प्राप्त  
हुई थी ॥३१-३२॥

बालेन महता विद्वान् म्वा वै स्थानमुपागत ।  
तेषा जनयदा स्फीना वङ्गाङ्गमुह्लवास्तथा ॥३३

पुण्ड्रा कलिङ्गाश्च तथा तेषा वशं निदोषत ।  
 तस्य ते तनया सर्वे क्षेत्रजा मुनिमम्भवा ।  
 सम्भूता दीर्घतमस मुदेष्णाया महोजसः ॥३४  
 बृहद्भानो सुतो जज्ञे नाम्ना राजा बृहन्मना ।  
 तस्य पत्नीद्वय चासीच्चैद्यस्योभे च ते सुते ॥३५  
 यशोदेवी च सत्या च ताम्या वशस्तु भिद्यते ।  
 जयद्रथस्तु राजेन्द्रो यशोदेव्या व्यजायत ॥३६  
 ब्रह्मक्षत्रातर सत्याविजयो नाम विद्युत् ।  
 विजयस्य धृति पुत्रस्तस्य पुत्रो धृतव्रत ॥३७  
 धृतव्रतस्य पुत्रस्तु सत्यकर्मा महायगा ।  
 सत्यकर्ममुत्श्वापि सूतस्त्वधिरथस्तु वै ॥३८  
 स कर्ण परिजग्राह तेन कर्णस्तु सूतज ।  
 एतद् कथित सर्व कर्णे यद्वै प्रचोदितम् ॥३९  
 एतेऽङ्ग-नशजा, सर्वे राजान कीर्तिता मया ।  
 विस्तरेणानुपूर्व्या च पूरोस्तु शृणुत प्रजा ॥४०

बहुत काल के पश्चात् वह विद्वान् अपन स्थान में आगया था । उनके  
 जनपद बहुत ही विस्तृत एवं विशाल थे जिनके नाम मङ्ग-वङ्ग-मुहुर-पुण्ड्र-  
 कलिङ्ग थे । अब उनके वध को जानलो । उनके वे सब पुत्र मुनिया में जन्म-  
 ग्रहण करने वाले क्षेत्रज हुए थे और महान् भोज वाले दीर्घतम मुदेष्णा म  
 उत्पन्न हुए थे ॥३३-३४॥ श्री सूतजी ने कहा—बृहद्भानु का पुत्र बृहन्मना नाम  
 बाबा राजा हुआ था । उनकी दो पत्नियाँ थी और वे दोनों चैद्य की पुत्रियाँ  
 थी ॥३५॥ एव का नाम यशोदेवी था और दूसरी का नाम सत्या था । इन  
 दोनों से वश भिद्यमान होता है । राजेन्द्र जयद्रथ यशोदेवी की कृति से ममुत्पन्न  
 हुआ था । सत्या से ब्रह्म क्षत्रान्तर विजय नाम वाला विद्युत् हुआ था । विजय  
 के पुत्र धृति हुआ और उमका पुत्र धृतव्रत हुआ था ॥३६-३७॥ धृतव्रत का  
 घामन्न महान् यग वाला सत्यकर्मा नाम वाला उत्पन्न हुआ था । सत्यकर्मा का  
 पुत्र अधिरथ मून उत्पन्न हुआ था ॥३८॥ उमने कर्ण का परिग्रहण किया था

इमीलिये बरुणं मूनज हुमा था । यह सब कर्ण के विषय मे प्रेरित किया गया  
 वह मैने बरुण कर दिया है ॥३६॥ ये अश्व के वश मे उत्पन्न होने वाले सभी  
 राजा मैने बतना दिये हैं । अश्व विस्तार के साथ घोर आनुपूर्वी के अनुसार पूरु  
 की मन्ति का तुम सब मुभते श्रवण करो ॥४०॥

पूरो पुत्रो महाबाहू राजासीजनमेजय ।  
 अविद्धस्तु सुतस्तस्य य प्राचीमजर्षादिगम् ॥४१॥  
 अविद्धत प्रवीररतु मनस्मुरभवत्सुत ।  
 राजाथो जयदो नाम मनस्योरभवत्सुतः ॥४२॥  
 दायादस्तस्य चाप्यामीढुन्धुर्नाम महीपति ।  
 धुन्धोर्वहूगवी पुत्र सञ्जातिस्तस्य चात्मज ॥४३॥  
 सञ्जानेयथ रौद्राश्वस्तस्य पुत्रान्निवापत ।  
 रौद्राश्वस्य धृनाच्या वै दशाप्सरमि मूनव ॥४४॥  
 रजेयुश्च वृत्नेयुश्च वक्षेयु स्थण्डिलेयु च ।  
 धृत्नेयुश्च जलेयुश्च स्थलेयुश्चैव सप्तम ॥४५॥  
 धर्मैयु मघ्नैयुश्च वनेयुर्दशमस्तु स ।  
 रद्रा दूद्रा च मद्रा च शुभा जामलजा तथा ॥४६॥  
 तना सना च सप्तैता या च गापजना स्मृता ।  
 तथा नाघ्नरमा चैव रत्नवृटी च तादृशी ॥४७॥  
 घ्रात्रयो वनतस्तासा भर्ता नाम्ना प्रभाकर ।  
 अनादृष्टन्तु राजर्षी रिवयुम्पस्य चात्मज ॥४८॥

श्री मूनजी ने कहा— पूरु का पुत्र महान् बाहूषा वाता राजा जनमेजय  
 था । उग्राया आत्मज अविद्ध नाम धारो हुमा था त्रिमने पूरु दिशा का विजय  
 किया था ॥४१॥ अविद्ध म प्रदृष्ट वीर मनस्यु नाम वाला सुत हुमा था घोर  
 मनस्यु पुत्र जयद नाम धारी राजा हुमा था ॥४२॥ उम जयद का दायाद  
 अर्षान् उत्तराधिपारी पुत्र धुन्धु नामक महीपति हुआ था । धुन्धु राजा का पुत्र  
 बहूगवी नाम वाला हुमा घोर उम बहूगवी का पुत्र सञ्जाति नाम वाला समुत्पन्न  
 हुमा था ॥४३॥ सञ्जाति का पुत्र रौद्राश्व नाम वाला समुत्पन्न हुमा था अश्व

उत रौद्रास्व के पुत्रों का भी ज्ञान प्राप्त करनी । रौद्रास्व के मुक्त मे घृताची नाम वाली अप्तरा मे दश पुत्रों मे जन्म ग्रहण किया था ॥४४॥ उन दश पुत्रों के नाम—रजेयु—कृतेयु—वशेयु—स्यष्टिडलेयु—घृतेयु—जलयु और सातवाँ स्थलेयु था ॥४५॥ धर्मयु—मन्तयेयु तथा दशवाँ वनेयु था । रुद्रा—शूद्रा—मद्रा—शुभा—जाम-लजा—तला—खला -ये सात और गोपजला कही गई थी तथा तामरसा और बैसी ही रत्नकूटी थी ॥४६-४७॥ वच से ध्रात्रेय प्रभाकर नाम वाला उनका स्वामी था । अनहृष्ट राजर्षि रिवेयु उमका पुत्र था ॥४८॥

रिवेयोर्ज्वलना नाम भार्या वै तक्षकात्मजा ।

यस्या देव्या स राजर्षी रन्ति नाम त्वजीजनत् ॥४९

रन्तिर्नारि सरस्वस्या पुत्रानजनयच्छुभान् ।

त्रमु तथा प्रतिरथ द्रुवश्चैवातिधार्मिकम् ॥५०

गौरी कन्या च विख्याता मान्धातुर्जननी शुभा ।

धुर्यं प्रतिरथस्यापि कण्ठस्तस्याभवत् सुत ॥५१

मेधातिथि सुतस्तस्य यस्मात् काण्ठायना द्विजा ।

इतिनानुयमस्यासीत् कन्या साजनयत्सुतान् ॥५२

त्रमु सुदयित पुत्र मलिन ब्रह्मवादिनम् ।

उपदात् ततो लेभे चतुरस्त्विति सात्मजान् ॥५३

सुष्मन्तमथ दुष्यन्त प्रवीरमनघन्तथा ।

चक्रवर्ती ततो जज्ञे दौप्यन्तिर्नृपसत्तम ॥५४

शकुन्तलाया भरतो यस्य नाम्ना तु भारतम् ।

दुष्यन्त प्रति राजान वागुवाचाशरीरिणी ॥५५

माता भ्रूया पितु पुत्रो येन जात स एव स ।

भरस्व पुत्र दुष्यन्त सत्यमाह शकुन्तला ॥५६

रेतोधा पुत्र नयति नरदेव यमक्षयात् ।

स्व-वास्य धाता गर्भस्य मावमस्या शकुन्तलाम् ॥५७

रिवेयु की 'ज्वलना —इम नाम धानी तक्षक पुत्री भार्या हुई थी । उत

राजर्षि रिवेयु ने जिस ज्वलना देवी मे रन्ति नाम वाला पुत्र उत्पन्न किया था

॥४६॥ नार रन्ति ने सरस्वी में शुभ पुत्रो को समुत्पन्न किया था । तन पुत्रो के नाम हैं—वसु—प्रतिरथ और अनिर्घामिक ध्रुव ॥५०॥ और गौरी विख्यात कन्या थी जोकि मान्यता की शुभ माता हुई थी । प्रतिरथ का पुत्र धुर्य हुआ और उमका पुत्र कण्ठ नाम धारी हुआ ॥५१॥ उमका पुत्र मेघातिथि हुआ जिसके कारणान द्विज हुए । इतिानानु प्रम की कन्या थी उमने पुत्रों को जन्म दिया था ॥५२॥ वसु ने सुदयित पुत्र को जो मलिन, ब्रह्मचारी और उपदात था, प्राप्त किया । इसके पश्चात् उसने चार पुत्रों की प्राप्ति की ॥५३॥ सुष्मन्त इसके उपरान्त दुष्यन्त—प्रवीर और अनघ ये उनके नाम थे । इसके अनन्तर सुपश्रेष्ठ षड्रवर्त्ती दौष्यन्ति उत्पन्न हुआ था ॥५४॥ शकुन्तला में भरत ने जन्म ग्रहण किया था जिसके नाम से इस देश का नाम भारत हुआ है । राजा दुष्यन्त से मूर्तिमती बाणो ने कहा था ॥५५॥ मातर भस्त्रा पिता का पुत्र है, जिससे उत्पन्न हुआ है वह वही है, पुत्र का भरण करो, शकुन्तला दुष्यन्त से सत्य कहती है ॥५६॥ हे नरदेव ! यम धाव से रेतोषा पुत्र को प्राप्त करता है और तुम इसके गभ के घाता हो, शकुन्तला का अपमान मत करो ॥५७॥

भरतस्त्रिसृषु स्त्रीषु नव पुत्रानजीजनत् ।

नाभ्यनन्दञ्च तान् राजा नानुरूपान्ममेत्युत् ॥५८॥

ततस्ता मातरः कुट्टा पुत्रान्त्रिन्युर्यमक्षयम् ।

ततस्तस्य नरेन्द्रस्य वितथ पुत्रजन्म तत् ॥५९॥

ततो मरुद्भिरानीय पुत्रस्तु स बृहस्पते ।

सङ्घा मितो भरद्वाजो मरुद्भिः क्रतुभिर्विभु ॥६०॥

तत्रैवोदाहरन्तीद भरद्वाजस्य धीमत ।

जन्मसङ्क्रमणश्चैव मरुद्भिर्भरताय वै ॥६१॥

भरतस्तु भरद्वाज पुत्र प्राप्य तदाब्रवीत् ।

प्रजाया सत्कृताया वै कृतार्थोऽह त्वया विभो ॥६२॥

पूर्वन्तु वितथ तस्य कृत वै पुत्रजन्म हि ।

तन स वितथो नाम भरद्वाजस्तथाऽभवत् ॥६३॥

तस्माद्दिव्यो भरद्वाजो ब्राह्मण्यात् क्षत्रियोऽभवत् ।

द्विमुख्यायननामा स स्मृतो द्विपितृवस्तु वै ॥६४

ततोऽथ वितथे जाते भरत स दिव ययौ ।

वितथस्य तु दायादो भुवमन्युर्वभूव ह ॥६५

महाभूतोपमाश्वासश्चत्वारो भुवमन्युजा ।

बृहत्क्षनो महावीर्यो नरो गाग्रश्च वीर्यवान् ॥६६

नरस्य साकृति पुत्रस्तस्य पुत्री महीजसी ।

गुरुवीर्यस्त्रिदेवश्च साकृत्यायवरो स्मृतौ ॥६७

दायादाश्चापि गाग्रस्य शनिवद्धात् वभूव ह ।

स्मृताश्च ते ततो गाग्धा क्षात्रोपेता द्विजातयः ॥६८

भरत ने तीन स्त्रियो मे नौ पुत्रो को उत्पन्न किया था किन्तु राजा ने उनका अभिनन्दन नहीं किया था ये मेरे अनु रूप नहीं हैं ॥६८॥ हमने अनन्तर माताएँ बहुत क्रुद्ध हुई थीर उन्होंने पुत्रो को यम क्षय को प्राप्त कर दिया था । हमके उपरान्त उस राज्य का वह पुत्र जन्म वितथ होगया था ॥६९॥ हमने पदवान् मरुतो ने बृहत्सपति मे वह पुत्र तारर क्रतु मरुतो ने विभु भरद्वाज को सक्रामित किया ॥६०॥ वहाँ पर ही धीमान् भरद्वाज का यह मरुतो के द्वारा भरत के लिये जन्म का सक्रामण उदाहृत करने हैं ॥६१॥ भरत ने तो भरद्वाज को पुत्र प्राप्त करके उस समय कहा—हे विभो ! मेरी प्रजा के गहून हो जाने पर ध्यान मुके कृतार्थ किया है ॥६२॥ उसका पहिले तो पुत्र जन्म वितथ कर दिया था । हमके पदवान् वह भरद्वाज वितथ नाम वाला होगया था ॥६३॥ हमने दिव्य भरद्वाज ब्राह्मण्य से क्षत्रिय होगया था तब वह द्विमुख्यायन नाम वाला थीर द्विपितृक कहा गया है ॥६४॥ फिर उस वितथ के उत्पन्न होने पर वह भरत दिवलीक को चला गया था । वितथ का दायाद (पुत्र) भुवमन्यु हुआ था ॥६५॥ महाभूत के समान भुवमन्यु मे जन्म ग्रहण करने वाले पुत्र धार हुए थे । उन चागे के नाम बृहत्क्षत्र-महावीर्य-नर थीर वीर्यवान् गाग्रस्य ये थे ॥६६॥ नर के पुत्र साकृति नामधारी हुआ था । उस साकृति के महान् थीर वाले दो पुत्र हुए थे तिनके नाम गुरुवीर्य थीर त्रिदेव ये थे जो साकृतराज्य रहे

गये हैं ॥६७॥ वायस्य जिनिरुद्ध मे भी दायाद हूँ और ये क्षत्र धर्म मे युक्त  
द्विजानि गाय्य बहे गये हैं ॥६८॥

महावीर्यमुत्तश्चापि भीमस्तस्मादुभयय ।  
तस्य भार्या विशाला तु सुपुत्रे वै सुतास्त्रय ॥६९॥  
त्रय्यारणि पुत्र्यरिण तृतीय सुपुत्रे कपिम् ।  
वपे क्षत्रधरा ह्यते तयो प्राक्ता महर्षय ॥६०॥  
राधा सातृनयो वीर्या क्षत्रोक्ता द्विजानय ।  
मश्रिताद्विरम पक्ष वृहत्क्षत्रस्य वदयति ॥७१॥  
वृहत्क्षत्रस्य दायाद मुहोत्रो नाम धामिव ।  
मुहोत्रस्यापि दायादो हस्ती नाम बभूव ह ।  
तेनेद निमित्त पूर्वं नाम्ना वै हाम्तिन पुत्रम् ॥७२॥  
हस्तिनश्चापि दायादान्त्रय परमधामिवा ।  
अजमीढो द्विमीढश्च पुत्रगीढस्त्रयैव च ॥७३॥  
अजमीढस्य पुत्रान्तु शुभा शुभवृत्तोडहा ।  
तपमोऽन्ते सुमहतो राज्ञो वृद्धस्य धामिवा ॥७४॥  
भरद्वाजप्रसादेन भृगुध्व तस्य विस्तरम् ।  
अजमीढस्य वैगिन्या वशठ समभवत्किन्त ॥७५॥  
मेघानिधि मुत्तन्तस्य तस्मात् वण्डायना द्विजा ।  
अजमीढस्य धूमिन्या जने वृहदनुनृपे ॥७६॥

महावीर्य का पुत्र भी भीम नामक हुआ और उगने विर उभयक्षय हुआ  
८८ ती भार्या विशाला नाम यार्या से नीचे पुत्रो का प्रत्येक विद्या था ॥६९॥ एव  
का नाम त्रय्यारणि वा, दूसरा पुत्र्यरिण और तृतीय वार्य हुआ था । कपि के  
ये क्षत्र नर हूँ और उन शीरो के पदवि कह गये हैं ॥६०॥ वास-माहृतय,  
वीर्य क्षत्र धर्म मे युक्त द्विजानि ये । आद्विरम के पर वा आश्रय निरर वृ-  
क्षत्र का वनतद्वे ॥७१॥ वृहत्क्षत्र का दायाद मुहोत्र नाम धारी परम धामिव  
था । मुहोत्र का भी दायाद हस्ती नाम वाला हुआ था । उगने ही यह हाम्तिन  
पुत्र को नाम मे पहिरे बनाया था ॥७२॥ हस्ती के भी नीचे पुत्र वसुधाम हूँ



थे जोकि परम धर्म के मानने वाले थे । उन तीनों के नाम अजमीड-द्विमीड तथा पुहमीड ये थे ॥७३॥ अजमीड के जो पुत्र हुए थे वे बहुत ही शुभ और कुल के उद्वहन करने वाले थे । मुमहान् तप के अन्त में वृद्ध राजा के धार्मिक हुए थे ॥७४॥ वे भृद्वाज के प्रसाद से ही हुए थे अब उनका विस्तार का श्रवण करो । अजमीड नाम वाले के केशिनी में कण्ठनाम धारी उत्पन्न हुआ था ॥७५॥ मेधाविधि नाम वाला उसका पुत्र था । उससे फिर कण्ठायन द्विज उत्पन्न हुए थे ॥७६॥

वृहद्वसोर्बृहद्विष्णुः पुत्रस्तस्य महाबलः ।

वृहत्कर्मा सुतस्तस्य पुत्रस्तस्य वृहद्रथ ॥७७

विश्वजित्तनयस्तस्य सेनजित्तस्य चात्मजः ।

अथ सेनजितः पुत्राश्चत्वारो लोकविश्रुताः ॥७८

रुचिराश्वश्च काव्यश्च रामो वृद्धधनुस्तथा ।

वत्सश्चावन्तको राजा यस्य ते परिवत्सरा ॥७९

रुचिराश्वस्य दायदः पृथुपेणो महायशाः ।

पृथुपेणस्य पारस्तु पारानीपोऽथ जज्ञिवान् ८०

यस्य चैकशयश्चासीत् पुत्राणामिति न श्रुतम् ।

नीपा इति समाख्याता राजान सर्व एव ते ॥८१

तेषा वशकरः श्रीमान् राजासीत्कीर्तिवर्द्धन ।

काम्पिल्ये समरो नाम स चेष्टसमरोऽभवत् ॥८२

समरस्य परः पार सत्वदश्व इति त्रयः ।

पुत्राः सर्वगुणोपेताः पारपुत्रो वृपुर्वभौ ॥८३

वृषोस्तु सुकृतिर्नाम सुकृतेनह कमणा ।

जज्ञे सर्वगुणोपेतो विश्राजस्तस्य चात्मजः ॥८४

अजमीड के धूमिनी में वृहद्वसु राजा ने जन्म ग्रहण किया था ॥७७॥

वृहद्वसु ने वृहद्विष्णु पुत्र हुआ था जो महान् बलवान् था उसका पुत्र वृहत्कर्मा हुआ और फिर उसका पुत्र वृहद्रथ नाम वाला हुआ था । उनका अर्थात् वृहद्रथ का तनय विश्वजित् हुआ और उसका सेनजित् आरमज हुआ था । इसके उप-

रान्त किर सेनजित् के लोह मे परम प्रसिद्ध चार पुत्रो मे जन्म ब्रह्मण किया था ॥७५॥ उन चारो पुत्रो के नाम रविराश्व-ताप्य-राम और हृदयगु ये थे । वरग भावन्तक राजा था जिसके ये परिवत्सर हुए हैं ॥७६॥ रविराश्व का दायाद महान् यश वाला पृथुमेन था । पृथुमेन का पार हुमा और पार ले नीप ने जन्म लिया था ॥७७॥ जिसके एक शत पुत्र हुए थे—वह हमसे मुना गया है । वे समस्त राजा सोग नीपा—नाम से समाख्यात हुए थे ॥७८॥ उनके वश को करने अर्थात् चलाने वाला श्रीमान् कीर्तिवर्द्धन राजा हुमा था काम्पित्य मे समर नाम वाला वह सबेष्ट उमर हुआ था ॥७९॥ समर के पर पार और सत्वद ये तीन घातमज हुए थे । ये समस्त पुत्र सर्वगुण गण से सम्पन्न थे । पार का पुत्र वृष्टु मुन्नोभिन हुमा था ॥८०॥ वृष्टु का मुहृति नामक पुत्र यहाँ मुहृत्त कर्ष के द्वारा समस्त गुणो से युक्त हुमा था और उसका पुत्र विभ्राज नाम वाला हुमा था ॥८१॥

विभ्राजस्य तु दायादस्त्वगुहो नाम पार्थिव ।  
 बभूव शुक्जामाता ऋचीभर्ता महायशा ॥८५  
 अगुहस्य तु दायादो ब्रह्मदत्तो महातपा ।  
 योगमूनु सुतस्तस्य विष्वक्सेनो ऽभवन्पुत्रः ॥८६  
 विभ्राजपुत्रा राजान मुहृत्तेनेह कर्मरणा ।  
 विष्वक्सेनस्य पुत्रस्तु उदक्सेनो बभूव ह ॥८७  
 भल्ताटस्तस्य दायादो येन राजा पुरा हत ।  
 भल्पाटस्य तु दायादो राजासीञ्जनमेजय ।  
 उग्रायुधेन तस्यार्थे सर्वे नीपा प्रणाशिता ॥८८  
 परीक्षितस्य दायादो बभूव जनमेजय ।  
 श्रुतसेनस्य दायादो भीमसेनोऽपि नामतः ॥८९  
 जहनुस्त्वजनयत्पुत्र मुरस्य नाम भूमिदम् ।  
 मुरस्यस्य तु दायादो वीर्ये राजा विदूरस्य ॥९०  
 विदूरस्यमुत्थापि भावंभोम इति श्रुतिः ।  
 भावंभोमाश्रयणेन भाराधिन्स्य चान्मज ॥९१

आराधितो महासत्त्व अयुतायुस्तत स्मृत ।  
 अक्राधनाऽयुतायोऽन्तु तस्माद् वातिथि स्मृत ॥६२  
 देवातिथेस्तु दायाद ऋक्ष एव बभूव ह ।  
 भीमसेनस्तथा ऋक्षाद्विलीपस्तस्य चात्मज ॥६३  
 दिन्वीपसूनु प्रतिपस्तस्य पुत्रास्त्रय स्मृता ।  
 देवापि शान्तनुश्चैव वाह्वीवश्चैव ते त्रय ॥६४

विभ्राज का दायाद अणुह नामधारी राजा हुआ था । सुकजा माता थी  
 और महान् यगबाला ऋषीन् भत्ता ॥८५॥ अणुह का दायाद (पुत्र) महान्  
 तपस्वी ब्रह्मरत्न हुआ था और उसका तनय योग सूनु और उसका पुत्र विध्वक्  
 सेन नृप हुआ था ॥८६॥ विभ्राज के पुत्र सन् यहाँ सुकृत्न वम क द्वारा राजा  
 हुआ थे । विध्वक्मेन का पुत्र उदक्मेन हुआ था ॥८७॥ उसका दायाद भल्लाट था  
 जिनने पहिले राजा का हनन किया था भल्लाट का दायाद राजा जनमजय था ।  
 उनके लिए उग्रायुध ने समस्त नीपा प्रणष्ट कर दिया था ॥८८॥ श्री सूतजी ने  
 कहा—परीक्षित का दायाद जनमजय नाम वाला हुआ था । श्रुतसेन का पुत्र  
 नाम स भीमसेन हुआ था ॥८९॥ जहनु न सुरथ नाम वाला राजा पुत्र व रूप  
 म उत्पन्न किया था । सुरथ का दायाद परम वीर राजा विदूरथ हुआ था  
 ॥९०॥ विदूरथ का पुत्र स वभीम था—ऐसी श्रुति है । सावभीम स जयत्सन  
 उत्पन्न हुआ और उस जयत्सन का पुत्र आराधि नाम वाला हुआ था ॥९१॥  
 आराधि से अयुतायु हुआ था जो महान् सत्त्व वाला कहा गया है । फिर उम  
 अयुतायु का अश्लेषन पुत्र हुआ और उम अश्लेषन स देवातिथि पुत्र हुआ था  
 ॥९२॥ देवातिथि का दायाद ऋक्ष नाम वाला हुआ था । ऋक्ष से भीमसेन की  
 उत्पत्ति हुई और उसका पुत्र दिलीप नामधारी हुआ था ॥९३॥ दिन्वीप का  
 पुत्र प्रतिप हुआ और उस प्रतिप के तीन पुत्र बट गये हैं । जिनके नाम देवापि-  
 शान्तनु और वाह्वीव य तीन थे ॥९४॥

वाह्वीवस्य तु विज्ञय सप्तवाह्वीरवरो नृप ।  
 वाह्वीवस्य गुनश्चैव सोमदत्ता महायज्ञा ॥९५

जज्ञिरे सोमदत्तात् भूरिभूरिश्चवा शलः ।  
 देवापिस्तु प्रवव्राज वन धर्मपरीप्सया ॥६६  
 उपाध्यायस्तु देवाना देवापिरभवन्मुनि ।  
 च्यवनोऽस्य हि पुत्रस्तु इष्टवश्च महात्मन ॥६७  
 शान्तनुस्त्वभवद्राजा विद्वान् वं स महाभिय ।  
 इम चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं प्रति महाभियम् ॥६८  
 य य राजा स्पृशति वै जीर्णं समयतो नरम् ।  
 पुनर्युवा स भवति तस्मात्ते शन्तनु विदु ॥६९  
 ततोऽस्य शन्तनुत्वं वै प्रजास्विहृ परिश्रुतम् ।  
 स उपयेभे धर्मात्मा शन्तनुर्जाह्नुवी नृप ॥१००  
 तस्या देवव्रत भीष्म पुत्र सोऽजनयत्प्रभु ।  
 स च भीष्म इति ख्यात पाण्डवाना पितामह ॥१०१  
 काले विवित्रवीर्यन्तु शन्तनु जंनयत्सुतम् ।  
 शन्तनोर्दयित पुत्र प्रजाहितकरम्प्रभुम् ।  
 कुप्याद्दं पायनश्चं व क्षेत्रे वै चित्रवीर्यके ॥१०२  
 धृतराष्ट्रश्च पाण्डुश्च विदुरश्चाप्यजीजनत् ।  
 धृतराष्ट्रात्तु गान्धारी पृथागा मुपुवे शतम् १०३  
 तेषा दुर्योधनां ज्येष्ठ सव्वंक्षत्रस्य स प्रभ. ।  
 माद्री राज्ञी पृथा चं व पाण्डाभार्यो बभूवतु ॥१०४

वाह्लीक का पुत्र वाह्लीश्वर नृप हुआ था । और वाह्लीक का पुत्र  
 महान् यश वाला सामदत्त था ॥६५॥ सोमदत्त से भूरि-भूरिश्चवा और शल  
 नाम वाल तीन पुत्र रत्न मणुस्त्वन्न हुए थे । देवापि तो धर्म की इच्छा से वन म  
 चला गया था ॥६६॥ देवापि मुनि वही वन म जाकर हात्रगण का उपाध्याय  
 होगया था । इनका पुत्र च्यवन और महान् आत्मा वाले का इष्टक हुआ था  
 ॥६७॥ शान्तनु तो राजा हुआ था वह महान् विद्वान् और महाभिय था । महा-  
 भिय के प्रति यहाँ पर इन श्लोक का उदाहरण किया करते हैं ॥६८॥ समय  
 से जीर्ण जिस-जिस भी मनुष्य को राजा सप्तों किया करना है वह फिर अपने

उस वाद्धक्य का त्याग कर युवा हो जाता है इसी में उसे शन्तनु कहा करते थे :।१६६।। इनके पश्चात् इसका शन्तनुत्व प्रजापति में यहाँ परिश्रुत है। उस शन्तनु राजा ने जोकि अत्यन्त धर्मिण था जाह्नवी के साथ विवाह किया था, जहनु राजा की पुत्री गङ्गा को जाह्नवी कहा जाता था ॥१००॥ उस प्रभु शान्तनु ने उस जाह्नवी में देवव्रत नाम वाले भीष्म पुत्र को उत्पन्न किया था। वह पाण्डवों का पितामह 'भीष्म'—इस नाम से ही प्रख्यात था ॥१०१॥ समय आने पर शन्तनु ने विचित्र वीर्य पुत्र को उत्पन्न किया था। यह शन्तनु को परम प्रिय और प्रजा का हित करने वाले प्रभु पुत्र था। इस विचित्र वीर्य के क्षेत्र में कृष्ण द्वैपायन ने धृतराष्ट्र—पाण्डु और विदुर को उत्पन्न किया था। धृतराष्ट्र से उनकी पत्नी गान्धारी में मौ पुत्र समुत्त हुआ थे ॥१०२-१०३॥ उन एक ही पुत्रों में सबसे बड़ा सर्वक्षत्र का प्रभु वह दुर्योधन था। रानी माद्री और पूया ये दो पत्नियाँ पाण्डु ही हुई थीं ॥१०४॥

देवदत्ता मुतास्ताम्या पाण्डोरथे विजजिरे ।  
 धर्म्मद्युधिष्ठरो जज्ञे वायोर्जज्ञे वृकोदरः १०५  
 इन्द्राद्धनञ्जयो जज्ञे शक्रतुल्यपराक्रमः ।  
 अश्विन्या सह देवश्च नकुलश्चापि माद्रीजौ ॥१०६  
 पश्वं व पाण्डवेभ्यश्च द्रौपद्या जजिरे सुता ।  
 'द्रौपद्यजनयञ्ज्येष्ठ शुतिविद्ध युधिष्ठिरात् ॥१०७  
 हिडम्बा भीमसेनात्तु जज्ञे पुत्रं घटोत्कचम् ।  
 काश्या पुनर्भीमसेनाज्जज्ञे सर्व्ववृक सुतम् ॥१०८  
 सुहोत्रं विजया माद्री सहदेवादजायत ।  
 करेमत्यान्तु वंद्यामा निरमितस्तु लाङ्गलिः ॥१०९  
 सुभद्राया रथी पार्थादिभिमन्युरजायत ।  
 उत्तरायास्तु वंराण्या परीक्षितभिमन्युज ॥११०  
 परीक्षितस्तु दायानो राजासीञ्जनमेजय ।  
 ब्राह्मणान् स्थापयामास वै बाजसनेयिवान् ॥१११

असपत्न तदामर्षद्विशम्पायन एव तु ।  
 न स्थास्यतीह दुर्बुद्धे तवैतद्वचन भुवि ॥११२  
 यावत्स्थास्याम्यह लोके तावन्नेतत्प्रशस्यते ।  
 अभित सस्थितश्चापि ततः स जनमेजय ॥११३  
 पौर्णमास्येन हविषा देवमिष्टा प्रजापतिम् ।  
 विज्ञाय सस्थितोऽपश्यत्तद्वधीष्ठा विभोर्मखे ॥११४

उन दोनों पत्नियों से देवों के द्वारा दिये हुए पाण्डु के अर्घ्य में पुत्र समुत्पन्न हुए थे । धर्म से युधिष्ठिर—वायु से वृकोदर—इन्द्र से धनञ्जय जो इन्द्र के समान पराक्रमी था—अश्विनी कुमारों से सहदेव और माद्री से जन्म लेने वाले न कुल ये दो पुत्र हुए थे ॥१०५-१०६॥ इन पाँचों पाण्डवों से पाँच ही द्रौपदी में पुत्र उत्पन्न हुए थे । द्रौपदी ने सबसे बड़ा पुत्र युधिष्ठिर से श्रुति विद्व नाम वाला समुत्पन्न किया था ॥१०७॥ दिगम्बा ने भीमसेन से घटोत्कच नाम वाला पुत्र उत्पन्न किया था । काशी से भीमसेन का सर्ववृक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥१०८॥ सहदेव से विजया माद्री ने सुहोत्र नाम वाला पुत्र जन्माया था । करेमती वैद्या में निर्भित्र जाङ्गलि उत्पन्न हुआ ॥१०९॥ सुभद्रा में रथी अभिमन्यु पार्थ अर्जुन से समुत्पन्न हुआ था । वैराटी उत्तरा में अग्निमन्यु का पुत्र परीक्षित उत्पन्न हुआ ॥११०॥ परीक्षित् का दायाद राजा जनमेजय हुआ था । उसने वाजसनेयो ब्राह्मणों की स्थापना की थी ॥१११॥ तब अमर्ष से वैशम्पायन ने कहा—हे दुर्बुद्धे ! भूमि में यहाँ तेरा यह असपत्न वचन नहीं रहेगा ॥११२॥ मैं जब तक लोक में रहूँगा तब तक यह प्रशस्त नहीं होगा । चाहे सब प्रकार से वह जनमेजय सस्थित भी था ॥११३॥ पौर्णमास्य हवि से प्रजापति देव का यजन करके और जानकर विभु के मुख में सस्थित होते हुए उनकी तरह अधीष्ट को देखा था ॥११४॥

परीक्षित्तनयश्चापि पौरयो जनमेजय ।  
 द्विरश्वमेधमात्हत्य ततो वाजसनेयकम् ।  
 प्रवर्त्तयित्वा तद्ब्रह्मश्रितुर्वी जनमेजय ॥११५

सध्वंनश्वकमुन्याना खड्वंमङ्गनिवासिनाम् ।  
 खड्वंश्च मध्यदेशाना त्रिस्र्वीं जनमेजय ।  
 विपादाद् ब्राह्मणं साद्धर्मभिशस्त क्षय ययो ॥११६॥  
 तस्य पुत्र शतानीको बलवान् सत्यविक्रम ।  
 तत सुत शतानीक विप्रास्तमभ्यपेचयत् ॥११७॥  
 पुत्रोऽश्वमेघ दत्तोऽभूच्छतानीकस्य धीर्यवान् ।  
 पुत्रोऽश्वमेघदत्ताद्द्वै जात परपुरजय ॥११८॥  
 अधिसामकृष्णो घर्मात्मा साम्प्रतोऽय महायशा ।  
 यस्मिन् प्रशासति मही युष्माभिरिदमात्तदृत् ॥११९॥  
 दुराप दीघसन वं श्रीणि वर्षाणि दुश्चरम् ।  
 वपंढय कुरुक्षेत्रे हृपद्वत्या द्विजोत्तमा ॥१२०॥

परीक्षित के पुत्र पौरव जनमेजय ने दो अश्वमेघ यज्ञों का आह्वरण करके  
 इसके पश्चात् बाजमनेव को प्रवृत्त कराकर तब जनमेजय द्रह्मत्रिस्र्वीं होगया  
 था ॥११५॥ मुख्य अश्वों की एक खब सख्या—अङ्गनिवासियों का एक खब और  
 मध्य देशों का एक खब इस तरह से जनमेजय त्रिस्र्वीं हुआ था । विपाद से  
 ब्राह्मणों के साथ अभिशप्त होता हुआ क्षय को प्राप्त हुआ था ॥११६॥ उसका  
 पुत्र शतानीक था जो बहुत बलवान् और सत्य विक्रम वाला था । इसके पश्चात्  
 ब्राह्मणों ने उस पुत्र शतानीक को राज्य पर अभिषेक कर दिया था ॥११७॥  
 शतानीक का पुत्र अश्वमेघ दत्त बड़ा धीरवान् हुआ था । अश्वमेघ दत्त से  
 परपुरजय पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥११८॥ यह महान् पावाला साम्प्रत बहुत  
 घर्मात्मा अधिसाम कृष्ण है जिसके भूमिपर प्रशासन करने पर तुम लोगों ने यह  
 आहूत किया है । जोकि तीन वर्ष पयन्त बड़ा दुश्चर एवं दुराप यह दीघ सत्र  
 है । हे द्विजोत्तमो ! दो वर्ष तक कुरुक्षेत्र में हृपद्वती में हुआ था ॥११९ १२०॥

श्रोतु भविष्यमिच्छाम प्रजाना वं महामते ।

सूत साद्धं नृपं भविष्य व्यतीत कीर्तित त्वया ॥१२१॥

यत्तु सस्थास्यते कृत्यमुत्पत्स्यन्ति च ये नृपा ।

वर्षाप्रतोऽपि प्रब्रूहि नामतश्चैव सान्मृपान् ॥१२२॥

काल युगप्रमाणश्च गुणदोषान् भविष्यत ।  
 सुखदुःखे प्रजानाञ्च धर्मतः कामतोऽर्थतः ॥१२३॥  
 एतत्सर्वं प्रसङ्गघाय पृच्छता ब्रूहि तत्त्वतः ।  
 स एवमुक्तो मुनिभिः सूतो बुद्धिमता वरः ।  
 आचक्षे यथावृत्तं यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥१२४॥  
 यथा मे कीर्तितं सर्वं व्यासेनाद्भुतकम्मणा ।  
 भाव्यं कलियुगञ्चैव तथा मन्वन्तराणि तु ॥१२५॥  
 अनागतानि सर्वाणि ब्रूवतो मे निबोधत ।  
 अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि भविष्यन्ति नृपास्तु ये ॥१२६॥  
 ऐलाश्र्वं च तथेदवाकून् सोद्युम्नाश्र्वं च पार्थिवान् ।  
 येषु सस्थाप्यते क्षेत्रगंधवाकवमिदं शुभम् ॥१२७॥  
 तान् सर्वान् कीर्तयिष्यामि भविष्ये पठितान् नृपान् ।  
 तेभ्यः परे च ये चान्ये उत्पत्स्यन्ते महीक्षित ॥१२८॥  
 क्षत्रा पारशवा शूद्रास्तथा ये च द्विजातयः ।  
 अन्धा शका पुलिन्दाश्च तूलिका यवनैः सह ॥१२९॥  
 कैवर्त्ताभीरशबरा ये चान्ये म्लेच्छजातयः ।  
 वर्षाग्रतः प्रवक्ष्यामि नामतश्चैव तान् नृपान् ॥१३०॥

श्रुणुयथो ने कहा—हे महान् मति वाले ! अब हम लोग प्रजापति का पागे आने वाले भविष्यकाल मुना की उत्कट इच्छा करते हैं । हे सूत ! आपने अब तक तो जो होगा और हो रहा है वह ही बखाना किया है ॥१२१॥ जो कृत्य सन्धिगत होगा और जो राजा लोग उत्पन्न होंगे । उन समस्त राजाओं की वर्षाग्र से और नाम से बतलाइये ॥१२२॥ काल और युग का प्रमाण तथा हमने वाले गुण एव दोषों को बताइये । धर्म से और काम से प्रजापति के सुख तथा दुःखों को भी बताइये ॥१२३॥ यह सब प्रसंग्यान करके पूछने वाले हमको आप कृपा करके तात्त्विक रूप से बताइये । बुद्धिमानों में परम श्रेष्ठ इस तरह से मुनियों के द्वारा पूछे गये श्री सूतजी ने जैसा भी हुआ जैसा देखा और जित प्रकार से मुना था वह कहना आरम्भ कर दिया था ॥१२४॥ श्री सूतजी ने



कहा—बहुत कर्म करने वाले थी व्यासजी ने जिन तरह से मुझसे यह सब कहा था । भाव्य-कलियुग और मन्वन्तर उन सब घनागतों को मुझसे जान लो । इनके आगे जो नृप होंगे उनको बताऊँगा ॥१२५-१२६॥ ऐलो को—इक्ष्वाकुओं को और सीधुम्न राजाओं को जिनमें यह शुभ ऐश्वर्यजन क्षेत्र सस्थापति किया जाता है उन सब भविष्य में घटित राजाओं का वर्णन करूँगा । और उनके आगे जो अन्य राजा लोग उत्पन्न होंगे ॥१२७-१२८॥ पारशव क्षत्रियों का समूह तथा बृद्ध और जो द्विजातिगण थे, अन्ध-शक-बुलन्द-यवतो के साथ तूलिक-कैवत्त-अभीर-शबर और जो अन्य म्लेच्छ जाति वाले लोग इन समस्त नृपों को वर्षात्र तथा नाम से बतलाऊँगा ॥१२९-१३०॥

अधिसामकृष्ण सोऽय साम्प्रत पौरवानृप ।  
 तस्यान्ववाये वक्ष्यामि भविष्ये तावतो नृपान् ॥१३१  
 अधिसामकृष्णपुत्रो निर्वंशत्रे भविता किल ।  
 गङ्गापारहते तस्मिन्नगरे नागसाह्वये ।  
 त्यक्त्वा च त सुवासञ्च कौशाम्ब्या स निवत्स्यति ॥१३२  
 भविष्यदुदरास्तपुत्र उष्णाच्चित्ररथ स्मृत ।  
 शुचिद्रथश्चिनरषाद्गृतिमाश्च सुचिद्रथात् ॥१३३  
 सुपेशो वै महावीर्यो भविष्यति महायशा ।  
 तस्मात्सुपेशाद्भविता सुतीर्थो नाम पाथिव ॥१३४  
 एव सुतीर्थाद्भविता त्रिषशो भविता तत ।  
 त्रिचक्षस्य तु दायादो भविता वै सुलीबल ॥१३५  
 सुलीबलसुतश्चापि भाव्या राजा पारिप्लुत ।  
 पारिप्लुतसुतश्चापि भविता मुनयो नृप ॥१३६  
 मेधावी मुनयस्याथ भविष्यति नराधिप ।  
 मेधाविन सुतश्चापि दण्डपाणिर्भविष्यति ॥१३७  
 दण्डपाणोर्निरामिनो निरामिनाह्व क्षेमक ।  
 पञ्चविदानृपा ह्येते भविष्या पूर्ववशजा ॥१३८

अधिनाम कृष्ण वह यह साम्प्रत पौरवो का राजा है । उसके अन्वय में भविष्य में उतने राजाओं का वर्णन कहेंगा ॥१३१॥ अधिसाम कृष्ण का पुत्र निर्वाक में होगा । नागस नामक उस नगर के गङ्गा के द्वारा अपहृत होजाने पर वह उसका निवास त्याग करके वीशाम्बी में निवाम करेगा ॥१३२॥ उसका पुत्र उष्ण होगा और उष्ण से चित्ररथ होगा । चित्ररथ का पुत्र शुचिद्रय होगा और शुचिद्रय से वृत्तिमान् होगा ॥१३३॥ सुयेण निश्चय ही महान् यशवाला होगा । उम सुयेण का आत्मज सुनीर्य नामधारी राजा होगा ॥१३४॥ सुतीर्य से रुच का जन्म होगा और फिर उमसे त्रिचक्ष होगा । त्रिचक्ष का दायद सुखी-बल नाम वाला होगा ॥१३५॥ सुखीबल का पुत्र परिप्लुत नामक राजा होगा । फिर परिप्लुत का पुत्र सुनय नाम वाला राजा होगा ॥१३६॥ सुनय का पुत्र मेघावी नामक राजा होगा और मेघावी का पुत्र दण्डपाणि नाम वाला जन्म ग्रहण करेगा ॥१३७॥ दण्डपाणि से निरामित्र होगा और निरामित्र से क्षेमक नाम वाला जन्म प्राप्त करेगा । ये पच्चीस राजा पूर्व वंशज होंगे ॥१३८॥

आत्रनुवशरलोकोऽय गीतो विप्रै पुराविदे ।

ब्रह्मक्षत्रस्य यो योनिर्वंशो देवपिसत्कृत ॥१३९

क्षेमक प्राप्य राजान सस्या प्राप्स्यति वै कलौ ।

इत्येष पौरवो वंशो यथावदनुकीर्तितः ॥१४०

धीमत पाण्डुपुत्रस्य ह्यर्जुनस्य महात्मन ।

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि इक्ष्वाकूणा महात्मनाम् ॥१४१

वृहद्रथस्य दायदो वीरो राजा बृहत्क्षय ।

तन क्षय सुतस्तस्य वत्सव्यूहस्तन क्षयान् ॥१४२

वत्सव्यूहात्प्रतिप्यूहस्तस्य पुत्रो दिवाकर ।

यश्च माप्रतमच्यास्त धयोध्या नगरी नृप ॥१४३

दिवाकरस्य भविता सहदेवो महायशा ।

महदेवस्य दायदो बृहदक्षो भविष्यति ॥१४४

तस्य भानुरथो भाष्य प्रनीताद्वश्च तरुण ।

प्रनीताद्वगुनश्चापि गुप्रनीतो भविष्यति ॥१४५

महदेव सुतस्य सुतस्य सुतस्य ॥१६६॥

यहाँ पर पुराणवादी विद्वानों के द्वारा धनुर्जय का यह श्लोक लया गया है जो ब्रह्मण्य की शक्ति है वह यम देवियों के द्वारा गारुड हुआ है ॥१६६॥ यमपुत्र धनुर्जय यह शीतल बस शेषर राजा को प्राप्त करके कनिष्क में संस्था को प्राप्त करेगा ॥१६७॥ यम सुप्रियाय महान् याम्ना वात वाण्डु के पुत्र धनुर्जय का यह वंश है । यम इनके छोटे महाराजा इक्ष्वाकुओं के वंश का वर्णन करेगा ॥१६८॥ कृष्ण का दायाद शीर राजा कृष्णय है फिर उसके पदपुत्र उगवा पुत्र वाण्डुह दाप ले हुआ ॥१६९॥ यमपुत्र से प्रतिपुत्र शीर उगवा पुत्र विवाकर हुआ है जो इन समय से यमपुत्रा नगरी का राजा है ॥१७०॥ विवाकर का पुत्र मदाय यमवाला महदेव होगा शीर महदेव का उत्तराधिकारी पुत्र कृष्णय होगा ॥१७१॥ उग कृष्णय राजा का पुत्र मानुष्य होगा शीर उगवा पुत्र प्रतीनारथ होगा । प्रतीनारथ का पुत्र सुप्रभोज नाम वाता नाम कहलु करेगा ॥१७२॥ उग सुप्रभोज का पुत्र महदेव होगा शीर महदेव का पुत्र सुतस्य नाम लेगा ॥१७३॥

विप्ररत्न सुतस्य सुतस्य सुतस्य ॥

भविता भान्तरिदास्तु विप्ररत्न सुतो मदाय ॥१७४॥

घन्तगिशास्तुपणस्तु सुपर्णाहाप्यमिन्द्रजित् ।

पुत्रस्तस्य भरद्वाजो धर्मो तस्य सुत स्मृत ।

पुत्र कृतञ्जयो नाम भविता स भविष्यति ।

कृतञ्जयमुतो प्रातो तस्य पुत्रो रणञ्जय ॥१७५॥

भविता सञ्जयश्चापि वीरो राजा रणञ्जयात् ।

सञ्जयस्य सुत शाक्य शाक्याच्छुद्धोदनोऽभवत् ॥१७६॥

शुद्धोदनस्य भविता शाक्यार्थे राहुण स्मृत ।

प्रसेनजित्तो भाव्य शुद्रको भविता तत ॥१७७॥

शुद्रपात्शुनिको भाव्य शुनिकात्सुरस्य स्मृत ।

सुमित्र सुरस्यस्यापि घन्त्यञ्च भविता नृप ॥१७८॥

एते ऐश्वर्याक्या प्रोक्ता भवितार कली युगे ।

बृहद्बलान्वये जाता भवितार कली युगे ।

धूराश्च वृत्तविद्याश्च सत्यसन्धा जितेन्द्रिया ॥१५२॥

गुलशन का पुत्र किल्लर नामधारी परन्तप होगा । और फिर किल्लर

का पुत्र बृहन् ही महान् घन्तरिक्ष होगा ॥१५३॥ घन्तरिक्ष से गुपरां नामक

पुत्र जन्म लेगा और गुपरां का पुत्र घमित्रजित् नामधारी होगा । उसका पुत्र

भरद्वाज और उमगे यहाँ पर घर्मी नामक पुत्र होगा । फिर घर्मी का वृत्तजय

नाम वाला पुत्र समुद्रग्न होगा । वृत्तजय का पुत्र घात नामक होगा और इगवा

पुत्र रणजय नाम वाला जन्म ग्रहण करेगा ॥१५६॥ रणजय से मञ्जय

नाम का और राजा होगा । मञ्जय का पुत्र चाक्य होगा और चाक्य से शुडोदन

नाम वाला हुआ था ॥१५६॥ शुडोदन नामधारी से राहुल नाम से बड़े जाने

वाला पुत्र होगा । उमगे फिर प्रमेनजित् होगा और उम प्रमेनजित् से शुद्रक

होगा ॥१५०॥ शुद्रक का पुत्र शुक्तिव होगा और शुक्तिव से मुरध नाम से कहा

जाने वाला पुत्र जन्म धारण करेगा । मुरध से गुमित्र नामक घन्त से होने वाला

राजा होगा ॥१५१॥ ये इतने इन्द्राहु के वंश में होने वाले बताये गये हैं जोकि

घाने कतिपुत्र से जन्म धारण कर धारण करेंगे । ये सब बृहद्बल के वंश में

जन्म ग्रहण करेंगे और कतिपुत्र से ही होंगे ये सभी राजा धूरवीर से—दुर्गविष

धर्षान् विद्या पढ़े हुए—ये सब सत्य सन्धा प्रतिभा वाले और इन्द्रियों को जीतने

वाले थे ॥१५२॥

धनानुवन्तानोकोऽप्य भविष्यन्तः साहसतः ।

दृष्ट्वाङ्गामय वनं सुमित्रान्तो भविष्यति ।

सुमित्र प्राप्य राजानं गम्यां प्राप्यति यं कवी ।

दृष्येत्तन्मानव दीप्रमंतस्य समुदासृतम् ॥१५३॥

धन ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि मागधेयान्बृहद्रथान् ।

त्रयमन्धस्य ये यतो महदेवान्वये नृणा ॥१५४॥

धनीना गतमानाभ भविष्यात्त तथा पुनः ।

प्रापान्वय प्रवक्ष्यामि गतानो मे नियोषत ॥१५५॥

सप्रामे भारते तस्मिन् सहदेवो निपातित ।  
 सोमाभिस्तस्य तनयो राजपि स गिरिव्रजे ॥११५६  
 पञ्चाशत् तथाष्टौ च समा राज्यमकारयत् ।  
 श्रुतश्रवा चतु पष्टिसमास्तस्य सुतोऽभवद् ।  
 अमुतायुस्तु पष्टिवश राज्य वर्षाण्यकारयत् ।  
 समा. शत निरामित्रो मही भुक्त्वा दिवङ्गत ॥११५७  
 पञ्चाशत् समा पट् च सुकृतः प्राप्तवान्महीम् ।  
 त्रयोविंश बृहत्कर्मा राज्य वर्षाण्यकारयत् ॥११५८  
 सेनाजित्साम्प्रत चापि एता वं भुज्यते समा ।  
 श्रुतञ्जयस्तु वर्षाणि चत्वारिणाद्भविष्यति ॥११५९  
 महाबाहुर्महाबुद्धिर्महाभीमपराक्रमः ।  
 पञ्चानि शतु वर्षाणि मही पालयिता नृप ॥११६०

यहाँ पर भविष्य के ज्ञाताओं के द्वारा यह अनुभव स्वर्ग उदाहृत किया गया है कि इक्ष्वाकुओं का यह वंश सुमित्र के अन्त तक ही होगा । सुमित्र राजा को प्राप्त करके कलियुग में सत्पात्र को प्राप्त करेगा । यह इतना ऐन का मानव उदाहृत किया गया है ॥११५३॥ इनके आगे मागधय बृहद्रथों का वर्णन करूँगा जो सहदेव के अन्वय में जरासप के वध में राजा थे ॥११५४॥ जो धृतीत होगये भीरु जो इस समय में वर्तमान हैं तथा जो भविष्य में राजा होंगे मैं इन सबको प्राधान्य रूप से बताऊँगा । बताने वाले मुझसे इन सबका ज्ञान प्राप्त करो ॥११५५॥ उस भारत नग्नम में सहदेव निपातित होगया था । उसका पुत्र राजपि सोमाधि हुआ उसने गिरि व्रज में अट्ठावन वर्ष पर्यंत राज्य किया था फिर चौगठ वर्ष तक उसका पुत्र श्रुतश्रवा नाम वाला हुआ । अमुतायु ने छ'भोग वर्ष राज्य किया था । निरामित्र तो वय तक राज्य करके दिवङ्गत हुआ था ॥११५६-११५७॥ पचाम् घोर छँ छप्पन वर्ष तक गुहस ने दग भूमि को प्राप्त किया था । तेईन वर्ष बृहत्कर्मा ने राज्य दासत किया था ॥११५८॥ इन समय सेनाजित् हम भुवण्डन को भोग रहा है । अन्वय मागीन वय तक भविष्य में

राज्य दासन करेगा ॥१५६॥ महान् बुद्धि वाला और महान् भीम पराक्रम वाला महाबाहु नृप पैंतीस वर्ष तक भूमि का पालक होगा ॥१६०॥

अष्टपञ्चाशत् चाब्दान् राज्ये स्थास्यति वै शुचि ।  
 अष्टाविंशत्समा पूर्णा. क्षेमो राजा भविष्यति ॥१६१  
 भुवतस्तु चतु पष्टीराज्य प्राप्स्यति वीर्यवान् ।  
 पञ्चवर्षाणि पूर्णानि धर्मनेत्रो भविष्यति ॥१६२  
 भोक्ष्यते नृपतिश्चैव ह्यष्टपञ्चाशत् समाः ।  
 अष्टात्रिंशत्समा राज्य सुव्रतस्य भविष्यति ॥१६३  
 चत्वारिंशद्दशाष्टौ च दृढसेनो भविष्यति ।  
 त्रयस्त्रिंशत्तु वर्षाणि सुमति प्राप्स्यते तत ॥१६४  
 द्वाविंशतिसमा राज्य मुचलो भोक्ष्यते तत ।  
 चत्वारिंशत्समा राजा सुनेत्रो भोक्ष्यते तत ॥१६५  
 सत्यजित्पृथिवीराज्य त्र्यशीति भोक्ष्यते समा ।  
 प्राप्येमा वीरजिह्वापि पञ्चात्रिंशद्भुविष्यति ॥१६६  
 परिल्लयस्तु वर्षाणि पञ्चाशत्प्राप्स्यते महीम् ।  
 द्वात्रिंशच्च नृपा ह्येते भवितारो बृहद्रथा ॥१६७

शुनि नाम वाला राजा षट्ठावन वर्ष तक राज्य में स्थित रहेगा और क्षेम नामधारी राजा षट्ठाईस वर्ष तक होगा ॥१६१॥ वीर्यवान् भुवत चौमठ वर्ष तक राज्य को प्राप्त करेगा । पुरे पाँच वर्ष तक धर्मनेत्र राजा रहेगा ॥१६२॥ षट्ठावन वर्ष तक नृपति इन भूमि का उपयोग करेगा । अठनीस वर्ष तक सुव्रत का राज्य होगा ॥१६३॥ बालीग दस और घाठ वर्ष तक दृढसेन राजा होगा । तेनीग वर्ष पर्यन्त फिर सुमति नाम वाला भूमि को प्राप्त करेगा ॥१६४॥ इनके उपरान्त द्वात्रिंशत् वर्ष तक मुचल नाम वाला भूमि के दासन का उपयोग करेगा । बालीग वर्ष तक सुनेत्र भूमिदान का भोग करेगा ॥१६५॥ सत्यजित् राजा त्रिंशती वर्ष पर्यन्त भूमि का भोग करेगा । फिर इन भूमि को प्राप्त करने पैंतीस वर्ष तक वीरजित् राजा होगा । १६६॥ परिल्लय राजा पञ्चास वर्ष तक

इमं भूमण्डलं परं शासनं करेण । ये वत्सीस राजा वृहद्रथ नाम धाने इमं भूमिं परं ह्येते ॥१६७॥

पूर्णं वर्षसहस्रं वै तेषां राज्यं भविष्यति ।

वृहद्रथेष्वतीतेषु वीतहोत्रेषु वत्सिषु ॥१६८

मुनिकं स्वामिनं हत्वा पुत्रं समभिषेक्ष्यति ।

मिपता क्षत्रियाणां हि प्रद्यातो मुनिको बलात् ॥१६९

स वै प्रणतसामन्तो भविष्ये नयवर्जितः ।

त्रयोविंशत्समा राजा भविता स नरोत्तमः ॥१७०

चतुर्विंशत्समा राजा पालको भविता ततः ।

त्रिंशत्समा नृपः पञ्चाशती समा ॥१७१

एकत्रिंशत्समा राज्यमजकस्य भविष्यति ।

भविष्यति समा विशत्समुतो वर्त्तिवद्भङ्गः ॥१७२

अष्टात्रिंशच्छतं भाव्या प्राद्योता पञ्च ते मुताः ।

हत्वा तेषां यशं कृत्स्नं शिशुनाको भविष्यति ॥१७३

वाराणस्यां सुतस्तस्य संप्राप्स्यति गिरिप्रजम् ।

शिशुनाकस्य वर्षाणि चत्वारिंशद्भूविष्यति ॥१७४

शतवर्षं सुतस्तस्य षट्त्रिंशच्च भविष्यति ।

ततस्तु विंशतिं राजा क्षेमवर्मा भविष्यति ॥१७५

अजातशत्रुभविता पञ्चविंशत्समा नृपः ।

चत्वारिंशत्समा राज्यं क्षत्रौजा प्राप्स्यते ततः ॥१७६

पूरे भी वष पयन्त उनका राज्य होगा । वृहद्रथो के व्यतीत हो जाने पर और वीत होने को समाप्त होने पर मुनिक स्वामी को मारकर पुत्र का अभिषेक करेगा । क्षत्रियों को हटकर मुनिक बलपूर्वक राज्य को छीन लेगा ॥१६८ १६९॥ वह नयवर्जित प्रणत समस्त भविष्य म नरोत्तम तेईस वर्ष तक राजा होगा ॥१७०॥ फिर इनके उपरान्त पालक नाम वाला इन भूमि का राजा होगा । त्रिंशत्समा नाम वाला पचास वर्ष तक राजा होगा ॥१७१॥ इक्ष्वाकु नाम का यह यही पर अजक का राज्य होगा । फिर उसके पुत्र वर्त्तिवद्भङ्ग न का राज्य

बीस वर्ष तक रहेगा ॥१७२॥ वे पाँच प्राचीन पुत्र अहनीस सी वर्ष तक होंगे फिर उनके समस्त यज्ञ को समाप्त कर शिशु नाक बान्ना राजा होगा ॥१७३॥ उसका पुत्र वाराणसी में गिरिद्वज को प्राप्त करेगा । शिशु नाक का राज्य बालीस वर्ष तक होगा ॥१७४॥ उसका पुत्र शक वर्ष धृस्तीस वर्ष पर्यन्त राज्य करेगा । फिर इसके उपरान्त क्षेम वर्मा बीस वर्ष तक राज्य शासन करेगा ॥१७५॥ पञ्चवीस वर्ष तक इसके पश्चात् प्रजात शत्रु नामधारी राजा रहेगा । फिर बालीस वर्ष पर्यन्त क्षत्रीया इस राज्य को प्राप्त करेगा ॥१७६॥

अष्टाविंशत्समा राजा विविंसारो भविष्यति ।  
 पञ्चविंशत्समा राजा दशंवस्तु भविष्यति ॥१७७॥  
 उदायी भविता तस्मात्त्रयस्त्रिंशत्समा नृप ।  
 स वै पुरवर राजा पृथिव्या कुसुमाह्वयम् ।  
 गङ्गाया दक्षिणे कूले चतुर्थेऽन्द्रे करिष्यति १७८  
 द्वाचत्वारिंशत्समा भाव्यो राजा वै नन्दिवर्द्धन ।  
 चत्वारिंशत्त्रयञ्चैव महानन्दी भविष्यति ॥१७९॥  
 इत्येते भवितारो वै शैशुनाका नृपा दश ।  
 गतानि श्रीणि वर्षाणि द्विपष्टचम्यधिकानि तु ॥१८०॥  
 शैशुनाका भविष्यन्ति तावत्काल नृपा परे ।  
 एते साद्वं भविष्यन्ति राजान क्षत्रवान्धवा ॥१८१॥  
 ऐश्वर्याकवाश्चतुर्विंशत्पाञ्चाला पञ्चविंशति ।  
 कालवास्तु चतुर्विंशत्तुर्विंशत्तु हैहया ॥१८२॥  
 द्वात्रिंशद्वं कलिङ्गास्तु पञ्चविंशत्तथा शका ।  
 बुरवश्चापि पद्भिवशदष्टाविंशति मैथिला ॥१८३॥  
 शूरसेनास्त्रयोविंशद्वीतिहोत्राश्च विंशतिः ।  
 तुत्यकाल भविष्यन्ति सर्वे एव महोदितः ॥१८४॥  
 महानन्दिमुत्तश्चापि शूद्राया कालममृतः ।  
 उत्तरम्यते महापद्य सर्वं क्षत्रान्तरे नृप ॥१८५॥



तत प्रभृति राजानो भविष्याः शूद्रयो नय ।

एकराट् स महापद्म एकच्छत्रो भविष्यति ॥१८८॥

प्रष्टाविंशतिवर्षाणि पृथिवी पालयिष्यति ।

सर्वक्षत्रदृष्टोद्घृत्य भाविनोऽर्थस्य वै वलात् ॥१८९॥

अट्टाईस वर्ष तक विविमार यहाँ का राजा होगा । इसके पश्चात् पञ्चीस वर्ष तक दर्शक राजा होगा ॥१७७॥ वह राजा इस भूमि पर कुसुम नाम वाला एक श्रेष्ठ नगर गङ्गा के दक्षिण तट पर चौथे वर्ष में बनावेगा ॥१६८॥ नन्दि बद्धन राजा बयालीस वर्ष तक रहेगा । फिर तैत्रातीस वर्ष तक रहेगा । फिर तैत्रातीस वर्ष तक महानदी राज्य करेगा ॥१७९॥ ये इतने शैशुनाक नाम वाले दस राजा होंगे । शैशुनाक राजा लोग तीर सौ वासठ वर्ष तक रहेगे तावत्काल तक दूसरे राजा होंगे और वे इनके माय क्षत्रवन्धु राजा होंगे ॥१८०-१८१॥ ऐश्वराकु राजा चौबीस और पाञ्चाल पञ्चीस तथा कालक चौबीस एव हैहय चौबीस होंगे ॥१८२॥ कलिङ्ग नामधारी राजा सत्या में बस्तीस होंगे तथा शक जाति वाले पञ्चीस होंगे । कुक्ष भी छत्तीस होंगे और भंयित राजा षट्ठाईस होंगे ॥१८३॥ धूरसेन नाम वाले तेईस होंगे और वीति होत्र नामक राजा सत्या में बीस शासन करेंगे । ये सभी महोप तुल्य काल ही में होंगे ॥१८४॥ महानन्दि का पुत्र काल मवृत्त शूद्रजाति की सती में उत्पन्न होगा । महापद्म नृप सर्वक्षत्रान्तर में होगा ॥१८५॥ इससे आदि लेकर शूद्र योनि वाले राजा होंगे महापद्म एकराट् औरच्छत्र राजा होंगे ॥१८६॥ यह षट्ठाईस वर्ष तक पृथिवी का पालन करेगा और समस्त क्षत्रियो से हून का उद्धार करके भावी प्रथम का बल से उपभोग करेगा ॥१८७॥

सहस्रास्तत्सुता ह्यष्टौ समा द्वादश ते नृपाः ।

महापद्मस्य पयसि भविष्यन्ति नृपा क्रमात् ॥१८८॥

उद्धरिष्यति तान् सर्वान् कीटिल्यो वै द्विरष्टभिः ।

भुक्त्वा मही वर्षशत नन्देन्दु स भविष्यति ॥१८९॥

चन्द्रगुप्तं नृप राज्ये कीटिल्य स्थारयिष्यति ।

चतुर्विंशत्समा राजा चन्द्रगुप्तो भविष्यति ॥१९०॥

भविता भद्रमारस्तु पञ्चविंशत्समा नृप ।

पड्विंशत्तु समा राजा ह्यशोको भविता नृपु ॥१६१

तस्य पुत्र कुनालस्तु वर्षाण्यष्टौ भविष्यति ।

कुनालमूनुरष्टौ च भोक्ता वै बन्धुपालितः ॥१६२

बन्धुपालितदायादो दशमानीन्द्रपालित ।

भविता सप्तवर्षाणि देववर्मा नराधिपः ॥१६३

राजा शतधरश्चाष्टौ तस्य पुत्रो भविष्यति ।

वृहदश्वश्च वर्षाणि सप्त वै भविता नृपः ॥१६४

इत्येते नव भूपा ये भोक्ष्यन्ति च वसुन्धराम् ।

सप्तत्रिंशच्छतं पूर्णं तेभ्यस्तु गौर्भविष्यति ॥१६५

उम राजा के एक मह्य पुत्र होंगे वे आठ वर्ष तक बाराह राज्य महा-

पय के वर्षाण में क्रम में शासन करेंगे ॥१६०॥ दो और आठ के द्वारा उन

सत्ता कीटिल्य उद्धार करेगा । वह भी वर्ष तक इस भूमि के सुख का उपभोग

कर नन्देन्दु ही जायगा ॥१६१॥ कीटिल्य अर्थात् चाणक्य राज्य शासन में

पन्द्रमुन चौबीस वर्ष पर्यन्त शासन रहेगा ॥१६०॥ भद्रमार तो सश्रीम वर्ष

तक राजा होगा । फिर छत्रवीम वर्ष तक मानवों पर राजा अशोक का शासन

रहेगा ॥१६१॥ उम सम्राट् अशोक का पुत्र कुनाल तो केवल आठ ही वर्ष तक

राज्योपभोग करेगा । फिर इस कुनाल का पुत्र बन्धुपालित नाम वाला आठ वर्ष

तक भूमि का भोक्ता रहेगा ॥१६२॥ बन्धुपालित का दायाद इन्द्रपालित दस वर्ष

तक रहेगा । फिर इसके पदवान् देव वर्मा नराधिष्ठ तान वर्ष तक शासन करेगा

॥१६३॥ उमका पुत्र राजा शतधर आठ वर्ष पर्यन्त होगा । वृहदश्व मान वर्ष

तक राजा रहेगा ॥१६४॥ इतने से भी राजा इस वसुन्धरा का भोग करेंगे ।

पूरे एक ही सैनीय वर्ष तक यह पृथ्वी उनके उपभोग के लिये रहेगी ॥१६५॥

पुष्पमित्रम्नु मेनानीन्द्रधृत्य वै वृहद्रथम् ।

कार्गदित्वात्तं वै राज्यं ममा पट्टिं गर्द्वेव तु ॥१६६

पुष्पमित्रमुनाश्चाष्टौ भविष्यन्ति समा नृपा ।

भविता चापि तत्रमेव सप्तवर्षाणि वै सप्त ॥१६७

वभूमिश्च मुनो भाव्यो दशवर्षाणि पाथिव ।  
 ततो ध्रुव समा द्वे तु भविष्यति सुतश्च वै ॥१६८  
 भविष्यन्ति समास्तस्मात्तिस्र एव पुलिन्दवा ।  
 राजा घोषसुतश्चापि वर्षाणि भविता त्रय ॥१६९  
 ततो वै विप्रमित्रस्तु समा राजा तत पुन ।  
 द्वात्रिंशद्भविता चापि समा भागवतो नृप ॥२००  
 भविष्यति सुतस्तस्य क्षेमभूमि समा दश ।  
 दशैते तुङ्गराजानो भोक्ष्यन्तीमा वसुन्धराम् ॥२०१  
 दश पूर्णं दश द्वे च तेभ्य वि वा गमिष्यति ।  
 अपाथिवसुदेव-नु वाल्याद्यसनिन नृपम् ॥२०२  
 देवभूमिस्ततोऽन्यश्च शृङ्गेषु भविता नृप ।  
 भविष्यति समा राजा नव कण्ठायनस्तु स ॥२०३  
 भूमिमित्र सुतस्तस्य चतुर्द्विंशद्भविष्यति ।  
 भविता द्वादश समास्तस्मात्तारायणो नृप ॥२०४

तेनाभी पुण्य मित्र वृद्धय का उद्धार करके साठ वर्ष तक सदैव राज्य  
 शासन करायेगा ॥१६६॥ पुण्यमित्र के पुत्र आठ वर्ष तक राजा होंगे । उनमें  
 जो सबसे बड़ा है वह सान वर्ष तक राज्य का शासन करेगा ॥१६७॥ वभूमिश्च  
 पुत्र दश वर्ष तक इस भूमि का राजा होगा । इसके पश्चात् मुत्र ध्रुक् दो वर्ष  
 तक शासन होगा ॥१६८॥ इससे तीन पुलिन्दक राजा होंगे । राजा घोष सुत  
 तीन वर्ष तक रहेगा ॥१६९॥ इसके अनन्तर त्रिंशद्विंश राजा होगा फिर भाग  
 वत राजा बत्तीस वर्ष तक उपभोग करेगा ॥२००॥ भागवत राजा का पुत्र  
 क्षेम भूमि नाम वाला दश वर्ष पर्यन्त इस भूमि-एतन का भोग करेगा । ये दश  
 तुङ्ग नामधारी राजा इस वभुधरा का सुलोपभोग करेंगे ॥२०१॥ अथवा एक  
 सौ चारह वर्ष तक यह वचपन से व्यासजी अपाथिव सुदेव नृप की यह रहेगी  
 ॥२०२॥ इसके पश्चात् एक अन्य देवभूमि नृप शृङ्गो मे होगा । वह कण्ठायन  
 राजा सौ वर्ष तक रहेगा ॥२०३॥ उसका पुत्र भूमिमित्र होगा और वह चौबीस

वर्ष तक भूमि का शासन करेगा । उससे फिर नारायण नाम वाला राजा बारह वर्ष तक भूमि का भोग करेगा ॥२०४॥

सुशर्मा तत्सुतश्चापि भविष्यति समा दश ।

चतुरस्तुङ्गकृत्यास्ते नृपाः कण्ठायना द्विजाः ॥२०५

भाव्या प्रणतसामन्ताश्चत्वारिंशच्च पञ्च च ।

तेषां पर्यायकाले तु तरन्धा तु भविष्यति ॥२०६

कण्ठायनमघोदधृत्य सुशर्माणे प्रसह्य तम् ।

शृङ्गाणां चापि यच्चिष्ट क्षययित्वा बल तदा ।

सिन्धुको ह्यन्ध्रजातीय प्राप्स्यतीमा वसुन्धराम् ॥२०७

प्रयोविशत्समा राजा सिन्धुको भविता त्वय ।

अष्टौ भातश्च वर्षाणि तस्माद्दश भविष्यति ॥२०८

श्रीसातर्षिभविता तस्य पुत्रस्तु वै महान् ।

पञ्चाशत् समा पट् च सातर्षिभविष्यति ॥१०९

आपादबद्धो दश वै तस्य पुत्रो भविष्यति ।

चतुर्विंशत् वर्षाणि पट् समा वै भविष्यति ॥२१०

भविता नेमिकृष्णस्तु वर्षाणां पञ्चविंशतिम् ।

तत् सवत्सर पूर्णं हालो राजा भविष्यति १११

उमका पुत्र गुणमां नामपायी दश वर्ष तक राजा होगा । हे द्विजवृन्द ।

ये बार बरगणन तुङ्गदृश्य राजा होंगे ॥२०६॥ पैतलीय प्रणत सामन्त होंगे ।

उनके पर्याय काल में तरन्धा होगा ॥२०६॥ बरगणन सुशर्मा को बन्धपूर्वक

उत्पुन करके घोर शृङ्गों का जो भी कुछ दोष या उम बल को क्षीण करके

अन्ध्र जाति वाला सिन्धु नामक राजा इन वसुन्धरा को प्राप्त करेगा ॥२०७॥

इनके घनान्तर वह सिन्धु सेईम वर्ष तक राज्य का शासन नृप होगा । फिर

मान अठारह वर्ष तक रहेगा ॥२०८॥ उमका महान् पुत्र श्री सातर्षि दण्डन

वर्ष पर्यन्त राज्य-शासन करने वाला होगा ॥२०९॥ दश घायद बट्ट उमका

पुत्र होगा । वह तीस वर्ष तक यही भूमि का राजा होगा ॥२१०॥ फिर नेमि

कृष्ण नाम वाला पञ्चीम वर्ष तक राजा रहेगा । फिर पुरे एक वर्ष तक

'दान'—इस नाम वाला राजा होगा ॥२११॥

पञ्च सप्तक राजानो भविष्यन्ति महाबला ।  
 भाव्य पुत्रिकपेणस्तु समा सोऽप्येकविशतिम् ॥२१२॥  
 सातर्काणवर्षमेव भविष्यति नराधिपः ।  
 अष्टाविशत्तु वर्षाणि शिवस्वामी भविष्यति ॥२१३॥  
 राजा च गौतमीपुत्र एकविशत्समा नृपु ।  
 एकोनविशति राजा यज्ञश्री सातकप्यथ ॥२१४॥  
 पडेव भविता तस्माद्विजयस्तु समा नृप ।  
 दण्डश्री सातकर्णी च तस्य पुनः समास्त्रय ॥२१५॥  
 पुलोवापि समा सप्त अन्येषाञ्च भविष्यति ।  
 इत्येते वं नृपास्त्रिंशदध्ना भोक्ष्यन्ति ये महीम् ॥२१६॥  
 समा शतानि चत्वारि पञ्च षड् वै तथैव च ।  
 अन्ध्राणा सस्थिता पञ्च तेषा वशा समा पुन ॥२१७॥  
 सप्तैव तु भविष्यन्ति दशामीरास्ततो नृपा ।  
 सप्त गर्दभिनश्चापि ततोऽथ दश वै शका ॥२१८॥  
 यवनाष्टौ भविष्यन्ति तुपारास्तु चतुर्दश ।  
 त्रयोदश गरुडाश्च मौना ह्यष्टादशैव तु २१९॥  
 अन्ध्रा भोक्ष्यन्ति वसुधा शते द्वे च शत च वै ।  
 शतानि त्राण्यशीतिश्च भोक्ष्यान्त वसुधा शका ॥२२०॥

पञ्च सप्तक महान् बलवान् राजा होंगे । एक पुत्रिकपेण होगा वह भी  
 एक और बीस वर्ष तक राजा रहेगा ॥२१२॥ सातकाणि एक ही वर्ष तक  
 नराधिप होगा । अष्टाईस वर्ष तक शिव स्वामी राजा होगा ॥२१३॥ गौतमी  
 पुत्र नाम वाला राजा मनुष्यो पर इक्कीस वर्ष पयन्त शासन करेगा । उन्नीस  
 वर्ष तक राजा यज्ञ श्री और इसके अनन्तर सातकाणि होगा ॥२१४॥ उनसे  
 फिर छै ही राजा होंगे । विजय-दण्ड श्री और सातकाणि उसके ये तीन पुत्र  
 होंगे ॥२१५॥ सात वर्ष तक पुलोवापि होगा और दूमरे का भी होगा । ये  
 तीस अन्ध्र राजा इस मही का भोग करेंगे ॥२१६॥ चार सौ ग्यारह उन  
 अन्ध्रों के समान पाँच वश मस्थिन होंगे ॥२१७॥ सात ही दशाभीरव नृप होंगे ।

सात बर्ष भी होंगे फिर इनके पदवात् दश शक होंगे ॥२१८॥ आठ यवन राजा होंगे फिर चौदह तुपाद नाम वाले राजा होंगे । तेरह गण्डधर इनके पदवात् अठारह मौस होंगे ॥२१९॥ तीन मौस वर्ष तक धन्व्र जानि वाले लोग इस तमुषा का भोग करेंगे और फिर तीनसौ अस्मी वर्ष तक एक जानि वाले इस तमुषरा का भोग करेंगे ॥२२०॥

अशीतिश्चैव वर्षाणि भोक्तारो यवना महीम् ।  
 पञ्चवर्षशतानीह तुपाराणा मही स्मृता ॥२२१॥  
 शतान्यद्द्वचतुर्षानि भवितारस्त्रयोदश ।  
 गरुण्डा श्रेपलं सादं भाव्यान्वाम्लेच्छजातय ॥२२२॥  
 शानानि शीणि भोक्षन्ति म्लेच्छा एकादशैव तु ।  
 तच्छन्नेन च कालेन तत कोलिविला वृषाः ॥२२३॥  
 ततः कोलिकिलेभ्यश्च विन्ध्यशक्तिर्भविष्यति ।  
 समा पश्चात्वात् जात्वा पृथिवी च समेष्यति ॥२२४॥  
 वृषान् वै दिशकाश्चापि भविष्याश्च निचोषत ।  
 शेषस्य नागराज्यस्य पुत्र स्वरपुरञ्जय ॥२२५॥  
 भोगी भविष्यते राजा नृपो नागकुलोद्बह ।  
 सदाचन्द्रस्तु चन्द्राशो द्वितीयो नखवास्तया ॥२२६॥  
 धनधरा तदश्चापि चतुर्थो विशज स्मृत ।  
 भूतिनन्दस्ततश्चापि वदेने तु भविष्यति ॥२२७॥  
 अङ्गाना नन्दनस्यान्ते मधुनन्दिर्भविष्यति ।  
 तस्य भ्राता यवीयास्तु नाम्ना नन्दिपशा विन् ॥२२८॥  
 तस्यान्दये भविष्यन्ति राजानस्ते त्रयस्तु वै ।  
 सौहित्र मिश्रुको नामपुरिताया नृपोऽभवत् ॥२२९॥  
 विन्ध्यशक्तिमुत्तश्चापि प्रवीरो नाम वीर्यवान् ।  
 भाष्यन्ति च समा पार्ष्टि पुरी काञ्चनकाश्च वै ॥२३०॥  
 यक्षन्ति वाजपेयैश्च समाप्तवरदभिर्गु ।  
 तस्य पुत्रास्तु चरयारो भविष्यन्ति नराधिपा २३१

विन्ध्यकाना कुलेऽतीते नृपा वै बाल्लिकास्त्रय ।

सुप्रतीको नभीरस्तु समा भोक्ष्यति त्रिशतिम् ॥२३२

अस्सी वर्ष तक यवन लोग इस मही को भागेंगे । यहाँ पाँच सौ वर्ष तक तुमारों की यह भूमि बही जायगी ॥२२१॥ अर्द्ध चतुर्थं सौ वर्ष तक तेरह मरुण्ड वृषला के साथ होंगे जो अन्य म्लेच्छ जाति वाले होंगे ॥२२२॥ ग्यारह म्लेच्छ तीन सौ वर्ष तक इस भूमि का भोग करेंगे । और उनके अन्तकाल में कोलिकिल वृष होंगे ॥२२३॥ फिर उन कोलिकिलों से विन्ध्य शक्ति होगा । छयानवे वर्ष तक पृथिवी को ज्ञान प्राप्त करके घायेगा ॥२२४॥ भव वृषों को और दिशकों को जोकि आगे होने वाले हैं भली मति समझ लो । नागराज शेष का पुत्र स्वरपुरञ्जय नाग कुलका उद्ग्रहण करने वाला भोग करने वाला राजा होगा । चन्द्राश सदाचन्द्र और दूमरा नखवाद् है ॥२२५॥ इसके बाद धनधर्मा और चौथा विशज कहा गया है । इसके पश्चान् भूतिनन्द जोकि बँदेश में होगा ॥२२७॥ अगो के नन्दन के अन्त में मधुनन्द राजा होगा । उसका छोटा भाई नन्दिमश नाम वाला है ॥२२८॥ उसके अन्वय में (बद में) तीन राजा होंगे । शिशुक नाम वाला दोहित्र तुरिका में राजा होगा ॥२२९॥ विन्ध्य शक्ति का पुत्र वीर्य वाला प्रवीर नामधारी होगा और साठ वर्ष तक काश्वतका पुरी का भोग करेंगे ॥२३०॥ वे श्रेष्ठ दक्षिणा देकर समाप्त करने वाले वाजपेयो के द्वारा यजन करेंगे । उनके चार पुत्र नराधिप होंगे ॥२३१॥ विन्ध्यको के कुल के व्यतीत होजान पर तीन बाह्यनीक राजा होंगे । सुप्रतीक नभीर तो तीस वर्ष तक पृथ्वी का भोग करेगा ॥२३२॥

शक्यमा नाम वै राजा माहिपीना महीपतिः ।

पुष्पमित्रा भविष्यन्ति पट्टमित्रास्त्रयोदश ॥२३३

मेवलाया नृपा सप्त भविष्यन्ति च सप्तमा ।

वोमनायन्तु राजानो भविष्यन्ति महाबला ॥२३४

मेघा इति ममान्याता बुद्धिमन्तो नवैव तु ।

नैपथा पाथिवा सर्वे भविष्यन्त्यामनुशयात् ॥२३५

नलवक्षप्रसूतास्ते वीर्यवन्तो महाबला ।  
 मागधाना महावीर्यो विश्वस्फानिर्भविष्यति ॥२३६  
 उत्साद्य पार्थिवान् सर्वान्सोऽन्यान् वर्णान् करिष्यति ।  
 कंबर्त्तान् पञ्चकाश्र्वं पुलिन्दान् ब्राह्मणास्तथा ॥२३७  
 स्थापयिष्यन्ति राजानो नानादेशेषु तेजसा ।  
 विश्वस्फानिर्महासत्त्वो युद्धे विष्णुसमो बली ॥२३८  
 विश्वस्फानिर्नरपति बलीवाकृतिरिवोच्यते ।  
 उत्सादयित्वा क्षत्रन्तु क्षत्रमन्यत् करिष्यति ॥२३९  
 देवान् पितृंश्च विप्राश्चा तर्पयित्वा सकृत्पुनः ।  
 जाह्नवीतीरमासाद्य शरीर यस्यते बली ॥२४०  
 सन्यस्य स्वशरीरन्तु शक्रलोक गमिष्यति ।  
 नवनाकास्तु भोक्ष्यन्ति पुरी चम्पावती नृपाः ॥२४१

दक्षिणा नाम बाला राजा माहिषिघो का महीपति होगा । पुष्पमित्र होंगे और तेरह पट्टमित्र होंगे ॥२३३॥ मेकला में सात श्रेष्ठतम राजा होंगे । कोमला में तो महान् बल वाले राजा होंगे ॥२३४॥ मेघ इम नाम से समाख्यात होने वाले नौ बुद्धिमान् राजा होंगे । मनुष्य पर्यन्त सब नैपथ पार्थिव होंगे ॥२३५॥ वे सब नल के ब्रह्म में उत्पन्न बान्हे महान् बलवान् और वीर्य वाले राजा होंगे । मागधो में विश्व स्फानि नाम बाला महान् वीर्य वाला राजा होगा ॥२३६॥ वह समस्त पार्थिवो को उत्सादित करके अन्य वर्णों को करेगा । कंबर्त्तों को—पञ्चको को—पुलिन्दको तथा ब्राह्मणों को अनेक देशों में तेज से राजाओं को स्थापित करेगा । विश्वस्फानि महान् सत्त्व वाला और युद्ध में विष्णु के समान बली था ॥२३७-२३८॥ विश्वस्फानि जो राजा होना वह बलीव के समान आकृति वाला कहा जाता है । क्षत्र को उत्सादित करके अन्य क्षत्र को करेगा ॥२३९॥ यह बली देवो को—पितरो को और ब्राह्मणों फिर एक बार मृत करके अन्न में गङ्गा के तट पर पहुँच कर शरीर को त्याग करेगा ॥२४०॥ अपने शरीर का त्याग करके फिर इन्द्र के लोक को चला जाएगा । जब नाक राजा चम्पावती पुरी का भोग करेंगे ॥२४१॥



मथुराञ्च पुरी रम्यां नागा भोक्ष्यन्ति सप्त वै ।  
 अनुगङ्गा प्रयागञ्च साकेत मगधास्तथा ।  
 एताञ्जनपदान् सर्वान् भोक्ष्यन्ते गुप्तवशजा ॥२४२  
 निधान् यदुकाश्चैव शंशीतान् कालतोपवान् ।  
 एताञ्जनपदान् सर्वान् भोक्ष्यन्ति मणिधान्यजा ॥२४३  
 कोशलाश्चन्द्रपीण्डाश्च ताम्रलिप्तान् ससागरान् ।  
 चम्पा चैव पुरी रम्या भोक्ष्यन्ति देवरक्षिताम् ॥२४४  
 कलिङ्गा महिषाश्चैव महेन्द्रनिलयाश्च ये ।  
 एताञ्जनपदान् सर्वान् पालयिष्यति वै गुह ॥२४५  
 स्त्रीराष्ट्र भक्ष्यकाश्चैव भोक्ष्यते कनकाह्वय ।  
 तुल्यकाल भविष्यन्ति सर्वे ह्येते महीक्षित ॥२४६  
 अल्पप्रसादा ह्यनृता महाक्रोधा ह्यधामिकाः ।  
 भविष्यन्तीह यवना धर्मतः कामतोऽर्थतः ॥२४७  
 नैव मूर्धाभिपित्तास्ते भविष्यन्ति नराधिपा ।  
 युगदोषदुराचारा भविष्यन्ति नृपास्तु ते ॥२४८  
 स्त्रीणां बलवधेनैव हत्वा चैव परस्परम् ।  
 भोक्ष्यन्ति कलिशेषे तु वसुधा पार्थिवास्तथा ॥२४९

परम रम्य मथुरा नगरी को सात नाग उपभोग करेंगे । गङ्गा के साथ-  
 साथ प्रयाग—साकेत तथा मगध देशों को—इन जनपदों को सबको गुप्त वंश में  
 उत्पन्न होने वाले नृप भोग करेंगे ॥२४२॥ मणिधान्यज लोग निषध देशों को—  
 यदुको को—शंशीतो को—काल तोपको को—इन समस्त जनपदों को भोग करेंगे  
 कलिङ्ग—महिष और जो महेन्द्र निलय हैं वे कोशल देशों को—चन्द्र पीण्डों को—  
 ताम्रलिप्तों को सागरों के सहित तथा सुरम्य चम्पा नगरी जोकि देवों के द्वारा  
 सुरक्षित है, भोग करेंगे इन समस्त जनपदों को गुह पालन करेगा ॥२४४-२४५॥  
 कनक नाम वाला स्त्री राष्ट्र और भक्ष्यको का भोग करेगा । ये समस्त राजा  
 तुल्य काल में ही होंगे ॥२४६॥ वहाँ पर धर्म में और काम से अल्प प्रसाद वाले—  
 भूटे—महान् क्रोध करने वाले और अधामिक यवन होंगे ॥२४७॥ ये राजा मूर्धा-

अनुपङ्गपाद समाप्ति ]

भिषिक्त नहीं होंगे । वे समस्त नृप युग के दोषों से दुराचार वाले होंगे ॥२४८॥  
ये समस्त राजा स्त्रियों का बलपूर्वक बध के द्वारा घापन में हनन करके कलियुग  
के दोष में वसुधा का भोग करेंगे ॥२४९॥

उदितोदितवशास्ते उदितास्तमितास्तथा ।  
भविष्यन्तीह पर्यायि कालेन पृथिवीक्षित ॥२५०॥  
विहीनास्तु भविष्यन्ति घर्म्मंत कामतोऽर्थत ।  
तैर्विमिश्रा जनपदा म्लेच्छाचाराश्च सर्वश ॥२५१॥  
विपर्ययेन वर्त्तन्ते नाशयिष्यन्ति वै प्रजा ।  
लुब्धानृतरताश्चैव भवितारस्तदा नृपा ॥२५२॥  
तेषा व्यतीते पर्यायि बहुस्त्रीके युगे तदा ।  
लवातिलव भ्रश्यमाना आयूरुपबलश्रुतं ॥२५३॥  
तथा गतास्तु वै काष्ठा प्रजासु जगतीश्वरा ।  
राजान सम्प्रणश्यन्ति कालेनोपहृतास्तदा ॥२५४॥  
कल्किनोपहृता सर्वे म्लेच्छा यास्यन्ति सर्वश ।  
अधार्मिकाश्च तेऽर्थयथं पाषण्डाश्चैव सर्वश ॥२५५॥  
प्रनष्टे नृपशब्दे च सन्ध्याश्लिष्टे कलौ युगे ।  
किञ्चिच्छिष्टा प्रजास्ता वै घर्म्मो नष्टेऽपरिग्रहा ॥२५६॥

समय के प्रभाव से राजा लोग उदितोदित बध वाले तथा उदितास्त-  
मित यहाँ पर्याय में होंगे ॥२५०॥ ये समस्त काम से और अर्थ में विहीन होंगे ।  
उनके द्वारा विशेष रूप से मिश्रित म्लेच्छों के समान आचार करने वाले सभी  
प्रकार से दूषित जनपद हो जायेंगे ॥२५१॥ ये सभी विपरीत व्यवहार करते हैं  
तथा हर प्रकार से प्रजाओं का नाश करेंगे । उस समय में राजा लोग लोभी  
और मिथ्या में रति करने वाले हो जायेंगे ॥२५२॥ उनके पर्याय के व्यतीत हो  
जाने पर और उस समय में बहुत स्त्रियों वाले युग में धण में धण में प्रादु-  
रूप-बल और शून्य सभी भ्रश्यमान हो जायेंगे ॥२५३॥ इस प्रकार से प्रजाओं  
के विषय में परम सीमा की प्राप्त हुए राजा लोग उस समय कालवश सब उप-  
हृत होते हुए नष्ट हो जायेंगे ॥२५४॥ समस्त म्लेच्छगण कल्कि के द्वारा सब

घोर में उपहन होने । वे सभी परम अधाग्निघ्न घोर सब तरह से पापएव मुक्त  
होगे ॥२५५॥ कनिषुग के सञ्चया दिनष्ट होने पर 'नृप'—यह शब्द ही प्रगुष्ट  
हो जायगा ओ कुछ थोड़ी गी प्रजा शेष रहेगी वह भी धर्म क नष्ट हो जान पर  
गिना परिग्रह वाली हो जायगी ॥२५६॥

असाधना हताश्वाम्य व्याधिशोकैर्न पीडिता ।

अनावृष्टिहताश्र्वं च परस्परवधेन च ॥२५७

अनाथा हि परित्रस्ता वार्त्तामुत्सृज्य दु खिताः ।

त्यक्त्वा पुराणि ग्रामाश्च भविष्यन्ति वनोवस ॥२५८

एव नृपेषु नष्टेषु प्रजास्त्यक्त्वा गुहाणि तु ।

नष्टे स्नेहे दुरापन्ना अहस्नेहा मृत्ष्टञ्जना ॥२५९

वर्णाश्रमपरिभ्रष्टा सद्गुरं घोरमास्थिता ।

सरित्पर्वतसेविन्यो भविष्यन्ति प्रजास्तदा ॥२६०

सरितः सागरानूपान् सेवन्ते पर्वतानि च ।

अङ्गान् कलिङ्गान् वङ्गाश्च वाश्मोरान् वाशिकोशलान् ॥२६१

ऋषिवान्तगिरिद्रोणी सश्रयिष्यन्ति मानवा ।

वृत्स्न हिमवतः पृष्ठ कूल हि लवणाम्भस ॥२६२

अरण्यान्यभिपत्स्यन्ति ह्यार्ष्या म्लेच्छजनै सह ।

मृगंमर्निर्विहङ्गंश्च श्वापदंस्तशुभिस्तथा ।

मधुशाकफलभू लैर्वन्तंयिष्यन्ति मानवा ॥२६३

समस्त प्रजा साधनों से दूर—हताश्वस घोर व्याधि तथा शोक से परम  
पीडित—वर्षा के विलुप्त ही अभाव होने के कारण हत तथा आपस में ही एक-  
दूसरों के वध करने में अनाथ—भयभीत—रोगी का त्याग करके अत्यन्त ही  
दु खित प्रजाजन नगरो का तथा ग्रामो का त्याग करके वन में निवास करने  
वाले जगती जैसे हो जायगे ॥२५७ २५८॥ इस प्रकार से समस्त नृपों के नष्ट  
हो जाने पर प्रजा अपने अपने घरों को त्याग करके स्नेह के नष्ट हो जाने पर  
दुत्तपत्त—अष्ट स्नेह घोर मुहृजनों से रहित हो जायगी ॥२५९॥ वर्णों तथा  
आश्रमों से परिभ्रष्ट होते हुए घोर सद्गुट अवस्था में आस्थित, नदी तथा पर्वतों

के सेवन करने वाली उस समय समस्त प्रजा ही जायगी । २६०॥ मनुष्य नदियों को-पागरो को-मनुष्यो को और पर्वतो को सेवन करते हैं । अङ्ग-वङ्ग-वलिङ्ग काश्मीर-वाशि कोशलो को सेवन करते हैं ॥२६१॥ तथा मानव श्रुतिकान्त गिरि द्रोणी का मथय ग्रहण करेंगे । पूरा हिमवान् पर्वत का पृथ भाग तथा धार ममुद्र का तट और धरण्यो को धार्य लोग म्लेच्छो के साथ चले जायेंगे । और मानव मृग-मौन-विहङ्ग तथा श्यापद तथा तक्ष्मो से एव मनु-शाक-फल-मूलो से अपना उदरपूर्ति का निर्वाह करेंगे ॥२६२ २६३॥

धीर-पर्यंश्च विविध यन्कलान्यजिनानि च ।

स्वय कृत्वा विवत्स्यन्ति यथा मुनिजनो स्तथा ॥२६४

वीजाघ्नानि तथा निम्नेष्वीहन्त कापुशङ्कुभि ।

अर्जडक त्वरोष्ठश्च पालयिष्यन्ति यत्नत ॥२६५

नदीर्वत्स्यन्ति तोयार्थे कूलमाश्रित्य मानवा ।

पार्थिवान् व्यवहारेण विबाधन्त परस्परम् ॥२६६

बहुमन्या प्रजाहीना शौचाचारविवर्जिता ।

एव भविष्यन्ति नरास्तदाधर्मे व्यवस्थिता ॥२६७

हीनाद्धीनास्तथा धर्मान् प्रजा समनुवत्तते ।

आयुस्तदा त्रयोविंश न कश्चिदतिवत्तते ॥२६८

दुर्बला विपयग्लाना जरया सपरिप्लुता ।

पत्रमूनफलाहाराश्चीरकृष्णाजिनाम्बरा ॥२६९

धीर-पर्यं (पत्ते) विविध प्रकार की पेड़ों की छाल और बमड़ों को स्वयं काट कर मुनिजनों की भाँति धारण करेंगे ॥२६४॥ वीजाघ्नो को निम्न भागो काष्ठ तथा शकुभो से दृष्ट्या करते हुए अथानि निवाल कर प्राप्त करने की चेष्टा करते हुए बकगी-भेड-गधा उँटो को बड़े यत्न से पालेंगे ॥२६५॥ मानव जन के प्राप्त करने के लिए नदियों के किनारों के निकट भाग्य ग्रहण कर काम किया करेंगे । व्यवहार ऐसा होगा कि उनके द्वारा परस्पर में राजाघ्नो को विशेष वाधा पहुँचायेंगे ॥२६६॥ अपने आपको बहुत पुष्ट मानने वाले-मनानि से हीन और शीघ्र (मुट्टि) और आचार से रहित धर्म में पूर्ण रूप से व्यव-

स्थित रहने वाले ऐसे ही उस समय में मनुष्य हो जायेंगे । ॥२६७॥ उस समय में प्रजा हीन से भी हीन धर्मों का समनुवर्तन करेंगे । उस समय में तेईस वर्ष की आयु को कोई भी पार नहीं करेंगे अर्थात् परमायु इतनी कम हो जायगी ॥२६८॥ मनुष्य उस समय में अत्यन्त कमजोर हो जायेंगे और वह ऐसा भीषण समय आयेगा कि सभी विषयों में क्षिप्त और जरा से (वाङ्मन्य से) सपरिप्लुत होंगे । पत्र-फल और मूलों के आहार वाले होंगे तथा धीर-शरीर और कृष्णाजिन के वस्त्र वाले हो जायेंगे ॥२६९॥

वृत्त्यर्थमभिलिप्सन्तश्चरिध्यन्ति वसुन्धराम् ।  
 एतत्कालमनुप्राप्ताः प्रजा कलियुगान्तके ॥२७०  
 क्षीणे कलियुगे तस्मिन् दिव्ये वर्षमहस्रके ।  
 नि शेषास्तु भविष्यन्ति साद्धं कलियुगेन तु ।  
 ससन्ध्याशे तु नि शेषे कृत वै प्रतिपत्स्यते ॥२७१  
 यदा चन्द्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्यवृहस्पती ।  
 एकरात्रे भरिष्यन्ति तदा कृतयुग भवेत् ॥२७२  
 एष वर्षक्रम कृत्स्न वीर्तितो वो यथाक्रमम् ।  
 अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये ॥२७३  
 महादेवाभिषेकात् जन्म यावत्परिमित ।  
 एतद्वर्षसहस्रन्तु ज्ञेय पञ्चादशदुत्तरम् ॥२७४  
 प्रमाण वै तथा चोक्त महापद्यान्तर च यत् ।  
 अन्तर तच्छ्रुतान्यष्टौ षट्त्रिंशच्च समा स्मृता ॥२७५  
 एतत्कालान्तर भाव्या अन्धान्ता ये प्रकीर्तिताः ।  
 भविष्यन्स्तत्र सह्यचाता पुराणज्ञं श्रुतपिभि ॥२७६  
 सप्तर्षयस्तदा प्राहु प्रतीपे राशि वै शतम् ।  
 सप्तविंशं सतैर्भाव्या अन्घ्राणा ते त्वया पुन ॥२७७  
 सप्तविंशतिपर्यन्ते वृत्स्ने नक्षत्रमण्डले ।  
 सप्तर्षयस्तु तिष्ठन्ति पयसिण शत शतम् ।  
 सप्तर्षीणा युग ह्ये तद्दिव्यया सह्यधया स्मृतम् ॥२७८

अपनी वृत्ति (रोजी) के लिये अत्यन्त लसायित होते हुए पृथ्वी पर विचरना चिया करेगे । कलियुग के अन्त में समस्त प्रजा ऐसा समय प्राप्त करने वाले होंगे ॥२७०॥ दिव्य एक सहस्र वर्ष वाले कलियुग के क्षीण होजाने पर कलियुग के साथ ही सब निशेष हो जायगे । मन्व्याश के अन्तिम निशेष होजाने पर फिर कृतयुग की प्राप्ति होगी ॥२७१॥ निरा राग्य में चन्द्र और सूर्य तथा विष्णु और बृहस्पति एक ही दिन में भर जायगे तब कृतयुग का प्रारम्भ होगा ॥२७२॥ मैंने यह वरुण का क्रम आप लोगों के सामने यथाश्रम वक्षित कर दिया है । जो व्यतीत हो चुके हैं और वर्तमान है तथा जो भ्रान्तागत अर्थात् भविष्य में होने वाले हैं सबका पूरा वर्णन कर दिया है ॥२७३॥ जन्म की परिमित महादेव के अभिषेक से जितना भी समय है वह एक सहस्र पचास वर्ष जानना चाहिये ॥२७४॥ इसका प्रमाण महापद्मान्तर में कहा गया है वह अन्तर घाटसी छत्तीस वर्ष कहा गया है ॥२७५॥ यह कालान्तर में जो अन्तर्गत कहे गये हैं वे होंगे । वहीं पर होने वाले धृतिपुत्राणो के शाठानो के द्वारा सख्यात हुए हैं ॥२७६॥ उस समय में सप्तपिण्डो ने वे प्रनीप राजा सो कहे हैं और आपने अन्धो के सत्ताईस सो होने वाले बताये हैं ॥२७७॥ सप्तपिण्डो पर्यन्त पूरे नक्षत्र मण्डल में पर्याय से सो सो सप्तपिण्डो रहा करते हैं । यह युग दिव्य सख्या के द्वारा सप्तपिण्डो का कहा गया है ॥२७८॥

सा सा दिव्या रमृता पद्दिदिव्याह्लाश्च सप्तभि ।  
 तेभ्य प्रवर्तते कालो दिव्य सप्तपिभिस्तु तै ॥२७९॥  
 सप्तपीणान्तु ये पूर्वा दृश्यन्ते उत्तरादिभि ।  
 ततो मध्येन च क्षेत्र दृश्यते यत्सग दिवि ॥२८०॥  
 तेन सप्तपयो युक्तः ज्ञेया भ्योम्नि सप्त समा ।  
 नक्षत्राणां मृपीणां च योगस्यैतन्निदर्शनम् ॥२८१॥  
 सप्तपयो मयायुक्ताः काले पारिहिते सप्तम् ।  
 अन्ध्राशे स चतुर्विंशो भविष्यन्ति मते मम ॥२८२॥  
 इमास्तदा तु प्रवृत्तिर्व्यापत्स्यन्ति प्रजा भृशम् ।  
 अतुतोपहृता, सर्वा धर्मतः कामतोऽर्थत ॥२८३॥

श्रीतस्मार्त्ते प्रशियिले घर्मे वर्णाश्रमे तदा ।  
 सङ्कर दुर्वेलात्मान प्रतिपत्स्यन्ति मोहिता ॥२८४  
 ससक्ताश्च भविष्यन्ति शूद्रा साद्ध द्विजातिभि ।  
 ब्राह्मणा शूद्रयष्टार शूद्रा वै मन्त्रयोनयः ॥२८५

यह-वह दिव्य पट्टि कही गई है और सत्तो के द्वारा दिव्याह्नू कहे गये हैं । उन सप्तपियो के द्वारा दिव्यकाल प्रवृत्त होता है ॥२७६॥ सप्तपिया के पहिले उत्तर दिशा मे जो दिखलाई देते हैं और उसके मध्य से जो दिव म क्षेत्र दिखलाई देता है ॥२८०॥ उससे आकाश म सौ वर्ष युक्त सप्तपिगण जानने चाहिये । और ऋषियो का तथा नक्षत्रो का जो योग है उसका यही निदर्शन होता है ॥२८१॥ पारिक्षित काल मे मघा से युक्त सौ सप्तपिगण हैं । वह मेरे मत म चौबीसवें अन्ध्राश मे होंगे ॥२८२॥ उन समय ये प्रकृति बहुत अधिक प्रजा को प्राप्त करेगी । घर्मे म और काम स तथा अर्थ से मभो प्रजा अनृत (मिथ्या) से उपहत होगी ॥२८३॥ उस समय मे श्रीत (वैदिक) तथा स्मार्त्त वर्णों और आश्रमो के घर्मों के विशेष रूप स जिविल होजाने पर दुर्वल आत्मा वाले एव मोहका प्राप्त होजाने वाले मनुष्य सङ्करावस्था को प्राप्त हो जायगे ॥२८४॥ शूद्र लोग द्विजातियो के साथ मसक्त हो जायगे । ब्राह्मण लोग तो शूद्रयष्टा हो जायगे और शूद्र लोग मन्त्रयोनि वाले हो जायगे ॥२८५॥

उपस्थास्यन्ति तान् विप्रास्तदा वै वृत्तिलिप्मव ।  
 लव लव भ्रस्यमाना प्रजा सर्वा क्रमेण तु ॥२८६  
 क्षयमेव गमिष्यन्ति क्षीणशेषा युगक्षये ।  
 यस्मिन् कृष्णो दिव यातस्तस्मिन्नेव तदा दिने ॥२८७  
 प्रतिपन्न कलियुगस्तस्य सङ्घा निबोधत ।  
 सहस्राणां शतानीह क्षीणि मानुषसङ्घया ।  
 पटि चैव सहस्राणि वर्षाणामुच्यते बलि ॥२८८  
 दिव्ये वषसहस्रन्तु तत्सङ्घ्याश प्रकीर्तितम् ।  
 नि शेषे च तदा तस्मिन् कृत वै प्रतिपत्स्यते ॥२८९

ऐल इक्ष्वाकुवंशश्च सह भेदः प्रकीर्णितौ ।  
 इक्ष्वाकोस्तु स्मृतः क्षत्र सुमित्रान्तं विवस्वतः ॥२६०  
 ऐल क्षत्रं क्षेमवान्त सोमवशविदो विदुः ।  
 एते विवस्वत. पुत्राः कीर्त्तिता कीर्त्तिवद्धनाः ॥२६१  
 श्रुतीता वर्त्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये ।  
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्चैवान्वये स्मृताः ॥२६२  
 युगे युगे महात्मान समतीता सहस्रशः ।  
 बहुत्वाभ्रामधेयाना परिसस्या कुले कुले ॥२६३

विप्रगण अपनी वृत्ति के लालच में रहने वाले होने हुए उस समय में  
 उन शूद्रों के समीप में जाकर स्थित होंगे । क्षत्र-क्षत्र में अपने वर्तमान में भ्रष्ट  
 होने हुए समस्त प्रजा जन श्रम में क्षय को प्राप्त होंगे जो भी उस युग के क्षय  
 में क्षीण होने से शेष रह जायेंगे । जिन दिन में श्रीकृष्ण अन्तर्हित होकर दिव-  
 मोन को गये उसी दिन और उसी समय में कल्पयुग प्रतिपन्न होगया अब उनकी  
 मरणा को घाय लोग जान लो । मानुष मरणा में कल्पयुग तीन सौ हजार वर्षान्  
 तीन सौ सौ हजार वर्ष की कही जाती है ॥२६६-२६७-२६८॥ दिव्य में  
 एष मह्य वर्षं उगवा मन्थ्याय कथा पया है । फिर उस समय उनके कल्पयुग में  
 कल्पयुग प्राप्त हो जायगा ॥२६६॥ तेन वन और इक्ष्वाकु का वन जंगल के मन्थि  
 प्रतीतिन किये गये हैं । विवस्वान् इक्ष्वाकु का क्षत्र सुमित्र के अन्तर्गत कथा  
 गया है ॥२६०॥ तेन क्षत्रिय वन को सोमवश के ज्ञाना योंन कल्पयुग के



तत्र मन्वन्तर का समय होता है युगाध्या का अनुगमन करते हैं ॥३०७॥ जमदग्नि के पुत्र परशुराम के द्वारा क्षत्रियो को निरवशेषित करने पर सभी वसुधा के स्वामी क्षत्रियो के द्वारा वशकुल और दो वशकरण से उनको मैं अब बतलाऊँगा उनका ज्ञान प्राप्त करलो ॥३०८॥ इन्द्राकु के पुत्र ऐल की प्रकृति परिवर्तित होती है । अग्निवद्ध राजा लोम तथा अथ य क्षत्रिय नृप ॥३०९॥ जो कि ऐल वग के ख्यात थे उसी प्रकार से इन्द्राकु के वश के नृप थे । अधिक प्राप्त करने वाले कुलो की पूरा सख्या एकदास थी ॥३१०॥

तावदेव तु भोजाना विस्तारो द्विगुण स्मृत ।

भजते त्रिशक क्षत्रा चतुर्धा तद्यथादिशम् ॥३११॥

तेष्वतीता समाना ये ब्रुवतस्तानिबोधत ।

शत वै प्रतिविध्याना शत नागा शत हया ॥३१२॥

धृतराष्ट्राश्च कश्चतमशीतिजनमेजया ।

शतश्च ब्रह्मदत्ताना शीरिणा वीरिणा सतम् ॥३१३॥

सत शत पुलोमाना श्वतकाशबुशादय ।

ततोऽपरे सहस्र वै येऽतीता शतविन्दव ॥३१४॥

ईजिरे चाश्वमेधस्ते सर्वे नियुतदक्षिण ।

एव राजपयोऽतीता शतशोऽथ सहस्रश ॥३१५॥

मनर्वेवस्वतस्यास्मिन् यत्तमानेऽन्तरे तु ये ।

तेषा निबोधतोत्पन्ना लोके सन्ततय स्मृता ॥३१६॥

न शक्य विस्तर तेषा सन्तानाना परम्परा ।

तत्पूर्वापरयोगेन वक्तुं वयशतैरपि ॥३१७॥

अष्टाविंशत्यु गारुयास्तु गता धवस्वतेऽन्तरे ।

एता राजपिभि राद्धं शिष्टा यास्ता निबोधत ॥३१८॥

उतना ही भोजो का विस्तार दुगुना कहा गया है । वह क्षत्र तीस थे जो यथा विशा न चारी और थे ॥३११॥ उनमें जो अतीत होगये और जो ममान हैं उह बतलाने वाले मुक्त से भली भाँति जान लो । नौ सौ प्रतिविधियों का या और एक सौ नागा थे तथा सौ हय थे ॥३१२॥ धृतराष्ट्र के एक सौ व

तथा जनमेजय के अस्मी थे । ब्रह्मदत्तो के एक सौ थे तथा शीरि और वीरियो के एक सत थे ॥३१३॥ इसके अनन्तर पुलामो के सौ श्वेत काश कुशादि थे । इसके पश्चात् दूसरे एक सहस्र थे जो दत्तविन्द व अतीत हो चुके हैं ॥३१४॥ उन सब ने नियुक्त दक्षिणा वाले अश्वमेधो के द्वारा यजन किया था । इस प्रकार से सैंकड़ो तथा सहस्रो ही राजपि गण अनीत हो चुके हैं ॥३१५॥ वैवस्वत मन्वन्तर मे तो जो उत्पन्न हुए उनकी सन्तति लोक मे कही गई है, उसका ज्ञान प्राप्त करलो ॥३१६॥ विस्तार से वह नहीं कहा जा सकता है । उनके सन्तानो की परम्परा तथा उनका पूर्वा पर योग यह सब सैंकड़ो वर्गों मे भी नहीं बतलाया जा सकता है ॥३१७॥ वैवस्वत अन्तर से अट्ठाईस युगाख्या गत होगई । यह राजपियो के साथ जो शिष्ट है उसे जानलो ॥३१८॥

चत्वारिंशच्च ये चैव भविष्या सह राजभि ।

युगाख्याना विशिष्टास्तु ततो वैवस्वतक्षये ॥३१९

एतद् कथित सर्वं समासव्यासयोगत ।

पुनरुक्त बहुत्वाच्च न शक्यन्नु युगं सह ॥३२०

एते ययातिपुत्राणा पञ्चविंशा विशा हिता ।

कीर्त्तिताश्चाभिता ये मे लोकान् वी धारयन्त्युत ॥३२१

लभते च वरेण्यश्च दुर्लभानिह लौकिकान् ।

आयु कीर्त्ति धन पुत्रान् स्वर्गं चानन्त्यमश्नुते ॥३२२

धारणाच्छ्रवणाच्चैव ते लोकान् धारयन्त्युत ।

इत्येष वो मया पादस्तृतीय कथितो द्विजा ।

विस्तरेणानुपूर्वी च विम्भूयो वर्त्तयाम्यहम् ॥३२३

जो चासीस राजाओ के साथ भागे होंगे इनके पदवान् वैवस्वत के क्षय युगाख्याओ के वे विशिष्ट हैं ॥३१९॥ यह सब कुछ सतेप और विस्तार मे ने कह दिया है । बहुत होने के कारण मे पुन कहना युगो के साथ नहीं हो जाता है ॥३२०॥ वे विशो के हित करन वाले ययानि के पुत्रो के पचीन हुए । उन्हें मेरे द्वारा बतला दिया गया है और जो लोको को धारण किया करते ॥३२१॥ वे वरेण्यता को प्राप्त किया करते हैं और यहाँ पर लौकिक दुर्लभ

पदार्थों को प्राप्त करते हैं । धाम्य-वीति-धन-पुत्र-स्वर्ग और अनन्तता को भी प्राप्त किया करते हैं ॥२२२॥ धारण करने से तथा अक्षय करने से वे लोगों को धारण किया करते है । हे द्विजवृन्द ! यह मैंने तृतीय याद कह दिया है जोकि विस्तार पूर्वक तथा ध्यानपूर्वी के सहित ही कह दिया है । अब पुन क्या मैं कहूँ ॥ २२

### प्रकरण ६२—मन्वन्तर कथन

नि शेषेषु च सर्वेषु तदा मन्वन्तरेष्विह ।  
 अन्तेऽनेकयुगे तस्मिन् क्षीणे सहार उच्यते ॥१॥  
 सप्ततै भर्गवा देवा अन्ते मन्वन्तरे तदा ।  
 भुक्त्वा त्रैलोक्यमध्यस्था युगास्था ह्येकसप्ततिम् ॥२॥  
 पितृभिर्मनुभिश्चैव साद्धं सप्तपिभिस्तु ये ।  
 यज्वानश्चैव तेऽप्यन्ये तद्भ्राताश्चैव तं सह ॥३॥  
 महलोकं गमिष्यन्ति त्यक्त्वा त्रैलोक्यमीश्वरा ।  
 ततस्तेषु गतेषुद्धं क्षीणे मन्वन्तरे तदा ।  
 अनाधारमिदं सर्वं त्रैलोक्यं वै भविष्यति ॥४॥  
 तत न्यानानि घ्न्यानि स्वामिना तानि वै द्विजा ।  
 प्रभ्रस्यन्ति विमुक्तानि ताराश्लक्षप्रहैस्तथा ॥५॥  
 ततस्तेषु व्यतीतेषु त्रैलोक्यस्येश्वरेष्विह ।  
 सेन्द्राष्टेषु महलोकं यस्मिन्ते कल्पवासिनः ॥६॥  
 जित्वाद्याश्च गणा ह्यत्र चाक्षुषान्ताश्चतुर्दश ।  
 मन्वन्तरेषु सर्वेषु देवास्तु वै महौजसः ॥७॥  
 ततस्तेषु गतेषुद्धं सायोज्यं कल्पवासिनाम् ।  
 समेत्य देवास्ते सर्वे प्राप्ते सबलने तदा ॥८॥

श्री सूत्रजी ने कहा—यही उस समय सब मन्वन्तरो के नि शेष होजाने पर अनेक युग के अन्त में उसके क्षीण होजाने पर संहार कहु जाता है ॥१॥

उस समय मन्वन्तर के अन्त में ये मान भागंब देव हुए जो त्रैलोक्य के मध्य में स्थित होते हुए एक सप्तति अर्थात् इक्ष्वाकु युगाद्या का भोग करने वाले थे ॥२॥ पितरगण—मनुवृन्द और सप्तपिपियों के साथ जो यज्ञवा थे और जो अन्य उनके भक्त थे उनके साथ इस त्रैलोक्य का त्याग करके महर्लोक में वे ईश्वर चले जायेंगे । इसके पश्चान् उनके ऊर्द्ध को चले जाने पर उस समय मन्वन्तर के क्षीण होने पर यह ममस्त त्रैलोक्य अनाधार हो जायगा ॥३-४॥ हे द्विज-गण ! तब स्थानियों के वे देव ममस्त स्थान शून्य होने हुए तारा ऋक्ष और ग्रहों के द्वारा विमुक्त होकर प्रभ्रष्ट हो जायेंगे ॥५॥ इसके अनन्तर त्रैलोक्य के व्यतीत हो जाने पर जोकि इन्द्र के महिन आठ थे, वे सभी कल्प तक महर्लोक में वास करने वाले हैं ॥यहाँ पर जिताद्य और चाक्षुपान्त चौदहगण हैं समस्त मन्वन्तरो में वे महान् घोष वाले देव थे ॥७॥ इसके पश्चात् उनके ऊपर चले जाने पर कल्प वानियों के साशोज्य को प्राप्त कर उस समय सकलन प्राप्त होने पर वे मध देव जो थे ॥८॥

महर्लोक परित्यज्य गणास्ते वी चतुर्दश ।  
 सशरीराश्च श्रूयन्ते जनलोक सहानुगा ॥६  
 एव देवेष्वतीतेषु महर्लोकान्ज्जन् प्रति ।  
 भूतादिष्ववशिष्टेषु म्यावरान्तेषु चाप्युत ॥१०  
 शून्येषु लोकस्थानेषु महान्तेषु भूरादिषु ।  
 देवेषु च गतेषूढं सायोज्य कल्पवासिनाम् ॥११  
 सत्सत्य तास्ततो ब्रह्मा देवपिपितृदानवान् ।  
 सस्थापयति वी मर्ग महद्दृष्ट्या युगक्षये ॥१२  
 तत्र युगसहस्रान्तमहर्षद्ब्रह्मणो विदुः ।  
 रात्रि युगसहस्रान्तमहोरात्रविदो जनाः ॥१३  
 नैमित्तिक प्राकृतिको यश्चैवात्यन्तिकोऽर्थ्यत ।  
 त्रिविध सर्वभूतानामित्येषु प्रतिसम्बरः ॥१४  
 ब्राह्मो नैमित्तिकस्तस्य कल्पदाह प्रसयमः ।  
 प्रतिसर्गे तु भूताना प्राकृत करणक्षयः ॥१५

ज्ञानाच्चात्यन्तिकं प्रोक्तं कारणाणामसम्भवः ।

ततः सत्त्वस्य तान् ब्रह्मा देवास्त्रैत्रोक्थवासिनः ॥१६॥

अहरन्ते प्रकुरुते सर्गस्य प्रलयं पुनः ।

सुपुप्सुभंगवान् ब्रह्मा प्रजा सहर्तते तदा ॥१७॥

ये सब देव महर्षीक का परित्याग करके सगरीर चौदहगण अनुगों के साथ जनलोक में गये ऐसा सुना जाता है ॥१६॥ इस प्रकार में महर्षीक से उन देवों के जनलोक के प्रति चले जाने पर अविशिष्ट भूतादि और म्यान राशियों के साथ लोक स्थानों के एव महान् भू आदि के दूय होजाने पर फिर उन देवों के ऊपर जाने पर कल्प पर्यन्त वाम हुआ और उनको सायोग्य प्राप्त हुआ था ॥१०-११॥ इसके उपरांत उनको वहाँ से सहृत करके ब्रह्माजी देवर्षि-पितृ तथा मानवों को युवक्षय में महद्दृष्टि से सर्ग को सस्थापित करते हैं ॥१२॥ वहाँ एक सहस्र युग तक जो ब्रह्माजी का दिन कहा जाता है और रात्रि का युग सहस्र पर्यन्त होता है । इस प्रकार से ब्रह्मा के महोरात्र को मनुष्य जानते हैं ॥१३॥ नैमित्तिक-प्राकृतिक और जो अर्थ से आत्यन्तिक यह तीन प्रकार का समस्त प्राणियों का सञ्चार होता है ॥१४॥ ब्राह्म नैमित्तिक होता है उमका कल्पहार प्रसंगम होता है । प्राणियों के प्रत्येक सर्ग में करण क्षय प्राकृतिक होता है ॥१५॥ और ज्ञान आत्यन्तिक कहा गया है जो कारणों का असम्भव होता है । इसके पश्चात् ब्रह्माजी त्रैत्रोक्थ वासी उन देवों को सहृत करके दिन के अन्त में सर्ग का प्रलय किया करते हैं । सोने की इच्छा वाले ब्रह्मा उस समय में प्रजाओं का सहार किया करते हैं ॥१६-१७॥

ततो युगसहस्रान्ते संप्राप्ते च युगक्षये ।

तदात्मस्था प्रजा वक्तुं प्रयेदे स प्रजापति ॥१८॥

तदा भवत्यनावृष्टिस्तदा सा शतवार्षिकी ।

तथा यान्यल्पसाराणि सत्त्वानि पृथिवीतले ॥१९॥

तान्येवान् प्रलीयन्ते भूमित्वमुपयान्ति च

सप्तर्श्मरयो भूत्वा ह्युदतिः द्विभावनु ॥२०॥

असह्यारश्मिर्भगवान् पिवन्नम्भो गभस्तिभि ।  
हरिता रश्मयस्तस्य दीप्यमानास्तु सप्तभिः ॥२१॥  
भूय एव विवर्तन्ते व्याप्नुवन्तो वन शनै ।  
भौम काष्ठं धन तेजो भृशमद्भिस्तु दीप्यते ॥२२॥  
तस्माद्बुदक सूर्यस्य तपतोऽति हि कथ्यते ।  
नावृष्ट्या तपते सूर्यो नावृष्ट्या परिविप्यते ॥२३॥

इसके पश्चान् सहस्र युग के अन्त में युग क्षय के सम्प्राप्त होने पर वह प्रजापति वहाँ पर अपनी आत्मा में स्थित प्रजा के करने के लिये प्रस्तुत होने हैं ॥१८॥ उस समय में सौ वर्ष पर्वन्त अनावृष्टि हुआ करती है । इन प्रकार से अल्पसार वाले जो जीव इस पृथ्वी तल में होते हैं वे यहाँ पर ही प्रलीन हो जाया करने हैं और भूमि में मिल जाया करते हैं । इसके उपरान्त विभावसु (सूर्य) सप्तारश्मि होकर उदित होता है ॥१९-२०॥ भगवान् सूर्य बहुत ही तीव्र किरणों वाले होते हैं । जिनको कोई सहन नहीं कर सकता है । वे अपनी किरणों के द्वारा जन का पात किया करते हैं । उनकी हरित रश्मियाँ अत्यन्त ही सन्धी के द्वारा ही दीप्यमान होनी हैं ॥२१॥ शनै शनै वन में व्याप्त होते हुए फिर विवर्तित होनी हैं । भूमि के वायु, धन, तेज को बहुत ही भक्षण करते हुए दीप्त होते हैं ॥२२॥ इसमें तपते हुए सूर्य का उदक कहा जाता है । अनावृष्टि में सूर्य तपता है और नावृष्टि से परिविष्ट होता है ॥२३॥

नावृष्ट्या परिचिन्वन्ति वारिणा दीप्यते रवि ।  
तस्मादपि पिवन् या वै दीप्यते रविरम्बरे ॥२४॥  
तस्य ते रश्मयः सप्त पिवन्त्यम्भो महार्णवात् ।  
तेनाहारेण सन्दीप्त सूर्यं सप्त भवत्युत ॥२५॥  
ततस्ते रश्मयः सप्त सूर्यभूताश्चतुर्दिशम् ।  
चतुर्लोकमिम सर्वं दहन्ति शिखिनस्तदा ॥२६॥  
प्राप्नुवन्ति च भाभिरतु ह्यद्भ्यं चाघश्च रश्मिभिः ।  
दीप्यन्ते नास्कराः सप्त युगान्ताग्नि प्रतापिनः ॥२७॥

ते वारिणा च सदीप्ता बहुसाहस्ररश्मयः ।  
 स समावृत्य तिष्ठन्ति निर्दहन्तो वसुन्धराम् ॥२८॥  
 ततस्तेषां प्रतापेन दह्यमाना वसुन्धरा ।  
 साद्रि नद्यर्णवा पृथ्वी विस्नेहा समपद्यत ॥२९॥  
 दीप्ताग्निं सन्तताभिश्च चित्राभिश्च समन्ततः ।  
 अधश्चोर्ध्वञ्च तिर्यक् च सरद्ध सूर्यंरश्मिभिः ॥३०॥

नावृष्टि से रवि परिवन्धित होता है और वारि (जल) से दीप्त हुआ करता है । इससे जो जल का पान करती है उससे सूर्य अम्बर में दीप्त हुआ करता है ॥२८॥ उसकी सात रश्मियाँ महाजन से जल का पान किया करती हैं । उस माहार में सदीप्त होने वाला सूर्य मप्त होता है ॥२९॥ इसके प्रतन्तर सात रश्मियाँ चारों दिशाओं में सूर्य मून होती हुई उस समय शिषी ( अग्नि रूप ) के इस चतुर्भुज को सर्वों को दाय किया करती हैं ॥२९॥ ऊपर और नीचे अपनी दीप्तियाँ से रश्मियाँ सर्वत्र प्राप्त हो जाती हैं । प्रताप वाले सूर्य की मुखाग्नि सप्त भास्वर दीप्यमान होने है ॥३०॥ वे बहु महत्त्व रश्मियाँ जन के द्वारा सदीप्त हो जाया करती हैं । इन वसुन्धरा को जलती हुई मातंग को आवृत करके रक्षा करती हैं ॥२८॥ इसके अन्तर उनके प्रकृत ताप से यह समस्त वसुन्धरा दह्यमान हो जाया करती है । परंतो वे महिन नदी और समुद्र से युक्त यह समस्त पृथ्वी बिना स्नेह वाली अर्थात् एतद्वय शुष्क हो जाती है ॥२९॥ दीप्त-मन्त्रं फैली हुई — विविध तंत्र से युक्त सूर्य की विरणो में नीचे के भाग और ऊपर का भाग और निर्दिष्ट भाग सभी महत्त्व हो जाते हैं ॥३०॥

सूर्याग्नीना प्रवृद्धानां सनृष्टानां परस्परम् ।  
 एतद्वयमुपदानानामेव ज्वाल भवेत्युत ॥३१॥  
 गर्बलोहप्रणाशञ्च गोर्गमिभूत्वा तु मण्डली ।  
 चतुर्भुजमिदं सर्वं निर्दहत्यागु तेजसा ॥३२॥  
 ततः प्रवीयते सर्वं जङ्गमं स्यादर तदा ।  
 निवृक्षा निम्बृणा भूमिः कृमंपृष्ठमया भवेत् ॥३३॥

अश्वरीपमिवाभाति सर्वं मारिपित जगत् ।  
 सर्वमेव तदार्चिभिः पूर्णं जज्वाल्यते नभः ॥३४  
 पाताले यानि भूतानि महोदधिगतानि च ।  
 ततस्तानि प्रलीयन्ते भूमित्वमुपयान्ति च ॥३५

इस प्रकार से बड़ी हुई और परस्पर में ममृष्ट अर्थात् मिली हुई सूर्य की  
 अश्वरीप का जोकि सभी मिलकर एक स्वरूप को प्राप्त हो गई है फिर सबकी  
 एक ही महान् ज्वाला का रूप हो जाया करता है ॥३४॥ वह मण्डली इस  
 प्रकार ने भीषण अग्नि का स्वरूप धारण करके तेज से समस्त लोको का प्रदृष्ट  
 नाश किया करता है और इस चतुर्लोक को समस्त की शीघ्र ही तेज में निर्दग्ध  
 कर देता है ॥३२॥ इसके पश्चात् यह समस्त स्थावर और जङ्गम उस समय  
 प्रलीन हो जाता है । यह भूमि ऐसी हो जाती है कि इस पर एक भी वृक्ष नहीं  
 रहना है तथा वृणो में हीन बूम के पृष्ठ के समान एकदम पट्ट सी होजाती है  
 ॥३३॥ यह समस्त मारीपित जगत् अश्वरीप की भांति प्रलीन होता है । उस  
 समय में अश्वरीप के द्वारा यह समस्त आकाश मण्डल परिपूर्ण रूप से जाज्व-  
 ल्यमान हो जाता है ॥३४॥ पाताल में जो प्राणी हैं और महा समुद्र में हैं वे  
 भी उस समय प्रलीन हो जाते हैं और भूमित्व को प्राप्त हो जाया करते हैं  
 अर्थात् भूमि में मिलकर अपना अस्तित्व खो देते हैं ॥३५॥

द्वीपाश्च पर्वताश्चैव वर्षाण्यथ महादधि ।  
 सर्व्वं तद्भस्ममाच्चक्र मर्वात्मा पावकस्तु स ॥३६  
 समुद्रेभ्यो नदीभ्यश्च पातालेभ्यश्च सर्व्वत ।  
 पितृभ्यश्च समिद्धोऽग्नि पृथिवीमाधितो ज्वलन् ॥३७  
 तत सर्वत्तं क शैलानतिक्रम्य महास्तथा ।  
 लोवान् सहर्षते दीप्तो घोर सर्वत्तं रोऽनल ॥३८  
 तत म पृथिवी भित्त्वा रसानलमगोगयत् ।  
 निर्दंष्ट तास्तु पातालाग्नमलोकमथादहत् ॥३९  
 अधस्तात्पृथिवी दक्ष्या ह्यूर्ध्वं स दहते दिवम् ।  
 योजनाना सप्त्याणि ह्ययुनान्यर्बुदानि च ॥४०



उदतिष्ठञ्छिष्याम्नस्य ब्रह्मच सवर्सांस्य तु ।  
 गन्धर्वाञ्च पिशाचाञ्च समहारगराक्षसान् ।  
 तदा दहति सदीप्तो गोलक चैव सर्व्वश ॥४१॥  
 भूर्लोकन्तु भुवर्लोक स्वर्लोकञ्च महस्तथा ।  
 घोर दहति कालाग्निरेव लोकचतुष्टयम् ॥४२॥  
 व्याप्तपु तेषु लोकेषु तिर्यगूद्ध्वंमथाग्निना ।  
 तत्तेज समनुप्राप्त वृत्स्न जगदिद शनं ।  
 अयोगुडनिभ सर्व्वं तदा ह्येव प्रवाशते ॥४३॥  
 ततो गजकुलाकारास्तडिड्भिः समलकृता ।  
 उत्तिष्ठन्ति तदा घोरा व्योम्नि सवत्सवा घना ॥४४॥

सर्वांमा उम पावक न द्वीप-पर्वत-वप और महा समुद्र इन सबको  
 भस्म सान् कर दिया था ॥३६॥ समुद्रो म-नदिया से और पातालो से सब  
 और से जल का पान करते हुए समिद्ध हुआ वह अग्नि जलता हुआ पृथिवी में  
 आश्रित होगया था । इसके अनन्तर वह महान् सवत्सक अग्नि शैली का अग्नि  
 क्रमण करके अत्यन्त घोर तथा दीप्त होता हुआ लावा का सहार करता है  
 ॥३७-३८॥ इसके पश्चात् वह इस पृथ्वी का भस्म करके रमातल में पहुँचना है  
 और उसने उसका श्रावण कर दिया था । उन पाताल लोको को निर्दग्ध करके  
 उसके पश्चात् उमने नागलोक को भी जला दिया था ॥३९॥ नीचे के समस्त  
 भाग में पृथ्वी को दग्ध करके वह फिर ऊद्ध भाग में दिवलोक जाता देना है ।  
 सहस्र अद्भुत और अद्भुत योजनो तक उस सवत्सक अग्नि की बहुत सी शाखाएँ  
 उठ गई थी । फिर वह गन्धर्वों को-पिशाचों को-महोरगों को और राक्षसों को  
 उस समय सदीप्त होता हुआ जलाता है ॥४०-४१॥ भूर्लोक-भुवर्लोक-स्वर्लोक  
 और महर्लोक इन चारों लोकों को इस प्रकार से वह घोर कालाग्नि दग्ध कर  
 दिया करता है ॥४२॥ तिर्यग और ऊद्ध्व भाग में उन अग्नि के द्वारा उन लोकों  
 में व्याप्त हो जाने पर वह तेज धीरे धीरे सम्पूर्ण इस जगत् में प्राप्त हो जाता  
 है । उन समय यह सब अयोगुड के समान प्रकाशित होने लगता है ॥४३॥

इसके परचात्र हाथियों के समान आकार वाले विद्युत् से बलवृत्त उस समय आकाश में परम धार स्वरूप बाने सबत्तव मेघ उठ आते हैं ॥४५॥

✓ केचित्नीलात्पलश्यामा केचित्कुमुदसनिभा ।  
 केचित्द्रुयमकाशा इन्द्रनीलनिभा पर ॥४५॥  
 शङ्खकुन्दनिभाश्चान्ये जात्यश्चुननिभास्तथा ।  
 धूम्रवर्णा घना केचित्केचित्पीता पयाधरा ॥४६॥  
 केचिद्रामभद्वर्णाभा लाक्षारक्तनिभास्तथा ।  
 मन शिलाभास्त्वपरे कपाताभास्तथाम्बुदा ॥४७॥  
 इन्द्रगोपनिभा केचिदुत्तिष्ठन्नि घना दिवि ।  
 केचित्पुरधराकारा केचिद्गजकुनापमा ॥४८॥  
 केचित्पवतसकाशा केचित्स्यलनिभा घना ।  
 कुण्डागारनिभा केचित्केचिन्मीणकुनापमा ॥४९॥

उन मेघों में कुछ तो नील कमल के महान् आकार होते हैं और कुछ कुमुद के समान हुआ करते हैं । कुछ बंदूप के तुल्य हैं तो दूसरे इन्द्र नील के सदृश होते हैं ॥४५॥ अन्य गाय और कुन्द के तुल्य हैं तो कुछ शङ्ख के समान होते हैं । कुछ मेघ धूम्र वर्ण बाने होते हैं तो कुछ पयाधरी हैं ॥४६॥ कुछ रातभ (गंधा) के बग जैसे बग बाने हैं तो कुछ ताल के जैसे रत्न बग बाल हैं । कुछ मैनमिन के समान आभा में युक्त हैं तथा कुछ मधुकरान (बदुंग) की सी आभा बाने होते हैं ॥४७॥ कुछ वादन इन्द्र गान के तुल्य इन आकाश में उठते हैं । कुछ पुरधर के आकार बाने हैं तो कुछ गजा के समूह के समान होते हैं ॥४८॥ कुछ पवना के समान हैं तो कुछ स्थल के महान् मधु हान हैं । कुण्डागार के तुल्य कुछ हैं तो कुछ मीन कुन के तुल्य होते हैं ॥४९॥

बहुरूपा घोररूपा घोरम्बरनिनादिन ।  
 तदा जनधरा सर्वे पूर्यति नभस्यनम् ॥५०॥  
 ततस्ते जनदा घोरा नवीना भास्वरातिमवा ।  
 मसधा मवृतामानस्तर्माग शमयन्त्युत् ॥५१॥

ततस्ते जलदा वर्षं मुञ्चन्ति च महोद्यमम् ।  
 सुधोरमशिव नाशयन्ति च त पावकम् ॥५२॥  
 प्रवृष्टैश्च तथात्यर्थं वारिभि पूर्यन्ते जगत् ।  
 अद्भिस्तेजोऽभिभूतश्च तदाग्नि प्राविशत्यप. ॥५३॥  
 नष्टे चाग्नी वर्षशते पयोदा पावसम्भवा ।  
 प्लावयन्ति जगत्सर्वं बृहज्जालपरिस्रवं ॥५४॥

बहुन से रूपों वाले तथा घोर स्वरूप घारी घोर अति घोर निनाद करने वाले जलधर उस समय म नभ के रथल भर दिया करते हैं ॥५०॥ इसके अनन्तर भास्करात्मिक वे नये मेष जिनका कि परम धार स्वरूप है मात प्रकार से सवृत आत्मा वाल उस अग्नि को क्षमन कर देते हैं ॥५१॥ इसके उपरान्त वे जलधर महान् उद्यम वाली वर्षा का त्याग किया करते हैं अर्थात् अत्यन्त जोर से बरसते हैं घोर उस परम घोर अमञ्जल उम पावक का नाश कर देते हैं ॥५२॥ प्रवृष्ट रूप से वर्षा करने वाले अति जलो के द्वारा यह जगत् पूरित हो जाता है । फिर वह तेजोऽभिभूत अग्नि जलो के द्वारा जल ही में प्रवेश कर जाना था ॥५३॥ पाक से समुत्पन्न वे ज्वलद वृन्द मौ वर्ष तक बरसते हुए अग्नि को दान्त कर देने पर बृहत् जल के समूह के परिस्रवो के द्वारा इन समस्त जगत् को प्लावित कर देते हैं ॥५४॥

धाराभि पूरयन्तीम चोद्यमाना स्वयम्भुवा ।  
 अन्ये तु मनिलीषंस्तु वेलामभिभवन्त्यपि ।  
 साद्रिद्वीपान्तर पृथ्वी ह्यद्भि सद्वाचते तदा ॥५५॥  
 तस्य वृष्ट्या च ताय तत्तद्व्यं हि परिमण्डितम् ।  
 प्रविशत्युदधौ विप्राः प्रीत मूर्ध्यंस्य रश्मिभि ॥५६॥  
 आदित्यरश्मिभि पीत जलमध्रेषु तिष्ठति ।  
 पुन पतति तद्भूमौ तेन पूर्यन्ति चार्णवा ॥५७॥  
 तत समुद्रा स्वा वेला परिक्रामन्ति गव्यंश ।  
 पर्व्यंताश्च विशीर्यन्ते मही चाप्यु निमज्जति ॥५८॥

ततस्तु महसोद्भ्रान्त पयोदास्ताम्रभस्तले ।  
 सवेष्टयात् घोरात्मा दिवि वायुः समन्ततः ॥५६॥  
 तस्मिन्नेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे ।  
 पूर्णं युगसहस्रं वै निशेष कल्प उच्यते ॥६०॥  
 अयाम्भसा वृते लोके प्राहुरेकार्णव बुधा ।  
 अथ भूमितल खञ्ज वायुश्चकार्णवे तदा ।  
 नष्टे भावेज्वलीन तत्प्राज्ञायत न विश्व ॥६१॥  
 पार्थिवास्त्वथ सामुद्रा आपो हैमाश्च सर्व्वश ।  
 प्रसरन्त्यो व्रजन्त्येव सलिलाह्या भजन्त्युत ॥६२॥

स्वयम्भू के द्वारा प्रेरित हुए ये मूर्ख अपनी भूमि-लाघार धाराओं के द्वारा इस जगत् को भर दिया करते हैं । अग्य तो अपने जल के ओधों के द्वारा वेला को भी अभिभूत कर देने हैं । उस समय में पर्वत और द्वीपों के प्रन्तरो के सहित यह पृथ्वी जनों के द्वारा समाच्छादित हो जाया करती है ॥५५॥ और उसकी वृष्टि से ही द्विजगण । परिमण्डित यह समस्त जल सूर्य की किरणों के द्वारा पान किए गये समुद्र में प्रवेश करता है ॥५६॥ सूर्य के द्वारा पीया हुआ यह जन मेघों में स्थित हो जाता है फिर वही जल यहाँ पर भूमि में पड़ता है उसमें समुद्र भर जाया करते हैं ॥५७॥ इसके उपरान्त ये समुद्र अपनी वेला को सभी ओर में परिकान्त कर दिया करते हैं । तब पर्वत विनीर्ण हो जाते हैं और समस्त भूमि जल में डूब जाया करती है ॥५८॥ इसके पश्चात् महमा उद्भ्रान्त वायु सभी ओर से घोर रूप धारण करके आकाश में उन मेघों को नवेष्टित कर लेता है ॥५९॥ उस समुद्र में समस्त स्थावर और जङ्गम के नष्ट हो जाने पर पूरे एक सहस्र युग में निशेष कल्प बहा जाता है ॥६०॥ इसके अनन्तर एवमात्र जन के द्वारा समस्त लोक के आनृत हो जाने पर पुष एकार्णव बहा करते हैं और इस भूतल तथा आकाश को वायु जब एकार्णव बना देता है तब उस समय में भाव के नष्ट होने पर कुछ भी नहीं जाना जाता था ॥६१॥ पार्थिव-सामुद्र और हिम में होने वाले जल सभी ओर फैले हुए एक सलिलाह्या को प्राप्त किया करते हैं ॥६२॥

आगतागतिक चैव तदा तत्सलिल स्मृतम् ।  
 प्रच्छाद्य तिष्ठति महीमर्णवाख्य च तज्जलम् ॥६३  
 आभान्ति यस्मात्ता भाभिभाशब्दव्याप्तिदीप्तिषु ।  
 भस्म सर्व्वमनुप्राप्य तस्मादम्भो निरुच्यते ॥६४  
 नानात्वे चैव शीघ्रे च धातुर्वै अर उच्यते ।  
 एकार्णवे तदा यो वै न शीघ्रास्तेन ता नरा ॥६५  
 तस्मिन् युगसहस्रान्ते दिवसे ब्रह्मणो गते ।  
 तावन्त कालमेव तु भवन्पेकार्णव जगन्  
 तदा तु सर्व्वव्यापारा निवर्त्तन्ते प्रजापते ॥६६  
 एवमेकार्णवे तस्मिन्नष्टे स्थावर जङ्गमे ।  
 तदा स भवति ब्रह्मा सहस्राध सहस्रपात् ॥६७  
 सहस्रशीर्षा सुमना सहस्रपात् सहस्रचक्षुर्वदन सहस्रवाक् ।  
 सहस्रबाहु प्रथम प्रजापतिस्नयीपथे य पुरुषो निरुच्यते ॥६८  
 आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता ह्यपूर्व्व एकः प्रथमस्तुरापाट् ।  
 हिरण्यगर्भं पुरुषो महान् वै सपद्यते वै तमस परस्तात् ॥६९  
 चतुर्धुगसहस्रान्ते सर्गत सलिलप्लुत ।  
 सुपुप्सुर्प्रकाशा स्वा रात्रि तू कुरुते प्रभु ॥७०

उस समय में वह जल आगतागतिक कहा गया है । अणव के नाम  
 वाला वह जन इस भूमि को ढक कर स्थित रहता है ॥६३॥ क्योंकि वह भासो  
 के द्वारा भी—इस शब्द की व्याप्ति की दीप्तिषो में आभा युक्त होता है सबको  
 भस्म में अनु प्राप्त करना है इसलिये वह अम्भ कहा जाता है ॥६४॥ और  
 नानात्व में एव शीघ्र में अरधातु कही जानी है । उस समय में एकार्णव में जो  
 शीघ्र नहीं है उससे वह नर कहा गया है ॥६५॥ ब्रह्मा के युग सहस्र वाले उस  
 दिन के पत होने पर उस समय तक ही यह जगत् एकार्णव रहता है और तब  
 प्रजापति के समस्त व्यापार निवृत्त हो जाता करते हैं ॥६६॥ इस प्रकार से  
 उस एक अणु में समस्त स्थावर और जङ्गल के नष्ट हो जाने पर तब ब्रह्मा  
 सहस्र नेत्रा और सहस्र चरणवाले होत है ॥६७॥ सहस्र शीर्ष धाने-सुमना-

महस्र पादो स युक्त सहस्र चक्षु और मुखो मे पूर्ण—महस्र नाक्—सहस्र बाहुयो  
 याना प्रधीपथ म प्रथम प्रजापति हाता है जाकि पूरुष कहा जाता है ॥६८॥  
 आदित्य के समान वर्ण वाला—इम भुवन को गोता प्रथम तुरापाट एक अधूर्व  
 ही होना है । वह हिरण्य गर्भं पुरुष तम से परे महान् मम्पन्न होता है ॥६९॥  
 एत महस्र बारो युगा के अत म सब ओर म जल म प्युत म सोन की इच्छा  
 करने वाला वह प्रभु प्रकाश हीन उम अपनी रात्रि को किया करता है ॥७०॥

चतुर्विधा यदा वेत्ते प्रजा सर्व्वर्ण्डमण्डिता ।

पश्यन्ते त महारत्मान कान सप्त महर्षय ॥७१

जनलोवविवर्तन्तस्तपमा लट्टचक्षुष ।

भृग्वादयो महारत्मान पूर्वो व्याख्यातलक्षणा ॥७२

सत्यादीन् सप्तलोकान् वी त हि पश्यन्ति चक्षुषा ।

ब्रह्माण त तु पश्यन्ति महाब्राह्मीषु रात्रिषु ॥७३

बल्पाणा परमेष्ठित्वात्तस्मादाद्य स पठ्यते ॥७४

स यथा सर्वाभूताना बल्पादिषु पुन पुन ।

एवमावगमिन्वा तु स्मात्मन्यव प्रजापति ॥७५

अथात्मनि महानजा सर्वाभादाय सर्वावृत् ।

तनस्त वपत रात्रि तमस्येनाणवे जले ॥७६

तना रात्रिक्षये प्राप्त प्रतिबुद्ध प्रजापति ।

मन निमृशया युक्त सर्गाधि निदधे पुन ॥७७

एव सत्रोके निर्गुत्त उपदान्त प्रजापती ।

ब्रह्मर्नमित्तिके तस्मिन् कल्पित वी प्रमयम ॥७८

देहैवियोग सत्वाना तस्मिन् वी वृत्स्नग स्मृत ।

ततो दग्धेषु भूतषु सव ष्वादित्यरश्मिभि ।

दवापिम नृवम्येषु तस्मिन् सङ्कुलने तदा ॥७९

ग धर्वादीनि सत्वानि पिशाचान्तानि मर्त्यांश ।

बल्पादायप्रतप्तानि जनमयाश्रयन्ति वै ॥८०

त्रिम ममर म सर्वाण्ड मरिडा पार प्रकार या प्रजा गमन करती है

तो सप्तपिण्ड उम महान् आत्मा वाले काल को देखा करते हैं ॥७१॥ जल लोक में विवर्त्तमान और तप के द्वारा नेत्रों की दृष्टि को प्राप्त करने वाले भृगु आदि महात्मा होते हैं जिनका पूर्व में नक्षत्रों की व्याख्या करदी गई है । मत्स्य प्रभृति सातो लोको को वे ही षधु के द्वारा देखा करते हैं । उन महा ब्राह्मी रात्रियों में वे ब्रह्मा को भी देखा करते हैं ॥७२॥ सप्तपिण्ड अपनी रात्रियों में मोये हुए काल को देखते हैं । कल्पो का परममेश्री होने से वह आद्य पडा जाया करता है ॥७३-७४॥ वह समस्त प्राणियों का कल्पो के आदि में पुन पुन दशा होता है । इस प्रकार से प्रजापति अपनी आत्मा में ही आवेशयित होता है ॥७५॥ इसके अनन्तर महान् तेज बाल सबको आत्मा में लाकर सब कुछ के करने वाला इसके पश्चान् एकार्णव जन में जोकि एकदम अन्धकारमय है वहाँ रात्रि में वाम किया करता है ॥७६॥ इसके उपरान्त उस रात्रि के क्षय हो जाने पर वह प्रजापति प्रति बुद्ध होता है और फिर मृजन करने की इच्छा से मनको युक्त करके पुन मगं के लिये निश्चित किया करता है ॥७७॥ इस तरह से सलोक के निवृत्त होने पर और प्रजापति के उपशान्त होने पर तथा ब्रह्म नैमित्तिक उम कल्पित के प्रसयम होने पर सत्त्वो का देहो से वियोग होना है और उसको पूर्णरूप में कहा गया है । इसके पश्चान् सूर्य की किरणा क द्वारा समस्त प्राणियों के दग्ध हो जाने पर उम समय में मनुज श्रेष्ठ देवपियों के उम सङ्कलन में गन्धर्व आदि जीव और पिशाचान्त तक कल्प के आदि में अग्रतस्त होत हुए जन्म लोक का आश्रय लिया करते हैं ॥७८-७९-८०॥

तियंभ्योनीनि सत्वानि नारकेयानि यान्यपि ।

जने तान्युपपद्यन्ते यावत्सप्लवते जगत् ॥८१

व्युष्टायान्नु रजन्या तु ब्रह्मणोऽव्यक्तयोनये ।

जायन्ते हि पुनस्तानि सर्वभूतानि कृत्स्नश ॥८२

ऋषयो मनवो देवा प्रजा सर्वाश्चर्तुर्विधा ।

तेषामपीह सिद्धाना निधनोत्पत्तिश्च्यते ॥८३

यथा सूर्यस्य लोकेऽस्मिन्नुदयान्तामन स्मृतम् ।

तथा जन्मनिरोधश्च भूतानामिह दृश्यते ॥८४

धामभूतसत्त्ववात्तस्माद्भुव. सक्षार उच्यते ।  
 यथा सर्वाणि भूतानि जायन्ते हि वर्षास्विह ॥८५  
 स्यादरादीनि सत्त्वानि कल्पे कल्पे तथा प्रजाः ।  
 यथात्तवृत्तुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये ॥८६  
 दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा ब्रह्मात्तरान्निषु ।  
 प्रत्याहारे च सर्गे च गतिमन्ति ध्रुवाणि च ॥८७  
 निष्क्रमन्ते विद्यन्ते च प्रजावार प्रजापतिम् ।  
 ब्रह्माणं सर्वभूतानि महायोग महेश्वरम् ॥८८

जो निर्यक् योनि याते जीव ये घोर जो नारकीय जोर ये उम गमय  
 मे ये सभी सव प्रवार से नष्ट पाशो बाल होने हुए दग्ध होगये ये । जब तक  
 जगत् संप्लावित रहना है तब तक ये सभी मत्त्व जनताक में उत्पन्न हुआ करते  
 हैं ॥८१॥ अथस्त यानि ब्रह्मा के निर्य रजनी के स्पृष्ट हो जाने पर फिर वे  
 समस्त प्राणी पूर्ण रूप में उत्पन्न होने हैं ॥८२॥ श्रुविमग्न-मनुवृन्द-देवता-  
 प्रजा समस्त पाशो प्रवार की—रन सवका घोर यही पर मिट्टो का भी निघन  
 होना तथा उत्पन्न होना कहा जाता है ॥८३॥ जिस तरह में हम सोच म मूर्ख  
 का उदय होना घोर घटन होना कहा गया है—उसी तरह में प्राणियों का  
 जन्म घोर निरोध दिगताई देना है ॥८४॥ उम भूत गणव व स संकर मन सवार  
 कहा जाता है । जैसे समस्त प्राणी यही वर्णों म उत्पन्न हुआ करते हैं ॥८५॥  
 जिस तरह श्रुतु के समय में पर्यय होने पर घनक प्रवार के श्रुतु के बिना जाने  
 हैं उसी तरह कल्प-काल म स्यादर आदि तत्त्व घोर प्रजा हुआ करते हैं ॥८६॥  
 ब्रह्मा की घात रात्रियों म वे-वे ही प्रत्याहार म भीर गर्भ में ध्रुव घोर गति-  
 मान् दिगताई दिना करते हैं ॥८७॥ मृतान् याव यावे महेश्वर प्रजा के घातार  
 की प्रजापति ब्रह्मा में समस्त प्राणी प्रवेश करते हैं घोर निगमन निरा  
 करते हैं ॥८८॥

गमयता सर्वभूतानां कन्वाशिशु पुन. पुन ।

ध्याताप्यन्तो मशुदेवगम्य गर्भमिद जगत् ॥८९



येनैव मृष्टा प्रथम प्रयाता आपो हि मार्गेण महीतलेऽस्मिन् ।  
 पूर्वप्रयातेन तथा ह्यपोऽन्यास्तेनैव तेनैव तु सन्नजन्ति ॥६०॥  
 यथा शृभेन त्वशुभेन कर्मणा तत्रैव च तेन विवर्त्तमाना ।  
 मर्यास्तु देहान्तरभावितस्वाद्वेर्वशाद्दुर्द्धमघश्चरन्ति ॥६१॥  
 ये चापि देवा मनव प्रजेशा अन्येऽपि ये स्वर्गगताश्च सिद्धा ।

सद्भाविताख्यातिवशाच्च धर्म्याः पुनर्निसर्गेण भवन्ति सत्त्वा ॥६२॥  
 अत ऊर्द्धं प्रवक्ष्यामि कालमाभूतसप्लवम् ।

मन्वन्तराणि यानि स्युर्व्याख्यातानि मया द्विजा ।

सह प्रज्ञानिसर्गेण सह देवैश्चतुर्दश ॥६३॥

स युगाख्या सहस्रं तु मर्वाण्येवान्तराणि वै ।

अस्या सहस्रे द्वे पूर्णे निःशेष कल्प उच्यते ॥६४॥

एतद्ब्राह्ममहो ज्ञेय तस्य सख्या निबोधत ।

निमेषस्तुल्य मात्रा हि कृतो लघ्वक्षरेण तु । ६५

मानुषाक्षिनिमेषास्तु काष्ठा पञ्चदश स्मृता ।

लव क्षणास्तु पञ्चैव विशत्काष्ठा तु ते त्रय ॥६६॥

कल्पो के आदि कालो मे समस्त प्राणियो का बार बार स्रष्टा, व्यक्त

और अव्यक्त महादेव हैं और उसका यह सारा जगत् है ॥६६॥ जिस मार्ग के

ही द्वारा प्रथम सृष्ट किये हुए जल इम महीतल मे गये है उसी प्रकार स पूर्व

प्रयात मार्ग से अन्य जल भी जाया करते हैं ॥६०॥ जैसे शुभ और अशुभ कर्म

से यहाँ-यहाँ पर ही विवर्त्तमान मनुष्य अन्य देहों मे भावित होने के कारण मे

रवि के वश से ऊर्द्ध्व मे तथा अधोभाग मे विचरग किया करते हैं ॥६१॥

जो भी देव-मनुगण-प्रजेश और अन्य भी जो स्वर्ग मे गये हुए निद्र हैं वे सब

सद्भावित आख्याति के वश होने से पुनर्निसर्ग के द्वारा धर्म से युक्त जीव होते

हैं ॥६२॥ हे द्विजगण ! मैंने मन्वन्तरो की व्याख्या जोकि यह भली भाँति करदी

है अब इस से आगे आभूत सप्लव काल की वतलाऊंगा । मनुगण प्रजा निसर्ग

के साथ और देवों के साथ चौदह हुए थे ॥६३॥ वह सब अन्तर युगाख्या सहस्र

है । इसके दो सहस्र पूर्ण निःशेष कल्प बहा जाता है ॥६४॥ यह ब्राह्म नाम

वाता जानना चाहिये उसकी मर्यादा या ज्ञान प्राप्त करलो । सध्वक्षर के द्वारा त्रिंशद्वा निमेष तुल्य माना वाला हाना है ॥६५॥ मनुष्यो की आँखो के निमेष तो पन्द्रह काष्ठा वही गई है । पाँच क्षण का तब दोला है और तीन लवो की बीस काष्ठा होती है ॥६६॥

प्रस्थ सप्तोदकाश्चैव साधिकास्तु लव स्मृत ।

लवास्त्रिंशत्कला ज्ञेया मुहूर्तस्त्रिंशत् कला ॥६७

मुहूर्तास्तु पुनस्त्रिंशदहोरात्रमिति स्थिति ।

अहोरात्र कलानान्तु व्यधिकानि शतानि पट् ॥६८

ताश्चैव सख्यया ज्ञेय चन्द्रादित्यगतिर्यथा ।

निमेषा दश पञ्चैव काष्ठास्तास्त्रिंशत् कला ॥६९

त्रिंशत्कला मुहूर्तस्तु दशभागः कला स्मृता ।

चत्वारिंशत्कलानान्तु मुहूर्त इति मज्जित ॥१००

मुहूर्ताश्च लवाश्चापि प्रमाणज्ञं प्रवल्पिता ।

तत्स्थाने नाम्भसाश्चापि पलान्यथ त्रयोदश ॥१०१

मागधेनैव मानेन जलप्रस्थो विधीयत ।

एते चाप्युदकप्रस्थाश्चत्वारो नालिको घट ॥१०२

हेममाणं कृतच्छिद्रंश्चतुर्भिश्चतुरगुलं ।

समाहृति च रात्रौ च मुहूर्तो वं द्विनालिको ॥१०३

रवेगतिविशेषेण सर्वेषु नृषु नित्यथा ।

अधिक पट् शत पञ्च कलाना प्रविधीयते ॥१०४

सप्तोदक का प्रस्थ होता है और साधिका सब बढ़ा गया है । तीस लव की एक कला जाननी चाहिये तथा बीस कला का मुहूर्त होता है ॥६७॥ तीस मुहूर्त का अहोरात्र होता है । एक सौ कलाघो का अहोरात्र होता है ॥६८॥ उनकी मर्यादा से चन्द्र और सूर्य को गति की भाँति जानना चाहिये । पन्द्रह निमेष और तीस काष्ठाओं की कला होती है ॥६९॥ तीस कला का मुहूर्त और दश भाग कला वही गई है । चालीस कलाओं का मुहूर्त यह सजा बना होता है ॥१००॥ प्रमाण के ज्ञाताओं के द्वारा मुहूर्त तथा लव प्रकल्पित किये गये

हैं। उस स्थान बाल जल से भी तेरह पत होते हैं ॥१०१॥ मागध मान के द्वारा ही जल प्रस्थ का विधान होता है। ये चारों उदक प्रस्थ हैं और नालिक घट होना है ॥१०२॥ छेद किये हुए चार अंगुल बाने चार हेममापो के समान दिन में और रात्रि में द्विनालिक मुहूर्त्त होता है ॥१०३॥ सूर्य की गति विशेष से समस्त मनुष्यो में नित्य ही पाँचसौ छे बलाधो का प्रविधान होता है ॥१०४॥

तदहर्मानुष ज्ञेय नाक्षत्रन्तु दशाधिकम् ।

साधनेन तु मासेन ह्यब्दोऽयं मानुष स्मृत ॥१०५॥

एतद्विष्यमहोरात्रमिति शास्त्रविनिश्चय ।

अह्लाऽनेन तु या सख्या मासत्वंयनवापिकी ॥१०६॥

तदा बद्धमिदं ज्ञानं सज्ञा या ह्युपलक्ष्यताम् ।

कलाना सुपरीमाणात्काल इत्यभिधीयते ॥१०७॥

यदहर्ब्रह्मण प्रोक्तं दिव्या कोटी तु तन् स्मृता ।

सतानाञ्च सहस्राणि दशद्विगुणितानि च ।

नवतिञ्च सहस्राणि तथैवान्यानि यानि तु ॥१०८॥

एतच्छ्रुत्वा तु ऋषयो विस्मय परमाद्भुतम् ।

सस्थासम्भजनं ज्ञानमपृच्छन्तन्तरन्तदा ॥१०९॥

सप्लावनस्य कासस्तु मानुषेणैव सम्मतम् ।

मानेन श्रोतुमिच्छाम सक्षेपार्यपदाक्षरम् ॥११०॥

तेषां श्रुत्वा स देवस्तु वायुर्लोकहिते रतः ।

सक्षेपाद्विष्यच्चक्षुष्मान् प्रोवाच भगवान् प्रभुः ॥१११॥

एते रात्र्यहनी पूर्वं कीर्तिते त्विह लौकिके ।

तासां सख्याय वर्षाणि ब्राह्मण वक्ष्याम्यहं शयैः ॥११२॥

यह मानुष दिन जानना चाहिये और नक्षत्र तो दस अधिक वाला होता है। सावन मास में यह मानुष शब्द कहा गया है ॥१०५॥ यह दिव्य महोरात्र होता है—ऐसा शास्त्र का विनिश्चय है। इस दिन से जो सख्या है वह मास भयन ऋतु और वर्ष की है ॥१०६॥ उस समय यह बद्ध ज्ञान जो सज्ञा है उसे उपलक्षित करो। बलाधो के सुपरीमाण से काल ऐसा नामसे कहा जाता है ॥१०७॥

जो ब्रह्मा का दिन ब्रह्मा गया है वह दिव्यबोटी नहीं गई है । सो महस्र दम और दो से गुणित होते हैं । और नव्वे सहस्र तथा जो अन्य हैं वे डम प्रकार के होते हैं ॥१०८॥ इसे श्रवण करके ऋषिगण परम प्रभुत विम्वय को प्राप्त हुए यह सस्या का सम्भजन ज्ञान ऐसा ही प्रभुत था । उस समय प्रन्तर को पूछा ॥१०९॥ ऋषियो ने कहा—तम्प्लावन होने का समय मानुष के द्वारा ही सम्मत है । हम मान से श्रवण करने की इच्छा करते हैं जो कि सशेषार्च पशाक्ष है ॥११०॥ लोक के हित म रति रखने वाले उस चापुदेव ने उनकी इस बात को सुनकर भगवान् प्रभु जो कि दिव्य नेत्रो वाले थे, सशेष से बोले ॥१११॥ ये रात्रि और दिन यहाँ लौकिक पहिले कीर्तित किये हैं । उनके वर्पाण को सस्या करके प्रब दिन के क्षय म जो ब्रह्म है उसे बताऊंगा ॥११२॥

कोटिशतानि चत्वारि वर्पाणि मानुषाणि तु ।

द्वानिशच्च तथा कोट्य सहस्रघाता सहस्रघया द्विजै ॥११३

तथा शतसहस्राणि एकोननवति पुन ।

आशीतिश्च सहस्राणि एष काले प्लवस्य तु ॥११४

मानुषाख्येण सहस्रघात कालो ह्याभूतसप्लव ।

सप्त सूर्यास्तदाऽग्रेषु तदा लोकेषु तेषु वै ॥११५

महाभूतेषु लीयन्ते प्रजा सर्वाश्चितुविधा ।

सलिलेनाप्लुते लोके नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥११६

विनिवृत्ते च सहारे उपशान्ते प्रजापतौ ।

निरालोके प्रदग्धे तु नैत्रेण तु समावृते ।

ईश्वराधिष्ठिते ह्यस्मिस्तदा ह्यैकार्णवे तदा ॥११७

तावदेकार्णवो ज्ञेयो यावदासीदह प्रभो ।

रात्रिस्तु सलिनावस्था निवृत्तौ चाप्यह स्मृतम् ॥११८

अहोरात्रस्तथैवास्य क्रमेण परिवर्तते ।

आभूतसप्लवो ह्येष अहोरात्र स्मृत प्रभो ॥११९

त्रैलोक्ये यानि तत्वानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च ।

आभूतेभ्य प्रलीयन्ते तस्मादाभूतसप्लव ॥१२०

चारसौ करोड़ मानुष वर्ष तथा बसोस कोटि द्वय के द्वारा मर्या में  
 स्रम्यात किये गये हैं ॥११३॥ तथा सौ सहस्र नवासी घोर अस्मी सहस्र यह  
 काल प्लव का होता है ॥११४॥ यह आभूत मप्लव काल मानुषाह्य के द्वारा  
 स्रम्यात किया गया है । उम समय उन अप्रलोको मे सप्त सूर्य होते हैं ॥११५॥  
 चारो प्रकार की समस्त प्रजा महाभूतो मे लीन होजाती है । जबकि सोक जल  
 से आलुप्त होजाता है और स्पावर और जङ्गम सब नष्ट हो जाने हैं ॥११६॥  
 संहार के विनिवृत्त होने पर और प्रजापति के उपदान्त होजाने पर बिना प्रकाश  
 वाले प्रकृष्ट रूप से जले हुए होने पर तथा रात्रि के अन्धकार समावृत होने पर  
 सप्त समय यह एकाएक केवल ईश्वर से अधिष्ठित होता है ॥११७॥ उसका  
 जब तक दिन रहता है तब तक यह एकाएक जानना चाहिये । जलकी अवस्था  
 ही रात्रि है और उमकी निवृत्ति होजाने पर दिन बहा गया है ॥११८॥ उम  
 प्रकार से इसका अहोरात्र क्रम से परिवर्तित हुआ करता है । यह आभूत मप्लव  
 प्रभु का अहोरात्र ही कहा गया है ॥११९॥ अंतोक्ष्य म जो गति वाले ध्रुव  
 सख हैं वे अभूता से प्रलीन हो जाया करते हैं इस कारण से इसका नाम आभूत  
 सप्लव ऐसा कहा गया है ॥१२०॥

अथ भूत प्रजानान्तु तस्माद्भूत प्रजापति ।  
 आभूत प्लवते चैव तस्मादाभूतसप्लव ॥१२१  
 शाश्वते आमृतत्वे च शब्दे चामृतसप्लव ।  
 अतीता वत्तमानाश्च तथैवानागता प्रजाः ।  
 दिव्यसह्यघा प्रसह्यघाता ह्यपरार्धगुणीकृता ॥१२२  
 परार्धद्विगुणश्चापि परमायु प्रवीतितम् ।  
 एतावान् स्थितिकालस्तु ह्यजस्येह प्रजापते ।  
 स्थित्यन्ते प्रातसर्गस्य ब्रह्मण परमेष्ठिनः ॥१२३  
 यया वायुप्रवेगेन दीपाचिरुपशाम्यति ।  
 तथैव प्रतिसर्गेण ब्रह्मा समुपशाम्यति ॥१२४  
 तथा ह्यप्रतिसमृष्टे महदादौ महेश्वरे ।  
 महत्प्रलीयतेऽव्यक्तो गुणसाम्य ततो भवेत् ॥१२५

इत्येष च समाख्यातो मया ह्याभूतसप्लव ।  
 ब्रह्मनैमित्तिको ह्येष सप्रक्षालनसयम ॥१२६॥  
 समासेन समाख्यातो भूयः किं वर्त्तयामि व ।  
 य इद धारयेन्नित्य शृणुयाद्वाप्यभीक्षणश ।  
 कीर्त्तनाच्छ्रवणाच्चापि महती सिद्धिमाप्नुयात् ॥१२६॥

समस्त प्रजाओं के भागे हुआ था इससे प्रजापति भूत है और प्राभूत सप्लवित होता है इस कारण से प्राभूत सप्लव इस नाम से इसे कहा जाया करता है ॥१२१॥ और वाश्वत समृतत्व शब्द में प्राभूत सप्लव है । जो व्यतीत होगये हैं वे—वत्तमान में रहने वाले और उसी प्रकार से अनागत अर्थात् भविष्य में होने वाले समस्त प्रजा की अपराध गुणीकृत दिव्य सख्या होते हैं ॥१२२॥ परादिगुण भी परमायु कही गई है । प्रजापति अजका इतना ही स्थिति का काल होता है । प्रत्येक सर्ग की स्थिति के अन्त में परमेष्ठी ब्रह्म का स्थिति काल होता है ॥१२३॥ जिस तरह वायु के प्रवेग वाले भोंके से दीपो की प्रवि (लो) उपशान्त होजाया करती है उसी प्रकार से प्रत्येक सर्ग से ब्रह्मा भी उपशान्त होजाया करता है ॥१२४॥ तथा महदादि में महेश्वर के अप्रति समृष्ट होने पर महत् अव्यक्त में प्रलीन हो जाता है तब गुणों की साम्यावरुपा होजाया करती है ॥१२५॥ इस तरह मैंने यह प्राभूत सप्लव समाख्यात कर दिया है यह सम्प्रक्षालन सयम ब्रह्मा के निमित्त बाला होता है ॥१२६॥ मैंने यह संक्षेप से कह दिया है । अब आने प्राप लोगों को क्या बताऊँ ? इसे जो नित्य ही धारण किया करता है अथवा बार-बार श्रवण किया करता है । इसके कीर्त्तन करने में तथा श्रवण करने से महती सिद्धि को प्राप्त होता है ॥१२७॥

### प्रकरण ६३—शिवपुर वर्णन

असाधारणवृत्तैस्तु ह्रुतशेषादिभिर्द्विजै ।  
 धर्मवैशेषिकैश्चैव ह्याचूर्णमूधमदक्षिभि ॥१॥

ते देवैः सह तिष्ठन्ति महर्लोकनिवासिनः ।  
 चतुर्दशते मनव कीर्त्तिता कीर्त्तिवर्धना ॥२  
 अतीता वत्समानाश्च तथैवानागतान्च ये ।  
 ऋषिभिर्देवतैश्चैव सह गन्धवराक्षसं ॥३  
 मन्वन्तराधिकारेषु जायन्तीह पुनः पुनः ।  
 देवाः सप्तर्षयश्चैव मनव पितरस्तथा ॥४  
 सर्व्वे ह्यपि क्रमातीता महर्लोक समाश्रिता ।  
 ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैर्धार्मिकै सहितैः सुराः ॥५  
 तैस्तथ्यकारिभिर्मुक्तैः श्रद्धावद्भिरदपितैः ।  
 वर्णाश्रमाणा धर्मेषु श्रोतस्मार्त्तेषु सस्थितैः ।  
 विनिवृत्ताधिकारास्ते यावन्मन्वन्तरक्षय ॥६  
 महर्लोकेति यत्प्रोक्तं भातरिष्वस्त्वया विभो ।  
 प्रतिलोके च कर्त्तव्यमनेकं समधिष्ठिता ॥७  
 यावन्तश्चैव ते लोका दह्यन्ते ये न ते प्रभो ।  
 एतन्नः कथय प्रीत्या त्वं हि वेत्थ यथातथम् ॥८

श्री वायुदेव ने कहा—असाधारण चरित्र वाले हुत शेष आदि द्विजों के साथ तथा धर्म के वैशेषिक आचूण मूढम दशियों के साथ और देवों के साथ वे महर्लोक के निवासी होते हुए रहा करते हैं । ये कीर्त्ति के बढ़ाने वाले चौदह मनु बताये गये हैं ॥१-२॥ अतीत-वत्समान और अनागत जो हैं वे ऋषियों के-दंबतों के और गन्धवों के एक राक्षसों के साथ मन्वन्तरों के अधिबारी म बारम्बार उत्पन्न होते हैं । इसी तरह देव-सप्तर्षिगण-मनु और पितृवृन्द हुषा करते हैं ॥३-४॥ सभी क्रम से अतीत हुए महर्लोक में समाश्रित होते हैं । ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्यों के सहित सुर वहाँ आश्रय किया करते हैं ॥५॥ तथ्यों के करने वाले-श्रद्धा से युक्त-दपं से रहित-मुक्त-वर्णाश्रमों के धर्मों में तथा श्रोत एवं स्मार्त्त धर्मों में से स्थित जन्ते विनिवृत्त अधिकार वाले ये जब तक मन्वन्तर का क्षय होता है वहाँ रहा करते हैं ॥६॥ ऋषियों ने कहा—हे भातरिष्वन् ! हे विभो ! आपने महर्लोक-यह कहा है और प्रतिलोक में अनेकों

के द्वारा बनंध्य मे समधिष्ठित बताये हैं ॥७॥ हे प्रभो ! और जितने वे लोक हैं उनमे जो नहीं दग्ध होते हैं—यह सब हमको बताइये और प्रेम के साथ वर्णन करिये क्योंकि आप सभी बुद्ध ठीक ठीक जानते हैं ॥८॥

एवमुक्तस्ततो वायुमुनिभिर्विनयात्मभि ।

प्रोवाच मधुर वाक्य यथातत्त्वेन तत्त्ववित् ॥९

चतुर्दशैव स्थानानि वर्णितानि महर्षिभि ।

लोकाख्यानि तु यानि स्युर्येषु तिष्ठन्ति मानवा ॥१०

सप्त तेषु कृतान्याहुरवृतानि तु सप्त वै ।

भूरादयस्तु सङ्ख्याता सप्त लोका कृताम्ब्विह ॥११

अवृतानि तु सप्तैव प्राकृतानि तु यानि वै ।

स्थानानि स्थानिभि साद्ध कृतानि तु निबन्धनम् ॥१२

पृथिवी चान्तरिक्ष च दिव्य यच्च मह स्मृतम् ।

स्थानान्येतानि चत्वारि स्मृतान्याणवकानि च ॥१३

क्षयातिशययुक्तानि तथा युक्तानि वक्ष्यते ।

यानि नेमित्तिकानि स्युस्तिष्ठन्त्यामृतसप्लवम् ॥१४

जनस्तपश्च मर्यश्च स्थानान्येतानि त्रीणि तु ।

ऐकान्तिकानि सत्त्वानि तिष्ठन्तीहाप्रसयमात् ॥१५

व्यक्तानि तु प्रवक्ष्यामि स्थानान्येतानि सप्त वै ।

भूलोक. प्रथमस्तेषा द्वितीयस्तु भुव स्मृत ॥१६

विनय मे युक्त आत्मा वाले मुनियो के द्वारा इस तरह कहे गये वायु देव मधुर वाक्य बोले क्योंकि वे तत्त्वो के वेत्ता थे अन यथा तत्त्व ही उनके वचन भी थे ॥९॥ श्री वायु ने कहा—महर्षियो ने चौदह ही स्थानो का वर्णन किया है जो कि लोक—इस नाम से प्रसिद्ध हैं और जिनमे मनुष्य निवास की स्थिति किया करते हैं ॥१०॥ उनमे सात तो वृत हैं और सात प्रकृत हैं । भूलोक प्रादि नामा से जो संख्यात होते हैं ये ही सात लोक यहाँ वृत माने हैं ॥११॥ और प्रकृत तो सात ही होते हैं जो कि प्राकृत हैं । स्थानियो के साथ ये स्थान वृत हैं और निबन्धन होते हैं ॥१२॥ पृथिवी और अन्तरिक्ष और दिव्य जो



महलोक कहा गया है ये चार स्थान आणविक बहे गये हैं ॥१३॥ ये धार्यान्तय से युक्त होते हैं तथा युक्त बहे जायगे । जो नैमित्तिक होते हैं ये आसूत सप्तक तक रहा करते हैं ॥१४॥ अन्त-तप और सत्य ये तीस स्थान हैं जहाँ पर आप्र-सयम से एकान्तिक सत्त्व ठहरा करते हैं ॥१५॥ ये सात स्थान व्यक्त हैं इनको मैं बताता हूँ—भूलोक उनमें प्रथम है, दूसरा तो भुवर्लोक कहा गया है ॥१६॥

स्वस्तृतीयस्तु विज्ञेयश्चतुर्थो वै मह स्मृत ।

जनस्तु पञ्चमो लोकस्तप पष्ठो विभाव्यते ॥१७

सत्यन्तु सप्तमो लोको निरालोकस्ततः परम् ।

भूरिति व्याहृते पूर्वं भूलोकश्च ततोऽभवत् ॥१८

द्वितीय भुव इत्युक्तं अन्तरिक्ष ततोऽभवत् ।

तृतीय स्वरित्युक्ते दिव प्रादुर्बभूव ह ॥१९

व्याहारस्त्रिभिरेतस्तु ब्रह्मलोकमकल्पयत् ।

ततो भू पार्थिवो लोक अन्तरिक्ष भुवः स्मृतम् ॥२०

स्वर्लोको वै दिव ह्येतत्पुराणं निश्चय गतम् ।

भूतस्याधिपतिश्चाग्निस्ततो भूतपति स्मृत ॥२१

वायुर्भुवस्याधिस्पतिस्तेन वायुर्भुवपति ।

भव्यस्य सूर्योऽधिपतिस्तेन सूर्यो दिवस्पति ॥२२

महेतिव्याहृतेनैव महर्लोकस्ततोऽभवत् ।

विनिवृत्ताधिकाराणा देवाना तत्र वै क्षय ॥२३

जनस्तु पञ्चमो लोकस्तस्माज्जायन्ति वै जना ।

तासा स्वाय भुवाद्याना प्रजाना जननाज्जनः ॥२४

तृतीय स्वर्लोक होता है और चतुर्थ महर्लोक जानने के योग्य कहा गया है । जनलोक पार्थिव होता है और छटा तपलोक होता है ॥१७॥ सत्यलोक नाम वाला सप्तम लोक होता है इसमें आगे निरालोक होता है । पूर्व में भू-यह व्याहृत होने पर इससे ही भूलोक हुआ ॥१८॥ फिर दूसरा भुव—यह कहा गया वह अन्तरिक्ष भुव कहा गया है । तीसरा स्व—यह कहने पर दिव वा प्रादुर्भाव हुआ था ॥१९॥ इन तीन व्याहारों के द्वारा ब्रह्मलोक कल्पित हुआ

था । इमने भू पाण्डिब लोक है और भुव यह अन्तरिक्ष बहा गया है ॥२०॥  
 और स्वर्लोक यह दिव है—ऐसा पुराण में निश्चय को प्राप्त हुआ है । भूत का  
 अधि पनि अग्नि है इसके पश्चात् भूत पति कहा गया है ॥२१॥ वायु भुव पति  
 है । भूम्य का अधिपति सूर्य होता है इमसे सूर्य दिवस्पति बहा गया है ॥२२॥  
 यह इस तरह व्याहृत होनेसे ही इस प्रकार से महर्भोक फिर हुआ था । विनिवृत्त  
 अधिकार वाले देवों का वहाँ पर क्षय होता है ॥२३॥ जन पाँचवाँ लोक है  
 उमसे जन उत्पन्न हुआ करते हैं । उन स्वायम्भुवादि प्रजाओं के जनन से जन  
 होता है ॥२४॥

यास्ता स्वायम्भुवाद्या हि पुरस्तात्परिवीक्षिता ।

कल्पदग्धे तदा लोके प्रतिष्ठन्ति तदा तप ॥२५

ऋभु सनत्कुमाराद्या यत्र सन्त्यूद्धरेतस ।

तपसा भावितात्मानस्तत्र सन्तीति वा तप ॥२६

सत्येति ब्रह्मणः शब्द सत्तामात्रस्तु स स्मृतः ।

ब्रह्मलोकस्ततः सत्य सप्तम स तु भास्वर ॥२७

गन्धर्वाप्सरसो यक्षा गुह्यकास्तु सराक्षमा ।

सर्वभूतपिशाचाश्च नागाश्च सह मानुषं ।

स्वर्लोकवासिनः सर्वे देवा भुवि निवासिनः ॥२८

मरुतो मातरिश्वानो रुद्रा देवास्तथाश्विनी ।

अनिकेतान्तरिक्षास्ते भुवर्लोक्या दिवोकसः ॥२९

आदित्या ऋभवो विश्वे साध्याश्च पितरस्तथा ।

ऋषयोऽङ्गिरसश्चैव भुवर्लोक समाश्रिता ॥३०

एते वैमानिका देवास्ताराग्रहनिवासिनः ।

इत्येते क्रमशः प्रोक्ता ब्रह्मव्याहारसम्भवा ॥३१

भूर्लोकप्रथमा लोका महदन्ताश्च ते स्मृता ।

आरभ्यन्ते तु तन्मानं शुद्धास्तेषां परस्परम् ॥३२

जो स्वायम्भुवादि पहिले कहे गये हैं कल्प के दग्ध होने पर उस समय  
 लोक में तप को प्रतिष्ठित किया करते हैं ॥२५॥ ऋभु सनत्कुमार आदि जहाँ पर

ये ऊर्द्धरेता लोका होते हैं जो तप के द्वारा भावित आत्मा वाले वहाँ पर हैं इसमें तप कहा गया है ॥२६॥ सत्य-यह ब्रह्म का शब्द है और वह नसामान कहा गया है । इससे सत्य लोक जो है वह ब्रह्मलोक सप्तम है और वह भास्वर है ॥२७॥ गन्धर्व-अप्सरार्यो-यथा-गुह्यकराक्षसो के महित-समस्त भूत और विनाश नाग मनुष्यों के सहित ये सब देव स्वर्लोक के निवासी करने वाले हैं जोकि भुवि निवासी हैं ॥२८॥ मरुत-मातरिश्वान-रुद्र-देवता तथा अश्विनीकुमार होत्रो के अनिकेतान्तरिक्ष हैं और दिव में स्थान करते सब भुवलोकेय होते हैं ॥२९॥ आदित्य-ऋभु-त्रिदशदेव-साध्य-वितर-श्रुपिगण और अङ्गिरस ये सब भुवर्लोक में समाश्रित होते हैं ॥३०॥ ये ताराग्रह निवासी देव वैमानिक होते हैं । ये सब क्रम से ब्रह्म के ध्याहार से उत्पन्न होने वाले बह दिये गये हैं ॥३१॥ भूर्लोक प्रथम लोक है और महदन्त ये कहे गये हैं । परस्पर म उनकी तन्मात्राओं से शुद्ध आरब्ध किये जाते हैं ॥३२॥

शुक्राद्याश्चाक्षुपान्ताश्च ये व्यतीता भुव श्रिता ।  
 महर्लोकश्चतुर्थस्तु तस्मिंस्ते कल्पवासिन ॥३३॥  
 भूर्लोकप्रथमा लोका महदन्ताश्च ये स्मृता ।  
 तान् सर्वान् सप्त सूर्यास्ते अङ्घ्रिभिर्निदहन्ति वै ॥३४॥  
 मरीचि कश्यपो दक्षस्तथा स्वायम्भुवोऽङ्गिरा ।  
 भृगु पुलस्त्यः पुलहः क्रतुरित्येवमादयः ॥३५॥  
 प्रजाना पतय सर्वे वर्तन्ते तत्र तै सह ।  
 नि सत्त्वा निर्ममाश्चैव तत्र ते ह्यूर्द्धरेतस ॥३६॥  
 ऋभु सनत्कुमाराद्या वैराज्यास्ते तपोधना ।  
 मन्वन्तराणा सर्वेषा सावर्णाना ततः स्मृताः ।  
 चतुर्दशाना सर्वेषा पुनरावृत्तिहेतव ॥३७॥  
 योग तपश्च सत्यश्च समाधाय तदात्मनि ।  
 पृष्ठे काले निवर्तन्ते तत्तदाहर्विपर्यये ॥३८॥  
 सत्यन्तु सप्तमो लोको ह्यपुनर्मर्गिणामिनाम् ।  
 ब्रह्मलोकः समाख्यातो ह्यप्रतीघातलक्षण ॥३९॥

पर्यासपारिभाष्येन भूर्लोकं समिति स्मृतः ।

भूम्यन्तर यदादित्यादन्तरिक्ष भुवः स्मृतम् ॥४०

शुक्राद्य और चाक्षुषान्न जो व्यतीत है वे भुव में आश्रित होते हैं । महर्लोक तो चौथा है उसमें वे कल्प वासी रहते हैं ॥३३॥ भूर्लोक से प्रथम लोक जो महदन्न कहे गये हैं उन सबको सप्त मूर्यं अपनी अक्षियों के द्वारा निर्दग्ध कर दिया करते हैं ॥३४॥ मरीचि-वशप-दक्ष-स्वायम्भुव-अङ्गिरा-भृगु-पुनस्त्य-पुलह और क्रतु इत्येवमादि हैं ॥३५॥ वे सब प्रजापति के पति हैं और वहाँ पर वे उनके साथ रहते हैं । वे वहाँ निरुत्त्व और निदम एव ऊर्द्ध-रेता होते हैं ॥३६॥ ऋतु और सनत्कुमार आद्य वे सब सप्तोघन वैराज्य हैं । नावर्णं समस्त मन्वन्तरो के वे कहे गये हैं जो कि चौदहो लोको के सब के पुनरावृत्ति होने के हेतु होते हैं ॥३७॥ उम समय में योग-तप और सत्य की आत्मा समाधान करके षष्ठ काल में उस अहं के विपर्यय में निवृत्त होजाते हैं ॥३८॥ मत्स्य तो सप्तम लोक है जो कि अपुनर्मणिं गामियों का लोक होता है । वह अप्रतीघात लक्षण वाला ब्रह्मलोक कहा गया है ॥३९॥ पर्यास पारिभाष्य में भूर्लोक समिति कहा गया है । भूमि के अन्तर में जो आदित्य से अन्तरिक्ष है वह भुव कहा गया है ॥४०॥

सूर्यंध्रुवान्तर यच्च स्वर्गलोको दिव स्मृतः ।

ध्रुवाज्जनान्तर यच्च महर्लोकस्तदुच्यते ॥४१

विश्याता सप्तलोकास्तु तेषां वक्ष्यामि सिद्धयः ।

भूर्लोकवासिनः सर्वे ह्यन्नादास्तु रसात्मकाः ॥४२

भुवे स्वर्गे च ये सर्वे सोमपा आज्यपाश्च ये ।

धनुर्थे येऽपि वर्तन्ते महर्लोकं समाधिताः ॥४३

विज्ञेया मानसी तेषां सिद्धिर्वै पञ्चलक्षणाः ।

सद्यश्चोत्पद्यते तेषां मनसा सर्व्वमीप्सितम् ॥४४

एते देवा यजन्ते वै यज्ञं सर्व्वे परस्परम् ।

अतीतान् वतमानान्श्च वर्त्तमानाननागतान् ॥४५

प्रथमानन्तरंरिष्ट्वा ह्यन्तरा. साम्प्रतं पुन. ।  
 निवृत्तंतीत्यासम्बन्धोऽतीते देवगणे ततः ॥४६॥  
 विनिवृत्ताधिकाराणा सिद्धिस्तेषान्तु मानसी ।  
 तेषान्तु मानसी ज्ञेया शुद्धा सिद्धिपरम्परा ॥४७॥  
 उक्ता लोकाश्च चत्वारो जनस्यानुविधिस्तथा ।  
 समासेन मया विप्रा भूयस्त वर्तयामि व. ॥४८॥

और जो मूर्ख ध्रुवान्तर मे है वह स्वर्ग लोक दिन कहा गया है । ध्रुव से जनान्तर जो है वह महर्लोक कहा जाता है ॥४१॥ ये सात लोक विख्यात हैं अब उनकी सिद्धियों को बताना है । भूर्लोक के निवास करने वाले सभी अन्न खाने वाले रसात्मक होते हैं ॥४२॥ भुव मे और स्वर्ग मे जो सब हैं वे सोम पान करने वाले और आग्नेय पान करने वाले होते हैं । चौथे मे जो रहा करत हैं जोकि महर्लोक को आश्रय किये हुए हैं ॥४३॥ उनकी पांच लक्षणों वाली मानसी सिद्धि जानने के योग्य है । उनके मन से जो भी कुछ अभीष्ट होता है वह तुरन्त ही उत्पन्न ही जाता है ॥४४॥ ये देव समस्त ब्रह्मों के द्वारा परस्पर मे यजन किया करते हैं । जो अतीत होगये हैं—जो वर्तमान है और जो अनागत है उन सभी को करते हैं ॥४५॥ प्रथमों को अन्तरो के द्वारा यजन करके फिर साम्प्रतों के द्वारा अन्तरो को करते हैं फिर देवगण के अनीत होने पर आसम्बन्ध निर्वातित हो जाता है ॥४६॥ उन विनिवृत्त अधिकार वालों की मानसी सिद्धि हुआ करती है । उनकी शुद्ध सिद्धियों की परम्परा मानसी जाननी चाहिए ॥४७॥ चार लोक कह दिये गये हैं तथा हे विप्रवृन्द ! जनकी अनुविधि भी संक्षेप से मैंने बतला दी है मैं पुन उसको तुम्हारे सामने कहला हूँ ॥४८॥

मरीचि कश्यपो दक्षो वसिष्ठश्चाङ्गिरा भृगु ।

पुलस्त्य पुलहश्चैव ऋत्विग्येवमादय ॥४९॥

पूर्वं ते सप्रसूयन्ते ब्रह्मणो मनसा इह ।

ततः प्रजा प्रतिष्ठाप्य जनमेवाश्रयन्ति ते ॥५०॥

कल्पदाहप्रदीप्तेषु तदा कालेषु तेषु वै ।

भूरादिषु महान्तेषु भृश व्याप्तेष्वयाग्निना ॥५१॥

शिखा सर्वर्त्तका ज्ञेया प्राप्नुवन्ति सदा जना ।  
 यामादयो गणा सर्वे महर्लोकनिवासिन ॥५२॥  
 महर्लोकेषु दीप्तेषु जनमेवाश्रयन्ति ते ।  
 सर्वे सूक्ष्मशरीरास्ते तत्रस्थास्तु भवन्ति ते ॥५३॥  
 तेषां ते तुल्यसामर्थ्यास्तुल्यमूर्त्तिधरास्तथा ।  
 जन लोके विवर्त्तन्ते यावत्सप्तवते जगत् ॥५४॥  
 व्युष्टायान्तु रजन्या धं ब्रह्मणोऽप्यक्तयोनिन ।  
 अहरादी प्रसूयन्ते पूर्ववत्क्रमशस्त्वह ॥५५॥  
 स्वायम्भुवादय सर्वे मरीच्यन्तास्तु साधका ।  
 देवास्ते वै पुनस्तेषां जायन्ते निधनेऽप्यह ॥५६॥

श्री वायुदेव ने कहा—मरीचि—कश्यप—दक्ष—वसिष्ठ—अङ्गिरा—भृगु—गुल-  
 स्त्य—पुनह और क्रतु इत्येवमादि भोग पहिले यहाँ ब्रह्मा के मन से उत्पन्न होते  
 हैं फिर ये प्रजापति को प्रतिष्ठापित करके जन का ही आश्रय लिया करते हैं ॥५२॥  
 ५०॥ कल्पदाह के प्रदीप्त उन कालों में भू से आदि लेकर महान्न तक अग्नि के  
 अक्षी तरङ्ग व्याप्त हो जाने पर सर्वात्मिका शिखा जाननी चाहिए जिसको कि  
 मनुष्य सदा ही प्राप्त किया करते हैं । यागादि समस्तगण जो महर्लोक के निवास  
 करने वाले हैं ॥५१-५२॥ वे महर्लोक के दीप्त होजाने पर जन लोक का आश्रय  
 ग्रहण कर लेते हैं । वहाँ पर वे सभी सूक्ष्म शरीर वाले होते हुए वहाँ ही अपनी  
 स्थिति किया करते हैं ॥५३॥ उनके वे तुल्य सामर्थ्य वाले और समान ही  
 मूर्त्तियों को धारण करने वाले जब तक यह जगत् सप्तावित होता है जनलोक  
 में ही विशेष रूप से रहा करते हैं ॥५४॥ अव्यक्त योनि ब्रह्मा की रजनी के  
 व्युष्ट होजाने पर दिन के आदि में यहाँ पुन पूर्व की भाँति क्रम से उत्पन्न किया  
 करते हैं ॥५५॥ यह निधन होने पर समस्त स्वायम्भुवादि और मरीच्यन्त  
 साधक देव वे फिर उनके जन्म ग्रहण लिया करते हैं ॥५६॥

यामादय क्रमेणैव कनिष्ठाद्या प्रजापतेः ।

पूर्वं पूर्वं प्रसूयन्ते पश्चिमे पश्चिमास्तथा ॥५७॥

देवान्वये देवता हि सप्त सम्भूतय स्मृताः ।  
 व्यतीता कल्पजास्तेषा तिस्रः शिष्टास्तथापरे ॥५८  
 श्रावत्तमाना देवास्तु क्रमेणैते न सर्वशः ।  
 गत्वा जवन्तवीभावन्दशकृत्वः पुन पुन ॥५९  
 ततस्ते वै गणा सर्वे दृष्ट्वा भावेष्वनित्यताम् ।  
 भाविनोऽर्थस्य च बलात् पुण्याख्यातिबलेन च ॥६०  
 निवृत्तवृत्तयः सर्वे स्वस्या सुमनसस्तथा ।  
 वैराजे तूपपद्यन्ते लोकमुत्सृज्य तज्जनम् ॥६१  
 ततोऽन्येनैव कालेन नित्ययुक्तास्तपस्विनः ।  
 कथनाच्चैव धर्मस्य तेषा ते जज्ञिरेऽन्वये ॥६२  
 इहोत्पन्नास्ततस्ते वै स्याना आपूरयन्त्युत ।  
 देवत्वे च ऋषित्वे च मनुष्यत्वे च सर्वश ॥६३  
 एव देवगणा सर्वे दशकृत्वो निवर्त्य वै ।  
 वैराजेपूपपद्मास्ते दश तिष्ठन्त्युपप्लवान् ॥६४  
 पूर्णो पूर्णो तत कल्पे स्थित्वा वैराजके पुनः ।  
 ब्रह्मलोके विवर्त्तते पूर्वंपूर्वंप्रक्रमेण तु ॥६५

यामादि और निष्ठाच क्रम से ही प्रजापति होने हैं । जो पहिले हैं प्रथम वे प्रभूत होते हैं और जो पीछे वाले हैं वे पीछे समुत्पन्न हुआ करते हैं । देवों के अन्वय में देवताओं की सात सम्भृतियाँ कही गई हैं । उनके व्यतीत कल्प में होने हैं तीन शिष्ट हैं तथा अन्य होते हैं ॥५८॥ वे देव क्रम से श्रावत्तमान होते हैं सभी नहीं होते हैं । ये पुन पुन दशवार जान्तवीभाव की प्राप्ति किया करते हैं वे सब गण भावों में अनित्यता का दर्शन करके भावी अर्थों के बल से और पुण्याख्याति के बल से सब निवृत्त वृत्ति स्वस्थ भुमनस उम जनलोक का त्याग कर वैराज में उत्पन्न होते हैं ॥६०-६१॥ इसके अनन्तर अन्य काल से ही ये नित्य युक्त तपस्वी धर्म के कथन से वे उनके वक्ष में उत्पन्न हुए हैं ॥६२॥ यहाँ पर उत्पन्न हुए वे फिर निश्चय ही स्थानों को आपूरित कर देते हैं कही देवत्व में तो कही ऋषित्व के रूप में और सब और मनुष्यत्व के स्वरूप में उत्पन्न हुआ

बाने व्यासजी के पुत्र घोर पुराणों के पूर्ण ज्ञाता मूनजी से कहा—॥३०॥  
 श्रुतिवृन्द बोच—वे वैराज जिस आहार बाने जिन महरी बाने घोर जिन  
 धाम्य बाने होकर रहते हैं घोर जिनने समय तक टहरने हैं वह हमने ठीक-थीक  
 कहिए ॥३१॥

तदुक्तमृषिभिर्वाक्य श्रुत्वा सोऽप्यंतस्त्वविवृ ।  
 मून पीराणिको वाक्य विनयेनेदमब्रवीत् ॥३२  
 ततः प्राप्यन्त ते सर्वे शुद्धिगुद्धतमाश्च ये ।  
 आभून् सप्तवास्तस दश तिष्ठन्ति ते जनाः ॥३३  
 सर्वे मृषमशरीरास्ते विद्वांसो घनमूर्तयः ।  
 म्यितलोकस्त्विनत्वाच्च तेषां भूत न विद्यते ॥३४  
 ऊबु मनत्वुमाराद्याः सिद्धास्त योगधामिणः ।  
 म्यानि नैमित्तिकी तेषां पथ्यसि समुपस्थिते ॥३५  
 स्थानत्यागे मनश्चापि युगपरमप्रवर्तते ।  
 ऊबु सर्वे तदान्वोज्य वैराजाश्चुद्धबुद्धयः ॥३६  
 एवमेव महाभागाः प्रणवं सम्प्रविश्य ह ।  
 ब्रह्मलोके प्रवर्तन्ति ततः श्रेयो भविष्यति ॥३७  
 एवमुक्त्वा तदा सर्वे ब्रह्मन्ने व्यवसायिनः ।  
 योजयित्वा तदा सर्वे ब्रह्मन्ने योगधम्मिणः ॥३८  
 तत्रैव सम्प्रसीयन्ते शान्ता दीपाविषो यथा ।  
 ब्रह्मनापमवर्तन्ते पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥३९  
 लोकं त समनुप्राप्य सर्वे ते भावनामयम् ।  
 ध्यानन्द ब्रह्मणः प्राप्य समुत्तराय ते गताः ॥४०  
 वैराजेभ्यस्तर्ध्वोऽङ्गमन्तरे पद्मगुणे जगः ।  
 ब्रह्मलोकाः समाप्तानो यत्र ब्रह्मा पुरोहित ॥४१



प्राभूत सत्त्व तक ठहरा करते हैं ॥२३॥ वे सब सूक्ष्म शरीर वाले विद्वान् और धन भूति बाने हैं और स्थित लोक में आस्थित होने से उनका भूत नहीं होता है ॥७४॥ सनत्कुमार आद्य सिद्ध और योग धर्मों उनके पर्याय के समुपस्थित होने पर नैमित्तिकी कृपाति को कहते हैं ॥७५॥ स्थान के त्याग करने पर मन भरे एक ही साथ सप्रवृत्त होता है । उस समय शुद्ध बुद्धि वाले सब अन्योन्य में वैराजो को कहते हैं ॥७६॥ इसी प्रकार से ही महाभाग प्रणव में सप्रवेश करके ब्रह्मलोक में प्रवर्तन करने वाले हमारा श्रेय होगा ॥७७॥ इस रीति से कहकर उस समय में सब ब्रह्मान्त में व्यवसाय करने वाले योजित करके सब सब योग धर्मों होने हैं ॥७८॥ वहाँ पर ही जैसे दीप की अर्धियाँ शान्त होजाया जाती हैं ये सम्प्रनीन हो जाने हैं ॥७९॥ वे सब उस भावनामय लोक को अनु- प्राप्त करके और ब्रह्म के आनन्द की प्राप्ति करके वे अमृतत्व को प्राप्त हो जाया करते हैं ॥८०॥ वैराजो से उसी प्रकार से ऊर्ध्व में पद्गुण अन्तर में ब्रह्मलोक आत है जहाँ ब्रह्मा पुरोहित हैं ॥८१॥

ते सर्वे प्रणवात्सानो बुद्धशुद्धतपास्तथा ।

आनन्द ब्रह्मण प्राप्यामृतत्वश्च भजन्त्युत ॥८२

द्वन्द्वे स्ते नाभिभूयन्ते भावत्रयविवर्जिता ।

आधिपत्य विना तुल्या ब्रह्मणस्ते महोजस ॥८३

प्रभावविर्यंश्चर्यंस्थितिर्वैराग्यदर्शनं ।

ते ब्रह्मलोबिका. सर्वे गतिं प्राप्य विवर्तनीम् ॥८४

ब्रह्मणा सह देवंश्च सम्प्राप्ते प्रतिसञ्चरे ।

तपमोऽन्ते क्रियात्मानो बुद्धावस्था मनीषिणः ।

अव्यवृते सप्रलीयन्ते सर्वे ते क्षणदर्शिन ॥८५

इत्येतदमृत शुक्रं नित्यमशयमव्ययम् ।

देवर्षयो ब्रह्मसत्र मनातनमुपासते ॥८६

अपुनर्मणिगादीना तेषा चैवोद्धरेतमाम् ।

कर्माभ्यासकृता शुद्धिर्वेदान्तेषूपलभ्यते ॥८७

शतमाहु परिदृढ सहस्र परिपञ्चकम् ।  
 विज्ञेयमयुत तस्मान्त्रियुत प्रयुत ततः ॥१००  
 भ्रवुंद निवुंदश्चैव सनुंदश्च तत स्मृतम् ।  
 खवंश्चैव निखवंश्च शङ्कु पञ्च तयैव च ॥१०१  
 समुद्र मध्यमश्चैव पराद्धं मपर तत ।  
 एवमष्टादशंतानि स्थानानि गणनाविधौ ॥१०२  
 शतानीति विजानीयात् सन्नितानि महर्षिभि ।  
 कल्पसस्या प्रवृत्तस्य पराद्धं ब्रह्मण स्मृतम् ॥१०३  
 तावच्छेषोऽपि कालोऽस्य तस्यान्ते प्रतिमृज्यते ।  
 पर एष पराद्धंश्च सख्यात सख्याया मया ॥१०४

सौ सहस्र करोडों को शकु—इस नाम से कहा जाता है । सहस्रों करोडों के सहस्र को फिर दशवार गुणित कर देन पर सख्या के वेत्ता लोग उसे समुद्र इस नाम से कहते हैं ॥६७॥ कोटियों का सहस्र अयुत है—यह मध्य कहा जाता है । कोटि सहस्र नियुत जो है वह 'अन्त'—इस सज्ञा वाला होता है कोटियों के कोटि सहस्र पराद्धं इस नाम से कहा जाता है । पराद्धं का दुगुना भी मनीषियों के द्वारा परम कहा जाता है ॥६९॥ शत को परिदृढ कहते हैं और सहस्र को परिपञ्चक कहते हैं । उससे अयुत जानना चाहिए और फिर नियुत तथा प्रयुत होना है ॥१००॥ भ्रवुंद—निवुंद और खवुंद कहा गया है । खवं—निखवं और फिर शकु तथा पञ्च कहा जाता है ॥१०१॥ समुद्र और मध्यम और इसके पश्चात् पराद्धं होना है । इस तरह से इन गणना की विधि के अठारह स्थान होते हैं ॥१०२॥ शतानि—यह जानना चाहिए जोकि मनीषियों के द्वारा सज्ञा वाले हुए हैं । कल्प सख्या में प्रवृत्त उस ब्रह्मा का पराद्धं कहा गया है ॥१०३॥ उतना उसका शेष काल भी उसके अन्त में प्रति सृष्ट किया जाता है । यह पर और पराद्धं मैंने सख्या से गिना हुआ किया है ॥१०४॥

यस्मादस्य पर वीर्यं परमायु परन्तपः ।

परा शक्ति परी धर्मं परा विद्या परा धृति ॥१०

पर ब्रह्म पर ज्ञान परमेश्वर्यमेव च ।  
 तस्मात्परतर भूत ब्रह्मणोऽन्यन्न विद्यते ॥१०६॥  
 परे स्थितो ह्येव परः सर्वार्थेषु ततः परः ।  
 सख्यातस्तु परो ब्रह्मा तस्याद्धं तु पराद्धं ता ॥१०७॥  
 सख्येय चाप्यसख्येय सतत चापि त त्रिकम् ।  
 सख्येय सख्यया दृष्टमपाराद्धाद्विभाष्यते ॥१०८॥  
 राशौ दृष्टे न सख्यास्ति तदसख्यस्य लक्षणम् ।  
 आनन्दय सिक्तताम्येषु दृष्टवान् पञ्चलक्षणम् ॥१०९॥  
 ईश्वरैस्तत्प्रसम्भ्यात् शुद्धत्वाद्दिव्यदृष्टिभिः ।  
 एव ज्ञानप्रतिष्ठत्वात् सर्व्वं ब्रह्मानुपश्यति ॥११०॥  
 एतच्छुद्धत्वा तु तं मयै नैमिषेयास्तपस्विन ।  
 चाप्यपर्याकुलास्तास्तु प्रहर्षाद्दिग्दग्दस्वरा ॥१११॥  
 पप्रच्छुर्मातिरिश्वान सर्व्वो तं ब्रह्मवादिन ।  
 ब्रह्मलोकस्तु भगवन् यादग्मात्रान्तर प्रभो ॥११२॥  
 योजनाद्येण सख्यातः साधन योजनस्य तु ।  
 क्रोशस्य च परीमाणु श्रोतुमिच्छामि तत्स्वतः ॥११३॥

त्रिस कारण मे इसकी पर बीर्य है—परम श्राप—परम तप—परा शक्ति—  
 पर धर्म—परा विद्या—परा धूर्ति—परम ब्रह्म—परम ज्ञान और परम ऐश्वर्य होना  
 है उससे परतर भूत होता है जोकि ब्रह्म से अन्यत् कोई नहीं है ॥१०५-१०६॥  
 पर मे स्थित यह पर है और समस्त मयों मे पर है उससे पर ब्रह्मा सख्यात  
 होता है और उगका भड्ड ही परउद्धंता होती है ॥१०७॥ मर्या करने के योग्य  
 और मर्या न करने के भी योग्य सबंदा उग त्रिकु को मर्या से सख्या करने के  
 योग्य देना है जो अपराद्धं मे विभाषित किया जाता है ॥१०८॥ राशि के  
 देखने पर मर्या नहीं है वह समस्य का लक्षण है । मिक्तता नाम बानों का  
 पञ्च लक्षण बाना आनन्दय देखा है ॥१०९॥ दिव्य दृष्टि वाले ईश्वरों के द्वारा  
 शुद्ध होने से वह प्रमथ्यात है । इस प्रकार मे ज्ञान प्रतिष्ठ होने से सब ब्रह्म का  
 धनुस्संन करता है ॥११०॥ यह शरण कर के सब नैमिषेय तपस्वी लोग बार्णों

से आनुल नत्रो वाले प्रवृष्ट हर्षं से गदगद स्वर वाले होगये थे ॥१११॥ उन समस्त ब्रह्म वादियो ने वायुदेव से पूछा—हे प्रभो ! हे भगवान् ! ब्रह्मलोक जितना अन्तर बाना है वह योजनाग्र से सख्यायात किया गया है । योजन का साधन और कोस का परीमाण तत्त्व पूर्वक हम जोग सुनने की इच्छा करते हैं ॥११२-११३॥

तेषा तद्वचन श्रुत्वा मातरिश्वा विनीतवाक् ।  
 उवाच मधुर वाक्य यथादृष्ट यथाक्रमम् ॥११४  
 एतद्वोऽह प्रवक्ष्यामि शृणुष्व मे विवक्षितम् ।  
 अव्यक्ताव्यक्तभागो वी महास्थूलो विभाप्यते ॥११५  
 दशैव महता भागा भूतादिः स्थूल उच्यते ।  
 दशभागाधिक चापि भूतादि परमाणुक ॥११६  
 परमाणु सुसूक्ष्मस्तु भावग्राह्यो न चक्षुषा ।  
 यदभेद्यतम लोके विज्ञेय परमाणु तत् ॥११७  
 जालान्तरगत भानोर्यत्सूक्ष्म दृश्यते रज ।  
 प्रथम तत्प्रमाणाना परमाणु प्रचक्षते ॥११८  
 अष्टाना परमाणूना समवाया यदा भवेत् ।  
 त्रसरेणु समाख्यातस्तत्पञ्चरज उच्यते ॥११९  
 त्रसरेणवश्च येऽप्यष्टौ रथरेणुस्तु स स्मृत ।  
 तेऽप्यष्टौ समवायस्था बालाग्र तत्स्मृत बुधै ॥१२०  
 बालाग्राप्यष्ट लिखा स्याद्यू का तच्चाष्टक भवेत् ।  
 यूकाष्टक यथा प्राहुरङ्ग लन्तु यवाष्टकम् ॥१२१

उनके उस वचन का श्रवण कर विनीत वचन वाले वायुदेव जैसा भी देखा है उसे यथाक्रम से मधुर वाक्य कहने लगे ॥११४॥ वायु ने कहा—यह मैं आपको बतला दूँगा मेरे विवक्षित को आप सुनिये । अव्यक्त भाग निश्चय ही महान् स्थूल विभापित होता है ॥११५॥ महता के दश ही भाग हैं । भूतादि स्थूल कहा जाता है । दश भागो से अधिक भी भूतादि परमाणुक होता है ॥११६॥ परमाणु बहुत ही सूक्ष्म होता है और वह भावग्राह्य है अक्षु क द्वारा

प्राह्य नहीं होता है । जो लोक म अभेद्यनम होता है उमो वो परमाणु जानना चाहिए ॥११७॥ भानु के जान के अन्तगत जो सूक्ष्म रज के कण दिखलाई देने हैं । प्रथम उसके प्रमाण बालो वो परमाणु कहते हैं ॥११८॥ आठ परमाणुधो का समवाय जब हो जाता है तो उसे त्रसरेणु इस नाम से समाख्यात करते हैं यह पञ्चरज कहा जाता है । आठ त्रसरेणुधो का रपरणु कहा जाता है । आठ रपरणुधो का जब समवाय होता है तो बुधो के द्वारा बलाप्र कहा गया है ॥११९ (२०)॥ आठ बलाप्रधो का एक लिधा और आठ लिधाधो का एक सूका होती है । आठ सूकाधो का एक यव और आठ यव का एक अगुल होता है ॥१२१॥

द्वादशागुलपर्वारिण वितस्तिस्थानमुच्यते ।

रत्निभ्रागुलपर्वारिण विज्ञेयो ह्येकविंशति ॥१२२

चत्वारि विंशतिश्चैव हस्त स्वादगुलानि तु ।

किष्कुद्विरत्निविज्ञेयो द्विचत्वारिंशदगुल ॥१२३

पणवत्पगुलश्चैव धनुराहुमनीयिण ।

एतद्गव्यूतिसख्याया पादाना धनुष स्मृत ॥१२४

धनुर्दण्डा युग नाली तुल्यान्येता यथागुलै ।

धनुषस्त्रिशत नत्वमाहु सख्याविदो जना ॥१२५

धनु सहस्रं द्वे चापि गव्यूतिरुपदिश्यते ।

अष्टौ धनु सहस्राणि योजनन्तु विधीयते ॥१२६

एतेन धनुषा चैव योजन तु समाप्यते ।

एतत्सहस्रं विज्ञेय शक्रीशान्तरन्तथा ॥१२७

योजनानान्तु सख्यात सख्याज्ञानविशारदं ।

एतेन योजनाग्रेण शृणुध्व ब्रह्मणोज्जरम् ॥१२८

महीतन्नात्सहस्राणा शताद्बुद्ध्वं दिवाकरं ।

दिवाकरात्सहस्रेण तावद्बुद्ध्वं निशाकरं ॥१२९

पूर्णं शतसहस्रन्तु योजनाना निशाकरात् ।

नक्षत्रमण्डल कुलत्रमुपरिष्ठात्प्रकाशते ॥१३०

द्वादश भगुलो के पर्वों का एक वितस्ति होता है । जोकि बघों के द्वारा वितस्ति स्थान बहा जाता है । इक्कीस भगुलो का एक पर्व जानना चाहिये ॥१२२॥ चौबीस भगुलो का एक हस्त होता है । दो रात्रियों का त्रिसमे बया तीस भगुल हुष्मा करते हैं एक विष्णु होना है ॥१२३॥ छयानवे भगुल वाला जो होता है उसे मनीषी लोग एक धनु कहते हैं । यह गव्यूति सस्या मे पादों का कहा गया है ॥१२४॥ दो धनुदंण्ड वाला नीली है जैसे भगुलो के तुल्य हैं । तीनसौ धनुषों का नल्व सस्या के विद्वान् जन कहते हैं ॥१२५॥ दो सहस्र धनुषों का एक गव्यूति कहा जाता है । आठ सहस्र धनुषों का एक योजन होता है ॥१२६॥ इस धनुष से योजन समाप्त किया जाता है । यह जब एक सहस्र हो तो शक्र शोभान्तर होता है ॥१२७॥ सस्या के ज्ञान रखने वाले परिदतो के द्वारा योजनों की सख्या की गई है । इस योजनाप से द्रह्या का अन्तर श्रवण करो ॥१२८॥ महीतल से सौ सहस्र ऊपर दिवाकर होता है । दिवाकर से सहस्र ऊपर निशा कर होना है ॥१२९॥ निशाकर से ऊपर एक पूरे सौ सहस्र समस्त ताराग्रहों का नक्षत्र मण्डल होता है जोकि प्रकाश करता है ॥१३०॥

शत सहस्र सख्यातो मेरुद्विगुणित पुन ।  
 ग्रहान्तरमथैकैकमूर्द्ध्वं नक्षत्रमण्डलात् ॥१३१॥  
 ताराग्रहाणां सव्वेषामधस्ताच्चरते बुध ।  
 तस्यांमूर्द्ध्वं चरते शुक्रस्तस्माद्मूर्द्ध्वं च लोहित ॥१३२॥  
 ततो बृहस्पतिश्चोर्द्ध्वं तस्माद्मूर्द्ध्वं शनैश्चर ।  
 ऊर्द्ध्वं शतसहस्रन्तु योजनानां शनैश्चरात् ॥१३३॥  
 सप्तपिमण्डलं कृत्स्नमुपरिष्ठात्प्रकाशते ।  
 ऋषिभिस्तु सहस्राणां शतमूर्द्ध्वं विभाव्यते ॥१३४॥  
 योऽसौ तारामये दिव्ये विमाने ह्रस्वरूपके ।  
 उत्तानपादपुत्रोऽसौ मेदिभूतो ध्रुवो दिवि ॥१३५॥  
 त्रैलोक्यस्यैव उत्सेधो व्याख्यातो योजनर्मया ।  
 मन्वन्तरेषु देवानामिज्या यथैव लोकिवी ॥१३६॥

वर्णाश्रमेभ्य इज्या तु लोकेऽस्मिन्वा प्रवर्तते ।  
सर्वेषा देवयोनीना स्थितिहेतु स वै स्मृत ॥१३७

त्रैलोक्यमेतद्व्याख्यातमत ऊर्ध्वं निबोधत ।  
ध्रुवाद्दूर्ध्वं महर्लोको यस्मिंस्ते कल्पवासिनः ।  
एकयोजनकोटी सा इत्येव निश्चय गतम् ॥१३८

सौ सहस्र सख्या से मेह द्विगुणित बताया गया है । ग्रहों का एक-एक में ऊपर नक्षत्र मण्डल से अन्तर होता है ॥१३१॥ समस्त ताराग्रहों के नीचे के भाग में बुध रहता है । उसके ऊपर शुक्र है और उसमें ऊपर लोहित चरण करता है ॥१३२॥ उससे ऊपर चतुस्पति और उससे ऊपर शनिश्चर होता है । शनिश्चर से सौ सहस्र योजन ऊपर सप्तपिथों का मण्डल हुआ करता है जोकि पूर्ण रूप से प्रकाशित हुआ करता है । सप्तपिथों से सौ सहस्र ऊपर ह्रस्वन्पक इस दिव्य तारामय विमान में जो यह मेदिभूत उत्तानपाद राजा का पुत्र ध्रुव दिव्य में प्रकाशित होता है ॥१३३, १३४-१३५॥ मैंने यह त्रैलोक्य का उल्लेख (ऊँचाई) व्याख्यात कर दिया है अर्थात् खुलामा बतला दिया है जोकि योजना के द्वारा होता है । मन्वन्तेरो में जहाँ पर ही लौकिकी देवों की इज्या होती है ॥१३६॥ जो इज्या यहाँ लोक में वर्णाश्रमों में प्रवृत्त हुआ करती है । समस्त देव योनि वालों की वह ही स्थिति का हेतु बताया गया है ॥१३७॥ मैंने यह इस तरह त्रैलोक्य की व्याख्या करदी है अब इनमें आगे समझलो । ध्रुव से ऊपर महर्लोक है जिसमें कि वे कल्पवासी रहते हैं । वह एक कोटि योजन है इसी प्रकार निश्चय किया गया है ॥१३८॥

द्वे कोट्यौ तु महर्लोकाद्यस्मिंस्ते कल्पवासिनः ।

यत्र ते ब्रह्माण, पुत्रा दक्षाद्या साधवा स्मृता ॥१३९

चतुर्गुणोत्तराद्ूर्ध्वं जननीनात्प स्मृतम् ।

वैराजा यत्र ते देवा भूतदाहविर्बजिता ॥१४०

पद्गुणान्तु तपोलोकात्मत्यलोसान्तरं स्मृतम् ।

अपुनर्मरिषामाना ब्रह्मलोक स उच्यते ॥१४१

यस्मात्त च्यवते भूयो ब्रह्माण स उपासते ।  
 एककोटियोजनाना पश्चात्तनियुतानि तु ॥१४२  
 ऊर्ध्वं भागस्ततोऽण्डस्य ब्रह्मलाकात्पर स्मृत ।  
 चतुरश्रं च कोट्यस्तु नियुता पश्चपटि च ॥१४३  
 एपोऽऽशप्रचारोऽस्य गत्यन्तश्चापर स्मृत ।  
 ध्रुवाग्रमेतद्व्याख्यात योजनाप्राप्तथात्तु ॥१४४  
 अघोगतीना वक्ष्यामि भूताना स्थानकल्पनाम् ।  
 गच्छन्ति घोरकर्माण प्राणिनो यत्र कर्मभि ॥१४५  
 नरको रौरवो रोघ सूकरस्ताल एव च ।  
 संसकुम्भो महाज्वाल शबलोऽथ विमोचन ॥१४६  
 कृमी च कुमिमक्षश्च लालामक्षो विशसन ।  
 अध शिरा पूयवहो रुधिरान्धस्तथैव च ॥१४७  
 तथा वैतरण कृष्णमसिपत्रवन तथा ।  
 अग्निज्वालो महाघोर सदशोऽथ श्वभोजन ॥१४८  
 तमश्च वृष्यसूत्रश्च लाहश्चाप्यसिजस्तथा ।  
 अप्रतिष्ठोऽथ वीच्यश्चनरका ह्येवमादय ॥१४९

महलोक से दो कोटि ऊपर जहाँ वे कल्प पयन्त वास करने वाले हैं और  
 ... के पुत्र दक्ष आदि साधक कहे गये हैं ॥१३९॥ जनलोक से चतुर्गुण  
 ऊपर तपोलोक गताया गया है जहाँ पर वैराज देव रहते हैं जाकि भूत दाह स  
 रहित रहा करते हैं ॥१४०॥ तपोलोक से षट् गुण ऊपर सत्यलोक का भ्रमर  
 होता है । जो अपुनर्मारको ना ब्रह्मलोक कहा जाता है ॥१४१॥ जहाँ से फिर  
 कोई भी च्यवन नहीं किया करता है और वह ब्रह्मा की उपासना किया करता  
 है । एक करोड योजन और पचास नियुत ऊपर उससे अण्ड का भाग है जो  
 ब्रह्मलोक से भी पर कहा गया है चार कोटि और पैसठ नियुत है ॥१४२ १४३॥  
 इसका यह अर्द्धांश प्रचार अपर गत्यन्त कहा गया है । यह जैसा भी सुना गया  
 है योजनाग्र से ध्रुवाग्र की व्याख्या करदी गई है ॥१४४॥ अब अघोगति वाले  
 प्राणियों की स्थान कल्पना को बतलाता हूँ । जहाँ पर घोर कम करने वाले



प्राणीगण घपने कर्मों के द्वारा जाया करते हैं ॥१४४ १४५॥ नरको क नाम ये हैं— रौरव—रोष—सूकर—तान—सप्तकुम्भ—महाज्वाल—शबल विमोचन—वृषी—वृषि-भद्र—मानामभ—विशमन—घघशिरा—पृथक्—रधिरा घ—वैतरण—वृष्ण—अग्निपत्र-वन—अग्निज्वाल—महाघोर—सदश—अभोजन—तम—वृष्णसूत्र—लोह—अग्निज—अप्र-तिष्ठ—वीच्यश्च इम प्रकार से ये नरक होते हैं ॥१४६ से १४६॥

तामसा नरका सर्वे यमस्य विषये स्थिता ।

येषु दुष्कृतकर्माणि पतन्तीह पृथक्पृथक् ॥१५०

भूमेरधस्तात्ते सर्वे रौरवाद्या प्रकीर्तिता ।

रौरवे कूटमाक्षी तु मिथ्या यश्चाभिज्ञगति ।

क्रूरग्रहे पक्षवादी ह्यरुत्य पतते नर ॥१५१

रोधे गोघ्नो भ्रूणहा च ह्यग्निदाता पुरस्य च ।

सूकरे ब्रह्महा मज्जेत्पुराण स्वर्णतस्कर ॥१५२

ताले पतेत्क्षत्रियहा हत्वा वैश्यश्च दुर्गन्तिम् ।

ब्रह्महत्याश्च य पुर्याद्यश्च म्याद्गुरतल्पग ॥१५३

सप्तकुम्भी स्वसागामी तथा राजभटश्च य ।

तप्तलोहे चाश्ववणिक्तया बन्धनरक्षिता ॥१५४

साध्वीविक्रयकर्त्ता च यस्तु भक्त पणित्यजेत् ।

महाज्वाले दुहितर स्नुषा गच्छति यस्तु वै ॥

य समस्त तामस नरक यमराज के दण म स्थित होने हैं । उन नरकों में जो पाप कर्मों के करने वाल पृथक् होत है वे अपने घपन कृत कर्मों के अनुसार पृथक् पृथक् पतित होने हैं ॥१५०॥ वे सब नरक भूमि के नीच भाग म रौरव आदि द्वात हैं । जो कूटमाक्षी घर्षान् भूटी गवाही देने वाला है और सर्वथा मिथ्या धीरता है वह कूटग्रह रौरव नामक नरक म मिथ्यावादी तथा पक्ष में बाने वाला जाकर गिरता है ॥१५१॥ रोष नामक नरक म गौ की हत्या करन वाला तथा भ्रूणा का वध करने वाला और नगर में प्राण लगाने वाला जाया करता है । ब्रह्मण का वध करने वाला सूकर म गिरता है । गुराणन करन वाला और स्वर्ण का चुराने वाला ताल नामक नरक म गिरता है । क्षत्रिय

का हनन करने वाला तथा वैश्य की दुर्गति करने वाला घोर जो ब्रह्महत्या करता है एव जो गुल्फत्नी का गमन करता है वह तप्तकुम्भ नरक में जाता है । स्वसा का गमन करने वाला और जो राजभट होता है वह और अश्वो का बेचने वाला तथा बन्धन रक्षिता ये सब तप्तलोह नामक नरक में पतन प्राप्त किया करते हैं ॥१५२-१५३-१५४॥ स्वाध्वी के विक्रय करने वाला और भक्त का परित्याग कर देता है तथा पुत्री एव स्नुषा का गमन किया करता है वह महा-ज्वाल नाम वाले नरक में गमन करके पाषी के फल को भोगता है ॥१५५॥

वेदो विक्रीयते येन वेद दूषयते च य ।

गुरुश्चैवावमन्यन्ते वाक्क्रोशंस्ता डयन्ति च ॥१५६

अगम्यगामी च नरो नरक शबल ब्रजेत् ।

विमोहे पतिते चोरे मर्यादा यो भिनत्ति वै ॥१५७

दुरध्व कुरुते यस्तु कीटलोह प्रपद्यते ।

देवब्राह्मणविद्वेषा गुरुणाश्चाप्यपूजक ।

रत्न दूषयते यस्तु कृमिभक्ष्य प्रपद्यते ॥१५८

पथ्यंश्नाति य एकोऽन्यो ब्राह्मणी मुदृढ मुतात् ।

लालाभक्षे स पतति दुर्गन्धे नरके गतः ॥१५९

वाण्डकर्त्ता कुलालश्च निष्कहर्त्ता चिक्वित्सक ।

आरामेष्वग्निदाता य पतते स विशसने ॥१६०

असत्प्रतिग्रही यश्च तथैवायाज्ययाजक ।

नक्षत्रैर्जीवितो यश्च नरो गच्छत्यघोमुल्लभ ॥१६१

ब्रिमके द्वारा वेदों का विक्रय किया जाता है और जो वेदों को दूषित किया करता है तथा गुरुगण का जो अपमान करता है एव वाक्क्रोशो के द्वारा जो ताड़ना किया करते हैं एव अगम्या गमन करते हैं वे सभी शबल नामक नरक में जाया करते हैं । चोर विमोद नाक में पतित होते हैं और जो मर्यादा को तोड़ने हैं वे भी जमी नरक में जाते हैं ॥१५६-१५७॥ जा दुरध्व करता है वह कीटलोक नरक में जाता है । देवा-ब्राह्मणों का द्वेष करने वाला तथा गुरुओं की पूजा न करने वाला घोर जो रत्न को दूषित किया करता है वह कृमिभक्ष्य

नामक नरक में प्राप्त हुआ करता है ॥१५८॥ जो एक अन्य ब्राह्मणी श्रीर मुहूद की पुत्री का उपभोग करता है वह दुर्गन्ध वाले लाटाभक्ष नामक नरक में जाकर गिरता है ॥१५९॥ काण्डकर्त्ता-बुम्हार-निष्ण का हरण करने वाला तथा चिस्त्रिमा करने वाला एव वाग में आग लगाने वाला व्यक्ति जो होना है वह विगमन नाम वाले नरक में गिरता है ॥१६०॥ अमत् वस्तु के प्रनिग्रह का लेने वाला श्रीर उमी तरह से जो याजन के अयोग्य है उसको याजन कराने वाला तथा नक्षत्रों के द्वारा जो जीविका चलाता है अर्थात् गणक ज्योतिषी मनुष्य होता है वह अघोमुख नामक नरक में जाता है ॥१६१॥

श्रीर सुरा च मास च लाक्षा गन्ध रमन्तिनात् ।

एवमादीनि विक्रीणन्धोरे पूयवहे पतेत् ॥१६२

य बुक्कुटानि वघ्नाति मार्जारान्सूकराश्च तान् ।

पक्षिणश्च मृगाञ्छागान्सोऽप्येन नरक भजेत् ॥१६३

आजीविको माह्विषस्तथा चक्रध्वजी च य ।

जङ्घोपजीविको विप्र णानुनिग्राम याजक ॥१६४

अगारदाही गरद कुण्डाशी सोमविक्रयी ।

सुरापो मासभक्षश्च तथा च पशुघातक ॥१६५

विश (श्च) स्ता महिषादीना मृगहन्ता तथैव च ।

पर्वकारश्च सूची च यश्च स्यान्मिप्रघातक ।

रधिरान्धे पतन्वेत्त एवमाहृमनीपिण ॥१६६

श्रीर (दूध)-सुरा-मांस-लाज-गन्ध (गुणयित पदार्थों)-रग श्रीर निचो

को एव इन प्रकार की वस्तुओं को बेचने वाला व्यक्ति श्रीर पूय वह नामक नरक में जाकर गिरता है ॥१६२॥ जो मुर्गों को बध करता है तथा मार्जारों को श्रीर सूकरों को-पक्षियों को-मृगों को तथा छागों को बध किया करता है वह भी उमी नरक में गिरता है ॥१६३॥ आजीविक-माह्विक और जो पशु-ध्वजी होता है-जो रङ्गो में उपजीविका करने वाला विप्र है तथा णानुनि एव ग्राम याजक होता है-अगार को दाह करने वाला-विप्र देन वाला-कृगडाशी-गोम का विजय करने वाला-मदिरा पीने वाला-मांस भक्षण करने वाला-

पशुघ्नो वा वध करने वाला—महिष आदि वा विद्यस्ता—मृगो वा हनन करने वाला—पर्व का—सूची और जा मित्र घातक होता है—ये सब रुधिरान्ध में ज'कर गिरा करते हैं ऐसा मनीषीगण कहते हैं ॥१६४-१६५-१६६॥

पतन्ति नरके घोरे विड्भुजे नात्र सशयः ॥१६७

मृपावादी नरो यश्च तथा प्राक्रोशकोऽशुभः ।

पतेत्तु नरके घोरे मूत्राकीर्णे स पापकृत् ॥१६८

मधुग्राहाभिहन्तारो यान्ति वैतरणी नराः ।

उन्मत्ताश्चित्तभग्नाश्च शौचाचारविवर्जिताः ॥१६९

क्रोधना दुःखदाश्चैव बुहका कृष्टगामिनः ।

असि पत्रवने छेदी तथा ह्यौरभ्रिवाश्च ये ।

वर्त्तन्तश्च विकृध्यन्ते मृगव्याधा मुदार्या ॥१७०

आश्रमप्रत्यवसिता अग्निज्वाले पतन्ति वै ।

भोज्यन्ते श्याम शबलैर्यस्तुण्डैश्च वायसं ॥१७१

इज्याया अतमालोपात्सन्दरो नरके पतेत् ।

स्वन्दन्ते यदि वा स्वप्ने द्रतिनो ब्रह्मचारिणः ॥१७२

पुत्रैरध्यापिता ये च पुत्रैराज्ञापिताश्च ये ।

ते सर्वे नरकं यान्ति नियतन्तु श्वभोजने ॥१७३

वर्णाश्रमविरद्धानि क्रोधहर्षसमन्विताः ।

धर्माणि ये तु कुर्वन्ति सर्वे निरयगामिनः ॥१७४

एक ही पक्ति में बँटे हुए व्यक्ति को जो विषम भोजन करता है । वह

विड्भुज नामक घोर नरक में गिरता है इसमें कुछ भी गन्ध नहीं है ॥१६७॥

जो मनुष्य मिथ्यावाद करने वाला होता है तथा जो अशुभ एवं प्राक्रोश करने

वाला होता है । वह पापी मूत्राकीर्ण नामक नरक में जोकि बड़ा ही घोर होता है

गिरता है ॥१६८॥ मधुग्राह के अग्नि हनन करने वाले नर वैतरणी में जाया

करते हैं । जो उन्मत्त—भान—विस्त याने—धीव एवं आधार से रहित—अप्यन्त

प्रकारण क्रोध करने वाले—दुःख देने वाले—बुहक घोर कृष्टगामी मनुष्य है वे

असि पत्रवन नाम वाले नरक में जाया करते हैं । जो देहन करने वाले तथा

घोर भ्रम एक कर्त्तनी (छुटियो) के जैसे सुदारुणो अस्त्रो से मृग एव व्याधो का विवपण किया करते है वे अपने आश्रमसे प्रत्यवसित होते हुए अग्निज्वाल नामक नरक मे गिरते हैं । जो इवाम घोर शयल अपस्तुण्ड घोर वायसो के साथ साया करते हैं इज्या मे व्रन के आलोप से सन्देश नामक नरक मे गिरते हैं । व्रतधारी बहान्वारी गण यदि स्वप्न मे भी स्कन्दित होते हैं और जो पुत्रो के द्वार मध्यापित एव पुत्रो के द्वारा आज्ञापित होते हैं वे सब श्रमोजन ग्रामक नरक मे नियत रूप से जाकर पडा करते है ॥१६६ से १७३॥ क्रोध तथा हर्ष सपन्वित होते हुए जो भोग वरुणो तथा आश्रमो के विपरीत कर्मो को किया करते हैं वे सब नरक के गामी हुआ करते है ॥१७४॥

उपरिष्ठात्सितो घोर उध्यात्मा रौरवां महान् ।

सुदारुणस्तु शीतात्मा तस्याधस्तात्तप स्मृत ॥१७५

एवमादि क्रमेणैव वर्ण्यमानान्निबोधत ।

भूमेरधस्तात्सप्तैव नरका परिकीर्तितानि ॥१७६

अघमंसूनवस्ते स्पुर्न्धतामिन्नकादय ।

रौरव प्रथमस्तेषा महा रौरव एव च ॥१७७

अस्याध पुनरप्यन्य शीतस्तप इति स्मृत ।

तृतीय कालसूत्र स्यामहाहविविधि स्मृत ॥१७८

अप्रतिभ्र अतुर्यं स्यादवीची पञ्चम स्मृत ।

लोहपृष्ठमस्तमस्तेषामविधेयस्तु सप्तम ॥१७९

घोरत्वाद्गौरव प्रोक्त साम्भको दहन स्मृत ।

सुदारुणस्तु शीतात्मा तस्याधस्तात्तपोऽयमः ॥१८०

सर्पो निवृन्तन प्रोक्त कालसूत्रेति दारुण ।

अप्रतिष्ठे स्थितिर्नास्ति भ्रमस्तस्मिन्सुदारुण ॥१८१

अवीचिर्दारुण प्रोक्तो यन्त्रसर्पनीडनाच्च स ।

तस्मात्सुदारुणो लोहः वर्म्मणा क्षयणाच्च स ॥१८२

ऊपर से मिल-घोर उध्या स्वरूप वाला महाद् रौरव नरक होना है ।

सुदारुण सो शीतात्मा होना है किन्तु उगव नीचे तप कहा गया है ॥१७५॥

एवम दि क्रम से ही वर्णन किये हुए नरको का समझ लो । भूमि के नीचे के भाग में सात ही नरक बने गये हैं ॥१७६॥ वे अथ तामिस्नकादि अथम के सूनु हैं । रौरव और महा रौरव उनमें प्रथम है ॥१७७॥ इसके नीचे फिर भी अन्य तीनस्तय कहा गया है । तीसरा काल सूत्र होता है जो महा हवि बिधि कहा गया है ॥१७८॥ अप्रतिष्ठ चौथा और पांचवाँ अवीची नाम बाला होता है । उनमें लोह पृष्ठ स्तम जो अविधेय है सातवाँ होता है ॥१७९॥ घोर होने से रौरव कहा गया है और साम्भरु दहन कहा गया है । मुदाहण तो शीतलमा होता है उसके नीचे अधम तप होना है ॥१८०॥ सप्त निहन्तन कहा गया है । बाल सूत्र यह दारुण है । अप्रतिष्ठ में स्थिति नहीं है उसमें मुदाहण भ्रम होता है ॥१८१॥ अवीची नरक दारुण कहा गया है क्योंकि वह यत्र पीडित करता है । उसमें भी मुदाहण कर्मों के क्षय के कारण लोह नामक नरक होता है ॥१८२॥

तथाभूतो शरीरत्वादविधिभ्यस्तु स स्मृत ।

पीडबन्धवधासङ्गादप्रतीवारलक्षण ॥१८३

ऊर्ध्वं दलमितास्ते तु निरालोकाश्च ते स्मृता ।

दु खोत्पपस्तु सर्वेषु ह्यधमस्य निमित्तत ॥१८४

ऊर्ध्वं लोर्धं समावेतौ निरालोकौ च तावुभौ ।

कूटाङ्गारप्रमाणंश्च शरीरी मूत्रनायक ॥१८५

उपभोगसमर्थस्तु सद्यो जायन्ति कर्मभि ।

दु ख प्रकपंश्चोपत्व तेषु सर्वेषु वे स्मृतः ॥१८६

यातनाश्चाप्यसत्येया नारकाणा तथा स्मृता ।

तत्रानुभूयत दु ख क्षीणो कमगि ने पुन ॥१८७

तियंघ्योनौ प्रमूयन्त कर्मशेषे गते तत ।

देवाश्च नारकाश्चैव ह्यूर्ध्वं चाधश्च सस्थिता ॥१८८

धर्माधर्मनिमित्तेन सद्या जायन्ति मूर्त्तय ।

उपभोगार्थमुत्पत्तिरीपपत्तिकर्मत ॥१८९

पश्यन्ति नारवान्देवा ह्यधोवक्त्रान् ह्यधोगतान् ।

नारकाश्च तथा दवान् सर्वाण्यस्यन्त्यधो मुगवान् ॥१९०

अनप्रमूलता यस्माद्धारणाश्च स्वभावतः ।  
 तस्माद्दूर्ध्वमधोभावो लोकालोके न विद्यते ॥१६१॥  
 एषा स्वाभाविकी सज्ञा लोकालोके प्रवर्तते ।  
 अथान्नुवन्पुनर्वायु द्राह्मणा सत्रिणस्तदा ॥१६२॥  
 सर्गेषामेव भूताना लोकालोकनिवासिनाम् ।  
 ससारे ससरन्तीह यावन्त प्राणिनश्च तान् ॥१६३॥  
 सङ्ख्यया परिसङ्ख्याय तत प्रब्रूहि कृत्स्नशः ।  
 ऋषीणा तद्वच श्रुत्वा मास्तो वाचयमब्रवीत् ॥१६४॥

तथा भूत शरीर होने प्रविधिभ्य वह कहा गया है । पीठवन्ध और वध के प्रामाण्य होने से अप्रतीकार लक्षण वाला होता है ॥१६३॥ वे ऊपर में नीचे को गये हुए तथा बिना आलोक वाले कहे गये हैं । अधर्म के निमित्त होने से सब में दुःख का उत्कर्ष हुआ करता है ॥१६४॥ ऊर्ध्व भाग में वे लोको के समान होते हैं तथा ये दोनों निरालोक होते हैं । और कूटाकार प्रमाणो न शरीरी मूत्र नायक होता है ॥१६५॥ उपभोग में ममर्थ कर्मों से तुरन्त ही होते हैं । उन सब में दुःखो का प्रकर्ष और उग्रता कहे गये हैं ॥१६६॥ नरको में होने वाली यातनाएं अमरुष कही गई हैं । वहाँ पर फिर क्षीण कर्म में दुःख का अनुभव किया जाता है ॥१६७॥ इसके पश्चान् कर्मों के दोष रहने पर जीवात्मा नियंक् योनि में जन्म लिया करते हैं । देवगण और नारकीगण ऊपर और नीचे के भागों में संस्थित होने हैं ॥१६८॥ धर्म और अधर्म के निमित्त होने से तुरन्त भूतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं । प्रोपतिक कर्म से उपभोग करने के लिये उत्पत्ति होती है ॥१६९॥ देवगण अधोगत और नीचे की ओर मुख करने वाले नारकी प्राणियों की देहा करते हैं । और नारक ममस्त देवों को अधो मुख किये हुए देवते हैं ॥१७०॥ जिस कारण से अनप्रमूलता और स्वभाव से धारण होती है उसमें लोकालोक में ऊर्ध्वभाव तथा अधोभाव नहीं होता है ॥१७१॥ लोकालोक में यह स्वाभाविकी सज्ञा होती है । इसके अनन्तर उग समय में मत्र करने वाले प्राणियों ने फिर वायुदेव कहा—॥१७२॥ ऋषियो ने कहा—लोकालोक के निवास कर्मों वाले सभी प्राणियों में से यहाँ गतार में जितन प्राणी समरण

रिया करत है उनको मर्या स करवान करके इगके पदवायु पूर्ण रूप से बता  
इव । श्रुतियों व उम वचन को मुनकर माहन देव न कहा—॥१६४॥

न शक्या जन्तव कृत्स्ना प्रसख्यातु वयश्चन ।  
अनाद्यन्ताश्च सर्वाणि ह्यप्युहेन व्यवस्थिता ।  
गणना विनिवृत्तपामानन्त्यन प्रकीर्तिता ॥१६५॥  
न दिव्यचक्षुषा ज्ञातु शक्या ज्ञानेन वा पुन ।  
चक्षुषा वे प्रसख्यातुमतो ह्यन्ते नराधिप ॥१६६॥  
अनाध्यानादवेद्यत्वान्नैव प्रश्नो विधीयते ।  
ब्रह्मणा सजित यत् सत्यया तन्निबोधत ॥१६७॥  
य सहस्रतमो भाग स्यावराणा भवेदिह ।  
पार्थिवा कृमयस्तावत्ससेवार्थेषु सम्भवा ॥१६८॥  
मसक्जानाम्भागेन सहस्रेणैव सम्मिता ।  
श्रीदक्षा जन्तव सर्वे निश्चयात्तद्विचारितम् ॥१६९॥  
सहस्रेणैव भागेन सत्वाना सलिलीकसाम् ।  
विहङ्गमास्तु विज्ञया लोकिनास्त च सर्वश ॥२००॥

वायु देव बोले—सम्पूर्ण जन्तुगण किसी भी प्रकार से प्रसख्यान नहीं  
किये जा सकते हैं । ये सब अनाद्यन्त—सर्वाण और ऊह से भी व्यवस्थित हैं ।  
इनकी गणना ध्यानन्त्य होने से विनिवृत्त कही गई है ॥१६५॥ अथवा दिव्य  
चक्षु से भी ज्ञान के द्वारा नहीं जानी जा सकती है । इसलिये अन्त में नराधिप  
प्रसख्यान करने के लिये लिया गया है ॥१६६॥ अनाध्यान होने से तथा अवेद्यत्व  
होने से यह प्रश्न ही नहीं किया जाता है । ब्रह्मा के द्वारा जो सख्या से सजित  
किया गया है उसको जान लो ॥१६७॥ यहाँ पर स्यावरो का जो सहस्रतम भाग  
होता है उतने ससकादि में होने वाले पार्थिव कृमि होते हैं ॥१६८॥ समेकजो  
के सहस्रतम भाग के सम्मित समस्त श्रीदक (जल में रहने वाले) जन्तुगण होते  
हैं यह निश्चय से विचार किया गया है ॥१६९॥ सलिल में रहने वाले सत्वों के  
सहस्र ही भाग से विहङ्गम जानने चाहिए और वे सब लौकिक हैं ॥२००॥



य सहस्रतमो भागस्तेषां वै पक्षिणा भवेत् ।  
 पञ्चवस्तसमा ज्ञेया लोकिनास्तु चतुष्पदा ॥२०१॥  
 चतुष्पदाना सर्वेषा सहस्रेणैव समता ।  
 भागेन द्विपदा ज्ञेया लोकिवेर्जस्मिस्तु सव्यश ॥२०२॥

य सहस्रतमो भागो भागे तु द्विपदा पुन ।  
 धार्मिकास्तेन भागेन विज्ञेया सम्मिता पुन ॥२०३॥  
 सस्रस्रणैव भागेन धार्मिकेभ्यो दिवङ्गता ।

य सहस्रतमो भागो धार्मिकाणा भवेद्विवि ।  
 समितास्तन भागेन मोक्षिणस्तावदेव हि ॥२०४॥  
 स्वर्गोपपादकस्तुल्या यातना स्थानवासिन ।

पतिता पूणमुद्देशाद्दुरात्मनो म्रियन्ति ये ।  
 रौरवे तामसे ह्येते शीतोष्ण प्राप्नुवन्ति ते ॥२०५॥  
 वेदनाकटुकास्तव्या यातना स्थानमागता ।

उष्णस्तु रौरवो ज्ञेयस्तेजो घोररसात्मक ॥२०६॥  
 तता धनादिमश्नापि शीतात्मा मरत तप ।  
 एव सुदुर्लभा सन्त स्वर्गे च धार्मिका नरा ॥२०७॥

एषा सत्या कृता सत्या ईश्वरेण स्वयम्भुवा ।  
 गणना विनिवृत्तीषा सन्ध्या ब्राह्मी च मानुषी ॥२०८॥

जो उन पशिया का हजारवा हिस्सा होगा है उनके बराबर चौकिस  
 चतुष्पद पशु जानने चाहिये ॥२०१॥ समस्त चतुष्पदों के सहस्र भाग से  
 सम्मित इस समस्त लौकिक म द्विपद जन्तु जानने चाहिए ॥२०२॥ फिर उन  
 द्विपदों म भाग न जो सहस्रवा भाग होना है उस भाग में धार्मिक जानने  
 चाहिए ॥२०३॥ हजारवें भाग स ही उन धार्मिकों म से प्राणी दिवलोक में  
 प्राप्त होने वाले होते हैं । उस दिवलोक म भी उन गये हुए धार्मिकों म से  
 हजारवाँ भाग मोक्ष प्राप्त करने वाल हुआ करते हैं ॥२०४॥ स्वर्ग के उप-  
 पादकों क तुल्य यातना स्थान वाली की है । उद्देश्य से पूर्ण की पतिता दुष्ट  
 धात्मा धाने मरत हैं ये सब रौरव तामस में गिरत है घोर शीतोष्ण की वे

प्राप्त किया करते हैं । २०५॥ वेदना से बटुक एव स्तब्ध यातना के स्थान को प्राप्त हो गये । उष्ण तो रौरव जानना चाहिये जो कि घोर रमात्मक रोज है ॥२०६॥ इसके पश्चात् घनात्मिक भी शीतात्मा सतत तप है । इस प्रकार से सुदुर्लभ होते हुए भी स्वर्ग में घाम्मिक नर होते हैं ॥२०७॥ यह सख्या स्यम ईश्वर के द्वारा की गई है । यह संख्या ब्राह्मी और मानुषी है । यह गणना विनिवृत्त हो गई है ॥२०८॥

महोजनस्तप. सत्य भूतो भाव्यो भवस्तथा ।

उक्ता ह्येते त्वया लोका लोकानामन्तरेण च ।

लोकान्तरञ्च यादृग्मी तन्नो ब्रूहि यथातथम् ॥२०९॥

तेषा तद्वचन श्रुत्वा ऋषीणामूद्वर्षरेतसाम् ।

स वायुर्दृष्टतत्त्वार्थ इदन्तत्त्वमुवाच ह ॥२१०॥

व्यक्त तर्केण पश्यन्ति योगात्प्रत्यक्षदर्शिनः ।

प्रत्याहारेण ध्यानेन तपसा च क्रियात्मन ॥२११॥

ऋभुः सनत्कुमाराद्या सम्बुद्धा. शुद्धबुद्धयः ।

व्यपेतशोका विरजाः सन्तो ब्रह्मैवसत्तमाः ॥२१२॥

अक्षया प्रीतिसयुक्ता ब्रह्मै तिष्ठन्ति योगिनः ।

ऋषीणा वालक्षित्याना तैर्यथाहृतमी श्वरं. ॥२१३॥

यथा चैव मया दृष्टं सा द्विध्यन्तत्र कुर्वता ।

अनह्यसत्कृताथनामालय नेश्वरस्य यत् ॥२१४॥

ईश्वर परमार्गुत्वाद्भावग्राहधो मनीषिणाम् ।

ज्ञान गौराग्यमेश्वर्यन्तप सत्य क्षमा धृति ॥२१५॥

द्रष्टृ त्वमात्मसम्बन्धमधिज्ञानत्वमेव च ।

अव्ययानि दर्शयानि तस्मिस्तिष्ठति शङ्करे ॥२१६॥

ऋषियो ने कहा—आपने मह-जन तप-भक्त-भूत भाव्य और भव ये सब लोक हमको बताये हैं । अब लोको के अन्तर से अन्य जिस प्रकार के लोक हैं उन्हें ठीक-ठीक हमको बताइये ॥२०९॥ उन ऋषियों ने जो कि उद्वर्षिता थे उस वचन का ध्वरण कर तत्त्वार्थ को देम लेने वाले उन वायुदेव ने उस

तत्व को कहा था ॥२१०॥ वायुदेव ने कहा—प्रत्यक्षदर्शी योग से तर्क के द्वारा व्यक्त को देखा करते हैं और क्रिया के स्वरूप वाले प्रत्याहार-ध्यान तथा तप के द्वारा देखते हैं ॥२११॥ ऋभु सनत्कुमार आदि सब भली भाँति ज्ञान युक्त तथा सम्बुद्ध बुद्धि वाले हैं । ये सब शोक रहित विरज ब्रह्म की भाँति ही श्रेष्ठ हैं ॥२१२॥ ये क्षय से रहित-प्रीति से समुक्त योगी हैं जो ब्रह्म में ही भास्वित रहा करते हैं । उन परम समर्थ प्रभुओं ने बालविल्य ऋषियों से जैसा कहा था और उनका सानिध्य करने वाले मैंने जिस तरह से देखा था कि ये लय पर्यन्त ईश्वर के असक्तृत वाले नहीं होते हैं ॥२१३॥२१४॥ ईश्वर परम अणु होने के कारण से मनीषियों के भाव के द्वारा ही ग्रहण करने के योग्य होता है । उस शङ्कर म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य तप-सत्य क्षमा-धृति-द्रष्टृत्व होना-आत्म सम्बन्ध और अधिष्ठानत्व य अयम दश बातें स्थित रहा करती है ॥२१५॥२१६॥

विभुत्वात्खलु योगाग्निर्ब्रह्मणोऽनुग्रहे रत ।

स लोकविग्रहो भूत्वा साहाय्यमुपतिष्ठते ॥२१७

अक्षर ध्रुवमव्यग्रमष्टमन्तवीपसगिकम् ।

तस्येश्वरस्य यन्मात्रस्थान मायामय परम् ॥२१८

मायया कृतमाचष्टे मायी देवो महेश्वर ।

देवानामुहसहारस्तत्प्रमाणं हि कीर्त्यते ॥२१९

विस्तरैरानुपूर्व्या च द्रुवतो मे निबोधत ।

त्रयोदशैव कोट्यस्तु नियुता दश पञ्च च ।

भूलोकाद् ब्रह्मलोको वै योजनं सम्प्रकीर्त्यते ॥२२०

एकयोजनकोटी तु पञ्चाशन्नियुतानि च ।

ऊर्ध्वं भाग्यताण्डन्तु ब्रह्मलोकात्पर स्मृतम् ॥२२१

एषोर्ध्वं गप्रचारन्तु गत्यन्तश्च तत स्मृतम् ।

नित्या ह्यधपरिमख्येया परस्परगुणाथया ॥२२२

मूक्ष्मा प्रसवधमिष्यस्तत प्रकृतयः स्मृता ।

येभ्योऽधिकर्ता सजज्ञ क्षेत्रज्ञो ब्रह्मससित ॥२२३

विभु होने के कारण वह योग की अग्नि वाता प्रभु ब्रह्म के अनुग्रह म रत रहते हैं । वे लोक विग्रह होकर सहायता किया करते हैं ॥२१७॥ उस ईश्वर के अक्षर ध्रुव अथ्यग्र अष्टम श्रीपरमिक् परम मायामय यमात्र स्थान है ॥२१८॥ महेश्वर देव माया से युक्त हैं और माया क द्वारा ही सब कुछ किया करते हैं । देवा का उप सहार भी इसी प्रकार किया करते हैं । उसका प्रमाण अब कहा जा रहा है । मैं विस्तार क साथ उसे आपूर्वी से कहता हूँ । आप लोग उसे मुझसे जान लें । इस भूलोक से ब्रह्मलोक त्रयोदश कोटि तथा पद्मह नियुत बीजगो से युक्त कहा जाया करता है ॥२१९॥२२०॥ इन ब्रह्म लोक से भी ऊपर एक कराड पचास नियुत योजन भागवताणु स्थित है ऐसा कहा गया है ॥२२१॥ यह इनसे उपर गमन करने वाला प्रचार है और वहा गति का अन्त होता है ऐसा बताया गया है । परस्पर म गुणा के आश्रय जो है वे नित्य हैं और अपरिसह्य्य होते है ॥२२२॥ प्रसव के धम वाली जो प्रकृतिया हैं व परम सूक्ष्म हैं जिनमे अधिकर्ता ब्रह्म ही सत्ता वाला क्षेत्रज्ञ उत्पन्न होता है ॥२२३॥

तासु प्रकृतिमत्सूक्ष्ममधिष्ठातृत्वमव्ययम् ।

अनुत्पाद्य परन्धाम परमाणु परशेयम् ॥२२४

अक्षयश्चाप्यनुहृद्यश्च अमूर्त्तिमूर्त्तिमानसी ।

प्रादुर्भावस्तिरोभाव स्थितिश्चैवाप्यनुग्रह ॥२२५

त्रिधिरन्यैरनीपम्य परमाणु महेश्वर ।

मतेजा एप तममो य परस्तात्प्रकाशक ॥२२६

यदण्डमासीत्सौवर्णं प्रथमन्त्वीपसर्गिकम् ।

वृहत सर्वतोवृत्तमीश्वराद्वज्रवजायत ॥२२६

ईश्वरदाद् बीजनिर्भेद क्षेत्रज्ञो बीज इष्यते ।

यानि प्रकृतिमाचष्टे मा च नारायणात्मिका ॥२२८

विभुर्लोकस्य सृष्ट्यर्थं लोकसस्थानमव च ।

सन्निसर्गं स तन्वा च लोकघातुमहात्मन ॥२२९

पुरस्ताद्ब्रह्मलोकस्य ह्यष्टादशैव प्रद्वाराः ।

तयोर्मध्ये पुरं दिव्य स्थान यस्य मनोमयम् ॥ २३०

तद्विग्रहवत् स्थानमीश्वरस्यामितौजसः ।

शिव नाम पुर तत्र धारण जन्मभीरणाम् ॥ १३१

उनमें प्रकृति वाला मूढम एव अव्यय अधिपानृत्व होता है । वह परमाणु परमेव परधाम धनुत्वादन के योग्य होता है ॥२२५॥ वह क्षय से रहित-उहा करने के अयोग्य बिना भूति वाला और यह भूतिमान है जिसका आविर्भाव और तिरोभाव तथा ग्निति भी एक प्रकार का धनुप्रह ही होता है ॥२२५॥ यह परमाणु महेश्वर अन्यों के द्वारा धनुपम विधि होता है । यह तमकी परम प्रकाश करने वाला तेज से युक्त होता है ॥२२६॥ जो यह प्रथम मोवर्ण एक औपमनिक धनु होता है । सभी ओर से वृत्त और परम विशाल वह ईश्वर से उत्पन्न हुआ था ॥२२७॥ ईश्वर से बीज का निर्भेद होता है । जो क्षेत्रज्ञ होता है वही बीज होता है । प्रकृति को उम बीज को धारण करने वाली योनि कहा जाता है और वह भी नारायण के स्वप्न वाली होती है ॥२२८॥ विभु न लोक की सृष्टि के विय लोक सस्थान किया है लोकों के धाना उम महात्मन के अंगिर से ही यह निमग होता है ॥२२९॥ सबसे पहले ब्रह्म होता है और फिर ब्रह्म का अण्ड है । इन दोनों के मध्य म पुर जिसका मनोमय परम दिवा स्थान होता है ॥२३०॥ अपरिमित भोज वाले विग्रहधारी उम ईश्वर का स्थान है । वह शिव नाम वाला पुर है और वहा पर जन्म मरण के भय से भी न जीवा को रक्षा होती है अर्थात् वही शिवपुर उनका धारण है ॥२३१॥

सहस्राणां शत पूर्णं योजनानां द्विजोत्तमा ।

अभ्यन्तरे तु विस्तीर्णं महीमण्डलसन्धितम् ॥२३२

मध्याह्नार्कप्रकाशेन परतेजोऽभिमदिना ।

शातकीम्भेन महता प्राकारेणार्कवर्चसा ॥ २३३

द्विरंश्रनुभि सोवर्णमुक्तादामविभूषितं ।

तपनीयनिभं शुभ्रं गाढं सुकृतवेष्टनम् ॥ २३४

तच्चाकाशे पुर रम्य दिव्य घण्टादिनादितम् ।  
 न तत्र क्रमते मृत्युर्न तपो न जरा श्रमाः ॥२३५॥  
 न हि तस्य पुरस्यान्यैरुपमा कर्तुमर्हति ।  
 सहस्राणां शत पूर्णं योजनानां दिशो दश ॥२३६॥  
 तत्पुरं गोवृषाङ्कस्य तेजसा व्याप्य तिष्ठति ।  
 भावेन मनसो भूमिविन्यस्ता कनकामयी ॥ २३७॥  
 रत्नवालुकया तत्र विन्यस्ता शुशुभेऽधिकम् ।  
 शारदेन्दुप्रकाशानि बालसूर्यनिभानि च । २३८॥  
 अर्द्धं श्वेतार्द्धं रक्तानि सौवर्णानि तथैव च ।  
 रथचक्रप्रमाणानि नालैर्मरकतप्रभं ॥२३९॥  
 सौकुमारेण रूपेण गन्धिनाप्रतिमेत च ।  
 तत्र दिव्यानि पद्मानि वनेपूषवनेषु च ॥ २४०॥  
 भृङ्गपत्रनिकाशानि तपनीयानि यानि च ।  
 अर्द्धं कृष्णार्द्धं रक्तानि सुकुमारान्तराणि च ॥ २४१॥  
 शतपत्र प्रमाणानि पद्भुजैः सवृतानि च ।  
 भूय सप्त महानद्यस्तासानामानि बोधत ॥ २४२॥  
 वरा वरेण्या वरदा वराह्या वरवर्णिनी ।  
 वरमा वरभद्रा च रम्यास्तस्मिन्पुरोत्तमे ॥ २४३॥  
 पद्मोत्पदलोन्मिश्र फेनाद्यावत्तं विग्रहम् ।  
 जल मणिदलप्रख्यमावहन्ति सरिद्वरा ॥२४४॥

हे द्विजोत्तमो । वह सौ महस्र योजनो से पूर्ण हैं । उसके अन्दर एक परम  
 विस्तीर्ण महीमण्डल सस्थित होता है ॥२३२॥ मध्याह्न के सूर्य के प्रकाश  
 का भी अभिमर्दन करने वाला वहा तेज का प्रकाश है । उसका सुवर्ण का  
 विशाल प्राकार होता है जो सूर्य के वचम जैसा है ॥२३३॥ सुवर्ण निर्मित  
 धार उसम द्वार हैं जो कि मुक्ताओ की मालाओ से समलङ्कृत हैं । सोने के  
 समान परम भास्वर वस्तुओ स भनी भाति वेष्टित हैं ॥२३४॥ वह पुर अत्यन्त  
 रम्य आकाश म है जो कि घण्टाआद से निनादित एव अति दिव्य है । वहा

पर मृत्यु ताप-जरा और भ्रम ये कोई भी नहीं पहुँच सकते हैं । ऐसा भ्रय कोई भी पुर या स्थल नहीं है जिसकी उपमा इस पुर को दी जा सके अर्थात् साराश यह है कि यह अत्यन्त अनुपम है । दशो दिशाओ में यह सौ सहस्र योजन तक फैला हुआ है ॥२३६॥ वह पुर गोवृषाङ्क के दिवा तेज से व्याप्त होना हुआ सस्थित रहता है । मन के भाव के द्वारा वहाँ कनकामयी भूमि विव्यस्त की गई है ॥२३७॥ रत्नो की बालुका के द्वारा वह और भी अधिक शोभा में शोभित है । बाल सूर्य के समान शारदीय चन्द्र के प्रकाश वाले आधे श्वेत और आधे रक्त सुवर्ण निर्मित जैसे वन और उपवनो म पद्म हैं जिनका प्रमाण रथ के चक्र के समान है और मरकत भाणिकी प्रभा के तुल्य उनके नाल हैं । परम सौकुमार रूप है और अप्रतिम गन्ध से युक्त हैं ऐसे दिवा पद्म वहा पर हैं ॥२३८॥२३९॥२४०॥ भृगु पत्र के तुल्य जो तपनीय थे वे आधे कृष्ण और आधे रक्त थे और सुकोमल अन्तर वाले थे ॥२४१॥ आतपत्र ( छत्र ) के प्रमाण वाले तथा पङ्कजों से सवृत थे । अब सात जो महा नदिया हैं उनके नामों को समझ लो ॥२४२॥ महा नदियों के नाम ये हैं— वरा-वरेण्या वरदा-वराही वर वाणिनी- वरमा और वरभद्रा ; ये सात महानदी उस उत्तम पुर में परम रम्य हैं ॥२४३॥ ये श्रेष्ठ नदिया मणिदल के समान प्रति स्वच्छ जल के प्रवाह वाली थी वह जल पद्मोत्पल दलों में उन्मिथ था और फेन आदि आवर्तों के स्वरूप से युक्त था ॥२४४॥

न तु ब्रह्मर्षयो देवा नासुरा पितरस्तथा ।

न खल्वन्येऽप्रमेयस्य विदुरीशस्य तत्पुरम् ॥ २४५

तत्र ये ध्यानमव्यग्रा सुयुक्ता विजितेन्द्रिया ।

पश्यन्तीह महात्मान पुरन्तद्गोवृषात्मन ॥२४६

मध्ये पुरवरेन्द्रस्य तस्याप्रतिमतेजस ।

सुमहान्मेवसङ्काशो दिव्यो भद्रश्रिया वृत ॥ २४७

सहस्र पाद प्रासादस्वपनीयमय शुभ ।

अनुपमेयं रत्नैश्च सवत स विभूषित ॥२४८

स्फटिकैश्चन्द्रमङ्काशैर्वदूय सोममप्रभं ।  
 बालसूर्यप्रभैश्चैव सौमर्णैश्चाग्निसप्रभं ॥ २४६  
 राजतैश्चापि शुशुभे इन्द्रनीलमयं शुभं ।  
 दृढं वैजयंश्चैव इत्येव सुमहाहितं ॥ २५०

ईश के उस परम सुन्दर पुर की ब्रह्मर्षि-देव-अमुर-पितर तथा अन्य कोई भी नहीं जानते हैं क्या कि ईश स्वयं अप्रमेय हैं अर्थात् प्रभा के विषय नहीं हैं ॥२४५॥ उस गोवृषात्मा प्रभु के उम पुर की ऐसे ही महान् आत्मा वाले ही पुररूप देखते हैं जो ध्यान में सदा अग्रग्र रहते हैं मुमुक्षु और विजित इन्द्रियो वाले होने हैं ॥२४६॥ उम परम रमणीय श्रेष्ठतम पुर के मध्य में अग्रमित तेज बाने उम ईश्वर का भद्रश्री में वृत्त-अतिदिग्घ्न और सुविशाल मेरु के महेश महेश्वपाद् प्रासाद हैं जो परम शुभ एवं सुवर्ण के समान हैं । यह प्रासाद ( महल ) अनुपम रत्नों के द्वारा सभी ओर में सुविभूषित हैं । २४७॥२४८॥ चन्द्रमा के तुल्य स्फटिक मणि और सोम के सहज प्रभा वाली वैदूर्य मणियों से वह सुशोभित था । बालसूर्य अर्थात् प्रातः कालीन सूर्य की प्रभा वाली तथा अग्नि के गमान प्रभा से युक्त एवं सुवर्ण की ओर राजत ( चादी की ) वस्तुओं से वह विभूषित था और शुभ इन्द्र नील मणियों में सुन्दर शोभा से युक्त हो रहा था । हीरा से अटित परम हृद्य एवं शोभा से सम्पन्न वह पुर था ॥२४९॥२५०॥

जलैश्च विविधाकारैर्दीप्यद्भिरविवासितम् ।  
 चन्द्ररश्मिप्रकाशाभिः पताकाभिरलङ्कितम् ॥ २५१  
 रवमघण्टानिनादैश्च नित्यप्रमुदितोत्सवः ।  
 विन्नराणामधीवासैः सन्ध्याध्वाकारराजितं ॥ २५२  
 परिवारममन्तास्तु हेमपुष्पोदयप्रभं ।  
 यथा हि मेग्शंसेन्द्रो ह्यमशृङ्गविराजत ॥ २५३  
 नामीवरमधीभिस्तु पताकाभिस्तथा पुरम् ।  
 एव प्रामादराजोऽपि भूमिराभिरिराजते ॥ २५४



वसन्नप्रतिमा यत्र श्यम्यवस्य निवेशने ।

लक्ष्मीः श्रीश्च वपुर्माया कीर्तिः शोभा सरस्वती ॥२५५

देव्या वं सहिता ह्येता रुरगन्धमन्विता ।

नित्या ह्यपरिसङ्घाता परम्परगुणाश्रया ।

भूपण सर्वरत्नाना योन्य कान्तिविलासयो ॥२५६

कीर्तिशत महाभागा विभज्यात्मानमात्मना ।

भगवन्त महात्मानं प्रतिमोदन्त्यतन्द्रिता ॥२५७

विविध आकार वाले जलो से अर्थात् जलाशयो मे वह युक्त था जोकि दीप्यमान थे । चन्द्रमा की किरणों के तुल्य प्रकाश वाली पनाषामो मे वह पुर ममर्तुन डोगहा था ॥२५१॥ सुवर्ण के बने हुए घण्टा वही पर थे जिनकी प्रतिमो मे मदा ही प्रमुदिन उत्सवो वाता रहता है । विभजो के वही प्रतिवाम थे जो मन्ध्याकाल के मेघो के समान शोभा बाने और हम पुणोदर की प्रभा से मयुक्त परिचार बाने वही चारा वार रहा करते थे । जिन तरह मेह गिरि-राज हो उमी भीति यह सुवर्ण के गुणो से युक्त विराजमान है ॥२५२-१५३॥ सुवर्ण की पनाषामो मे वह पुर जिन तरह गुणाभिन या उमी भीति यह प्रापाद राज भी भूमिकाओ मे विभूषित था । २५४॥ जही पर अणवान् श्यम्यव के निवेशन ( धारण ) मे वसन्न की प्रतिमा बानी लक्ष्मी-श्री-वपुर्माया-कीर्ति-शोभा-सरस्वती रूप-लावण्य एव गन्ध ते समन्वित ये मय देवी के सहित वही समवस्थित थी । ये नित्य तथा अपरिसङ्घात ( अगमित ) थी जोकि परम्पर मे गुणो की आधार थी । ये समस्त प्रकार के रत्नो की भूरण तथा कान्ति और विलास की शोनिवा थी ॥२५५ २५६॥ ये मगन्तु भगवती आत्मा मे आत्मा की विभजन करन गैरउा करोड थी जोकि अनन्त हाकर अर्थात् अनि समाप्ति होगी हुई महान् मन भगवान् का प्रतिमोदित किया करती ॥२५७॥

सागा मत्स्यगन्धान्या पृथुन परिचारिका ।

रुचिष्यञ्च श्रिया युक्ता मया वपुर्वयोचना ॥२५८

तीनाविलासमयुक्तैर्भावेरतिमनोहरै ।

पलांगता सह मादन्ते गैरानै पावकोदरम् ॥२५९

कुब्जा कामनिकामंश्च वरगात्रा ह्यानना ।  
 पुण्डाश्च विक्टाश्चैव करालाश्चिपिटानना ॥२६०॥  
 लम्बोदरा ह्रस्वभुजा विनेत्रा ह्रस्वपादिका ।  
 मृगेद्रवदनाश्चान्या गजवक्त्रोदरास्तथा ॥२६१॥  
 गजाननास्तथैवान्या सिंह व्याघ्राननास्तथा ।  
 लोहिताक्षा महास्तथ मुभगाश्चारलोचना ॥२६२॥  
 ह्रस्वकुञ्चितकेशाश्च सुन्दर्याश्चारलोचना ।  
 अन्याश्च कामरूपिण्यो नानावेषधरा स्त्रिय ॥२६३॥  
 अन्यन्तरपरिस्वन्धा देवावासगृहोचिता ।  
 रराम भगवास्तत्र दशबाहुमहेश्वर ॥२६४॥

स भी पीछे अथ महेश्रो ही परिवारिकाए थी जो परम सुन्दर रूप वाली थी सम्पन्न और सभी कमल के समान लोचनी वाली हैं ॥२५८॥ लीला के विलासो से मयुक्त अत्यन्त मनोहर भावों के द्वारा ये सब शैल के समान आभा वाले तथा अग्नि के तुल्य तेज से युक्त गणों के साथ आनन्द विहार किया करते हैं ॥२२६॥ उन विलासिनियों के विभिन्न रूप थे—कुब्जा हैं और काम निकामो से श्रेष्ठ गाथो वाली हैं । कोई हय के समान मुख वाली हैं । पुण्ड्रा-विक्टा-कराल और चिपिट मुख वाली हैं ॥२६०॥ उनमें कुछ लम्बे उदर वाली-छोटी भुजाओ से युक्त-विनेत्रा ह्रस्व पादो वाली-मृगेद्र के समान वदन से युक्त तथा अथ गज के समान मुख तथा उदर वाली हैं ॥२६१॥ कुछ गज के जैसे आनन वाली तथा अथ सिंह और व्याघ्र के समान मुख वाली हैं । कुछ ऐसी हैं जिनकी आंखें एकत्र लोहित हैं और कतिपय महान् स्तना वाली हैं तथा परम मुभगा और सुन्दर नेत्रो वाली हैं ॥२६२॥ कुछ विलासिनी ऐसी थी जिनके केश छोटे और कुञ्चित थे । कतिपय वहाँ पर परम सुन्दरी तथा आह लोचनी वाली थी । अथ ऐसी थी जो अपनी इच्छा से ही मनावर्द्धित रूप धारण कर लिया करती थी । ऐसे वहाँ नाना प्रकार के वेषों को धारण करने वाली स्त्रियाँ थी ॥२६३॥ ये सब अन्दर ही रहने वाली और देव वास गृह के उचित थी । दशबाहुओ वाले भगवान् महेश्वर वहाँ पर इन सबके साथ रमण किया करते थे ॥२६४॥

नन्दिना च गणैः साद्धं विश्वरूपैर्महात्मभि ।  
 तथा रुद्रगणैश्चापि तुल्योदीर्य्यपराक्रमे ॥२६५  
 पावकात्मजसङ्काशो यूपदष्टोत्कटाननं ।  
 बन्धमानो विमानश्च पूज्यमानश्च तत्परैः ॥२६६  
 सर्वतुङ्कुमुमा माला जिघ्रमाणोरसि स्थिताम् ।  
 नीलोत्पलदलश्याम पृथुताभ्रायत्तदणाम् ॥२६७  
 ईषत्कराललम्बोष्ठ तीक्ष्णदष्ट्रा गणाञ्चितम् ।  
 पद्भुदूर्ध्वनेत्र दुःप्रेक्ष्य रुचिरश्चीरवाससम् ॥२६८  
 आह्वेप्वपरिक्लिष्ट देवानामरिनाशनम् ।  
 बाहुना बाहुमावेश्य पार्श्वे सव्येऽन्तरे स्थितम् ॥२६९  
 रराजापदिशन्तस्य वामाग्रकरगोचरम् ।  
 महाभैरवनिर्घोष बलेनाप्रतिमौजसम् ।  
 दशवराधनुश्चाव विचित्र शोभतेऽधिबम् ॥२७०  
 त्रिशूल विद्युताभासममोघ शत्रुनाशनम् ।  
 जाज्वल्यमान वपुः परम तत्त्वित्वा युतम् ॥२७१

वहाँ पर नन्दी तथा अन्य गणों के साथ भगवान् महेश्वर रमण करते हैं जोकि विश्वरूप वाले तथा महान् आत्मा वाले हैं । समान शोभायं और पराक्रम मे समन्वित रुद्रगण भी वहाँ हैं ॥२६५॥ जा पावकात्मज के तुल्य हैं और यूप के समान दष्टा तथा उत्कट मुखों वाले हैं । ये सब महेश्वर की सेवा मे परायण रहा करते हैं । इनके द्वारा भगवान् सर्वदा बन्धमान एव विमान और पूज्यमान रहते हैं ॥२६६॥ समान शत्रुओं के कुमुमों की माला उनके वक्ष स्थल मे धारण है उसकी गन्ध का घ्राण करते हुए हैं । आपका वर्ण नील उत्पन्न के इन के समान श्याम है धीरे नेत्र अत्यन्त ताम्र वर्ण के समान रत्न हैं ॥२६७॥ थोड़े कराल एव लम्बे ओष्ठ वाले—तीक्ष्ण दष्टा वाले गणों के द्वारा पूजित हैं । छे उर्ध्व नेत्रों वाले—दर्शन करने मे असह्य—परम रुचिर और चीर धारण करने वाले हैं ॥२६८॥ युद्धो मे अत्यन्त परिवर्णित से रत्नित तथा देवों के शत्रुओं का नाश करने वाले हैं । बाहु से बाहु को आविष्ट करके सव्य पार्श्व के अन्तर मे

स्थित हैं ॥२६१॥ वामाद्रु करमे गोबर होने वाले अपदेग करने हुए सुसोभित हो रहे हैं । आपका निर्घोष महान् भैरव हैं और बल के द्वारा अग्रतिम (अनुपम) श्रोत्र वाले हैं । दम्बर्ण धनुष जोकि परम विचित्र है अत्यधिक शोभा दे रहा है । भगवान् महेश्वर का त्रिशूल विद्युत् की आभा के समान एवं अमोघ आयुध जोकि शत्रुओं का एकदम नाश कर देने वाला है । उमकी कान्ति से युव वानु से आज्ज्वल्यमान हैं ॥२७०-२७१॥

असिश्च वैजसा श्रेष्ठ शीतरश्मिः शशी तथा ।

तेजसा वपुषा कान्त्या देवेशस्य महात्मनः ।

शुशुभेऽभ्यधिकं तत्र वेद्यामग्निशिखा इव ॥२७२

स्थित्य पुग्स्ताद् देवस्य शान्तकौम्भमयो महान् ।

शुशुभे रश्मिः श्रीमान्सोदकं सकमण्डलु ॥२७३

अग्निमावेदय चाङ्गेषु पाण्डुराम्बर धारिणी ।

उरश्चक्षुदेन महता मीक्तिकेन विराजिता ।

चतुर्मुखा महाभागा विजया लोकसम्मता ॥२७४

देव्या आद्य प्रतीहारो श्योरिवाप्रनिमा परा ।

विभ्राजती स्थिता चैव कृत्वा देवस्य चाश्वलिम् ॥२७५

तस्या पृथानुगाश्चान्या स्त्रियोऽम्बरोगुणान्विताः ।

ता खल्वभिनवैः कान्तेरपतिष्ठन्ति शङ्करम् ॥२७६

सर्वलक्षणसम्पन्ना वादित्रं रूपवृंहिता ।

उपगायन्ति देवेशं गणां गन्धर्वयोन्वय ॥२७७

अभ्युपगतो महोरस्कः शग्मेघममद्युतिः ।

शोभने नन्दमानश्च गौरनिस्तम्य वैशमनि ॥२७८

भगवान् महेश्वर श्रोत्रस्त्रियों में परम श्रेष्ठ हैं और अग्नि के आयुध को धारण किये हुए हैं तथा शीत विरगुणों वाला चन्द्र भी विराजमान है । तेज और वपु तथा कान्ति से महान् आत्मा वाले देवों के स्वामी महेश्वर वहाँ पर वेदी में अग्नि की शिखा के समान धरमयिष्ठ शोभा से युक्त हो रहे थे ॥२७२॥ भगवान् महेश्वर देव के आगे एक मुवर्ग का निर्माण महान् परम मुन्दर तथा जन

सं भरा हुआ एक कमण्डलु स्थित है जिसकी एक अत्यद्भुत शोभा हो रही थी ॥२७३॥ अपने अङ्गो में अग्नि को धारण किये हुए तथा पाण्डुर वर्ण के वस्त्र धारण करने वाली एक महान् मोतियों के उरश्छद से विराजित-धार भुजाप्रो वाली महान् भाग वाली लोक सम्मता विजया वहाँ पर विद्यमान है ॥२७४॥ यह देवी की सर्व प्रथम प्रतीहारो है जोकि अनुपम दूसरी थी के ही तुल्य है । यह देव के आने अञ्जलि करके अग्नि विभ्राजमान होती हुई सस्थित रहा करती है ॥२७५॥ उसके पृष्ठ भाग में अनुगमन करने वाली अन्य स्त्रियाँ हैं जोकि अम्भ-राशों के गुण से युक्त हैं । वे सब अभिनव एवं अति कान्त वाद्यादि के द्वारा भगवान् शङ्कर का उपस्थान किया करती हैं ॥२७६॥ समस्त शुभ लक्षणों में सम्पन्न तथा अनेक वादित्रों से उपवृ हित गन्धर्वों की योनियाँ एवं गण भगवान् देवेन का उपगायन किया करते हैं ॥२७७॥ भगवान् गोपत्रि अपने वेश में परमानन्द करते हुए शोभित होते हैं । अत्यन्त उन्नत प्रापका कलवर है तथा विशाल वक्ष स्थल है और शरत्काल के मेष के समान आपके शरीर की कान्ति है ॥२७८॥

स्कन्दश्च सपरीवार पुनोज्ज्यामितवीर्यरान् ।  
 रक्ताम्बरधर श्रीमान्वराम्बुजदलेक्षण ॥२७९॥  
 तस्य शाखा विशाखश्च नैगमेयश्च चाष्टवान् ।  
 व्यपेतव्यसनाक्रूरा प्रजाना पालने रता ॥२८०॥  
 तं साढ्वं स महावीर्यं शोभते शिखिवाहन ।  
 ध्यालकीडनकंस्तत्र कीडते विश्रतोमुख ॥२८१॥  
 ये नृपा विप्रुधेन्द्राणा वाञ्छनस्य प्रदायिन ।  
 ये च स्वायतना विप्रा गृह्मथा ब्रह्मवादिन ॥२८२॥  
 गूढस्वाध्याय तपसस्तथा चैवीञ्छुद्धवृत्तय ।  
 एते सभासदस्तस्य देवेशस्य च सम्मता ॥२८३॥  
 मन्वन्तराण्यनेकानि व्यवसन्त पुन पुन ।  
 श्रूयता देवदेवस्य भविष्याश्चर्यमुत्तमम् ॥२८४॥

व्याघ्राञ्च वानुगास्तत्र काञ्चनाभास्तरस्विन ।

स्वच्छन्दचारिण सर्वे स्वय देवेन निर्मिता ॥२८५

मृत्योर्मृत्युसमास्ते तु यमदर्पापहारिण ।

विभ्रूतिमप्यसह्येया को न खल्वभिधास्यते ॥२८६

अत परमिद भूयो भवेनाद्भुतमुत्तमम् ।

भूतानामनुकपार्थं यत्कृत तन्निबोधत ॥२८७

भगवान् महेश्वर के पुत्र स्कन्द हैं जोकि प्रमित वीर्य—पराक्रम से युक्त हैं । यह भी परिवार के सहित वहाँ पर विराजमान हैं । स्कन्द रक्त बर्ण से वस्त्र धारण करने वाले हैं । श्री से सम्पन्न और कमल दल के तुल्य नशो वाले हैं ॥२७६॥ उनके परिकर में शाल—विशाल—नैगमेय—अष्टवान् हैं जोकि व्यसन रहित एव क्रूर हैं तथा प्रजा के पालन करने में सदारत रहने वाले हैं ॥२८०॥ इनके साथ वह महान् वीर्य वाले शिखिवाहन स्कन्द शोभित होते हैं । यह विश्व-तोमुख स्कन्द व्यालों (सर्पों) के खिलौनों से वहाँ क्रीडा किया करते हैं ॥२८१॥ काञ्चन के प्रदान करने वाले विबुधेन्द्रो के जो नृप हैं तथा जो गृहस्थ ब्रह्मवादी स्वायम्भुव विप्र हैं तथा गूढ स्वाध्याय में जो रत रहने वाले—तपश्चर्या करने वाले और उप वृत्ति वाले लोग हैं वे ही सब उन देवों के देव भगवान् के समा-सद हैं । भगवान् ऐसे ही मन्मथों को पसन्द किया करते हैं ॥२८२-२८३॥ अनेक मन्वन्तर बारम्बार व्यतीत हो जाते हैं । सब देवों के देव महेश्वर का उत्तम भविष्याश्चर्य का आप लोग श्रवण करे ॥२८४॥ यहाँ पर व्याघ्र और काञ्चन क समान घामा वाले तपस्वी (वेग वाले) अनुगामी गण सभी स्वच्छन्द चारण करने वाले हैं और इन सबकी रचना स्वय ही देव के द्वारा हुई है ॥२८५॥ वे मृत्यु को मृत्यु के समान हैं और यमराज के भी रूप के हरण करने वाले हैं । असह्य अपरिमित विभ्रूति का देवदेव ने निर्माण किया या उसे कौन कह सकता है ? अर्थात् वह अचर्यानीय है ॥२८६॥ इनके भी घामे भव ने यह एक दूसरी वस्तु बहुत ही अद्भुत एव उत्तम की थी । यह सब भूतों पर अनु-कम्पा के ही लिये जो कुछ भी है किया है । उसे भी आप लोग समझ कर जान लेंगे ॥२८७॥

मन्दरादिप्रकाशानां बलेनाप्रतिमौजसाम् ।  
 हारकुन्देन्दुवर्णानां विद्युद्धननिनादिनाम् ॥२८८  
 चूडामणिधराणां वै मेघसन्निभवाससाम् ।  
 श्रीवत्साङ्कितवज्राणामङ्गुलीशूलपाणिनाम् ॥२८९  
 एव दिशानां देवानां रूपेणोत्तमशालिनाम् ।  
 तस्य प्रासादमुख्यस्य स्तम्भेषूत्तमशोभिषु ॥२९०  
 सयताग्निमयीभिस्तु शृङ्खलाभिः पृथक्पृथक् ।  
 मायासहस्रसिंहानां मुखे तत्र निवासिनाम् ॥२९१  
 स्तम्भेषुपासृतापथ्यं त्र्यम्बकस्य निवेशने ।  
 अथ तत्प्रतिसंपूज्य वायोर्वाक्यं सुविस्मिताः ।  
 ऋषयः प्रत्यभाषन्त नैमिषेयास्तपस्विनः ॥२९२  
 भगवन्सर्वाभूतानां प्राणं सर्वांगं प्रभो ।  
 के ते सिंहमहाभूताः क्व ते जाताः किमात्मकाः ॥२९३  
 सिंहाः केनाधराक्षेण भूतानां प्रभविष्युन्ताः ।  
 वैश्वानरमयं पार्श्वं सरुद्धास्तु पृथक्पृथक् ॥२९४  
 तेषां तद्वचनं श्रुत्वा वायुर्वाक्यं जगाद ह ।  
 यद्वै सहस्रसिंहानामोश्वरेण महात्मना ।  
 व्यपनीय स्वकाद्देहात्क्रोधास्ते सिंहविग्रहाः ॥२९५

मन्दिर आदि के प्रकाश वाले—बल के द्वारा अमित प्रीति से युक्त—हार,  
 पुष्प और चन्द्रमा के तुल्य वर्ण वाले—विद्युत् के घन निनाद से समन्वित—  
 मणि को धारण करने वाले—मेघ के समान बहने वाले—श्री धरम से अकित  
 से युक्त तथा अङ्गुली युक्त शूल हाथ में रखने वाले दिशाया और देवों के  
 से उत्तमता युक्तों के मध्यमें उस देव के मुख्य प्रासाद के उत्तम शोभा वाले  
 हैं ॥२८८-२८९-२९०॥ उन स्तम्भों में सयत अग्निमयी शृङ्खलाओं से  
 ह २ अथवा माया से सहस्र सिंह हैं जो कि वहाँ पर मुख पूर्वक निवास करते  
 २९१॥ भगवान् त्र्यम्बक के निवेशन में वे स्तम्भ में भी अंगमृता पथ हैं ।  
 तदनन्तर वायुदेव के इस वाक्य का भली भाँति समादर सत्पुत्रि करके

मुक्तिमत्त होने हुए ऋषियों ने जोकि नैमिषारण्य में रहा करते थे और तापस्वर्षा करने वाले थे वायुदेव ने कहा—॥२६२॥ हे भगवन् ! आप तो सम्पूर्ण प्राणियों के भी प्राण स्वरूप हैं—सर्वत्र गमन करने वाले हैं तथा प्रभु हैं । यह कृपा कर हमको बतलाइये कि वे सिंह महाभूत कौन हैं और वे कहां समुत्पन्न हुए हैं और उनका क्या स्वरूप है ? ॥२६३॥ वे सिंह किम अपराध से भूतों के प्रभविष्यु प्रधात् समुत्पन्न करने वाले समर्थ स्वामी ने अग्निमय पाशों में पृथक् पृथक् उन्हें संरुद्ध कर रक्खा था ? ॥२६४॥ उन तापस ऋषियों के इस यजन का धरण कर वायुदेव यह वाक्य कहा था । महान् आत्मा वाले ईश्वर ने अपन देह से व्यतीत ( अलग ) करके उन्हें जो रक्खा था वे क्रोध हैं और उनका विग्रह सिंह का है अर्थात् वे सिंह के शरीर को धारण करने वाले हैं ॥२६५॥

भूतानामभय दत्त्वा पुरा बद्धाग्निबन्धने ।

यज्ञभागतिमित्त च ईश्वरस्याज्ञया तदा ॥२६६

तेषां विधानमुक्तेन सिंहेनैकेन लीलया ।

दव्या मन्यु वृत्तं ज्ञात्वा हतो दक्षस्य स क्रतुः ॥२६७

नि सृता च महादव्या महाबाली महेश्वरी ।

आत्मन कर्मसाक्षिण्या भूतं साद्धं तदानुगे ॥२६८

स एष भगवान्प्रोद्यो रद्रावासवृत्तालयः ।

वीरभद्रोऽमैयात्मा देव्या मन्युप्रमाज्जन ॥२६९

तस्य वेदम सुरेन्द्रस्य सर्वगुह्यतमम्य वै ।

पद्मिवेशस्त्वनीपम्यो मया च परिकीर्तित ॥२७०

यत् परं प्रपश्यामि ये तत्र प्रणि वामिन ।

म्ये पुरथरश्रेष्ठे तस्मिन्वेहायभूमिषु ॥२७१

नानारत्नत्रिचिदेषु पताकावहूलेषु च ।

सर्वकाममृद्धेषु वनोपवनशोभिषु ॥२७२

राजतपु महा-तपु शातनीम्भमयषु च ।

गन्ध्याभ्रगन्धिराजपु वंतामप्रतिमेषु च ॥२७३



चक्रुःशुभं पय श्रुत्वा नैमिषेयास्तपस्विन ।

आपन्नसशयाश्चेम वाक्यमूचुः समीरणम् ॥३०६

शब्दादि इष्ट भागों के द्वारा जो भगवान् भव के अनुसरण करने वाले हैं वे सुन्दर व्रत वाले उन प्रसादों में परम श्रेष्ठों में आनन्द विहार किया करते हैं ॥३०४॥ वहाँ पर अविरत रूप से ब्रह्मघोष अर्थात् वेदध्वनि हुआ करती है और निरन्तर विविध प्रकार की परम शुभ कथायें हाती रहा करती हैं । सर्वदा गीत तथा वादियों के वहाँ पर घोष हुआ करते हैं और चारों ओर बहुत से सस्तधन सुनाई देते हैं ॥३०५॥ ये सब सहित रहते हैं तथा अतुल होते हैं और नाना आश्रमों में किया जाता करते हैं । उन प्रसादों के ऊपर के भाग में इसी प्रकार के अनेक आनन्द प्रद प्रमोदोत्सव होते रहा करते हैं ॥३०६॥ यह प्रासाद सहस्र पाद है और सुवर्ण के सहस्र परम शुभ एव सुन्दर है । अनुपम जो श्रेष्ठ तम रत्न हैं उनसे यह सभी ओर से परिभूषित है ॥३०७॥ इस प्रासाद में स्फटिक मणियाँ जटित हैं जोकि चन्द्रमा के तुल्य देदीप्यमान एव मनोरम हैं । वंद्य मणियों के समान प्रभा वाली मणियों से यह सुभूषित है । अग्नि के तुल्य प्रभा से परिपूर्ण सुवर्ण से तथा बालमूर्ध की प्रभा से पूर्ण मणियों के द्वारा यह समलकृत है ॥३०८॥ नैमिषारण्य निवासी तपश्चर्या करने वाले समस्त ऋषिगण इसका श्रवण करके बहुत ही हैरान होगये थे । उनके हृदय में बड़ा भारी सशय समुत्पन्न होगया था । उन्होंने उन वायुदेव से यह वचन कहा था ॥३०९॥

के तु तत्र महात्मानो ये भवस्यानुमारिण ।

अनुग्राह्यतमाः सम्यक् प्रमोदन्ते पुरोत्तमे ।

ऋषीणां वचनं श्रुत्वा वायुर्वाक्यमथाब्रवीत् ॥३१०

श्रुयता देवदेवस्य भक्तिर्यैरनुल्लिप्ता ।

ह्रीमन्तः सूजिता दान्ताः शौर्ययुक्ता ह्यलोलुपा ॥३११

मध्याहाराश्च मात्राश्च ह्यात्मारामा जितेन्द्रिया ।

जितद्वन्द्वा महात्साहाः सौम्या विगनमत्सरा ॥३१२

भावस्या मर्ध्वभूतानामव्यापारा अनाकुला ।

कर्मणा मनसा वाचा विमुद्धेनान्तरात्मना ।

अनन्यमनसो भूत्वा प्रपन्ना ये महेश्वरम् ॥३१३

तैर्लब्ध रुद्रसालोक्य शाश्वत पदमव्ययम् ।

भवस्य रूपसादृश्य नीताश्रय ह्यनुत्तमम् ॥३१४

ऋषियो ने कहा—हे भगवन् ! कृपा करके हमें यह बताइये कि वहाँ पर वे जोन से महात्मा लोग थे जो भगवान् भव के अनुसरण करने वाले थे । जोकि परम अनुपाह्वय थे अर्थात् भव के अनुग्रह के पात्र हुए थे और अति श्रेष्ठ पुर में मानन्द-विनोद किया करते हैं । ऋषियण के इस वचन का श्रवण करके वायु-देव ने यह वाक्य कहा था ॥३१०॥ वायुदेव ने कहा—हे ऋषियण ! प्रथम आप मुझमें सुनिये, देशों के देव की जिन्होंने भक्ति अनुकूलित की थी । वे लज्जायुक्त थे—पूजित-दमनशील-शूरवीरता से समबल और अलोलुप थे ॥३११॥ ये लोग मध्य आहार करने वाले—मात्रात्मक—आत्मा में ही रमण करने वाले और इन्द्रियों को जीतने वाले थे । शीतोष्णादि दुन्दुबो पर विजय प्राप्त करने वाले—महान् उत्साह से पूर्ण—परम सौम्य स्वरूप वाले तथा मार्ग में बिल्कुल रहित रहने वाले थे । ॥३१२॥ समस्त भूतों के भावगणों में स्थित रहने वाले थे । ये व्यापार से शून्य तथा आकुलता से रहित थे । कर्म के द्वारा-मन में और वचन के द्वारा तथा वचन में विशुद्ध अन्तरात्मा के द्वारा अनन्य मन वाले होकर भगवान् महेश्वर की शरणागति में प्राप्त होने वाले थे ॥३१३॥ उन्होंने भगवान् रुद्र का सालोक्य प्राप्त किया है जोकि शाश्वत अनन्य पद है और वे सब सर्वोत्तम भगवान् भव के रूप की सदृशता को भी प्राप्त हुए हैं अर्थात् उन सब का स्वरूप शिव के ही सदृश होगया है ॥३१४॥

शैवानरमुखाः सर्वे विश्वरूपाः कपहिनः ।

नीतकण्ठा मितग्रीवास्तीक्ष्णदृष्टास्त्रिलोचना ॥३१५

मर्द्धचन्द्रकृतोष्णोपा जटामुकुटधारिणः ।

सर्वे दशभुजा वीरा पद्मान्तर मुगन्धिनः ॥३१६

तरणादित्यसङ्क्रामा सर्वे ते पीतवाससः ।

पिनाकपाणय सर्वे श्वेतगोरूपवाहनाः ॥३१७

श्रियान्विताः कुण्डलिनो मुक्ताहारविभूषिताः ।

तेजसोऽभ्यधिका देवैः सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनः ॥३१८

विभज्य बहुधात्मानं जरामृत्युविवर्जिता ।

कीटन्ते विविधैर्भविर्भोगान् प्राप्य सुदुर्लभान् ॥३१९

सब के सब वे वैश्वानर के मुख दाते हैं और विद्वरूप-बपही-नील-  
 वरुण वाले-श्वेत ग्रीवा से युक्त-तीक्ष्ण दाढ़ी वाले तथा तीन नेत्रों वाले हैं  
 ॥३१५॥ सभीके मस्तक पर चाधे चन्द्रमा से उष्णीष बना हुआ है और जटा तथा  
 मस्तक पर मुकुट शिव के ही समान धारण करने वाले हैं : सभी के दस भुजायें  
 हैं—सब महान् वीर हैं और पचान्त की सुगन्ध वाले हैं ॥३१६॥ वे गर भग-  
 वान् भव के सालोक्य को प्राप्त होने वाले भक्त तमस्य सूर्य के समान तेज से  
 युक्त हैं और सबने पीतवर्ण के वस्त्र धारण कर रखे हैं । उन सब के हाथों में  
 भगवान् भव की ही भक्ति पिनाक धनुष लगा हुआ है । सबके पाहन भी गोवृष  
 होने हैं ॥३१७॥ सब श्री में समन्वित होने हैं और सभी ने पानों में कुण्डल  
 धारण कर रखे हैं । उन सब भक्तों ने मोतियों के हार धारण कर अपने प्राण  
 को विभूषित बना रक्खा है । वे सब देवों से भी अधिक तेज वाले हैं । समस्त  
 भक्त जो वहाँ निवास करते हैं सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी होते हैं । अर्थात् सभी कुछ  
 भूत-भविष्य वर्तमान के जानने वाले और सब कुछ को प्रशंसा की भाँति देखने  
 वाले हैं ॥३१८॥ वे सब अपनी आत्मा को अनेक प्रकार से विभक्त करके गन्धित  
 रखा करते हैं और वृद्धता तथा मृत्यु से रहित होते हैं । वे विविध प्रकार के  
 भावों के द्वारा प्रीति किया करते हैं और परम सुदुर्लभ योगों को प्राप्त करते  
 हैं—दास्वादन करते हैं ॥३१९॥

स्वच्छन्दगतयः मिद्धा मिद्धैर्भ्रान्त्यविवोषिताः ।

एवाश्चानां रद्राणां कोट्योऽज्येय महात्मनाम् ॥३२०

एभिः सप्त महात्मा हि देवदेवो महेश्वरः ।

भक्तानुत्थी भगवान्मोदते पार्थिवीप्रियः ॥३२१

नाहन्तेपान्नु रद्राणां भवस्य च महात्मनः ।

नानारवमनुष्यामि गायमेतद्वर्षामि य ॥३२२

मातरिश्वाऽन्नवीत्पुण्यामित्येतामीश्वरोऽप्युत ।  
 अथ ते ऋषय मर्व दिवाकरसमप्रभा ।  
 श्रुत्वेमा परमा पुण्या कथा त्रैयम्बकी तत ॥३२३॥  
 भृशञ्चानुग्रहं प्राप्य हर्षं त्रैवाप्यनुत्तमम् ।  
 सम्भावयित्वा चाप्येता वायुमूर्चुर्महाबलम् ॥३२४॥  
 समीरणं महाभाग ह्यस्माकं च त्वया विभो ।  
 ईश्वरस्योत्तम पुण्यमष्टमन्त्वीपसगिकम् ॥३२५॥  
 तस्य स्थानं प्रमाणञ्च यथावत्परिकीर्तितम् ।  
 यो गन्धेन समृद्धं वै परमं परमात्मन ॥३२६॥  
 महादेवस्य माहात्म्यं दुर्विज्ञेयं सुरैरपि ।  
 स्वेन माहात्म्ययोगेन सहस्रस्यामितीजस ॥३२७॥

स्वच्छन्द गति वाले मिद्ध और अन्य मिद्धों के द्वारा विशेष हृष ने  
 बोधित किये हुए हैं । अनेक महात्माओं एकादश छंदों की कीर्तियाँ हैं ॥३२०॥  
 इनके साथ महात्मा देवों के देव महेश्वर जो भक्तों पर दया करने वाले पार्वती  
 के प्यारे भगवान् प्रसन्न होते हैं । ६११॥ मैं तो उन छंदों का महात्मा मन का  
 नातात्व देखना हूँ यह मैं आपसे विस्तृत सत्य कहता हूँ ॥३२२॥ मातरिश्वा  
 अर्थात् वायुदेव ने दश पुण्य कथा को कहा था और ईश्वर ने कहा था । इसके  
 अनंतर दिवाकर के समान प्रभा वाले वे ऋषिगण सब इस परम पुण्य कथा  
 को जो कि त्रैयाम्बिकी है, सुनकर और बहुत ही अनुग्रह प्राप्त करके तथा  
 अनुभवं हर्ष प्राप्त करके और इसका बहुत आदर करके महान् बलवान् वायु  
 से बोले ॥३२३-३२४॥ ऋषियों ने कहा—हे समीरण ! हे महाभाग ! हे  
 विभो ! आपने हमको ईश्वर का उत्तम अष्टम शीपसगिक उसके स्थान को और  
 प्रमाण को यथावत् बतलाया है । जो परमात्मा के गन्ध से परम समृद्ध  
 है ॥३२५-३२६॥ महादेव का माहात्म्य देवों के द्वारा भी दुर्विज्ञेय है अर्थात्  
 अज्ञित अज्ञान वाले महस्र का अपने माहात्म्य के योग से सुरों के द्वारा भी  
 कठिना से जानने के योग्य है ॥३२७॥

यस्य भक्तोऽप्यसमोहा ह्यनुकम्पायमेव च ।  
 आहालश्या स्वय जुष्टा या साप्रतिमशालिनी ॥३२८॥  
 ज्योत्स्नया व्याप्य ख चन्द्रं विन्यस्ता विश्वरूपधृक् ।  
 विभूतिर्भाजतेऽन्यथं देवदेवस्य वेदमनि ॥३२९॥  
 महादेवस्य तुत्पाना रद्रागान्नु महात्मनाम् ।  
 तत्सर्वं निखिलेनेद वक्त्रादमृतनिम्बवम् ॥३३०॥  
 अपोत्वा खलु सर्वस्य भवत्यास्माभिस्तु मुब्रता ।  
 नाम्ति विश्वदविज्ञो यमस्य च्चैवानुगामिन ।  
 प्रदत्त देववर प्राण यथावद्वचनुमहंसि ॥३३१॥  
 स खलुवाच भगवान्किं भूयो वत्तंयाम्यहम् ।  
 विं मया चैव दत्तव्य तद्वदिष्यामि मुब्रता ॥३३२॥  
 आदित्या पारिपाश्वर्या सिंहा वै क्रोधविक्रमा ।  
 वैश्वानरा भूतगणा ज्याघ्राश्चैवानुगामिन ॥३३३॥  
 आभूतसप्तवे घोरे सर्वप्राण भृता क्षये ।  
 विमवस्या भवन्त्येते तनो ब्रूहि यथायं वत् ॥३३४॥

अनुकम्पा के लिए ही विमव मतो मे समोह का प्रभाव होगा है ।

ओ आहालश्या के द्वारा स्वयं सेविन है वह अप्रतिमशालिनी होती है ॥३२८॥

ज्योत्स्ना मे आकाश को व्याप्त करके चन्द्र मे विन्यस्त विश्व के रूप को धारण

करने वाली विभूति देवो व देव के घर मे बहुत ही अधिप आक्रमण

है ॥३२९॥ महात्मा रद्रों के तुल्य महादेव का वह सब निमित्त के द्वारा दम्भ

से अमृत का नियंत्रण है ॥३३०॥ हम भक्ति मे गह का पान न करके गुन्दर

घन घाते है । अनुगमन करने वाले का अन्य कुछ भी न जानने के योग्य नहीं

है । हे देववर । हे प्राण । इन प्रदत्त को यथावत् ध्यान बीचने के योग्य है ॥३३१॥

श्री मूनजी ने कहा—वह भगवान् जाने कि कब घाते फिर मैं क्या व्यवहार

करूँ ? घोर मुझे क्या कहना चाहिए । हे मुद्रन जानो यह कहूँगा ॥३३२॥

श्रुतिया ने कहा—आदित्य-पारिपाश्वर्य-सिंह के क्रोध विक्रम है वैश्वानर-

भूतगण घोर अनुगामी व्याघ्र घोर आभूत सप्तव मे समस्त प्राणधारियों के

क्षय हो जाने पर ये मृष्ट किम अवस्था वाले होते हैं इसे प्राप यद्यर्थवत् हम्को बोधे ॥३३३-३३४॥

एते ये वै स्वया प्रोक्ता सिद्ध्यव्याघ्रगणं सह ।  
 ये चान्ये सिद्धिमप्राप्ता मातरिश्वा जगाद ह ॥३३५  
 इदञ्च परम तत्त्व सभाष्यास्यामि शृण्वताम् ।  
 विज्ञातेश्वरसद्भावमव्यक्त प्रभव तथा ॥३३६  
 तत्र पूर्वागतास्तेषु कुमारा ब्रह्मण सुता ।  
 सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातन ॥३३७  
 वोढुश्च नपिलरतेषामामुनिश्च महायथा ।  
 मुनि पञ्चसिखश्चैन ये चान्येऽप्येवमादय ॥३३८  
 तत काले व्यतिक्रान्ते कल्पाना पर्यये गते ।  
 महाभूतविनाशान्ते प्रलये प्रत्युपस्थिते ॥३३९  
 अनेकरद्रकोट्यस्तु या प्रसन्ना महेश्वरी ।  
 शब्दादीन्निपयान्भोगान्स्तयस्याष्टविधश्रयान् (?) ॥३४०  
 प्रविश्य सर्वाभूतानि ज्ञानयुक्तेन तेजसा ।  
 बोहायपदमव्यग्र भूतानामनुकम्पया ॥३४१  
 तत्र यान्ति महात्मान परमाणु महेश्वरम् ।  
 तरन्ति मुमहावर्त्ता जम्ममृत्यूदवा नदीम् ॥३४२  
 तत पश्यन्ति सर्वाण पर ब्रह्माणमेव च ।  
 देव्या ने सहिता सप्त या देव्यः परिकीर्त्तिता ॥३४३  
 यत्तत्महत्त्वं सिद्धानामादित्याना तथैव च ।  
 शैखानरभूतभयव्याघ्राश्च वानुगामिन ॥३४४

ये सब प्रापन निह व्याघ्र गणा के साथ बताय हैं और जो अन्य सिद्धि को सम्प्राप्त होने वाले हैं वायुदेव ने जिनको कहा था । इस परम तत्त्व को कहेंगे, प्राप भुक्तिसे । विज्ञान ईश्वर सद्भाव और अव्यक्त प्रभाव को भी कहेंगे ॥३३५-३३६॥ वहा पर उनमें ब्रह्मा के पुत्र कुमार पूर्वागत हैं जो सनक-सनन्द और तृतीय सनातन हैं ॥३३७॥ उनमें वोढु-नपिल और महान् पद्म

वाला आसुरि और पन्थशिख मुनि और जो अन्य इसी प्रकार के हैं ॥३३८॥  
 इसके पश्चात् काल के व्यतिक्रान्त होने पर तथा कल्पो के पर्यन्त के गत होने  
 पर महाभूतो के विनाश हो जाने पर तथा प्रलय क प्रत्युपस्थित होने पर अनेक  
 मन्त्रों की कीटियाँ और प्रमन्न महेश्वरी शब्दादि विषयो को तथा भोगों को  
 सत्य के अष्टविधन्वय से ज्ञान से युक्त तज के द्वारा समस्त भूतो में प्रवेश करके  
 प्राणियों पर अनुकम्पा करने से अव्यय वैहायस पद को प्राप्त होते  
 हैं ॥३३९-३४०॥ वहाँ पर महान् आत्मा ब्रह्म परमाणु महेश्वर में चले जाते  
 हैं और महान् आवर्तों वाली तथा जन्म और मौत के जल वाली नदी को पार  
 किया करते हैं ॥३४१॥ इसके अनन्तर वहाँ महादेव को तथा परब्रह्म का  
 दर्शन किया करते हैं । देवी के साथ सात को देखते हैं जो देवियाँ कीर्तित  
 की गई हैं । जो वह विद्वो तथा आदित्यो का सत्स हैं तथा अनुगमन करने  
 वाले वैश्वानर-भूत भव्य व्याघ्र हैं उनको भी देखते हैं ॥३४२-३४३-३४४॥

### प्रकरण ६४—प्रलयादि पुनः सृष्टि वर्णन

प्रत्याहार प्रवक्ष्यासि परस्यान्ते स्वयम्भुव ।  
 ब्रह्मण स्थितिकाले तु क्षीणे तस्मिस्तदा प्रभौ ॥१॥  
 यथेदं क्रुतेऽध्यात्म मुसूक्ष्म विश्वमीश्वरः ।  
 अव्याक्तान्प्रसते व्यक्त प्रत्याहारे च कृत्स्नश ॥२॥  
 पर तदनुकल्पानामपूर्णं कल्पसङ्क्षये ।  
 उपस्थिते महाघोरे ह्यप्रत्यक्षे तु वस्यचित् ॥३॥  
 अन्ते द्रुमस्य सम्प्राप्ते पश्चिमस्य मनोस्तदा ।  
 अन्ते कलियुगे तस्मिन्क्षीणे सहार उच्यते ॥४॥  
 सम्प्रक्षाले तदा वृत्ते प्रत्याहारे ह्युपस्थिते ।  
 प्रत्याहारे तदा तस्मिन् भूततन्मात्रसक्षये ॥५॥

महदादेविकारस्य विशेषान्तस्य सक्षये ।  
 स्वभावकारिते तस्मिन्प्रवृत्ते प्रतिसञ्चरे ॥६  
 आपो यस्मिन्ति वै पूर्व भूमेर्मन्धात्मक गुणम् ।  
 आत्तगन्धा ततो भूमि. प्रलयत्वाय कल्पते ।  
 प्रविष्टे गन्धतन्मात्रे तोयावस्था घटा भवेत् ॥७  
 आपस्तदा प्रनष्टा वै वेगवत्यो महास्वना ।  
 सर्वमापूरयित्वेद तिष्ठन्ति विचरन्ति च ॥८

श्री मूनजी ने कहा—प्रब मैं पर स्वयम्भू के अन्त में जो प्रत्याहार हो ॥ है उसको बतलाऊंगा । उस स्थिति काल के क्षीण हो जाने पर जो उस समय में प्रभु ब्रह्मा का हुआ करता है ॥१॥ जिस प्रकार से ईश्वर इस अध्यात्म—सुसूक्ष्म विश्व को रचा करता है वही प्रभु प्रत्याहार के समय में यह व्यक्त पूर्ण रूप में अवस्था को ग्रहण लिया करता है ॥२॥ किन्तु उसके अनु-कलशों का अपूर्ण सक्षय होने पर किसी के अप्रत्यक्ष महाभोर के उपस्थित होने पर अन्त में उस समय मनु के पश्चिम द्रुम के सम्प्राप्त होने पर अन्त में उस कतिपय के क्षीण हो जाने से समय में सहार कहा गया है ॥३-४॥ उस समय में सम्प्रधान के होने पर प्रत्याहार के उपस्थित हो जाने पर उस समय में उस भूतन्मात्राओं के समय जाने प्रत्याहार में महद् आदि विकार के विशेषान्त के सक्षय होने पर और स्वभाव कारित उस प्रतिसञ्चार के प्रवृत्त होने पर सर्व प्रथम जल भूमि के गन्ध स्वरूप वाके गुण को प्रयत्ना है । फिर वह प्राप्त गन्धशाली भूमि प्रलय होने के लिए कल्पित होनी है । गन्ध तन्मात्रा के प्रविष्ट हो जाने पर यह भूमि जन की अवस्था में हो जाया करती है । ॥५-६-७॥ उस समय में प्रनष्ट जल वेग वाला और महान् शब्द वाला इस सबको आपूरित कर स्थिर रहता है और विचरण किया करता है ॥८॥

अपामस्ति गुणोयन्तु ज्योतिषे लीयते रम ।  
 नश्यन्त्यापस्तदान्ते च रसतन्मात्रमङ्क्षयात् ॥९  
 तेजसा सहतरमा ज्योतिष्ण प्राप्नुवन्त्युन ।  
 अन्ते च मन्तिले तेज सब्वतोमुगमोक्ष्यन्ते ॥१०



अथाग्निः सर्वतो व्याप्त आदत्ते तज्जलन्तदा ।  
 सर्वमापूर्य्यंतेऽर्चिभिस्तदा जगद्विद शनै ॥११  
 अर्चिभिः सन्तते तस्मिंस्तिर्यंगुर्ध्वमधस्तत ।  
 ज्योतिषोऽपि गुण रूप वायुरन्ति प्रकाशकम् ।  
 प्रलीयते तदा तस्मिन्दीपाचिरिव मारुते ॥१२  
 प्रनष्टे रूपतन्मात्रे हृतस्पो विभावसु ।  
 उपशाम्यति तेजो हि वायुना धूयते महत् ॥१३  
 निरालोके तदा लोके वायुभूते च तेजसि ।  
 ततस्तु मूलमासाद्य वायु सम्भवमात्मन ॥१४  
 ऊर्ध्वं चाधश्च तिर्यक्च दोधवीति दिशो दश ।  
 वायोरपि गुण स्पर्शमाकाश प्रसते च तत् ॥१५  
 प्रशाम्यति तदा वायु खन्तु तिष्ठत्यनावृतम् ।  
 अरुपमरसस्पर्शमगन्ध न च मूर्तिमत् ॥१६

जलो के अन्दर जो गुण होता है वह रस तेज में लीन होजाया करता है । सब धन्त में रस सम्प्राप्ता के सक्षय होने से जल नष्ट हो जाता करते हैं ॥१६॥ तेज के द्वारा सहरण वाले जल तेज के स्वरूप को ही प्राप्त कर लिया करते हैं । सलिल के घसन हो जाने पर सभी ओर तेज ही दिखलाई दिया करता है ॥१०॥ इसके पश्चात् सभी ओर व्याप्त तेज स्वरूप अग्नि उस जल को उस समय ग्रहण कर लेता है । धीरे धीरे यह समस्त जगत् सब अचियों से पूरित हो जाता है ॥११॥ तब ऊपर-नीचे और इधर-उधर अर्चियाँ फैल जाने पर ज्योति का जो प्रकाश रूपी गुण है उसे वायु खा जाता है और वह प्रलीन हो जाता है जैसे वायु ऊँझों में दिये की लौ नष्ट हो जाता है ॥१२॥ रूप तन्मात्रा के प्रनष्ट हो जाने के बाद विभावस्तु नष्ट हो जाता है । तेज वायु के द्वारा उपशान्त होता है तथा वायु खूब बढ़ा करती है ॥१३॥ तेज के वायु स्वरूप हो जाने पर यह समस्त लोक प्रकाशहीन निरालोक हो जाता करता है । इसके पश्चात् यह वायु भी अपने उत्पत्ति स्थान धूम को प्राप्त होकर ऊपर नीचे और निरुद्धा दश दिशाओं

को कम्पित किया करता है । उस वायु का जो स्पर्श गुण है उसे आकाश  
शक्त किया करता है ॥१४-१५॥ तब यह प्रदामित हो जाता है और अनादृत  
आकाश में रहा करता है । रूप-रस स्पर्श और गन्ध तथा मूर्ति से रहित  
होता है ॥१६॥

सर्वमापूरयन्नादौ सुमहत्तत्प्रकाशते ।

परिमण्डनस्तत्सुपिरमाकाश शब्दलक्षणम् ॥१७

शब्दमात्र तदाकाश सर्वमावृष्य तिष्ठति ।

तन्तु शब्दगुणान्तस्य भूतादि असते पुनः ॥१८

भूतेन्द्रियेषु युगपद् भूतादी तस्थितेषु वै ।

अभिमत्नात्मको ह्येष भूतादिन्नामस रगृत ॥१९

भूतादि असते चापि महान्वै बुद्धिलक्षण ।

महानात्मा तु विज्ञेय सकल्पो व्यवसायक ॥२०

बुद्धिमन्श्च लिङ्गश्च महानक्षर एव च ।

पर्यायवाचकं शब्दस्तमाहस्तस्वचिन्तका ॥२१

सम्प्रलीनेषु भूतेषु गुणसाम्ये तमोमये ।

स्वात्मन्यत्र स्थितं च कारणं लाकारणं ॥२२

विनिवृत्तं तदा सर्गं प्रकृत्यावस्थितेन वै ।

तदाद्यन्तपरोक्षत्वाददृष्टत्वाच्च कस्म्यचिद् ॥२३

अनाख्यानादबोधत्वादज्ञानाज्ज्ञानिनामाप ।

आगतागतिकत्वाच्च ग्रहणं तत्र विद्यते ॥२४

भावब्रह्मानुमानाच्च चिन्तयित्वेदमुच्यते ।

स्थिते तु कारणे तस्मिन्नित्ये सदसदात्मिके ॥२५

अनिर्देश्या प्रभृतिर्वै स्वात्मिका कारणे न तु ।

एव सप्तादयोऽभ्यस्तात्प्रमात्प्रवृत्तयस्तु वै ॥२६

सबको नादों के द्वारा आपूर्णित कर वह सुमहत् प्रकाशित होता है ।

परिमण्डन सुपिर आकाश का शब्द गुण ही लक्षण अर्थात् स्वरूप होगा है ॥१७॥

उस समय शब्द मात्र वह आकाश सबको आपूर्णित करके स्थित रहा करता है ।

उसके उम शब्द गुण को भूतादि ग्रम लेते हैं ॥१८॥ भूतेन्द्रियो के एक साथ भूतादि में सस्थित होने पर अभिमानात्मक यह भूतादि तानम कहा गया है ॥१९॥ और बुद्धि लक्षण वाला महान् भूतादि को भी ग्रम लेता है । महान् स्वरूप वाला व्यावसायिक सद्बुद्धि जानना चाहिए ॥२०॥ तत्त्व के चिन्तक लोग बुद्धि-मन-निष्क-महान् और अक्षर इन पर्याय वाचक शब्दों में उसको कहते हैं ॥२१॥ तमोमय गुणों के साम्य में भूतों के सम्प्रलीन होने पर और लोकों के कारण को अपनी आत्मा में ही स्थित होने पर उम ममय म सर्ग के विषय रूप में निवृत्त हो जाने पर प्रकृति से अवस्थित होने में किसी के आद्यन्त परोक्ष होने के कारण में-और अदृष्ट होने में-अनाग्यात होने में-अबोध होने से तथा जानियों को भी अज्ञान से एक अनागतिक होने में वह ग्रहण नहीं होता है ॥२२ २३ २४॥ और भाव ग्राह्य अनुमान से यह सोचकर कहा जाता है । उम नित्य सद् और अमन् स्वरूप वाले कारण के स्थित होने पर कारण में निश्चय ही स्वात्मिक प्रवृत्ति अनिर्दृश्य होती है । इस प्रकार से अग्न्यस्त क्रम से सप्तादि प्रकृतियाँ होती हैं ॥२५ २६॥

प्रत्याहारे तदा सर्गे प्रविशयन्ति परस्परम् ।  
येनेदमावृत सर्वं मण्डलन्तु प्रलीयते ॥२७  
सप्तद्वीपममुद्रान्त सप्तलोक सपर्वतम् ।  
उदकावरणं यच्च ज्योतिषा लीयते तु तत् ॥२८  
यत्तंस चावरणमाकाशं ग्रसते तु तत् ।  
यद्वायव्यं चावरणमाकाशं ग्रसते तु तत् ॥२९  
आकाशावरणं यच्च भूतादिर्ग्रसते तु तत् ।  
भूतादिं ग्रसते चापि महान्वं बुद्धि लक्षणं ॥३०  
महान्तं ग्रसतेऽव्यक्तं गुणसाम्यं तत परम् ।  
एतौ सहारविस्तारौ ब्रह्माव्यक्तौ तत पुनः ॥३१  
मृजते ग्रसते चैव विकारान्सर्गसमये ।  
सहारकार्यकारणा ससिद्धा ज्ञानिनस्तु ये ॥३२

यस्मात्प्रतिशरीर हि मुग्धु योपनञ्जिता ।  
 तस्मात्पुरपनानात्प्र विज्ञय तु विज्ञानता ॥३८  
 यदा प्रवृत्तते चैवा भेदाना चैव समयमा ।  
 स्वभावधारिताः सर्वे कालेन महता तदा ॥३९  
 निवृत्तंते तदा तस्य स्थितिराग स्वयम्भुवः ।  
 सहसा योज्यके सर्वे ब्रह्मलोक निवासिभि ॥४०  
 विनिवृत्ते तदा रागे स्थितावात्मनिवासिनाम् ।  
 तत्फलवासिना तेषां तदा तद्दोषदर्शिनाम् ॥४१  
 उत्पद्यन्तेऽथ वीराम्यमात्मवाद प्रणाशनम् ।  
 भोज्यभोजनवृत्तवनात्वे तेषां तद्भ्रूवदर्शिनाम् ॥४२  
 पृथग्ज्ञानेन क्षेपज्ञास्ततस्ते ब्रह्मलोकिका ।  
 प्रवृत्ती वरणा नीताः सर्वे नानाप्रदर्शिनः ॥४३  
 स्वात्मन्येवावतिष्ठन्ते प्रशान्ता दर्शनात्मका ।  
 शुद्धा निरञ्जना सर्वे चेतनाचेतनास्तथा ॥४४  
 सर्वेव परिनिर्वाणा स्मृता नागामिनस्तु ते ।  
 निर्गुणत्वानिरात्मान प्रवृत्त्यन्ते व्यतिक्रमात् ॥४५

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ इन दोनों का विषयाभिषयत्व कहा गया है । ब्रह्म  
 विषय तो जानना चाहिए और क्षेत्र अविषय कहा जाना है ॥३६॥ क्षेत्रज्ञ से  
 अविष्टित क्षेत्र क्षेत्रज्ञ के लिए ही होता है । शरीरो क बहुत अधिक होने के  
 कारण से यह शरीरी भी बहुत प्रकार का कहा जाता है ॥३७॥ और अभ्यूह  
 वाङ्मय से ही ज्योतिर्वत् व्यवस्थित होता है । इससे प्रत्येक शरीर सुख और दुःख  
 को उपलब्ध करने वाला होता है । इस कारण से विज्ञान रहने वाले को  
 पुण्यो का माना होना जानना चाहिए ॥३८॥ जिस समय म इन भेदों के समय  
 प्रवृत्त होते हैं उस समय म महान् काल स सब स्वभावकारी होने हैं ॥३९॥  
 तब जम स्वयम्भू का स्थिति राग निवृत्त हो जाता है और समस्त ब्रह्मलोक के  
 निवासी योज्यको के साथ सहज ही निवृत्ति होती है ॥४०॥ उस काल में वाप  
 करने वाले आत्म निवासी और उमक दोषों को देखने वाले उनका उम

समय में स्थिति में राग के विनिवृत्त हो जाने पर आत्मवाद का प्रकाश करने वाला भोक्ता और भोग्य के अनेक प्रकार होने में तद्रूप को देखने वाले उनका वैराग्य उत्पन्न हो जाता है ॥४१-४२॥ पृथक् ज्ञान से इसके पदवात् नाना प्रदर्शां वे समस्त ब्रह्म लौकिक प्रकृति में करण नीत हुए ॥४३॥ परम प्रदान्म शुद्ध दान्मात्मक-निरञ्जन तथा चेतन और अचेतन स्वरूप वाले अथवा आत्मा में ही अवस्थित होते हैं ॥४४॥ यहाँ पर ही परिनिर्वाण निर्गुण होने से निरात्मा और प्रकृति के अन्त में व्यक्ति क्रम से वे आगामी नहीं बहे गये हैं ॥४५॥

इत्येष प्राकृत प्रोक्त प्रतिसर्ग स्वयम्भुव ।  
 भिद्यते सर्वभूताना करणानि प्रसयमे ॥४६  
 इत्येष सयमञ्चैव तत्त्वाना करणै सह ।  
 तत्त्वप्रसयमो ह्येष स्मृता ह्यवत्तं को द्विजा ॥४७  
 धर्माधर्मो तपो ज्ञान शुभे सत्यानृते तथा ।  
 ऊर्ध्वं भावो ह्यधोभावो सुखदु खे प्रियाप्रिये ॥४८  
 सर्वमेतत्प्रयानस्य गुणमात्रात्मक स्मृतम् ।  
 निरिन्द्रियारा च तदा ज्ञानिना यच्छुभानुभम् ॥४९  
 प्रकृत्या चैव तत्तम्व पुण्य पाप प्रतिष्ठित ।  
 योन्ययस्या स्वभावे च देहिना तु निपिष्यते ॥५०  
 जन्तूना पाप्मुष्यन्तु प्रकृतौ यत्प्रतिष्ठितम् ।  
 अव्यक्तम्यानि तान्येव पुष्यपापानि जन्तव ।  
 ये जयन्ति पुनर्देहे देहान्यत्वे तथैव च ॥५१  
 धर्माधर्मो तु जन्तूना गुणमात्रात्मवानुभौ ।  
 करणै स्वै प्रचीरेते कायत्येनेह जन्तुभि ॥५२  
 मुचेनना प्रलीयन्ते क्षेत्रजाधिष्ठिता गुणा ।  
 मर्गे च प्रतिमर्गे च नमारे चैव जन्तवः ।  
 सगुण्यन्ते विगुण्यन्ते करणै मन्थरन्ति च ॥५३

राजसी तामसी चैव सात्त्विकी चैव वृत्तयः ।  
 गुणमात्रा प्रवर्तन्ते पुरुषाधिष्ठिताब्धिधा ॥५४  
 ऊर्ध्वं देवात्मक सत्त्वमधोभागात्मक तमः ।  
 तयोः प्रवर्तक मध्ये इहैवावर्तक रजः ॥५५

इस प्रकार से यह स्वयम्भू का प्राकृत प्रतिसर्ग कह दिया गया है । समस्त प्राणियों के प्रसवम में करण विद्यमान होने है ॥५६॥ हे द्विजवृन्द ! यह ही उत्तरो का करणो के साथ स्वयम है । और अवर्तक तत्त्व प्रसवम यही कहा गया है ॥५७॥ श्री सूतजी ने कहा—धर्म, अयमं, तप-ज्ञान तथा शुभ सत्य और अनृत ऊर्ध्वं भाव और अधोभाव—मुख तथा दुःख—प्रिय और अप्रिय यह सब प्रमाण किये हुए का गुणमात्रात्मक कहा गया है । और उस समय में बिना इन्द्रियो वाले ज्ञानियों का जो भी कुछ शुभ तथा अशुभ है वह भी गुण-मात्रात्मक होता है ॥५८-५९॥ वह सब प्रकृति में पुण्य और पाप प्रतिष्ठित होता है । और देहधारियों के स्वभाव में योन्यवस्था निमित्त होती है ॥५०॥ जन्तुओं का पुण्य और पाप जो प्रकृति में प्रतिष्ठित है । जन्तुगण जो उन्ही अव्यक्त में स्थित पुण्य और पापों को जीत लेते हैं जोकि पुनर्देह में तथा देहान्यत्व में होते हैं ॥५१॥ जन्तुओं के धर्म और अधर्म दोनों गुणमात्रात्मक होते हैं । यहाँ पर करणों के द्वारा जन्तुओं से कार्य के होने से बंध जाया करत हैं ॥५२॥ मुच्यन्त दोषज्ञो में स्थित गुण प्रलीन हो जाया करते हैं । मरण में और प्रतिसर्ग में तमार में जन्तुगण सयुक्त और विमुक्त होते हैं और करण के साथ मन्वराण किया करते हैं ॥५३॥ राजसी-तामसी और सात्त्विकी वृत्तियाँ पुरुषों में अधिष्ठित गुणमात्रा तीन प्रकार में प्रवृत्त होती हैं ॥५४॥ ऊर्ध्वं में देवात्मक सत्त्व है और अधोभागात्मक तम है । उन दोनों के मध्य में प्रवर्तक यहाँ पर ही अवर्तक रजोगुण होता है ॥५५॥

इत्येव परिवर्तन्ते त्रय श्रोतागुणात्मका ।

लोकेषु सर्वभूताना तत्र कार्यं विजानता ॥५६

अविद्याप्रत्ययारम्भा आरभन्तो हि मानव ।

एतास्तु गतयस्तिष्ठ शुभा पापात्मिकाः स्मृताः ॥५७

तम साभिभवाज्जन्तुर्याथातथ्य न विन्दति ।  
 अतत्तद्दर्शनानात्सोऽप्य त्रिविध वध्यते तत ॥१८८  
 प्राकृतेन बन्धेन तथा वैकारिकेन च ।  
 दक्षिणाभि स्तृतीयेन बद्धोऽत्यन्त विवर्त्तते ॥१८९  
 इत्येते धौ त्रयः प्रोक्ता बन्धा ह्यज्ञानहेतुका ।  
 अनित्ये नित्यसज्ञा च दु खे च सुखदर्शनम् ॥१९०  
 अस्वे स्वमिति च ज्ञानमशुचौ शुचिनिश्चयः ।  
 येषामेते मनोदोषा ज्ञानदोषा विपर्ययात् ॥१९१  
 रागद्वेषनिवृत्तिश्च तज्ज्ञान समुदात्ततम् ।  
 अज्ञान तमसो मूल कर्मद्वयफल रज ।  
 कर्मजस्तु पुनर्देहो महादु ख प्रवर्त्तते ॥१९२  
 श्रोत्रजा नेत्रजा चैव त्वग्निह्लाघ्राणतस्तथा ।  
 पुनर्भवकरी दु ख्वा कर्मणा जायते तु सा ॥१९३

इस प्रकार से ये तीन स्योन गुणात्मक लोकों में समस्त प्राणियों के परिवर्त्तित होते हैं । इसको विशेष रूप से जानने वाले को नहीं करना चाहिए ॥१८८॥ मानवों के द्वारा अविद्या प्रत्यय आरम्भ आरम्भ सिये जाया करते हैं । ये तीन गतिर्वा शुभ और पापाभिका कही गई है ॥१८७॥ तमोगुण से अभिभव होने से जन्तु याथातथ्य को प्राप्त नहीं होना है । इसके पश्चात् वह जन्तु दर्शन के न होने में तीन प्रकार का बद्ध होना है ॥१८८॥ प्राकृत बन्ध से तथा वैकारिक बन्ध से और तीसरे दक्षिणाभि से बद्ध हुआ अत्यन्त विवर्त्तित होना है ॥१८९॥ ये तीनों बन्ध अज्ञान के हेतु वाले कहे गये हैं । अनित्य में नित्य होने की सज्ञा और दु ख में सुख का देखना यह मनोदोष है ॥१९०॥ जो अपना नहीं है उस अस्व में अपना है ऐसा ज्ञान रखना तथा अशुचि में शुचि अर्थात् पवित्र होने का निश्चय कर लेना जिनके ये मनोदोष और विपर्यय में ज्ञान दाप होने हैं ॥१९१॥ राग तथा द्वेष को निवृत्ति वह ज्ञान कहा गया है । अज्ञान तम का मूल होता है । कर्म द्वय का फल रज होना है । फिर कर्म से उत्पन्न होने वाला देह होना है और महा दु ख प्रवृत्त होना है ॥१९२॥ श्राव ने जन्म लेने वाली—नेत्रों से

उत्पन्न होने वाली तथा त्वचा, जिह्वा और घ्राण अर्थात् नासिका से पुनर्जन्म करने वाली दुःख स्वरूपा वह कर्मों की उत्पन्न होनी है ॥६३॥

सतृणोऽभिहितो बाल स्ववृत्तः कर्मण फलं ।

तैलपालीकवज्जीवस्तथैव परि वर्तते ॥६४

तस्मात्स्थूलमनर्थानामज्ञानमुपदिश्यते ।

त शक्तमवधार्यैकं ज्ञाने यत्न समाचरेत् ॥६५

ज्ञानाद्विजयते सर्वं त्यागाद्बुद्धिर्विरज्यते ।

वैराग्याच्छुद्धयते चापि शुद्धः सत्त्वेन मुच्यते ॥६६

घत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि राग भूतापहारिणम् ।

घमिषङ्गाय यो यस्माद्विषयोऽप्यवशात्मन ॥६७

घनिष्टमभिषङ्गं हि प्रीतितापविपादनम् ।

दुःखलाभे न तापञ्च सुखानुस्मरणं तथा ॥६८

इत्येष दौषयो राग सम्भूत्या कारणं स्मृतम् ।

ब्रह्मादी स्यावरान्ते वै ससारे ह्याधिभौतिके ।

अज्ञानपूर्वकं तस्मादज्ञानन्तु विवर्जयेत् ॥६९

यस्य चापं न प्रमाणं शिष्टाचारं तथैव च ।

वर्णाश्रमविरोधी यः शिष्टशास्त्रविरोधकः ॥७०

एष मार्गो हि निरधितिर्यग्योनी च कारणम् ।

तिर्यग्योनिगतश्चैव कारणं स निरुच्यते ॥७१

विविधा यातना स्थाने तिर्यग्योनी च पङ्क्तिषु ।

कारणे विषये चैव प्रतिघातस्तु सर्वशः ॥७२

घनैश्चर्य्यन्तु तत्त्ववं प्रतिघातात्मकं स्मृतम् ।

इत्येषा तामसी वृत्तिभूतादीनां चतुर्विधा ॥७३

अपने विषे हुए कर्मों के फलों में बाल गृष्ण कहा गया है । तैल पालीकवृक्ष जीव बड़ा पर ही परिवर्तित होता है ॥६४॥ इगते घनघो वा स्थूल अज्ञान ही उपदिष्ट होता है । उस एक को घन समझ कर ज्ञान में घटन करना चाहिए ॥६५॥ ज्ञान में सबकी विजय होती है और त्याग से बुद्धि विरजित ।



होती है तथा वराण्य से शुद्धि होती है और जो शुद्ध होता है वह सत्व से मुक्ति प्राप्त किया करता है ॥६६॥ इससे प्रागे भूताप के हरण करने वाले राग को बतनाऊंगा । जो जिससे अवश्य घात्मा बाले का विषय अभिपङ्ग के लिये होता है ॥६७॥ अनिष्ट अभिपङ्ग निश्चय ही प्रीति ताप का विषाद करने वाला होता है । दुःख लाभ मे ताप तथा सुखानुस्मरण नहीं होता है ॥६८॥ यह वैषय राग सम्भूति का कारण कहा गया है । ब्रह्मा से आदि मे स्थावरो के अन्त मे इस आधिभौतिक ससार मे अज्ञान पूर्वक सब है इसलिये अज्ञान का त्याग करना ही चाहिए ॥६९॥ जिसके लिये ऋषियो के द्वारा कहा हुआ प्रमाण नहीं होता है अर्थात् कोई प्रमाण के रूप मे नहीं माना जाता है और शिक्षाचार भी नहीं होता है । जो वर्णों और आश्रमो का विरोध करने वाला होता है तथा जो शिक्षो के निमित्त शास्त्रो का विरोध करने वाला होता है ॥७०॥ यह मार्ग निरधि और तिर्यक् योनि मे कारण बना करता है । वह तिर्यक् योनि गत कारण कहा जाया करता है ॥७१॥ छै प्रकार के तिर्यक् योनिगत कारण कहा जाया करता है ॥७१॥ छै प्रकार के तिर्यक् योनि के स्थान मे अनेक प्रकार की पातनाए होती हैं । कारण और विषय मे सब ओर से प्रतिघात होता है ॥७२॥ इस प्रकार से वह ममस्त अनैश्वर्य प्रतिघात क स्वरूप वाला कहा गया है । यह प्राणियो की तामसी वृत्ति चार प्रकार की होती है ॥७३॥

सत्त्वस्थमात्रक चित्त यथा सत्त्वप्रदर्शनात् ।

तत्त्वानाश्व तथा तत्त्व दृष्ट्वा वै तत्त्वदर्शनात् ॥७४

सत्त्वक्षेत्रज्ञानात्त्वमेतज्ज्ञानार्थदर्शनम् ।

नानात्वदर्शनं ज्ञानं ज्ञानाद्द्वं योगमुच्यते ॥७५

तेन बद्धस्य वै बन्धो मोक्षो मुक्तस्य तेन च ।

समारे विनिवृत्ते तु मुक्तो लिङ्गेन मुच्यते ॥७६

नि सम्बन्धो ह्यचैतन्यः स्वात्मन्येवावतिष्ठने ।

स्वात्मव्यवस्थितश्चापि विरूपाहमेन लिरुपते ॥७७

इत्येतन्नलक्षणं प्रोक्तं समासाज्ज्ञानमोक्षयोः ।

स चापि त्रिविधः प्रोक्तो मोक्षो वै तत्त्वदर्शनि ॥ ७८

पूर्वं वियोगो ज्ञानेन द्वितीयो रागसक्षयात् ।  
 लिङ्गाभावात्तु कंबल्य कंबल्यात्तु निरञ्जनम् ॥७६  
 निरञ्जनत्वाच्छुद्धस्तु ततो नेता न विद्यते ।  
 तृष्णाक्षयात्तृतीयस्तु व्याख्यात मोक्षकारणम् ॥८०  
 निमित्तमप्रतीघाते इष्टशब्दादिलक्षणे ।  
 अष्टावेतानि रूपाणि प्राकृतानि यथाक्रमम् ॥८१

केवल सत्त्व मे स्थित रहन वाला चित्त जिस प्रकार से सत्त्व स दर्शन से होना है उसी प्रकार से तत्त्व को देखकर तत्त्व दर्शन से तत्त्वो का होना है ॥७४॥ सत्त्व क्षेत्रज्ञो का नानात्व होता है और यह ज्ञानाय दर्शन है । नानात्व के दर्शन को ज्ञान करते हैं और उस ज्ञान से योग दर्शन होना है जोकि योग कहा जाता है ॥७५॥ उसमें जो बद्ध होता है उसका बन्धन होता है और जो उससे मुक्त होता है उसका मोक्ष हुआ करता है । रागार के विनिवृत्त होने पर मुक्त लिङ्ग से छुटकारा पा जाया करता है ॥७६॥ नि मन्बन्ध अर्थात् मन्बन्ध से रहित भ्रूचैतन्य अष्टमी प्रात्मा म ही अवस्थित हुआ करता है । और स्वात्म व्यवस्थित ही विरुप्रास्थ के द्वारा निजा जाता है ॥७७॥ यह इतना ही सक्षेप से ज्ञान और मोक्ष का लक्षण कहा गया है । वह मोक्ष भी तत्त्वो के देखने वाले पुरयो के द्वारा तीन प्रकार का कहा गया है ॥७८॥ प्रथम ज्ञान के माय वियोग है । दूसरा राग के सक्षय से होता है लिङ्ग के अभाव से कंबल्य होना है और कंबल्य से तो निरञ्जन होता है ॥७९॥ निरञ्जन होने से शुद्ध होना है फिर नेता नहीं होता है । तृष्णा क क्षय से तीसरा होना है जोकि मोक्ष का कारण व्याख्यात किया गया है ॥८०॥ इष्ट शब्द आदि स्वरूप वाचे अप्रतिघात मे निमित्त होना है । इसके आठ रूप होने हैं जोकि यथाक्रम प्राकृत होन हैं ॥८१॥

दोषज्ञेत्त्ववसञ्जन्ते गुणमात्रात्मकानि तु ।

अत उर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वंराग्य दोषदर्शनान् ॥८२

दिव्ये च मानुषे चैव विषये पञ्चलक्षण्ये ।

अप्रद्वेषोऽभिष्वङ्ग वसंत्यो दोषदर्शनान् ॥८३

तापप्रीतिविपादाना वाय्वन्तु परिवर्जनम् ।  
 एष वैराग्यमास्थाय शरीरी निर्ममो भवेत् ॥८४  
 अनित्यमशिव दु खमिति बुद्धवानुचिन्त्य च ।  
 विशुद्ध कार्यकरण सत्वाभ्येति तरान्तु य ॥८५  
 परिपक्वकपायो हि कृत्स्नान्दोषान्प्रपश्यति ।  
 तत प्रयाणकाले हि दोषैर्नैमित्तिकैस्तथा ॥८६  
 लक्ष्मा प्रकुपित काये तीव्रवायुसमीरित ।  
 स शरीरमुपाश्रित्य कृत्स्नान्दोषान्कुर्याद्धि वै ॥८७  
 प्राणस्थानानि भिन्दन् हि छिन्दन्मर्माण्यतीत्य च ।  
 शैत्यात्प्रकुपितो वायुरुद्ध्वन्तु क्रमते तत ॥८८  
 स चाय सर्वभूताना प्राणस्थानेष्ववस्थित ।  
 समासात्सवृते ज्ञाने सवृतेषु च कर्ममु ॥८९  
 स जीवोऽनम्यधिष्ठान कर्मभि स्वै पुरावृते ।  
 अष्टाङ्गप्राणवृत्तीर्वै स विच्यावयते पुन ॥९०  
 शरीर प्रजहसो वै निरुच्छवासस्ततो भवेत् ।  
 एव प्राणं परित्यक्तो मृत इत्यभिधीयते ॥९१

गुणमात्रात्मक क्षेत्रज्ञो मे अब सज्जित होते हैं । अब इससे प्रागे दोष दर्शन से वैराग्य को बनलाऊंगा ॥८२॥ दिव्य और मानुष पञ्च लक्षण विषय मे दोष दर्शन से प्रद्वेष अनभिपङ्ग करना चाहिए ॥८३॥ ताप-प्रीति और विपादो का परिवर्जन करना चाहिए । इन प्रकार से वैराग्य मे आस्थित हाकर यह शरीर धारी निमम हो जाना है । अर्थात् इस शरीरी को ममता मे रहित हो जाना चाहिए ॥८४॥ बुद्धि के द्वारा दु ख अनित्य अशिव है इस प्रकार से अनु चिन्तन करके जो विषुद्ध कार्य का करना है वह सत्त्व की प्राप्ति करना है ॥८५॥ फिर परिपक्व कपाय वाला होकर समस्त दोषो को देख नता है । प्रयाण करने के समय मे निश्चय ही नैमित्तिक दायो मे वाया मे प्रकृति उष्मा होने हुए तीव्र वायु स समीरित हा जाता है वह शरीर मे उपाश्रित हाकर समस्त दोषो को रुद्ध कर दता है ॥८६ ८७॥ प्राण के स्थानो को भेदन करता

हुआ और मर्मों को छेदन करता हुआ जाने चलकर शैत्य से प्रकुपित होने वाला वायु ऊर्ध्व भाग को फिर क्रान्त किया करता है ॥८८॥ और यह वह समस्त प्राणियों के प्राण स्वानो में अवस्थित रहा करता है । मक्षेप से जान के सबूत हो जाने पर और समस्त कर्मों के सबूत होने पर वह जीव पुरा कृत अर्थात् पहिले जन्म में किये हुए अपने कर्मों से अनभ्यधिष्ठान हो जाता है । फिर मष्टाङ्ग प्राण वृत्ति वाला वह विच्यवयित हो जाता है ॥८९-९०॥ शरीर को प्रकृष्टता से त्यागता हुआ वह फिर बिना उच्छ्वासो वाला होता है । इस रीति से प्राणो के द्वारा परित्यक्त होने वाला मृत इस नाम से कहा जाता है ॥९१॥

यथेह तोके खद्योत नीयमानमितस्तत ।

रञ्जन तद्वधे यत्तु नेता नेता न विद्यते ॥९२

तृष्णाक्षयम्वृतीपस्तु व्याख्यात मोक्षलक्षणम् ।

शब्दाद्ये विषये दोषविषये पञ्चलक्षणे ॥९३

अप्रद्वेषोऽन भिष्वङ्ग प्रीतितापविवर्जनम् ।

वैराग्यकारण ह्येते प्रवृत्तीना लयस्य च ॥९४

अष्टौ प्रवृत्तयो ज्ञेया पूर्वोक्ता वै यथाक्रमम् ।

अव्यक्ताद्यास्तु विज्ञेया भूवान्ता प्रकृतेर्लयाः ॥९५

वर्णाश्रमाचारयुक्ता शिष्टा शास्त्राविरोधिन ।

वर्णाश्रमाणा घर्मोऽय देवस्थानेषु कारणम् ॥९६

ब्रह्मादीनि पिशाचान्तान्यष्टौ स्थानानि देवता ।

ऐश्वर्यमणिमाद्य हि कारण ह्यष्टलक्षणम् ॥९७

निमित्तमप्रतिघात इष्टे शब्दादिलक्षणे ।

अष्टावेतानि रूपाणि प्राकृतानि यथाक्रमम् ॥९८

जिम प्रकार से यहाँ मोक्ष म इधर उधर से जाया गया खद्योत (जुगुनू) रञ्जन होता है और उसके बध होने पर नेता नेता नहीं रहता है ॥९२॥ तृष्णा का क्षय तीव्रता, मोक्ष का लक्षण व्याख्यात किया गया है । शब्दादि विषय म पञ्चलक्षणों वाल दोष विषय में अप्रद्वेष अजभियङ्ग प्रीति और ताप का विष-

जंन होना ये वैराग्य के कारण और प्रवृत्तियों के लय के कारण होते हैं ॥६१-  
६४॥ पूर्व में कथित की हुई घाठ प्रकृतियाँ क्रम के अनुसार जानलेनी चाहिये ।  
अव्यक्त आदि प्रकृति लय भूतान्त होते हैं ॥६५॥ शिष्ट जो होते हैं वे बर्यों और  
आश्रमों के धर्मों से युक्त हुआ करते हैं तथा वे शास्त्रों के भी विरोध न करने  
वाले होते हैं । चार बर्यों और चारों आश्रमों का यह धर्म देवों के स्थानों में  
कारण होता है ॥६६॥ ब्रह्मा से आदि लेकर पिशाचों के अन्तक घाट स्थान  
देवता होते हैं । ऐश्वर्य तथा अग्निमा आदि अष्ट लक्षण वाला कारण होता है  
॥६७॥ शब्दादि लक्षण इष्ट में जो अप्रतिघात होता है वह निमित्त होता है ।  
ये घाठ यथाक्रम आठ प्राकृति रूप होते हैं ॥६८॥

क्षेत्रज्ञेष्वनुसज्यन्ते गणमात्रात्मकानि तु ।

प्रावृट्काले पृथक्त्वेन पश्यन्तीह न चक्षुषा ॥६९

पश्यन्त्येवविध सिद्धा जीव दिव्येन चक्षुषा ।

श्रावित्ती श्रानपानश्च योनी प्रविशतस्तथा ॥१००

तिर्य्यंगूढं मधस्ताच्च धावतोऽपि यथाक्रमम् ।

जीवप्राणास्तथा लिङ्ग कारणश्च चतुष्टयम् ॥१०१

पर्यायवाचकं शब्दरेकार्थं सोऽभिलिख्यते ।

व्यक्ताव्यक्ते प्रमाणोऽयं सर्व रूप तु कृत्स्नश ॥१०२

अव्यक्तान्तं गृहीतं च क्षेत्रज्ञाधिष्ठितश्च यत् ।

एव ज्ञात्वा शुचिभूत्वा ज्ञानाद् विप्रमुच्यते ॥१०३

नष्टश्चैव यथा तत्त्व तत्त्वानां तत्त्वदर्शनम् ।

यथेष्ट परिनिर्घ्याति भिन्ने देहे मुनिवृत्ते ॥१०४

गुण मात्रात्मिक क्षेत्रज्ञों में अनुमज्जित होते हैं । प्रावृट् अर्थात् वर्षों के  
समय में यहाँ पर पृथक्त्व होने से नेत्र के द्वारा नहीं देखते हैं ॥६९॥ इस  
प्रकार वाले जीव की सिद्ध लोग दिव्य चक्षु के द्वारा देखा करते हैं । श्राविति  
और श्रान के पान वाला तथा तिर्यक् योनियों में प्रवेश करता हुआ ऊपर और  
नीचे की ओर दौड़ता हुआ भी यथाक्रम जीव प्राण तथा लिङ्ग यह चार कारण  
हैं ॥१००-१०१॥ एक ही अर्थ रखने वाले पर्याय वाचक शब्दों से वह अभि-

लिलित किया जाता है । व्यक्त और अव्यक्त में यह प्रमाण है और वह पूर्णतया रूप होता है ॥१०२॥ जो अव्यक्त के अन्त तक ब्रह्मण किया हुआ है और क्षेत्रज्ञ से अधिष्ठित है इस रीति से ज्ञान प्राप्त करके और शुचि होकर निश्चय ही ज्ञानमें प्रकृष्ट रूपसे मुक्त होजाता है ॥१०३॥ जैसे ही तत्त्व और तत्त्वों का तत्त्वदर्शन नष्ट होता है वह भिन्न निवृत्त देह में स्थित होता है और वह चला जाता है ॥१०४॥

भिद्यते करणञ्चापि ह्यव्यक्ताज्ञानिनस्तत ।  
 मुक्तो गुणशरीरेण प्राणायामेन तु सर्वश ॥१०५॥  
 नान्यन्धरीर मादत्ते दग्धे बीजे यथाकुर ।  
 जीविक सर्वससाराद्वीजशारीरमानस ॥१०६॥  
 ज्ञानाच्चतुर्द्दशाच्छुद्ध प्रकृतिं सोऽनुवर्त्तते ।  
 प्रवृत्तिं सत्यमित्याहुर्विकारोऽनृतमुच्यते ॥१०७॥  
 तत्सद्भावोऽनृत ज्ञेय सद्भाव सत्यमुच्यते ।  
 अनामरूपक्षेत्रज्ञनामरूप प्रचक्षते ॥१०८॥  
 यस्मात्क्षेत्र विजानाति तस्मात्क्षेत्रज्ञ उच्यते ।  
 क्षत्रप्रत्ययतो यस्मात्क्षेत्रज्ञ शुभ उच्यते ॥१०९॥  
 क्षेत्रज्ञः स्मर्यते तस्मात्क्षेत्र तज्जैविभाष्यते ।  
 क्षत्रत्वप्रत्यय दृष्ट क्षेत्रज्ञ प्रत्ययी मदा ॥११०॥  
 क्षयणात् करणाच्चैव क्षत्राणात्तथैव च ।  
 भोज्यत्वाद्धिपयत्वाच्च क्षेत्र क्षेत्रविदो विदु ॥१११॥  
 महदाद्य विशेषान्त सर्वरूप्य विलक्षणम् ।  
 विकारलक्षण तद्वै साधरक्षरमेव च ॥११२॥  
 तमेव च विकारन्तु यस्माद्धै क्षरते पुन ।  
 तस्माद्धै कारणाच्चैव क्षरमित्यभिधीयते ॥११३॥

इसके अनन्तर जो अव्यक्त जानी होता है उसका कारण भी भिद्यमान होता है । गुण शरीर प्राणायाम से सभी प्रकार से युक्त होता है ॥१०५॥ फिर वह मुक्त हुआ प्राणी अन्य शरीर को धारण नहीं किया करता है जिस तरह

बीज के दग्ध होने पर फिर उससे अक्षुर नहीं होते हैं उभी रीति से यज्ञोपासना बीज शारीर मानस ससार से चतुर्दश ज्ञान से शुद्ध हुआ वह प्रकृति का अनुवर्तन किया करता है । सत्य को प्रकृति कहते हैं और जो विकार होता है वह अनृत कहा जाता है ॥१०६-१०७॥ उसका सद्भाव अनृत जानना चाहिये और सद्भाव सत्य कहा जाता है । अनाम रूप वाले क्षेत्रज्ञ का नाम रूप कहा जाता है ॥१०८॥ जिमसे क्षेत्र को जानते हैं उमम वह क्षेत्रज्ञ कहा जाया करता है । जिस क्षेत्र के प्रत्यय मे क्षेत्रज्ञ शुभ कहा जाता है ॥१०९॥ उससे क्षेत्रज्ञ का स्मरण किया जाता है । उम ज्ञाताओं के द्वारा विशेष रूप से कहा जाया करता है । क्षेत्रत्व का प्रत्यय जब दृष्ट होता है तो क्षेत्रज्ञ सर्वदा प्रत्यक्षी होता है ॥११०॥ क्षयण से और वरण से ही तथा धन प्राण से भोज्य होने से और विषय के होने से क्षेत्र के वेत्ता लोग क्षेत्र जानते है ॥१११॥ महत् से आद्य और विशेष के अन्त तक विलक्षण सर्वरूप्य होता है । वह निश्चय ही विकार लक्षण साक्षर क्षर ही होता है ॥११२॥ फिर उस ही विकार को जिममे वह क्षर होता है और उसही कारण मे क्षर एमा अभिहित हुआ करता है ॥११३॥

मुक्तदुःखमोहभावा भोज्यमित्यभिधीयते ।  
 अचेतत्वाद्धि विषयस्तद्धि धर्मविभु स्मृत ॥११४  
 न क्षीयते न क्षरति विकारप्रसृतस्तु तत् ।  
 अक्षर तेन चाप्युक्तमक्षीणत्वात्तथैव च ॥११५  
 यस्मात्पुर्व्यनुशेते च तस्मात्पुरुष उच्यते ।  
 पुरप्रत्ययिको यस्मात्पुरपेत्यभिधीयते ॥११६  
 पुरुष कथयस्वाथ कथन्तज्जैविभाष्यते ।  
 शुद्धो निरञ्जनाभासो ज्ञानाज्ञानविवर्जित ॥११७  
 अन्ति नास्तीति सोऽन्यो वा बद्धो मुक्तो गतः स्थितः ।  
 नैर्हेतिवान्तनिर्द्देश्यसूक्तमस्मिन्न विद्यते ॥११८  
 शुद्धत्वात्तु देवयो वेत्तदृष्टत्वात्ममदर्शन ।  
 आत्मप्रत्ययवारी सारनूनचापि हेतुवम् ।  
 भावग्राह्यमनुमान्य चिन्तयन्न प्रमुह्यते ॥११९

यदा पश्यति ज्ञातार शान्तार्थं दर्शनात्मकम् ।

दृश्यादृश्येषु निर्दृश्य तदा तदुद्धर वरम् ॥१२०॥

मुख—मुख और मोह के भाव भोग्य इस नाम से कहे जाते हैं । अचेत के होने से जो विषय है वह ही धर्म विभु कहा गया है ॥११४॥ वह विचार का प्रवृत्त न तो क्षीण होता है और न क्षर ही होता है और उस ही रीति से उससे अक्षीण होने के कारण से अक्षर ऐसा कहा गया है ॥११५॥ जिससे वह पुरी में अनुशयन किया करता है उम कारण से वह पुरुष ऐसा कहा जाया करता है । पुर प्रत्यधिक जिससे होता है वह पुरुष इस नाम से बोला जाया करता है ॥११६॥ पुरुष कहे इसके अनंतर उसके ज्ञाताओं के द्वारा वह शुद्ध-निरञ्जनाभास और ज्ञान तथा अज्ञान से रहित कौं विभाषित किया जाता है ॥११७॥ है और नहीं है—इससे अथवा वह अय है, बद्ध एव मुक्त गया हुआ स्थित है । उमम नैर्हेतिकात् निर्दृश्य मूक्त नहीं होता है ॥११८॥ शुद्ध होने से वह देश्य नहीं है और हृष्ट होने से समदर्शन होता है । आत्मा का प्रत्यय बारी होता है । सारजून हेतुक भाव प्राण्य एव अनुमाय का चिन्तन करता हुआ मोह को प्राप्त नहीं हुआ करता है ॥११९॥ जब जिस समय शान्तार्थं दर्शनात्मक ज्ञाता को देख लता है तब उस समय दृश्यादृश्यो म निर्दृश्य उसका श्रेष्ठ उद्धार होता है ॥१२०॥

एव ज्ञात्मा स विज्ञाता तत शान्ति नियच्छति ।

कार्ये च कारणे चैव बुद्ध्यादौ भौतिके तदा ॥१२१॥

सप्रयुक्तो वियुक्तो वा जीवतो वा मृतस्य च ।

विज्ञाता न च दृश्येत पृथक्त्वेनेह सर्व्वश ॥१२२॥

स्वेनात्मान तमात्मान कारणात्मा नियच्छति ।

प्रकृतौ कारणे चैव स्वात्मन्येवोपतिष्ठति ॥१२३॥

अस्ति नास्तीति सोऽज्यो वा इहामुत्रेति वा पुनः ।

एकत्व वा पृथक्त्व वा क्षेत्रज्ञपुरुषेति वा ॥१२४॥

आत्मवान् स निरात्मा वा चेतनोऽचेतनोऽपि वा ।

कर्त्ता वा सोऽज्यकर्त्ता वा भोक्ता वा भोज्यमेव वा ॥१२५॥



यज्ज्ञात्वा न निवर्तन्ते क्षेत्रज्ञे तु निरञ्जने ।

अवाच्य तदनाख्यानादग्राह्यत्वादहेतुनि ॥१२६

इस प्रकार से वह विशेष रूप से ज्ञान रखने वाला फिर ज्ञान्ति को प्राप्त किया करता है । कार्य में और कारण में तथा बुद्धि आदि भौतिक में उस समय मग्नपुक्त अथवा विद्युक्त होना हुआ, जीवित का अथवा मृत का विशाला यहाँ सब प्रकार में पृथक्त्व होने से दिखाई नहीं देता है ॥१२१-१२२॥ कारणआत्मा वह करने से आत्मा को और उस आत्मा को प्राप्त करता है । प्रकृति में और कारण में अपनी ही आत्मा में उप तिष्ठमान होना है ॥१२३॥ है और नहीं है—यह अथवा वह अथवा है—यहाँ अथवा परलोक में है—एकत्व है अथवा पृथक्त्व है—क्षेत्रज्ञ है अथवा पुरुष है—बहु आत्मवान् अथवा निरात्मा है—चेतन है अथवा अचेतन है—बहु कर्ता है किम्बा बहु अकर्ता है—बहु भोक्ता अथवा भोग्य ही है—यह जानकर क्षेत्रज्ञ निरञ्जन में निवृत्त नहीं होते है । अपितु उनमें अनाख्यात होने से तथा अग्राह्य होने से यह कहने योग्य नहीं है ॥१२४-१२५-१२६॥

अप्रतर्कमचिन्त्यत्वादवाप्यत्वाच्च सर्वज्ञः ।

नाभिलिम्पति तत्तत्त्व सम्प्राप्य मनसा सह ॥१२७

क्षेत्रज्ञं निर्गुणो शुद्धे शान्ते क्षीणे निरञ्जने ।

व्यये(ये)तसुखदुःखे च निरद्धे शान्तिमायते ॥१२८

निरात्मके पुनस्तस्मिन्वाच्यावाच्यो न विद्यते ।

एतो सहारविस्तारो व्यक्ताव्यसो तत पुन ॥१२९

सृजते असते चैव अस्तः पर्यवतिष्ठते ।

क्षेत्रज्ञाधिष्ठिन सर्वं पुन सर्वं प्रवर्तते ॥१३०

अधिज्ञानप्रवृत्तेन तस्य ते बुद्धिपूर्वकम् ।

साधर्म्यबंधम्यवृतसयोगो विधितस्तयोः ।

अनादिमान् स सयोगो महापुरुषज्ञ स्मृत ॥१३१

यावच्च सगंप्रतिमगं कालस्तावच्च तिष्ठति सुसन्निरुध्य ।

पूर्वं हितच्ये तदबुद्धिपूर्वं प्रवर्तते तत्पुष्पायमेव ॥१३२

एषा निसर्गप्रतिसर्गपूर्वं प्राधानिकी चेश्वरकारिता च ।

अनाद्यनन्ता ह्यभिमानपूर्वक विलासयन्ती जगदभ्युपैति ॥१३३

इत्येष प्राकृत सर्गस्तृतीयो हेतुलक्षणः ।

उक्तो ह्यस्मिस्तदात्यन्त कविभिस्तत्प्रमुच्यते ॥१३४

अचिन् य होने में और सब प्रकार से अवाप्य होने से अप्रतर्क्य है । मनके साथ उस तत्त्व को सम्प्राप्त करके वह अभिलिप्त नहीं होता है ॥१२७॥ क्षेत्रज्ञ-शुद्ध-निर्गुण-दान्त-क्षीण-निरञ्जन में सुख और दुःख व्यपेत होते हुए निरुद्ध होकर शान्ति को प्राप्त होजाते हैं ॥१२८॥ वह निरात्मा होता है इसलिये उसमें फिर क्रुद्ध भी वाच्य तथा अवाच्य नहीं रहता है । ये सहार और विस्तार तथा व्यक्त और अव्यक्त फिर सृजन करता है और असन करता है और प्रस्त होता हुआ पर्यवस्थित रहता है । क्षेत्रज्ञ में अधिष्ठित सभी फिर प्रवृत्त होता है ॥१२९-१३०॥ अधिष्ठान प्रवृत्त होने से उसके बुद्धिपूर्वक माधर्म्य और वैधर्म्य से क्रिया हुआ संयोग उन दोनों का विधि से वह अनादिमान् संयोग होता है और महा-पुरुष में जायमान कहा गया है ॥१३१॥ और जितना सर्ग तथा प्रतिसर्ग का काल है उतना सुमन्निरुद्ध होकर रहता है । पहिले हितव्य में वह अवुद्धि पूर्वक प्रवृत्त होता है और पुरुषार्थ ही होता है ॥१३२॥ यह निसर्ग और प्रतिसर्ग पूर्वक प्राधानिकी ईश्वर कारिता है जो अनाद्यन्त वाली अभिमान पूर्वक विलास करती हुई जगत् को प्राप्त होती है । यह हेतु लक्षण बाता तृतीय प्राकृत सर्ग हैं जोकि कहा गया है उसमें अत्यन्त रूप से कवियों के द्वारा प्रमुक्ति प्राप्त की जानी है ॥१३४॥

### प्रकरण ६५—सृष्टि वर्णन

सूत सुमहदाख्यान भवता परिकीर्तितम् ।

प्रजाना मनुभि साद्धं देवानामृषिभि. सह ॥१

पितृगन्धर्वभूताना पिशाचोरगरक्षमाम् ।

दैत्याना दानवाना च यक्षाणामेव पक्षिणाम् ॥२

अत्यद्भुतानि वम्भानि त्रिधिमन्धर्मनिश्चय ।  
 विवित्राश्च कथायोगा जन्म चाग्र्यमनुत्तमम् ॥३॥  
 तत्त्वय्यमानमस्माक भवता दलक्षणाया गिरा ।  
 मन कणमुप सोते प्रीणात्वाभूतसम्भवम् ॥४॥  
 एवमाराध्य ते सूत सत्कृत्य च महर्षय ।  
 पप्रच्छुः सत्रिणः सर्वे पुन सर्गप्रवर्तनम् ॥५॥  
 कथा सूत महाप्राज्ञ पुन सर्ग प्रपत्स्यते ।  
 बन्धेषु मम्प्रलीनेषु गुणमाम्ये तमोमये ॥६॥  
 विवारस्वविमृष्टेषु ह्यव्यक्ते चात्मनि स्थिते ।  
 अप्रवृत्तो ब्रह्मणस्तु महामागुज्यगंस्तदा ।  
 कथा प्रपत्स्यते सर्गस्तत्र प्रत्र हि पृच्छताम् ॥७॥

ऋषिया ने कहा—हे सूतजी ! महान् आभ्यान का वर्णन किया है जिसमें मनुष्यों के साथ प्रजाओं का तथा ऋषियों के साथ देवों का पूरा वर्णन है । इस आभ्यान में पितृ-गन्धर्व-भूत-पिशाच-उरग-राक्षस-दैत्य-दानव-यक्ष और पक्षियों के अत्यद्भुत कर्मों का वर्णन भी किया गया है । इसमें आपन विधि स युक्त धर्म का भी निरूपण बताया है । इसमें विवित्र कथाओं के याग हैं तथा श्रेष्ठतम अग्र्य जन्म का भी वर्णन किया है ॥१-२-३॥ हे सूत ! आपता अपनी अतीव दलक्षण सुन्दर वाणी से मन तथा वातों को परम गुण सप्रतमुन्न करते हुए सभी कुछ का वर्णन करके समस्त प्राणियों का समस्तता प्रदान किया करते हैं ॥४॥ इस प्रकार में उन महर्षिया ने सूतजी का समाराधन एवं भरी भाँति सन्कार करके पुन उन सत्रधारिया ने सर्ग क प्रवर्तन के विषय में उनमें पूछा था ॥५॥ हे सूतजी ! आपने महान् परिश्रम है । यह सर्ग फिर बँग होगा क्योंकि समस्त बन्ध जब प्रलीन होजाते हैं और इस तमोमय में गुणों की समता हाजाया करती है ? समस्त विकार तो उस समय में विमृष्ट रहते ही नहीं हैं क्योंकि यह अव्यक्त आत्मा में ही स्थित हाजाया करता है । महान् सायुज्य को प्राप्त होने पर ब्रह्म की प्रवृत्ति उस समय में होनी ही नहीं है फिर यह सर्ग कैसे होना है ? हम सब यही आपन पूछना चाहते हैं सो आप कृपा करके वर्णन कर दीजिये ॥६-७॥

एवमुक्त स्ततः सूतस्तदासी लोमहर्षणः ।  
 व्याख्यानुमुपचक्राम पुन सर्गप्रवर्त्तनम् ॥८॥  
 अहं वो वर्त्तयिष्यामि यथा सर्गः प्रपत्स्यते !  
 पूर्ववत्स तु विज्ञेय समासात्तं निबोधत ॥९॥  
 दृष्ट चैवानुमेयञ्च तर्कं वक्ष्यामि युक्तितः ।  
 तस्माद्वाचो निवर्त्तन्ते ह्यप्राप्य मनसा सह ॥१०॥  
 अव्यक्तवन् परोक्षत्वाद् ग्रहणं तद्दुरासदम् ।  
 विकारैः प्रतिसंदृष्टे गुणसाम्ये निवर्त्तन्ते ॥११॥  
 प्रधानं पुरुषाणाञ्च साधर्म्येणैव तिष्ठति ।  
 धर्माधर्मौ प्रलीयेते अव्यक्ती प्राणिना सदा ॥१२॥  
 सत्त्वमात्रात्मको धर्मो गुणसत्त्वे प्रतिष्ठितः ।  
 तमोमात्रात्मकोऽधर्मो गुणे तमसि तिष्ठति ॥१३॥  
 अविभागवतावेतौ गुणसाम्यस्थितादुभौ ।  
 सर्वकार्थ्ये बुद्धिपूर्वं प्रधानस्य प्रपत्स्यते ॥१४॥

इस प्रकार से महर्षियों के द्वारा जब सूतजी से कहा गया तो वे लोम  
 हर्षण पुनः सर्ग की प्रवृत्ति का वर्णन करने का आरम्भ करने लगे थे ॥८॥  
 हे ऋषियो ! मैं आप सबको बतलाता हूँ कि यह सर्ग किस प्रकार से प्रवृत्त  
 हुआ करता है । यह पूर्व की भाँति ही जानने के योग्य है । अतः यहाँ पर  
 अतीव संक्षेप में इसे समझलो ॥९॥ यह दृष्ट तथा अनुमान करने के योग्य है ।  
 मैं युक्ति से तर्क को बतलाता हूँ । वहाँ से मन के साथ वाणी भी निवृत्त हो  
 जाया करती है और किसी की भी पहुँच नहीं होती है ॥१०॥ अव्यक्त की ही  
 भाँति वह परोक्ष वस्तु है और रसका ग्रहण करना अत्यन्त कठिन है । गुणों  
 की साम्यावस्था प्रति सहृष्ट हो जाने पर वह विकारों से पुनः निवृत्त होती  
 है ॥११॥ पुरुषों के साधर्म्य से ही प्रधान स्थित होता है । प्राणियों के धर्म  
 और अधर्म अव्यक्त होकर सदा प्रलीन हो जाया करते हैं ॥१२॥ सत्त्वमात्रा  
 त्मक एक धर्म गुण सत्त्व में प्रतिष्ठित रहा करता है । तमोमात्रात्मक अधर्म  
 तमोगुण में स्थित रहा करता है ॥१३॥ ये दोनों गुण-साम्य में स्थित रहने

दृये उस समय में विभाग से रहिन होने हैं । प्रधान के समस्त कार्य में बुद्धि पूर्वक ही प्रवृत्त होंगे ॥१४॥

अबुद्धिपूर्वं क्षेत्रज्ञ अधिष्ठास्यति तान् गुणान् ।  
 एव तानभिमानेन प्रपत्स्येत पुरस्तदा ॥१५  
 यदा प्रवृत्तितव्यन्तु क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्द्वयोः ।  
 भोज्यभोक्तृत्वसम्बन्ध प्रपत्स्येते युतावुभौ ॥१६  
 तस्माच्छरणमव्यक्त साम्ये स्थित्वा गुणात्मकान् ।  
 क्षेत्रज्ञाधिष्ठित तच्च वैषम्य भजते तु तत् ॥१७  
 तत प्रपत्स्यते व्यक्त क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्द्वयोः ।  
 क्षेत्रज्ञाधिष्ठित सत्त्व विकार जनयिष्यति ॥१८  
 महदाद्य विशेषान्त चतुर्विंशगुणात्मकम् ।  
 क्षेत्रज्ञस्य प्रधानस्य पुरुषस्य प्रपत्स्यते ॥१९  
 ब्रह्माण्डे प्रथम सोऽथ भविता चेश्वर पुन ।  
 ततो ज्ञेयस्य कृत्स्नस्य सर्वभूतपति शिव ॥२०  
 ईश्वर सर्व्वमुक्तानां ब्रह्मा ब्रह्ममयो महान् ।  
 आदि देव प्रधानस्यानुग्रहाय प्रवक्ष्यते ॥२१॥

यह क्षेत्रज्ञ बिना ही बुद्धि के योग किए हुए उस समय उन गुणों में अधिष्ठित रहा करता है । इस प्रकार से उस समय में उन गुणों को पहले प्रवृत्त कराया जाता है ॥१५॥ जिस समय में क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ इन दोनों को प्रवृत्त करना होता है तो ये दोनों ही भोज्य और भोक्ता इसके सम्बन्ध की प्राप्ति किया करते हैं ॥१६॥ इसके गुण स्वरूपों को साम्यावस्था में स्थित करके वह कारण अथवा क्षेत्रज्ञ में अधिष्ठित होता है और वही जब विषमावस्था को प्राप्त होते हैं तो क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ दोनों का व्यक्त स्वरूप हो जाता है । क्षेत्रज्ञ में अधिष्ठित सत्त्व विकार को उत्पन्न किया करता है ॥१७-१८॥ महत्तत्त्व से प्रारम्भ करके निमेष के अन्त पर्यन्त और चौबीस गुणों के स्वरूप वाला क्षेत्रज्ञ पुरुष का और प्रधान का रूप हो जाया करता है ॥१९॥ इस ब्रह्माण्ड में यह प्रथम होता है । इसके अनन्तर फिर ईश्वर होता है । इसके

पश्चात् इमं सम्पूर्णं ज्ञेयं ( जानने के योग्य ) का समस्त भूतो वा स्वामी दिव्य होता है ॥२०॥ समस्त भक्तों का ईश्वर महान् ब्रह्ममय ब्रह्मा है । वह प्रधान के अनुग्रह के लिये आदि देव ब्रह्मा जायगा ॥२१॥

अनाद्यो स्वयमुत्पन्नावुभौ सूक्ष्मौ तु तो स्मृतौ ।

अनादिसमो गयुतौ सर्वं क्षेत्रज्ञमेव च ॥२२

अवृद्धि पूर्वकं युक्तौ मदाकी तु वरो तदा ।

अप्रत्ययमनाद्य च स्थितावुदकमप्यस्य ॥२३

प्रवृत्ते पूर्वतं पूर्वं पुनः सर्गं प्रपत्स्यते ।

अज्ञागुणं प्रवर्तन्त रजः सत्त्वतमात्मकम् ॥२४

प्रवृत्तिकाले रजसाभिपन्नमहत्त्वभूतादिविशेष्यताञ्च ।

विशेषता चेन्द्रियताञ्च यान्ति गुणावसाने पतिभिर्मनुष्या ॥२५

सत्याभिध्यायिनस्तस्य ध्यायिनः सन्निसित्तकम् ।

रजः सत्त्वतमा व्यक्ता विधर्माणि परस्परम् ॥२६

आद्यन्त सप्रपत्स्यन्ते क्षेत्रतज्ज्ञास्तु सर्वशः ।

ससिद्धवाय्यं करणा उत्पद्यन्तऽभिमानिनः ॥२७

सर्वे सत्त्वाः प्रपद्यन्ते ह्यव्यवतात्पूथमिव च ।

प्रसृतं या च मुबहा साधिकाश्चाप्यसाधिका ॥२८

वे दोना अनाद्य है और स्वयमुत्पन्न होने वात है तथा सूक्ष्म बड़े गव हैं एव अनादि मयोग से युक्त है यह सब क्षेत्रज्ञ ही है ॥२२॥ य अवृद्धि पूर्वक उक्त समय मदाक वर है तथा अप्रत्यय एव अनाद्य उदक में स्थित रहा करते हैं ॥२३॥ पूर्व से थी पूर्व सर्ग के प्रवृत्त हान पर ये युक्त प्रवृत्ति को प्राण्य होन वाले होने हैं । अज्ञागुणों के द्वारा रजः सत्त्वतमात्मक होकर प्रवृत्त होत है । ॥२४॥ प्रवृत्ति के काल में रजोगुण से अभिपन्न महत्त्व भूतादि विशेष्यता तथा विशेषता और इन्द्रियता को मनुष्य गुणों के अवसान में पतियों के माद प्राण्य होते हैं ॥२५॥ रज के अभिध्यायी उगके सन्निसित्तक ध्यायी हैं । व्यक्ता रज-सत्त्व और तम परस्पर में विधर्मा होते हैं ॥२६॥ आदि और अन्त में गव दोन और क्षेत्रज्ञ हो जात है । सनिद्ध वायं के कारण अभिमान वाये

उत्पन्न होते हैं ॥२७॥ समस्त सत्त्व पटले ही अव्यक्त से प्रतिपन्न होते हैं ।  
जो कि मुवहामाधिका और अमाधिकाओं का प्रसव करती है ॥२८॥

ससरन्तस्तु ते सर्वे स्थानप्रकरणं सह ।  
कार्याणि प्रतिपत्स्यन्ते उत्पद्यन्ते पुन पुन ॥२९॥  
गुणमात्रात्मकाश्चैव धर्माधर्मौ परस्परम् ।  
आरप्सन्तीह चान्योन्य वरेणानुग्रहेण च ॥३०॥  
सर्वे तुल्याः प्रसृष्टार्थं सर्गादी यान्ति विक्रियाम् ।  
गुणास्तत्प्रतिधावते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥३१॥  
गुणारते यानि सर्वाणि प्राक् दृष्टे प्रतिपेदिरे ।  
तान्येव प्रतिपद्यन्ते मृष्टमाना पुन पुनः ॥३२॥  
हिंसाहिंसे मृदुकूरे धर्माधर्मावृतानृते ।  
तद्भाविता प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥३३॥  
महाभूतेषु नानात्वमिन्द्रियार्थेषु मूर्त्तिषु ।  
विप्रयोगाश्च भूताना गुणोभ्य सप्रवर्त्तते ॥३४॥  
इत्येष वो मया ख्यात पुनः सर्गं समासत ।  
समासादेव वक्ष्यामि ब्रह्मणोऽथ समुद्भवम् ॥३५॥

वे सब सत्त्व स्थान और प्रकरणों के साथ यहाँ ससरण करते हुए पुन -  
पुन उत्पन्न होते हैं और कार्यों को प्राप्त किया करते हैं ॥२९॥ यहाँ पर वे  
सब परस्पर में गुणमात्र स्वरूप वाले धर्म और अधर्म को वर तथा अनुग्रह से  
प्रारम्भ किया करते हैं ॥३०॥ सब तुल्य हैं और प्रसृष्ट होने के लिये सर्ग के  
मादि विक्रिया को प्राप्त हुआ करते हैं । उनके प्रति गुण धावन किया करते हैं ।  
औ—जो जिसको रुचता है वे गुण मृष्टि से पूर्व जो थे उन सबको प्राप्त हो जाते  
हैं और वे ही मृष्टमान होते हुए पुन पुन प्रतिपन्न होते हैं ॥३१-३२॥ हिंस-  
रहिंस, मृदु-कूर, धर्म-अधर्म, और आवृत तथा अनृत में तत्त्व भावों से भावित  
होते हुए जो जिसको रुचता है प्रपन्न हुआ करते हैं ॥३३॥ इन्द्रियार्थ मूर्त्तियों में  
और महाभूतों में नानात्व होता है । भूतों के विप्रयोग गुणों से सवृत्त हुआ करते

है ॥३४॥ यह मैंने सशेर से पुन सर्ग का बर्णन कर दिया है । अब सशेर स ही ब्रह्मा — समुद्भव कहूँगा ॥३५॥

अव्यक्तात्कारणात्तस्मान्नित्यात्सदसदात्मकात् ।

प्रधानपुरुषाम्यान्तु जायते च महेश्वरः ॥३६

स पुन सम्भावयिता जायते ब्रह्मसजित ।

मृजते स पुनर्लोकानभिमानगुणात्मवान् ॥३७

अहङ्कारस्तु महत्तस्माद्भूतानि चात्मन ।

युगपत् सम्प्रवर्तन्ते भूतान्येवेन्द्रियाणि च ।

भूतभेदाश्च भूतेभ्य इति सर्गः प्रवर्तन्ते ॥३८

विस्तरावयवरसेषा यथाप्रज्ञ यथाश्रुतम् ।

कीर्तित वो यथा पूर्वं तथैवाम्युपधाप्यन्ताम् ॥३९

एतच्छ्रुत्वा नैमिषेयास्तदानी लोकोत्पत्तिं सस्थितिं च व्ययञ्च ।

तस्मिन् सन्नेऽवभृथ प्राप्य शुद्धाः पुण्य लोकमृषयः प्राप्नुवन्ति ॥४०

यथा यूय विधिवद्देवतादीनिष्ट्वा चैवावभृथ प्राप्य शुद्धा ।

त्यक्त्वा देहानायुपोऽन्ते कृतार्थान्पुण्यात्लोकान्प्राप्य यथेष्ट चरिष्यथ ४१

एते ते नैमिषेया इष्ट्वा सृष्ट्वा च वै तदा ।

जग्मुश्चावभृथस्नाता स्वर्गं सर्वे तु सत्रिण ॥४२

सत् और असत् स्वरूप वाले तथा नित्य उस अव्यक्त कारण से और प्रधान पुरुषो से महेश्वर समुत्पन्न होते हैं ॥३६॥ वह फिर सम्भावयित ब्रह्मा सजा वाला होता है और वह अभिमान गुणात्मक लोको का मृजन किया करता है ॥३७॥ महत् तत्व से अहङ्कार उत्पन्न होता है और उस अहङ्कार से भूतो की तन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं और फिर एक ही साथ भूत तथा इन्द्रियाँ समुत्पन्न हुआ करते हैं । भूतो से भूतो के भेद होते हैं—इस प्रकार से यह सर्ग प्रवृत्त हुआ करता है ॥३८॥ उनका विस्तरावयव मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार और जैसा कुछ सुना था उसके अनुसार तुम्हारे सामने कह दिया है । जैसा पहिले कहा था वैसा ही इसे समझ लेना चाहिए ॥३९॥ नैमिषारण्य के निवास करने वाले ऋषियो ने उस समय यह श्रवण करके जिसम लोको की उत्पत्ति—



सन्धिति और उपसहृति भी उम मथ ग भवभृय को—प्राप्त करने शुद्ध होने वाले श्रद्धिगण परम पुण्य लोक को प्राप्त करते हैं ॥४०॥ जिस प्रकार से घ्राण लोण विधि-विधान के माय देवता आदि का यजन करके और भवभृय को प्राप्त करने शुद्ध हुए घ्राण के अन्त में देहो का परित्याग करके जिनका द्वारा सभी श्रेयों की प्राप्ति कर ली गई है और सफल हो चुके हैं फिर परम पुण्य लोकों की प्राप्ति करके यथेष्ट विचरण करेंगे ॥४१॥ ये सब नैमिषारण्य वाली मुनिगण राजन और मृजन करके उस समय में भवभृय स्नान करने वाले सब सभी स्वर्ग प्राप्त का चने गये थे ॥४२॥

विप्रास्तया यूयमपि चेष्टा बहुविधंमंखै ।  
 आयुषोऽन्ते ततः स्वर्गं गन्ताराज्य द्विजोत्तमा ॥४३॥  
 प्रक्रिया प्रथमे पादे कथावस्तुपरिग्रह ।  
 अनुपङ्ग उपोद्घात उपसहार एव च ॥४४॥  
 पवमेतच्चतुष्पाद पुराण लोकमम्मतम् ।  
 उवाच भगवान् साक्षाद्वायुर्लोकहिते रत ॥४५॥  
 नैमिषे सत्रमासाय मुनिभ्यो मुनिसत्तमा ।  
 तत्प्रसादादमदिग्ध भूतोत्पत्तिलयानि च ॥४६॥  
 प्राधानिकीर्तिमा मृष्टि तर्षवेश्वरकारिताम् ।  
 सम्यग्विदित्वा मेघावो न मोहमधिगच्छति ॥४७॥  
 इदं यो ब्राह्मणो विद्वानितिहास पुरातनम् ।  
 शृणुयात्प्रावयेदापि तथाध्यापयत्प्रपि च ॥४८॥  
 स्थानेषु स महेंद्रस्य मोदते शाश्वती समा ।  
 ब्रह्मसायुज्यमो भूत्वा ब्रह्मणा सह मोक्ष्यते ॥४९॥

हे विप्रोत्तमो ! हे विप्रगण ! इसी प्रकार में भी घ्राण लोण भी बहुत प्रकार के मन्त्रों का द्वारा यजन करके घ्राण के अन्त में स्वर्गलोक में चले जायेंगे ॥४३॥ पुराण के प्रथम पाद में कथा वस्तु का परिग्रह होता है और फिर अनुपङ्ग—उपोद्घात तथा उपसहार होता है ॥४४॥ इस प्रकार में यह चार पादो वाला पुराण लोण सम्पन्न होता है । लोण-हित में रत रहने

वाने भगवान् वासुदेव ने साक्षात् यह कहा है ॥४५॥ नैमिष क्षेत्र में मुनिगण से किये हुए सत्र को प्राप्त करके हे मुनि श्रेष्ठ ! वहाँ उनके प्रसाद से सन्देह रहित हो जाना है और भूतो की उत्पत्ति तथा लय यह प्राधानिकी अर्थात् प्रधान से होन वाली सृष्टि तथा ईश्वर के द्वारा कराई हुई सृष्टि का भली भाँति ज्ञान प्राप्त करके मेघावी पुरुष फिर कभी मोह को प्राप्त नहीं होता है ॥४६-४७॥ कोई विद्वान् ब्राह्मण इम पुरातन इतिहास का श्रवण करता है अथवा किसी को श्रवण कराता है या इसे को पढा देता है वह फिर महेन्द्र के स्थानों में अनेक वर्षों तक मोह प्राप्त किया करता है तथा ब्रह्म सामुज्य को प्राप्त करने वाला होकर ब्रह्म के साथ मोक्ष को प्राप्त हो जायगा ॥४८-४९॥

तेषा कीर्त्तिमत्ता कीर्त्ति प्रजेशाना महात्मनाम् ।

प्रययन्पृथिवीशाना ब्रह्मभूयाय गच्छति ॥५०

धन्य यशस्यमायुष्य पुण्य वेदैश्च सम्मतम् ।

ऋणद्वं पायनेनोक्त पुराण ब्रह्मवादिना ॥५१

मन्वन्तरेश्वराणा च य कीर्त्ति प्रथयेदिमाम् ।

देवतानामृषीणाश्च भूरिद्रविणतेजसाम् ।

स सौमुच्यते पापं पुण्यञ्च महदाप्नुयात् ॥५२

यश्चेद श्रावयेद्विद्वान्सदा पर्वणि पर्वणि ।

धूतपाप्मा जितस्वर्गो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥५३

यश्चेद श्रावयेच्छ्राद्धे ब्राह्मणान्पादमन्तत ।

अक्षय सार्वकामीय पितृ स्तत्रोपतिष्ठति ॥५४

यस्मात्पुरा ह्यनन्तीद पुराण तेन चोच्यते ।

निहृत्तमस्य यो वेद सर्वपापं प्रमुच्यते ॥५५

तथैव त्रिषु वर्णेषु ये मनुष्या प्रधानत ।

इतिहासमिम श्रुत्वा धर्माय विदधे मतिम् ॥५६

यावन्त्यस्य शरीरेषु रोमकृपाणि सर्वश ।

सावत्कोटि सहस्राणि वर्षाणा दिवि मोदते ।

ब्रह्मसामुज्यगो भूत्वा दैवतं सह मोदते ॥५७

उन कीर्ति वाले महात्मा प्रजापति के ईश और पृथिवी के स्वामियों की कीर्ति का विस्तार करते हुए वह ब्रह्म भूय अर्थात् ब्रह्म के ही स्वरूप प्राप्त करने के लिये हो जाया करता है ॥१५०॥ ब्रह्मवादी श्रीकृष्ण द्वैपायन के द्वारा कथित यह पुराण परम धन्य है तथा मति पुण्यमय है । यह आयु के प्रदान करने वाला-यश बढ़ाने वाला और देवों के द्वारा सम्मत है ॥१५१॥ भन्वन्तरो के ईश-अधिक द्रविण तथा तेज वाले देवता और ऋषि वर्ग कीर्ति की जो प्रथित किया करता है वह सब प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है एवं महान् पुण्य की प्राप्त विधा करता है ॥१५२॥ जो विद्वान् इसको पर्व-पर्व पर इसका आचरण कराता है नष्ट पापों को नष्ट करने वाला और स्वर्ग को भी जीत लेने वाला ब्रह्म के भक्त ही होजाता है ॥१५३॥ और जो इसको आत्म में अन्त का पाद ही छाह्यणों को अचरण कराता है वह अक्षय समस्त कामनाओं से पूर्ण पितरों को करके स्वयं भी वहाँ पर उास्थित हुआ करता है ॥१५४॥ जिसके द्वारा यह पुराण पढ़िये कहा जाता है और जो इसके निष्कृत को जानता है यह सम्पूर्ण पापों से प्रमुक्त होजाता है ॥१५५॥ इसी प्रकार के तीनों वर्णों में प्रधानतया जो मनुष्य इस पुलीत पुराण का अचरण करके धर्म के लिये अपनी मति करता है उसके शरीर में जितने रोगों के छिद होने है उतने ही सहस्र कीर्ति वर्ष पर्यन्त वह दिवलोक में रहकर भोग प्राप्त किया करता है ॥१५७॥

सर्वपापाहर पुण्य पवित्रं च यस्तस्मि च ।

ब्रह्मा ददो शास्त्रमिदं पुराणं मातरिश्चने ॥१५८

तस्माच्चोशनसा प्राप्त तस्माच्चापि बृहस्पति ।

बृहस्पतिस्तु प्रोवाच सवित्रे तदनन्तरम् ॥१५९

सविता मृत्यवे प्राह मृत्युश्चैत्राय वै पुन ।

इन्द्रश्चापि वसिष्ठाय सोऽपि सारस्वताय च ॥१६०

सारस्वतस्त्रिधाम्ने च त्रिधामा च शरद्वते ।

शरद्वतस्त्रिविष्टाय सोऽन्तरिक्षाय दत्तवान् ॥१६१

कपिलो सान्तरिक्षो वै सोऽपि अग्न्याह्णाय च ।

अग्न्याह्णो धनञ्जये स च प्रदात्ततज्जये ॥१६२

वृत्तञ्जयात्तृणञ्जयो भरद्वाजाय सोऽप्यथ ।  
 गौतमाय भरद्वाज सोऽपि निर्यन्तरे पुन ॥६३  
 निर्यन्तरस्तु प्रोवाच तथा वाचथवाय च ।  
 स ददौ सोमशुष्माय स ददौ तृणविन्दवे ॥६४

समस्त पापों का हरण करने वाला—परम पुण्यमय—पवित्र और यश  
 से परिपूर्ण शास्त्र ब्रह्माजी ने वायुदेव के लिये प्रदान किया था ॥५८॥ उस वायु  
 देव से इसे उशाना कवि ने प्राप्त किया था और भार्गव शुक्र से इसकी प्राप्ति  
 बृहस्पति ने की थी । फिर बृहस्पति ने सविता देव को इसको बताया था और  
 इसके अनन्तर सविता ने मृत्यु देव को कहा था । मृत्युदेव न चन्द्रदेव को बताया  
 था । इन्द्रदेव न वसिष्ठ मुनि को कहा था तथा वसिष्ठ ने सारस्वत को बताया  
 था ॥५९-६०॥ सारस्वत ने त्रिधामा को इसे बताया था और फिर त्रिधामा ने  
 शरद्धानु को इसको सुनाया था । शरद्धानु ने त्रिविष्ट को और त्रिविष्ट ने इसका  
 ज्ञान घन्तरिक्ष को दिया था । घन्तरिक्ष ने वर्षों को इस पुराण का ज्ञान प्रदान  
 किया था और वर्षों ने भय्यारुण को बताया था । भय्यारुण ने घनञ्जय को और  
 घनञ्जय ने वृत्तञ्जय को इसका ज्ञान दिया था ॥६१-६२॥ वृत्तञ्जय से तृण-  
 ञ्जय ने प्राप्त किया था तथा तृणञ्जय से भरद्वाज मुनि ने इसे पाया था ।  
 भरद्वाज ने गौतम को प्रदान किया और निर्यन्तर को प्रदान किया था । निर्यन्तर  
 ने इसका ज्ञान वाजयव को प्रदान किया था । उगने फिर इसे सोमशुष्म को  
 दिया था । सोमशुष्म ने तृणविन्दु को प्रदान किया था ॥६३-६४॥

तृणविन्दुस्तु दद्यात् दश प्रोवाच शक्तये ।  
 शक्ते पगशरश्चापि गर्भस्थः श्रुतवादिनम् ॥६५  
 पराशराञ्जातुवर्णस्तस्माद्द्वैपायन प्रभु ।  
 द्वैपायनात्पुनश्चापि मया प्राप्त द्विजोत्तमा ॥६६  
 मया वै तत्पुन प्रोक्त पुत्रायामितबुद्धये ।  
 इत्येव वाचा ब्रह्मादिगुम्फा समुदारहता ॥६७  
 नमस्वाभ्याश्च गुरव प्रयत्नेन मनीषिभि ।  
 धन्य यशस्यमायुष्यं पुण्य सर्वायं गाधवम् ॥६८

पापघ्न नियमेनेद श्रोतव्य ब्राह्मणं सदा ।  
 नाशुची नापि पापाय नाप्यमवत्सरोपिते ॥६६  
 नाश्रद्धधानाविदुषे नापुत्राय कथञ्चन ।  
 नाहिताय प्रदातव्य पवित्रमिदमुत्तमम् ॥७०

अव्यक्त वं यस्य योनि वदन्ति व्यक्त देह कालमनार्गतञ्च ।  
 बह्वि वक्त्र चन्द्र सूर्यौ च नेत्रे दिश श्रात्रे घ्राणमाहुश्च वायुम् ॥७१  
 वाचो वेदाश्चान्तरिक्ष शरीर क्षिति पादौ तारका रोमकूपान् ।  
 सर्वाणि चाङ्गानि तथैव तानि विद्यात्सर्वा यस्य पुच्छ वदन्ति ॥७२  
 त देवदेव जनन जनाना सर्वेषु लोकेषु प्रतिष्ठितञ्च ।  
 वर वराणा वरद महेश्वर ब्रह्माणमादि प्रयतो नमस्ये ॥७३

तृणविन्दु ने इसको दक्ष को श्रवण कराया था । दक्ष ने शक्ति को दिया था तथा शक्ति से गर्भ में ही स्थित पराशर ने इसका श्रवण किया था ॥६५॥ पराशर ने जानुशृंग ने तथा जानुकण से द्वैपायन ने इसका जन प्राप्त किया था और हे द्विजोत्तमो ! द्वैपायन महर्षि से मुझे इसके ज्ञान प्राप्त करने का सौभाग्य मिला था ॥६६॥ वागपायन न कहा—मैंने फिर इस पुराण रत्न का ज्ञान अमित बुद्धि पुत्र को प्रदान किया था । इसी प्रकार से यह ब्रह्मादि गुरु वर्ग के द्वारा वाणी से यह पुराण कहा गया है । मनीषिया को समस्त गुरु वर्ग को सब प्रथम प्रणाम करना चाहिए यह पुराण परम धन्य है—यश तथा आयु के प्रदान करने वाला परम पुण्यमय और सम्पूर्ण अर्थों का साधक है ॥६७-६८॥ यह पुराण पापों के नाश करने वाला है । ब्राह्मणों को इसका श्रवण नियम पूर्वक सबदा करना चाहिए । यह परम पवित्र एवं अत्युत्तम पुराण है । इसका श्रवण अशुचि-वापी और ऐना जो एक वर्ष से कम पाम म रहा हो कभी भी उसका श्रवण नहीं कराना चाहिए । जो श्रद्धालु न हो—विद्वान् न हो तथा पुत्र रहित हो एव अहित हो उसे किसी भी प्रकार से इसका श्रवण नहीं करावे ॥६६ ७०॥ जिसकी योनि अव्यक्त है तथा देह को व्यक्त और काल को अन्तर्गत कहते हैं । बह्वि को मुख-चन्द्र और सूर्य को नेत्र—दिशाओं को श्रात तथा वायु को घ्राण कहा गया है । वेदों को जिसकी वाणी तथा अन्तरिक्ष को

शरीर—क्षिति की चरण एवं तारकों को रोमरूप बताया गया है । उसके अंग भी सम्पूर्ण धातु भी उसी प्रकार के जानने चाहिए और सभी जिसके पुच्छ बड़े जाते हैं उस देव को जो जनो का जन्म स्थान है और सब लोगों में प्रतिष्ठित है । वरो में भी वरदान देने वाले आदि ब्रह्मा महेश्वर को प्रणम्य हाकर नमस्कार करता है ॥७१-७२ ७३॥

### प्रकरण ६६—व्यास संशय वर्णन

सूत सूत महाभाग त्वया भगवता सता ।  
 व्यासप्रसादाधिगतशास्त्रसम्बोधनेन च ॥१  
 अष्टादशपुराणानि सेतिहासानि चानघ ।  
 उपक्रमोपसहार विधिनोक्तानि कृत्स्नश ॥२  
 पुराणेष्वेपु बहवो धर्मास्ते विनिरूपिता ।  
 रागिणाश्च विरागाणा यतीना ब्रह्मचारिणाम् ।  
 गृहस्थाना वनस्थाना स्त्रीशूद्राणा विशेषत ॥३  
 ब्राह्मणक्षत्रियविशा ये च सङ्घुरजातय ।  
 राज्ञाद्या या महानद्यो यज्ञव्रततपासि च ॥४  
 अनेकविधदानानि यमाश्च नियमं सह ।  
 योगधर्मा बहुविधा साख्या भागवतास्तथा ॥५  
 भक्तिमार्गा ज्ञानमार्गा वैराग्यानिलनीरजा ।  
 उपासनविधिश्चोक्त कर्मसमुद्धिचेतसाम् ॥६  
 ब्राह्म शैव वैष्णव च सौर शाक्त तथाहृतम् ।  
 षड्दशानानि चोक्तानि स्वभावनियतानि च ॥७

शौनक आदि ऋषियो ने कहा—हे सूतजी । आप तो महान् भाग वाले हैं आपने भगवान् व्यास देव से भली भाँति ज्ञान पूर्वक परम उत्तरी कृपा से प्रसाद से हम शास्त्र का अध्ययन किया है हे निष्पाप । आपने अष्टादश पुराण

तथा इतिहास सम्पूर्ण उपक्रम एवं उपसंहार पूर्वक वर्णन किये हैं ॥१-२॥ इन पुराणों में आपने बहुत-से धर्मों का निरूपण किया है उनमें रागियों के विरागों के-यतियों के-ब्रह्मचारियों के-गृहस्थों के-वानप्रस्थों के और विशेष रूप से स्त्रियों के तथा शूद्रों के धर्मों का आपने निरूपण किया है ॥३॥ जो ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्य द्विजातियाँ और जो सङ्कर जातियाँ हैं—गङ्गा आदि महा नदियाँ और यज्ञ, बल तप प्रभृति हैं । अनेक प्रकार के दान-यम और नियम तथा बहुत तरह के योग धर्म-सांख्य धर्म एवं भागवत धर्म हैं । भक्ति मार्ग और ज्ञान मार्ग जोकि वैराग्य अनिल नीर में उत्पन्न होने वाले हैं । इन सबका आपने वर्णन किया है तथा कर्मों की मशुद्धि से समन्वित चित्त वातों की उपासना की विधि का आपके द्वारा वर्णन किया गया है ॥३-४-५-६॥ आपने ब्राह्म-शैव-वैष्णव-शाक्त-सौर तथा अर्हंत इन स्वभाव से नियत छे दशानों को कहा है ॥७॥

एतदन्यच्च विविध पुराणेषु निरूपितम् ।

अत पर निमप्यस्ति न वा बोद्धव्यमुत्तमम् ॥८

न ज्ञायेत यदि व्यासो गोपायेदथ वा भवान् ।

अत्र न सशय द्विन्धि पूर्णं पौराणिको यत ॥९

शृणु शीनक वक्ष्यामि प्रश्नमेन सुदुर्लभम् ।

अतिगोप्यतर दिव्यमनाख्येय प्रचक्षते ॥१०

पराशरसुतो व्यास कृत्वा पौराणिकी कथाम् ।

सर्ववेदार्थघटिता चिन्तयामास चेतसि ॥११

वर्णाश्रमवता धर्मो मया सम्यगुदाहृतः ।

भुक्तिमार्गा बहुविधा उक्ता वेदाविरोधतः ॥१२

जीवेश्वरब्रह्मभेदो निरस्तः सूत्रनिर्णये ।

निरूपित पर ब्रह्म श्रुतियुक्तविचारतः ॥१३

अक्षर परम ब्रह्म परमात्मा पर पदम् ।

यदर्धं ब्रह्मचर्यादिवानप्रस्थयतिव्रतम् ॥१४

यह सब तथा अन्य अनेक प्रकार के विषयों का पुराणों में आपने निर-

है । - - - - - वक्ष भी - - - - - के ये - - - - -

रहता है ॥८॥ यह नहीं जाना जानर है कि क्या मर्हपि अथवा प्राप्तने इसमें कुछ मोन किया है । यहाँ पर आप हार गणव का ध्यान कीजिए क्योंकि पूर्ण पौराणिक हैं ॥९॥ श्री मूनजी ने कहा—हे गोनर ! आप ध्यान पूर्वक श्रवण करो मैं हम मुदुलंभ प्रश्न का उत्तर देता हूँ । भनि गोप्य तम वस्तु माख्येय नहीं होती है ॥१०॥ पगनर मुनि व पुत्र मर्हपि वषाम देव ने समस्त वदो के अर्थ म घणित पौराणिकी कथा का सम्पादन करक फिर वित्त म विन्तन किया था ॥११॥ मैंने वणों तथा माधमो के पालन करने वाले लोगो क धर्म को भनी भांनि कथन किया है और वेद के अविरुध ररते हुए बहुत प्रकार के मुक्ति के मार्गों का भी निरूपण कर दिया है ॥१२॥ मून के निर्गुण म जीव ईश्वर और ब्रह्म का भेद निरस्त किया है और श्रुति ने मुक्त विचार द्वारा पर ब्रह्म का निरूपण किया है ॥१३॥ परब ब्रह्म धधर है और परमात्मा ही परम पद होता है जिसके प्राप्त करने के लिये ही ब्रह्मवर्ष मे प्रादि लेटर वानप्रस्थ एव यति के वन बहते हैं ॥१४॥

आचरन्ति महाप्राज्ञा धारणाञ्च पृथग्विधाम् ।

आसन प्राणरोधञ्च प्रत्याहारञ्च धारणा ॥१५

ध्यान समाधिरेनानि यमञ्च नियमं सह ।

श्रष्टाङ्गानि यदर्थञ्च चरन्ति मुनिपुङ्गवा ॥१६

यदर्थं कर्म कुर्वन्ति वेदाज्ञामाश्रततरा ।

परापणधिया सम्यग् निष्कामा कलिलोश्मिता ॥१७

यज्ज्ञप्तये निराकतुं पापाचरणमात्मन ।

गङ्गादिनीर्थचर्याणि निपेवन्ते शुचित्रता ॥१८

तद्ब्रह्म परम शुद्धमनाद्यन्तमनामयम् ।

नित्य सर्वत्रग स्थाणु ब्रूटस्थ ब्रूटवजितम् ॥१९

सर्वेन्द्रियचराभास प्राकृतेन्द्रियवजितम् ।

दिकाताद्यनवच्छिन्न नित्य चिन्मात्रमव्ययम् ॥२०

अध्यास्त सपेवद्यत्र विश्वमेतत्प्रकाशते ।

विश्वस्मितपि चान्वेति निर्विकारश्च रज्जुवत् ॥२१



महान् परिणत लोग धारणा जो पृथक् प्रचार या आचरण किया करते हैं। मुनियों में श्रेष्ठ लोग यम और नियमों के साथ ध्यान-प्राणरोध-प्रत्याहार-ध्याना-ध्यान-समाधि-इन आठ अङ्गों को जिसके लिये किया करते हैं ॥१५-१६॥ वेद की केवल आज्ञा में ही परायण रहने वाले परायण की बुद्धि में कलिनोन्मिक्त और निष्काम होते हुए भली भाँति जिसके लिये कर्म किया करते हैं ॥१७॥ जिसकी जति (ज्ञान) के लिये शुचि व्रत बाल होकर अपनी आत्मा के पाप के आवरणों का निराकरण करने के लिये गङ्गा आदि महार् तीर्थों का आचरण और सेवन किया करते हैं ॥१८॥ वह ब्रह्म परम शुद्ध आदि-अन्त से रहित-अनामय-नित्य-सब में रहने वाला-स्थायु-बूटरथ-बूटवर्जित-सर्वेन्द्रिय चराभास-प्राकृत इन्द्रियों से वञ्चित-दिक्षा और वान आदि ने अन्वच्छिन्न-नित्य-चिन्मात्र अर्थात् ज्ञान स्वरूप-अव्यय और मर्षवत् अघ्यास्त है जिसमें यह विश्व प्रकाशित होता है और इस विश्व में भी निर्विकार रज्जु की भाँति अनुगमन किया करता है ॥१९-२०-२१॥

सम्यग्विचारित यद्वर्तेनोर्भिवुद्वुदोदकम् ।

तथा विचारित ब्रह्म विश्वस्मान्न पृथग्भवेत् ॥२२

सर्वं ब्रह्मैव नानात्वं नास्तीति निगमा जगु ।

यस्माद्भ्रूवन्ति ब्रह्माण्डकोटयो न भवन्ति च ॥२३

यदुन्मेषनिमेषाम्या जगता प्रलयोदयौ ।

भवेता या परा शक्तिर्यदाधारतया स्थिता ॥२४

यस्मिन्निद यतश्चेद येनेद यदिद स्मृतम् ।

यदज्ञानाज्जगद्भाति यस्मिन् ज्ञाते जगन्न हि २५

असत्य यज्जड दुःखमवस्त्विति निरूपितम् ।

विपरीतमतो यद्वै सच्चिदानन्दमूर्तिकम् ॥२६

जीवे जाग्रति विश्वाह्य स्वप्ने यत्तंगस स्मृतम् ।

सुषुप्तौ प्राज्ञसज्ञ तत्पर्यावस्थामु सस्मृतम् ॥२७

यच्चक्षुषा चक्षुरथ श्रोत्राणा श्रात्रमस्ति च ।

त्वक् त्वचा रसन तस्य प्राण प्राणस्य यद्विदु ॥२८

भली भाँति विचार किया हुआ वह वेद की तरङ्ग धारों उदय के बुद्ध-  
 बुद्धे की भाँति होता है । उसी तरह से विचारित ब्रह्म इन दिव्य में पृथक् नहीं  
 होता है ॥२२॥ यह सम्पूर्ण ब्रह्म ही है, नातात्व नहीं है—ऐसा नियमों ने गाव  
 किया है अर्थात् वेदों ने बताया है । जिससे बरोठों ब्रह्माण्ड हुआ करने ही और  
 नहीं भी होते हैं ॥२३॥ जिसके उन्मेष तथा निमेषों में अर्थात् नेत्र के पलकों के  
 मोचने तथा मूँदने में ही इन गमन जगतों के उदय तथा प्रलय हुआ करते हैं ।  
 जो कि परम आधार की दृष्टि है जिसके आधार को ग्रहण करें यह स्थित  
 है ॥२४॥ यह जिसमें है—जिसमें यह है—जिसके द्वारा यह है और जो यह कहा  
 गया है । जिसके अज्ञान में यह जगत् प्रतीत होता है अर्थात् दिखाई देता है  
 और जिसके ज्ञान होने पर अर्थात् जिसका पूर्णतया ज्ञान प्राप्त कर लेने पर  
 यह जगत् कुछ भी नहीं है ॥२५॥ जो अमर्य है वही जड एव दुःख स्वरूप  
 होता है—ऐसा निरूपण किया गया है । इसके विपरीत जो है वह सत्-चित्  
 और आनन्द के स्वरूप वाला होता है ॥२६॥ जीव के जाग्रत होने पर वह  
 विश्व नाम वाला है और स्वप्न में जो सँजम बताया गया है । मुपुति की दशा  
 में प्राप्त गता वाला होता है वह सभी अवस्थाओं में सम्पूत किया गया है ॥२७॥  
 जो चक्षुषों का चक्षु है—श्रोत्रों का श्रात्र है—स्ववापों का स्वक् रमना का रस  
 और प्राण का भी प्राण कहा गया है ॥२८॥

बुद्धिज्ञानिन च प्राणः क्रियागक्त्या निरन्तरम् ।

यन्नेशिरे समभ्येतु ज्ञातु च परमार्थत ॥२९

रज्जावहिर्मंरो वारि नीलिमा गगने यथा ।

असद्विश्वमिद भाति यस्मिन्नज्ञानकल्पितम् ॥३०

घटावच्छिन्न एवाय महाकाशो विभिद्यते ।

कार्योपाधिपरिच्छिन्न तद्वद्यज्जीवसन्निकम् ॥३१

मायया चित्रकारिण्या विचित्रगुणशीलया ।

ब्रह्माण्ड चित्रमतुल यस्मिन् भित्ताविवापितम् ॥३२

घावतोऽज्ञानतिक्रान्त वदतो वागगोचरम् ।

वेदवेदान्तसिद्धान्तैर्विनिर्णीत तदक्षरम् ॥३३

गोलोचवासी भगवानक्षरात्पर उच्यते ।  
 तस्मादपि परं कोऽसौ गीयते श्रुतिभिः सदा ॥३८॥  
 उद्दिष्टो वेद वचनैर्विज्ञेयो ज्ञायते वथम् ।  
 श्रुतेर्वायोर्ज्ज्मया बोध्यः परतस्त्वक्षरादिति ॥३९॥  
 श्रुत्यर्थं सशयापन्नो व्यासः सत्यवतीमुत ।  
 विचारयामास चिरं न प्रपेदे यथातथम् ॥४०॥  
 विचारयन्नपि मुनिर्नापि वेदार्थनिश्चयम् ।  
 वेदो नारायणः साक्षाद्यत्र मुह्यति सूरय ॥४१॥  
 तथापि महतीमार्ति मत्ता तद्दयतापिनीम् ।  
 पुनर्विचारयामास क्व व्रजामि करोमि किम् ॥४२॥  
 पश्यामि न जगत्यस्मिन्सर्वाज्ञं सर्वदर्शनम् ।  
 अज्ञात्वाऽन्यतम लोके सन्देहविनिवर्तकम् ॥४४॥

इस प्रकार से विन्मात्र ( केवल ज्ञान स्वरूप ) गुणों से रहित तथा भेद से वञ्चित ब्रह्म में जो वि गोत्रोच की सजा वाले में कृष्ण दीप्यमान होता है—  
 ऐसा मैंने श्रवण किया है ॥३६॥ इससे परे कुछ भी निगम और आगमों में भी नहीं है । तोभी निगम परात्पर अक्षर से भी पर गोत्रोक में नित्य निवास करने वाले भगवान् हैं—ऐसा कहा जाता है । श्रुतियों के द्वारा सदा उससे भी परे यह कौन है—यह सदा गाया जाता है ॥३७॥ वेद के वचनों के द्वारा जो उद्दिश्य है वह विशेष कैसे जाना जाता है अथवा “परतोऽक्षरात्” इस अर्थ का श्रुति का अर्थ अन्य प्रकार से जानना चाहिये । इस प्रकार से सत्यवती के आत्मज्ञ व्यासदेव ने इस श्रुति के अर्थ में सशय को प्राप्त होकर अधिक समय तक विचार किया था किन्तु तोभी यद्यर्थ अर्थ को प्राप्त नहीं होसके थे ॥३८॥-३९-४०॥ श्री सूत्रजी ने कहा—इस तरह बहुत समय तक विचार करते हुए भी व्यास मुनि वेद के अर्थ का निश्चय नहीं कर सके थे । वेद तो साक्षात् नारायण भगवान् का स्वरूप है जहाँ पर बड़े २ महामनीषी भी मोह को प्राप्त होजाया करते हैं ॥४१॥ सत्पुरुषों के हृदय को ताप पहुँचाने वाली बड़ी भारी भ्रांति ( पीडा ) को वे प्राप्त होकर फिर विचार करने लगे थे कि अब इस हृदय के

सगय को निवारण करने के लिये मैं किसीके समीप में जाऊँ और वया उपाय करूँ ॥४२॥ इस जगत् में मैं ऐसा सर्वज्ञ और सब कुछ को देखने वाला किसी को भी नहीं देखता हूँ । इस तरह अग्न्य किसी को भी लोक में इस धपने सदेह को निवृत्त कर देने वाला न देखकर उन्होंने तपस्या करने का ही निर्णय लिया था ॥४३॥

नेरो कुहरिणी गत्वा चचार परम तप ।

यत्र कातं स्वरस्पृजं ज्योस्नामूर्त्तिरन्तरजा ॥४४

सदा प्रवाधते दिश्वक्तम स्ताम दृशन्तुदम् ।

चकास्ते यत्र परम वान्तारमतिमुन्दरम् ॥४५

नानाद्रुमलताकुञ्जकूजत्पक्षिगिनादितम् ।

क्षुत्पिपासाभयक्रोधतापलानिविर्वाजितम् ॥४६

जलाशयैर्वहुविधं पश्चिनीषण्डमण्डितं ।

जातरूपशिलानद्वतटसञ्चारपक्षिभि ॥४७

युक्तमम्भोज पवनैः सेव्यमान समन्तत ।

शिर्वरध्यासितम्भावीह्रस्व मत्तो समुज्जितम् ॥४८

निर्जन दिव्यलतिकाप्रियखण्डविराजितम् ।

शुकं पारावर्तं त्वं चैरुमदन्मत्तकोकिलम् ॥४९

उत्पतत्पथरजसा पाटलामोददिङ्मुखम् ।

तत्रापि वाञ्छनी दिव्या गुह्या परमशोभना ॥५०

फिर व्यास मुनि ने मेरु पर्वत की गुफा में जाकर परम उन्नत तप किया था जहाँ पर सुवर्ण की स्फुरित ज्योस्ना के समूह से निरन्तर पूर्ण प्रकाश रहा करता है ॥४४॥ और सदा ही नेत्रों को पीडा देने वाला चारा और फँला हुआ अन्धकार वा समुदाय प्रकाशित होता है । जहाँ पर वन अत्यन्त सुन्दर स्वरूप में प्रकाशित होना रहता है ॥४५॥ उस वन में अनेक प्रकार के वृक्ष तथा लताएँ सुशोभित हैं और उन पर पक्षियों का बलरव हुआ करता है जो कि बहुत ही श्रुति प्रिय है । वह वन भूय-व्यास-भय-क्रोध-ताप और ग्लानि से रहित है ॥४६॥ वहाँ बहुत से अनेक प्रकार के सुन्दरतम जलाशय हैं जिनमें कमलिनी

क समूहा की सुपमा छाई हुई है और सुवण की शिलाया स उनके तटा का निर्माण हो रहा है तथा वहा अनेक पक्षियों का सञ्चार बराबर होता रहा करता है ॥४७॥ वह वन पक्षियों की मिथित वायु से सध्यमान है तथा कल्याण प्रद भावो म युक्त और हिंसक जीवो से रहित है ॥४८॥ वहाँ एकदम निजन स्थान है और वह परम दिव्य सताओ के द्वारा अत्यन्त शोभाधमान है जहा शुक और पारावत अत्यन्त सुदर हैं और मत्त कोकिलो की मधुर ध्वनि ध्वण गोचर हुआ करती है ॥४९॥ सभी दिशाओ मे पक्षो की पराग उडकर फैली हुई पाटलवण एव मुग्ध दिखाई देती है और घ्राण को परम धामोद प्राप्त होता है । उसम भी सुवण की एक अत्यन्त दिव्य और अधिक शोभा से युक्त गुफा है ॥५०॥

ता प्रविश्य जिताहारो जितचित्तो जितासन

मस्मार वदाश्चतुरस्तदेवाग्रमना मुनि ॥५१

त्रयी जगाम शरदा शतस्य स्मरतोऽस्य हि ।

प्रादुरासस्ततो वेदाश्चत्वारश्चारुदर्शना ॥५२

स्फुरत्पद्मलाशाक्षा जटामुकुटधारिण ।

कुशभुष्टिकराम्भोजा मृगत्वङ्मण्डितासका ॥५३

स्वरं षोडशभि क्लृप्त वदना प्रणवान्तरा ।

क्वचवर्गोद्भवैर्वर्णै पञ्चावयवपाणय ॥५४

पवर्गदक्षजरणा वामपादास्तवर्गंत ।

तेषामन्तस्यवर्णाभौ येषा कुक्षिद्वयात्मकौ ॥५५

नाभिनिद्रा कान्तपृष्ठा मोदरा यरलवोक्चका ।

अग्निदक्षाशरचिरा धराश्रीवा भृतासका ॥५६

अन्तस्यसन्धिसस्थाना वंशरीवाग्निजुम्भिता ।

अपश्यन्मयुरामेषा हृदयाम्भाजकल्पिताम् ॥५७

हरेभंगवत माक्षादाविभविस्थली हि सा ।

वासोमपश्यद् भ्रूमध्ये मालामाधारसस्थिताम् ॥५८

उस गिरि गुफा में व्यास मुनि ने प्रवेश किया था और आहार-वित्त तथा आभन को जीन कर वहाँ पर मुनि ने अत्यन्त एवाग्र मन करके चारों षटों के अर्थ का भली भाँति स्मरण किया था ॥५१॥ इस प्रकार से स्मरण करते हुए मुनि को तीन सौ वर्ष व्यतीत हो गये थे । इसके अनन्तर वहाँ चारों षटों का प्रादुर्भाव हुआ था जिनका दर्शन परम मुन्दर था ॥५२॥ वे चारों मूर्तिमान् वेद कमल के समान मुन्दर नन्दी से युक्त थे तथा मस्तक पर जटा एवं मुकुट धारण करने वाले थे । उनके हस्त कमलों में कुशाग्रो का पुञ्ज था और कंधे पर मृगच्छाया पशु हुई थी ॥५३॥ पीडन स्वरो से उनके मुख वृत्त थे जिनके मध्य में प्रणव था । कर्णों और चवर्ग से उत्पन्न होने वाले षण्णों के द्वारा उनके पाँचों अक्षय और हाथ थे ॥५४॥ च वर्ग से उनका दाहिना चरण था और तर्ग से बायें पाद की रचना थी । उनकी दोनों कुक्षियाँ अन्नस्य ( प र ल व ) षण्णों से युक्त थीं ॥५५॥ नाभि निद्रा जाने-जान्त ( मुन्दर ) पृष्ठ ( पीठ ) वाले-मोक्ष तथा मर सब कच ( जेठ ) वाले थे । अग्नि दशांश से अत्यन्त रवि-परा की घोषा ( गरदन ) वाले और कन्धों वाले थे ॥५६॥ अन्नस्यो से मण्डिया के संस्थान से समन्वित थे तथा वैशरी वाली से विजृम्भित होने वाले थे । इनके हृदय कमल से अन्नित मयुरा की व्यास मुनि ने देखा था ॥५७॥ वह मयुरा भगवान् हृदि की गायान् अविर्भाव होने की स्थिति थी । भृशुटिया के मध्य में आहार में सखित माया स्वरूपिणी की तथा वासीपुरी की देखा था ॥५८॥

लिङ्गदेशे तत वरुणोमवन्ती नाभिमण्डने ।

कण्ठस्थां द्वारकामेया प्रयाग प्राण्य तथा ॥५९

सध्यापसध्ययोस्तेषा गङ्गाऽपि यमुना नदी ।

मध्ये सरस्वती माझाद् गयाक्षेत्र तयानने ॥६०

हनुप्रीर्वागध्यगत प्रभासर्षे त्रमुत्तमम् ।

वदध्याध्रममेतेषां अक्षरध्रं ददर्श ह ॥६१

पीठं पुरांगिरिनाम सत्ताटे ममदृश्यते ।

पीठं पूरांगिरिनाम सत्ताटे ममदृश्यते ॥६२

कण्ठे च मयुरापीठ काञ्चीपीठ कटिस्थितम्  
 जालन्धर तथा पीठ स्तनदेशेष्वदृश्यत ॥६३॥  
 भृगुपीठ कर्णदेशे ह्ययोध्या नासिकापुटे ।  
 ब्रह्मरन्ध्रे स्थित ब्राह्म शव सीमन्तसोमनि ॥६४॥

निज्ज देश मे काञ्चीपुरी को और नाभि मण्डल मे भवन्तीपुरी को देखा था । कण्ठ देश मे सस्थित द्वारका को तथा प्राणो मे गमन करने वाले प्रयाग का दर्शन किया था ॥६३॥ उन वेदो मे जाई और दाहिनी और म गङ्गा तथा यमुना नदी को देखा था । उनके मध्य मे सरस्वती नदी थी और मुक्क के देश मे साक्षान् गया क्षेत्र था ॥६०॥ ठोडी और शोवा ( गरदन ) के मध्य मे रहने वाला उत्तम प्रभाम क्षेत्र था । इनके ब्रह्मरन्ध्र मे वदर्याथिम था जिसका स्पष्ट तप ध्यास मुनि ने दर्शन किया था ॥६१॥ दोनो देशो मे पीण्ड वर्धन नेपाल पीठ था और सलाट मे पूर्ण गिरिनाम वाला पीठ देखा था ॥६२॥ कण्ठ मे मयुरा पीठ तथा कटि प्रदेश मे काञ्ची पीठ था । तथा जाल धर पीठ स्तन देश मे दिखाई दिया था ॥६३॥ कर्ण देश मे भृगुपीठ और नासिका देश मे ययोध्या पीठ था । ब्रह्मरन्ध्र मे ब्राह्म पीठ था और सीमान्त की सीमा मे शैव पीठ था ॥६४॥

शाक्त जिह्वाग्र धिपण वीष्णव हृदयाम्बुजे ।  
 सौर चक्षु प्रदेशस्थ वीढञ्छायासु सङ्गतम् ॥६५॥  
 सौत्रामणि कण्ठदेशे पशुबन्धमथोरसि ।  
 वाजपेय कटितटे ह्यग्निहोत्र तथानने ॥६६॥  
 अश्वमेध कटितटे नरमेधमथोदरे ।  
 राजसूय शिरोदेशे आवसध्य तथाऽधरे ॥६७॥  
 ऊर्ध्वोष्ठे दक्षिणाग्निश्च गार्हपत्य मुखान्तरे ।  
 हृष्य श्रुती मन्त्रभेदास्तथा रोमस्ववस्थितान् ।  
 भृत्यैरिव महाराज पुराणन्यायिमिथिर्त ॥६८॥  
 सहिताभिश्च तन्त्रैश्च पृथक्पृथक्पासितान् ।  
 वर्म ज्ञानोपासनाभिर्जनानुग्रहकारकान् ॥६९॥

दृष्ट्वा सुविस्मितमना मुनि कृष्णो बभूव तान् ।

ब्रह्मतेजोमयान्दिव्यास्तपतोऽर्कानिव च्युतान् ।

ज्वलतोऽग्नीनिबोदकान्कोटीन्दुसमदर्शानान् ॥७०

शाक्त पीठ जिह्वा के अग्र भाग में स्थित था तथा हृदय कमल में वैष्णव पीठ था । सौर पीठ चक्षु प्रदेश में स्थित था तथा बौद्ध छायाग्रो में सङ्गत था ॥६५॥ कण्ठ प्रदेश में सौत्रामणि उर में पशुबन्ध-कटितट में वाजपेय तथा आनन में अग्नि होत्र था ॥६३॥ कटितट में अश्व मेघ-उदर में नरमेघ शिरोदेश में राजमूढ तथा अग्रर में श्रावसख्य था ॥६७॥ ऊपर के श्रोत्र में दक्षिणाग्नि-मुख के अन्दर में गार्हपत्य अग्नि-श्रुति में ( कान में ) हव्य तथा रोमो में अवस्थित मन्त्र भेदों को दसा था । न्याय मिथित पुराणों में इस भाँति सेवित थे जैसे भृत्यो के द्वारा कोई महाराज हों ॥६८॥ सहिताग्रो के शीर तन्त्रों के द्वारा पृथक् २ समुपासित एव कर्म, ज्ञान औ उपासनाओं के द्वारा जनो पर अनुग्रह करने वाले उन वेदों को देख कर कृष्ण द्वैपायन मुनि अत्यन्त विस्मित मन वाले हो गये थे । वे ब्रह्म तेज से परिपूर्ण-परम दिव्य-मूर्त्य के समान तपे हुए - जलती हुई अग्नि के तुल्य उदक एव बरोडो चन्द्रो व समाप्त दिखलाई देने वाले थे ॥७६-७०॥

ववन्दे सहस्रोत्थाय दण्डवत्पतितो मुनि ।

कृतार्थोऽह कृतार्थोऽह कृतार्थोऽहमितोरयन् ॥७१

अद्य ने सफल जन्म अद्य में सफल मन ।

अद्य में सफलश्चागुर्यद्भवन्तोऽक्षिगोचरा ॥७२

अलौकिक लौकिकश्च यत् किञ्चिदपि विद्यते ।

न तद्वोऽविदित वेद्य भूत भव्य भवन्न यत् ॥७३ ।

न प्रवृत्तिफला यूय दर्शयन्तोऽपि तान्सदा ।

यदृच्छाकरसङ्कोचविधानायेह रागिणाम् ॥७४

प्रपञ्चस्यापि मिथ्यात्वे ब्रह्मत्वे वा विधीतरो ।

न मृपारागविषयो तत्सङ्कोचविधिक्षयो ॥७५



अतो लोकहितं नूनं परमार्थं निरूपणे ।

स्वोक्ता स्वर्गादिविषया नश्वरा इति निन्दिता ॥७६

अधिकारिविभेदेन कर्मज्ञानोपदेशत ।

आत सर्वं जगद्गूनं शब्दब्रह्मात्समूर्त्तिभि ॥७७

इस प्रकार के स्वरूप वाले उनका दर्शन प्राप्त कर व्यास मुनि सहसा उठ कर खड़े हो गये और दण्ड की भांति पड कर उनकी वन्दना की थी तथा व्यास मुनि अपने मुख से दण्डवत् प्रणाम करते हुए यह कहते जा रहे थे—मैं कृतार्थ होगया—मैं सफल होगया और पूर्ण मनोरथ वाला हो गया हूँ ॥७१॥ आज मेरी सम्पूर्ण आयु सफल हो गई कि आप मेरी आत्मा के समक्ष मे प्रत्यक्ष रूप से गोचर होगये हैं ॥७२॥ आपके लिए कुछ भी अविदित नहीं है । भूत-भव्य और वत्तमान सभी आपको वेद्य हैं ॥७३॥ उन सब को सर्वदा देखते हुए भी आप लोग प्रवृत्ति फल वाले नहीं हैं । क्यों कि इस मसार में रागी पुरुष यदृच्छा कर सङ्कोच से विधान करने वाले होते हैं ॥७४॥ इस प्रपञ्च के मिथ्यात्व होने पर भी तथा ब्रह्मत्व में विधि निषेध उनके सङ्कोच विधि और क्षय मृपाराग के विषय नहीं हैं ॥७५॥ अतएव लोकहितों के द्वारा परमार्थ के निरूपण में अपने ने कहे हुए स्वर्गादि के विषय नासावान् हैं इस लिए निन्दित होते हैं ॥७६॥ शब्द ब्रह्म की मूर्त्ति वाले आपने अधिकारी के भेद से कर्म और ज्ञान के उपदेश के द्वारा इस सम्पूर्ण जगत् की निश्चय ही रक्षा की है ॥७७॥

अतोऽहं प्रष्टुमिच्छामि भवन्तश्चेत्कृपालव ।

कर्मणा फलमादिष्ट सर्गं कामकचेतसाम् ॥७८

ईशापितधिया पु सा कृतस्यापि च कर्मण ।

चित्तशुद्धिस्ततो ज्ञान मोक्षश्च तदनन्तरम् ॥७९

मोक्षो ब्रह्मैक्यमित्येव सच्चिदानन्दमेव यत् ।

सर्वं समाप्यते तस्मिञ्ज्ञाते यद्धि कृताकृतम् ॥८०

यन्नि मङ्गं चिदाकाश ज्ञानरूपमसवृतम् ।

निरीहमचल शुद्धमगुणं ध्यापकं स्मृतम् ॥८१

विकारेषु विनश्यत्सु निर्विकार न नश्यति ।  
यथान्धतमसा व्याप्तलोकस्य रविरोजसा ॥८२  
लोहस्येव मणिस्तद्वदरणिश्चानले यथा ।  
यदाभासेन सा सत्ता प्रतिपद्य विजृम्भते ॥८३  
जीवेश्वरादिरूपेण विश्वाकारेण चाप्यहो ।  
तस्यामपि प्रलीनाया कूटस्थश्च यदेकलम् ॥८४  
भवद्भिरेव निर्णीतं तत्तथैव न संशयः ।  
तथापि मम जिज्ञासा वर्तते केवलं तद्वदि ॥८५  
अतोऽपि परमं किञ्चिद्वर्तते किल वा न वा ।  
तद्वदन्तु महाभागा भवन्तस्तत्त्वदर्शना ॥८६

यदि आप भेरे ऊपर कृपालु हैं तो मैं आपसे भव यह ही पूछना चाहता हूँ कि कर्मा का फल आदिष्ट किया है और कामना से पूर्ण चित्त वालों का संग बताया है । ईश्वर में समर्पित बुद्धि वाले मानवों के किये हुए कर्म में भी चित्त की शुद्धि होती है फिर इसके अनन्तर ज्ञान होता है और इसके पश्चात् मोक्ष होता है ॥७८-७९॥ मोक्ष ब्रह्म के साथ ऐक्य को ही कहा जाता है जोकि सत्-वित् और आनन्द स्वरूप है । जो भी कुछ कृत तथा अकृत है वह उसके ज्ञान करने पर सभी कुछ समाप्त हो जाता है ॥८०॥ जो सङ्ग रहित-विदा-काय-ज्ञानस्वरूप वाला-असृष्ट-निरीह-अचल-शुद्ध-विना गुण वाला और व्यापक कहा गया है ॥८१॥ समस्त विकारों के विनष्ट होजाने पर भी वह विकार रहित है अतएव नष्ट नहीं होता है । वह तो इस प्रकार है जैसे अन्ध-कार से व्याप्त लोक के लिये भोज से रवि होना है ॥८२॥ लोहे को मणि की भाँति और अमल में अरणि के समान वह होता है । जिसके आश्रय से वह सत्ता को प्राप्त होकर विजृम्भित है ॥८३॥ यह जीव और ईश्वर के स्वरूप में विश्व का आकार होता है । इसके भी प्रलीन होजाने पर एक कूटस्थ रहता है ॥८४॥ यह सभी कुछ आपने निर्णय किया है और वह उभी प्रकार का ही है, आपके इस कथन में कुछ भी मशय नहीं है । तो भी मेरे हृदय में केवल एक जिज्ञासा होती है ॥८५॥ वह जिज्ञासा यही है कि इससे भी

भागे कुछ है या नहीं है। हे महान् भाग वालो ! आप यही कृपा कर मुझे बनावे क्योकि आप तो तत्त्वा के पूर्ण ज्ञाता हैं ॥८६॥

यच्छ्रव फलमेवेह जनुपो मे वृत्तार्थता ।

एव ब्रुवन्तमनघ व्यास सत्यवतीसुतम् ।

साधु साध्विति सङ्कीर्त्य प्रत्युबु निगमा वच ॥८७

साधु साधु महाप्राज्ञा विष्णुरात्मा शरीरिणाम् ।

अजोऽपि जन्म सम्पद्य लोकानुग्रहमीहसे ॥८८

अन्यथा ते न घटते ससारकर्मबन्धनम् ।

अस्पृष्टो मायया देव्या कदाजिज्ञानगूढया ॥८९

विभ्रपि स्वेच्छया रूप स्वेच्छयैव निगूहसे ।

अम्मत्सम्मत् एवार्थो भवता सम्प्रदर्शित ६०

पुरारोष्वितिहासेषु सूत्रेष्वपि च नेकधा ।

अक्षर ब्रह्म परम सर्वकारणकारणम् ॥९१

तस्यात्मनोऽप्यात्म भावतया पुष्पस्य गन्धवत् ।

रसवद्वा स्थित रूपमेवेहि परम हि तत् ॥९२

अनुभूत तदम्माभिर्जात प्राकृतिके लभे ।

अक्षरात्परतस्तस्माद्यत्पर केवलो रस ।

न च तत्र वय शक्ता शब्दातीते तदात्मवाः ॥९३

यहाँ इसका ध्वरण करना ही मेरे जीवन का फल है और इसके करने में मेरे जन्म की सफलता होगी। इस प्रकार न बोलने वाले अक्षरहित सत्यवती के पुत्र व्यास महर्षि से साधु-साधु ( अच्छा-अच्छा )—यह कहकर निगमो ( वेदो ) ने वचन कहे थे ॥८७॥ वेदा ने कहा—बहुत अच्छा है आप महान् प्राज्ञ हैं और शरीर धारियों के विष्णु आत्मा हैं। आप अजन्मा होकर भी जन्म धारण कर लोगों के अनुग्रह की इच्छा करते हैं ॥८८॥ अन्यथा आपको इस प्रकार का कर्म बंधन पलित नहीं होता है - ज्ञान में गूढ माया देवी से अस्पृष्ट आप अपनी ही इच्छा से स्वरूप को धारण करते हैं और स्वेच्छा में ही उगे निगूहित किया करते हैं। हमारे सम्मत जो अर्थ है वही आपने भी प्रदर्शन

किया है ॥८६-६०॥ पुराणो मे—इतिहासो मे श्रीर सूत्रो मे भी एक ही प्रकार से नहीं बताया गया है । अक्षर परम ब्रह्म है श्रीर सब कारणो का भी कारण है ॥६१॥ आत्मा स्वरूप उसके भी आत्म भावना से पुण्य की गन्ध की भाँति अथवा रस के समान वह परम रूप स्थित रहता है—ऐसा उसे जान लो ॥६२॥ प्राकृतिक लय के होजाणे पर हमने अनुभव किया है । उस अक्षर से परे केवल रस ही होता है । शब्दात्मक हम शब्दातीत उसमे पहुँचने को समर्थ नहीं हैं ॥६३॥

### प्रकरण ६७—गया माहात्म्य

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि गयामाहात्म्यमुत्तमम् ।  
यच्छ्रुत्वा सर्व्वपापेभ्यो मुच्यते नात्रसशय ॥१॥  
सनकाद्यर्म्महाभागैर्देवपिः स च नारद ।  
सनत्कुमार पप्रच्छ प्रणम्य विधिपूर्व्वकम् ॥२॥  
सनत्कुमार मे ब्रूहि तीर्थ तीर्थोत्तमोत्तमम् ।  
तारक सर्वभूताना पठता शृण्वता तथा ॥३॥  
वक्ष्ये तीर्थंवर पुण्य श्राद्धादौ सर्वतारकम् ।  
गयातीर्थं सर्वदेवे तीर्थेभ्योऽप्यधिक शृणु ॥४॥  
गयासुरस्तपस्तेपे ब्रह्मणा ऋतवेऽर्धित ।  
प्राप्तस्य तस्य शिरसि शिला धर्मो ह्यधारयत् ॥५॥  
तत्र ब्रह्माऽकरोद्याग स्थितश्चापि गदाधर ।  
फलगुतीर्थादिरूपेण निश्चलार्थमहर्निसम् ।  
गयासुरस्य विप्रेन्द्रब्रह्मार्धं देवतं सह ॥६॥  
कृतयज्ञो ददौ ब्रह्मा ब्राह्मणेभ्यो गृहादिकम् ।  
श्वेतकल्पे तु वाराहे गयायागमकारयत् ॥७॥  
गयानाम्ना गया ख्याता क्षेत्र ब्रह्माभिकाक्षितम् ।  
काक्षन्ति पितर पुत्राभ्ररकाद्भ्य भीरव ॥८॥

वायुदेव ने कहा—इसके भागे मैं सब धत्सुत्तम गया का माहात्म्य  
 यनाता हूँ । त्रिमया श्रवण कर मानव समस्त पापों से विमुक्त हो जाना है ।  
 इसमें कुछ भी सशय नहीं है ॥१॥ मूनजी ने कहा—गनवादि महान् भाग वालों  
 से मुक्त देवादि नारद ने सनत्कुमार से विधि के साथ प्रणाम करके पूछा था  
 ॥२॥ नारदजी ने कहा—हे गनत्कुमार √मुझे आप समस्त तीर्थों में सर्वोत्तम  
जो तीर्थ हो उसे बताओ । जो समस्त प्राणियों का पान या श्रवण करने पर  
उद्धार करने वाला हो ॥३॥ सनत्कुमार ने कहा—मैं समस्त तीर्थों में श्रेष्ठ परम  
 पुण्यमय घोर श्राद्ध आदि में सबको तार देने वाला गया तीर्थ को बनाता हूँ ।  
 यह गया तीर्थ है घोर सब देवों में सम्पूर्ण तीर्थों से भी अधिष्ठ है । इसका तुम  
 लोग श्रवण करो ॥४॥ ब्रह्मा के द्वारा प्राणित गयापुर ने क्रतु के लिये तपश्चर्या  
 की थी । प्राप्त होने वाले उर्मके गिर पर धर्म ने शिला को धारण किया था  
 ॥५॥ वहीं पर ब्रह्मा ने याग किया था और गदाधर भी वहीं पर स्थित थे ।  
 पत्न्यु तीर्थ आदि के स्वरूप से वह अहनिर्ग निश्चित धर्म वाला था । विप्रेन्द्र  
 ब्रह्मादि देवों के साथ यज्ञ करने वाले ब्रह्मा ने ब्राह्मणों को गृह आदि प्रदान  
 किये थे । बाराह स्वर्ण कल्प में गया याग कराया गया था ॥६॥ ब्रह्मा के  
 द्वारा अभिशापित यह क्षेत्र गया के नाम से गया—यह स्थान दृष्टा था ।  
 पितृगण पुत्र नरक के भय से भीरु होने हुए इसकी इच्छा किया करते हैं ॥७॥

गया यास्यति य पुत्र स नश्चाता भविष्यति ।  
 गयाप्राप्त सत दृष्ट्वा पितृणामुत्सवो भवेत् ।  
 पद्मघामपि जल स्पृष्ट्वा सोऽस्मभ्य किं न दास्यति । ६  
 गया गत्वानदाता य पितरस्तेन पुत्रिण ।  
 पक्षत्रयनिवासी च पुनात्यासप्तम कुलम् ।  
 नो चेत्पञ्चदशाह वा सप्तरात्रि त्रिरात्रिकम् ॥१०  
 महाकल्पकृत पाप गया प्राप्य विनश्यति ।  
 पिण्ड दद्याच्च पित्रादेरात्मनोऽपि तिलैर्विना ॥११  
 ब्रह्महत्या सुरापान स्तेय गुर्वङ्गनागम ।  
 पाप तत्सङ्गज सर्व गयाश्राद्धाद्बिनश्यति ॥१२

आत्मजोऽप्यन्यजो वापि गयाभूमौ यदा तदा ।  
 यन्नाम्ना पातयेत्पिण्डं त नयेद् ब्रह्म शाश्वतम् ॥१३॥  
 ब्रह्मज्ञान गयाश्राद्धं गोगृहे मरणं तथा ।  
 वासं पूसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेया चतुर्विधा ॥१४॥

जो पुत्र गया को जग्गेगा वह ही हमारा याता अर्थात् उद्धार करने वाला होगा । गया में प्राप्त होने वाले अपने पुत्र को देखकर पितरों को बहुत ही उत्सव होता है अर्थात् बड़ा आह्लाद हुआ करता है । अपने पैरों से भी जन का स्पर्श करके वह हमको गया नहीं देगा ॥६॥ जो गया में जाकर अन्न को दान करने वाला है पितृगण उसी में पुत्र वाले हुआ करते हैं । जो तीन पक्ष तक वहाँ निवास करने वाला होता है वह अपने सात कुलों को पवित्र कर दिया करता है । अन्यथा पन्द्रह दिन तक यात रात्रि पयंन्त अथवा तीन रात्रि तक ही वहाँ निवास करने में गया में प्रात होकर रहने वाले का महाबन्ध कृत पाप भी विनष्ट हो आया करता है । तिलों के बिना भी अपने पितृगण को वहाँ जो दिया करता है वह ब्रह्म इत्या-मुरागान-स्नेय (बोरी)-गुरु पत्नी का गमन और सत्सङ्ग से समुत्पन्न सम्पूर्ण पाप गया के श्राद्ध से नष्ट हो जाते हैं ॥१०-११-१२॥ आत्मज हो या अन्यज भी जो जित-जिसी भी समय में गया की भूमि में जिसके नाम से पिण्ड का पातन करता है वह उसको शाश्वत ब्रह्म को प्राप्त करा देता है ॥१३॥ ब्रह्म का ज्ञान-गया का श्राद्ध-गौ के गृह में मृत्यु और कुरुक्षेत्र में निवास के चार प्रकार की पुण्यों की मुक्ति बताई गई है ॥१४॥

ब्रह्मज्ञानेन किं कार्थं गोगृहे मरणेन किम् ।  
 वासेन चि कुरुक्षेत्रे यदि पुत्रो गया व्रजेत् ॥१५॥  
 गयाया सर्वकालेषु पिण्डं दद्याद्विचक्षणः ।  
 अधिमासे जन्मदिने चारतेऽपि गुरुशुक्रयो ॥१६॥  
 न त्यक्तव्यं गयाश्राद्धं सिंहस्थेऽपि बृहस्पती ।  
 तथा दैवप्रमादेन प्रहतेषु ब्रह्मण्यु च ।  
 पुनः कर्माधिकारी च श्राद्धदृष्टं ब्रह्मलोकभाक् ॥१७॥

वायुदेव ने कहा—इसके धाम में सब अत्युत्तम गया का माहात्म्य बताया है । जिसका श्रवण कर मानव समस्त पापों से विमुक्त हो जाता है । इसमें कुछ भी सगाय नहीं है ॥१॥ शूनजी ने कहा—गनजादि महात् भाग वालों से युक्त देवपि नारद ने सनत्कुमार से विधि के साथ प्रणाम करके पूछा था ॥२॥ नारदजी ने कहा—हे सनत्कुमार मुझे आप समस्त तीर्थों में सर्वोत्तम जो तीर्थ हो उसे बताओ । जो समस्त प्राणियों का पान या श्रवण करने पर उद्धार करने वाला हो ॥३॥ सनत्कुमार ने कहा—मैं समस्त तीर्थों में श्रेष्ठ परम पुण्यमय और आद्य आदि में सबको तार देने वाला गया तीर्थ को बताया है । यह गया तीर्थ है और सब देश में सम्पूर्ण तीर्थों से भी अधिक है । इसका तुम लोग श्रवण करो ॥४॥ ब्रह्मा के द्वारा प्राणित गयापुर ने ऋतु के निये तपश्चर्या की थी । प्राप्त होने वाले उमरके निर पर धर्म ने शिला को धारण किया था ॥५॥ वहाँ पर ब्रह्मा ने याग किया था और गदाधर भी वहाँ पर स्थित थे । फलतु तीर्थ आदि के स्वरूप से वह अहनिग निश्चिन्त धर्म वाला था । विप्रेन्द्र ब्रह्मादि देवों के साथ यज्ञ करने वाले ब्रह्मा ने ब्राह्मणों को गृह आदि प्रदान किये थे । बाराह इवेन कल्प में गया याग कराया गया था ॥६-७॥ ब्रह्मा के द्वारा अभिवाहित यह क्षेत्र गया के नाम से गया—यह क्यात हुआ था । पितृगण पुत्र नरक के भय से भीरु होने हुए इसकी इच्छा किया करते हैं ॥८॥

गया यास्यति य पुत्र स नखाता भविष्यति ।

मयाप्राप्तं मृतं दृष्ट्वा पितृणामुत्सवो भवेत् ।

पद्भ्यामपि जल स्पृष्ट्वा सोऽम्मम्य किं न दास्यति । ६

मया गत्वानदाता य पितरस्तेन पुत्रिण ।

पक्षत्रयनिवासी च पुनात्यासमम कुलम् ।

नो चेत्पञ्चदशाहं वा सप्तर्षिं त्रिराश्रिवम् ॥१०

महाकल्पकृत पाप गया प्राप्य विनश्यति ।

पिण्ड दद्याच्च पित्रादेरात्मनोऽपि तिलैर्विना ॥११

ब्रह्महत्यां सुरापान स्तेय गुर्वङ्गनागम ।

पाप तत्सङ्गजं सर्वं गयाश्राद्धाद्धिनश्यति ॥१२

घ्रात्मजोऽप्यन्यजो वापि गयाभूमौ यदा तदा ।  
यन्नाम्ना पातयेत्पिण्डं स नयेद् ब्रह्म शाश्वतम् ॥१३॥  
ब्रह्मज्ञान गयाश्राद्धं गोगृहे मरणं तथा ।  
वास पूसा कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्विधा ॥१४॥

जो पुत्र गया की ज़रिये वह ही हमारा प्राणा धर्यात् उद्धार करने वाला होगा । गया में प्राप्त होन वाले धरने पुत्र को देखकर पितरों को बहुत ही उन्मत्त होना है धर्यात् बड़ा आह्लाद हुआ करता है । अपन पैरों से भी जन का स्पर्श करके वह हमको क्या नहीं देगा ॥१३॥ जो गया में जाकर धर्म को दान करने वाला है त्रिगुण उनी में पुत्र वाले हुआ करते हैं । जो तीन पक्ष तक वहाँ निवाम करने वाला होता है वह धरने सात कुलों को पवित्र कर दिया करता है । अन्यथा पन्द्रह दिन तक सात रात्रि पर्यन्त धरवा तीन रात्रि तक ही वहाँ निवाम करने में गया में प्राप्त जाकर रहन वाले का महाबन्ध वृत्त पाप भी विनष्ट हो जाया करता है । निनों के बिना भी धरने त्रिगुण को वहाँ जो दिया करता है वह ब्रह्म हत्या-मुरापात-स्तेय (चोरी)-गुह पत्नी का गमन घोर मत्सङ्ग से समुत्पन्न सम्पूर्ण पाप गया के श्राद्ध में नष्ट हो जाते हैं ॥१०-११-१२॥ घ्रात्मज हो या अन्यज भी हो जित-विमी भी समय में गया की भूमि में जितने नाम से पिण्ड का पातन करता है वह उमको पादवत ब्रह्म को प्राप्त करा देता है ॥१३॥ ब्रह्म का ज्ञान-गया का श्राद्ध-गो के गृह में मृत्यु घोर कुक्षेत्र में निवाम ये चार प्रकार की पुण्यों की मुक्ति बनाई गई है ॥१४॥

ब्रह्मज्ञानेन किं कार्यं गोगृहे मरणेन किम् ।  
वासेन किं कुरुक्षेत्रे यदि पुत्रो गया अजेत् ॥१५॥  
गयाया सर्वकालेषु पिण्ड दद्याद्विचक्षणः ।  
अधिमासे जन्मदिने चास्तेऽपि गुरुशुक्रयो ॥१६॥  
न त्यक्तव्य गयाश्राद्धं सिंहस्फेऽपि वृहस्पती ।  
तथा दैवप्रमादेन प्रहतेषु वरुणेषु च ।  
पुन वर्ष्माधिवासी च श्राद्धवृद्धं ब्रह्मलोक भाक् ॥१७॥



सकृद्गयाभिगमन सप्तृत्पिण्डस्य पातनम् ।  
 दुर्लभं किं पुनर्नित्यमस्मिन्नेव व्यवस्थितिः ॥१८॥  
 प्रमादान्निश्रयते क्षेत्रे ब्रह्मादेमुंक्तिदायके ।  
 ब्रह्मज्ञानायथा मुक्तिर्लभ्यते नात्र सशयः ॥१९॥  
 कीटकादिमृतानाञ्च पितृणां तारणाय च ।  
 तस्मात्प्रवृत्तत्वेन कर्त्तव्यं सुविचक्षणैः ॥२०॥  
 ब्रह्मप्रवृत्तिपतान्विप्रान्हव्यवध्यादिनाऽर्चयेत् ।  
 तैस्तुष्टस्तोपिताः सर्वा पितृभिः सह देवता ॥२१॥

ब्रह्म के ज्ञान से क्या प्रयोजन है और गौ के घर में मृत्यु होने से भी क्या लाभ है तथा कुक्षेत्र के धाम में निवास से भी कोई निश्चिन्ता नहीं होती है यदि पुत्र गया में जाकर श्राद्ध करता है । धर्म यह है कि गया में पुत्र के जाकर श्राद्ध करने में पूर्णतया मद्गति हो जाती है ॥१९॥ गया में विद्वान् पुण्य को सभी ममयो में पिएट दान करना चाहिए । चाहे अतिमात्र हो या जन्म दिन हो और भोज हो गुह्य और गुह्य का धर्म भी होगा हो—गभी कालों में पिएट दान करना चाहिए ॥१६॥ सिंह राशि पर वृद्धपति के स्थित होने पर भी गया में जाकर श्राद्ध का त्याग नहीं करना चाहिये । देव के प्रमाद में ग्रहण होने तथा प्रणों के होने पर भी श्राद्ध करने वाला पुत्र कर्म का अधिकारी और ब्रह्मचोद का सेवन करने वाला होता है ॥१७॥ एतवार गया में अभिगमन करना और एतवार पिएट का पातन करना ही इतना श्रेयस्कर होता है कि उमें फिर कुछ भी दुर्लभ नहीं है और नित्य ही इगमें व्यवस्थिति हो तो कहना ही क्या है ॥१८॥ ब्रह्मादि को मुक्ति देने वाले क्षेत्र में प्रमाद से ही मृत्यु हो जाती है तो त्रिग प्रकार ब्रह्म ज्ञान में मोक्ष होगा है वैसी ही मुक्ति होती है—इगमें कुछ भी संशय नहीं है ॥१९॥ कीटाकादि मृतों को और स्तृगण को तरण के निवे सम्पूर्ण प्रयत्नों के द्वारा सुविध लागू पुण्यों को गया श्राद्ध करना ही चाहिये ॥२०॥ ब्रह्म प्रवृत्तिन विशेष का हृष-रध्यादि के द्वारा अर्चन करना चाहिये । उन विशेष के गुह्य होने में ममत्त विवरों के माय देवता परम मोक्षिण हो जाना करते हैं ॥२१॥

मुण्डन चोपवासश्च सर्व्वतीर्थैः त्रय विधिः ।  
 वर्जयित्वा कुरुक्षेत्रे विशाला विरजा गयाम् ॥२२  
 दण्डं प्रदर्शयेद्भिक्षुर्गया गत्वा न पिण्डदः ।  
 दण्डं न्यस्ता विष्णुपदे पितृभि सह मुच्यते ॥२३  
 न दण्डी क्विन्वप धत्ते पुण्य वा परमार्थतः ।  
 अत सर्व्वा क्रिया त्यक्त्वा विष्णुं ध्यायति भावुक ॥२४  
 सन्यसेत्सर्व्वकर्मणि वेदमेक न सन्यसेत् ।  
 मुण्डं कुर्याच्च पूर्व्वेऽस्मिन्पश्चिमे दक्षिणोत्तरे ॥२५  
 साद्धं क्रोशद्वय मान गयेति ब्रह्मणोरितम् ।  
 पञ्चक्रोश गयाक्षेत्रे क्रोशमेक गयाशिर ॥२६  
 तन्मध्ये सर्व्वतीर्थानि त्रैलोक्ये यानि सन्ति वै ।  
 श्राद्धकृद्यो गयाक्षेत्रे पितृणामनृणो हि सः ॥२७  
 शिरसि श्राद्धकृद्यस्तु कुलाना शतमुद्धरेत् ।  
 गृहाच्चलितमात्रेण गयाया गमन प्रति ।  
 स्वर्गा रोहणमोपान पितृणाञ्च पदे पदे ॥२८

समस्त तीर्थों में मुण्डन तथा उपवास करने की विधि है किन्तु कुरुक्षेत्र और विरजा विशाला गया का त्याग करके ही यह विधि होती है ॥२२॥ भिक्षु को गया में जाकर दण्ड का प्रदर्शन करना चाहिए और पिण्ड नहीं देना चाहिए । विष्णु पद में दण्ड के व्यस्त करने ही से वह पितृगण के माय मुक्त हो जाता है ॥२३॥ दण्डी को कोई पाप नहीं होता है और परमार्थ से उसे पुरण भी नहीं होता है । अतएव समस्त क्रियाओं का त्याग करके भावुक को विष्णु का ध्यान करना ही श्रेयस्कर है ॥२४॥ समस्त कर्मों का तो मन्वासी को त्याग कर देना चाहिये किन्तु एक वेद का त्याग नहीं करना चाहिये । पूर्व दिशा में मुण्ड करे और पश्चिम तथा दक्षिणोत्तर में ढाईकोस तक गया का मान होता है—ऐसा ब्रह्मा ने ब्रह्मा है । गया का पाँच कोस तक क्षेत्र है और एक कोस पर्यन्त गया का शिर होता है ॥२५-२६॥ उसके मध्य में समस्त तीर्थ हैं जोकि इम त्रैलोक्य में हैं । गया के क्षेत्र में जो श्राद्ध करने वाला पुरुष है वह पितरो

के ऋण ने मुक्त हो जाया करता है ॥२७॥ जो गिर में थाढ़ करता है वह अपने सौ कुलो का उद्धार किया करता है । जब वह घर से गया को चलना प्रारम्भ करता है उसी समय से पितरो के स्वर्गारोहण का नाव प्रारम्भ करता है और उसके एक २ कदम चलने में स्वर्ग का सोपान बन जाता है ॥२८॥

पदे पदेऽश्वमेधस्य यत्फल गच्छतो गयाम् ।

तत्फलञ्च भवे नूनं समग्रं नात्र सशय ॥२९॥

पायसे नापि चरुणा सक्तुना पिष्टकेन वा ।

तण्डुल फलमूलाद्यैर्गमाया पिडपातनम् ॥३०॥

तिलवल्केन खडेन गुडेन सघृतेन वा ।

केवलेनव दध्ना वा ऊर्जेन मधुनाऽप्य वा ॥३१॥

पिण्याक सघृत खड पितृभ्योऽक्षयमित्युत ।

इज्यते वात्तव भोज्य हविष्या न मुनीरितम् ॥३२॥

एकत सव्ववस्तूनि रसवन्ति मधूनि हि ।

स्मृत्वा गदाधराड ध्र यञ्ज फल्गुतीर्याम्बु चैकत ॥३३॥

पिडामन पिडदान पुन प्रत्यवनेजनम् ।

दक्षिणा चान सङ्कल्पस्तीयथाद्ध ध्वय विधि ॥३४॥

नावाहन न दिग्बन्धो न दोषो दृष्टिसम्भव ।

सकाण्ठ्येन क्त व्य तीय थाद्ध विचक्षण ॥३५॥

गया को गमन करने वाले के एक एक पद में अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होना है । उसको सम्पूर्ण फल अवश्य ही मिलना है—इसमें कुछ भी सशय नहीं है ॥२९॥ पायस से—चरु—मसू—तण्डुल और फल मूलादि के द्वारा गया में पिष्ट का पातन करना चाहिए ॥३०॥ तिलों का फलक—खड गुड और घृत अथवा केवल दही या ऊर्ध्व मधु के द्वारा पिष्ट पातन करे । पिण्याक तथा सघृत खड पितरो को वहा अक्षय होता है । अथवा ऋतु का मुनीरित हविष्यान्न भोज्य से यजन किया जाता है ॥३१ ३२॥ एक और रसवानी समस्त वस्तुयें तथा मधु यज्ञे और गदाधर के वरण कर्मन का स्मरण करके एक और फल्गु तीर्थ का यज्ञ रखे ॥३३॥ पिडामन पिडदान और फिर

प्रत्यवने जन-दक्षिणा शीर अन्न वा सङ्कल्प करे—यह ही तीर्थों के श्राद्ध में विधि होती है ॥३४॥ वहाँ पर न तो कोई आवाहन ही होता है शीर न दिश्वन्ध किया जाता है । दृष्टि से उत्पन्न होने वाला भी दोष बहाना नहीं होता है । विचक्षण पुरुषों को कारुण्य के सहित तीर्थ श्राद्ध करना चाहिए ॥३५॥

अन्यथावाहिता काले पितरो यान्त्यमु प्रति ।

तीर्थं सदा वसन्त्येते तस्मादावाहनं न हि ॥३६॥

तीर्थं श्राद्धं प्रयच्छद्भिः पुरपैः फलकाङ्क्षिभिः ।

काम क्रोध तथा लोभं त्यक्त्वा कार्या क्रियाऽनिशम् ॥३७॥

ब्रह्मचार्यैकभोजी च भूशायी सत्यवाक्शुचिः ।

सर्वभूतहिते रक्तं स तीर्थं फलमश्नुते ॥३८॥

तीर्थान्यनुसरन्धीर पापण्डुः पूर्वतस्त्यजेद् ।

पापं च च विज्ञेयो यो भवेत्कामकारतः ॥३९॥

तीर्थेषु ये नरा धीरा कर्म कुर्वन्ति तद्गताः ।

यदा ब्रह्मिदो वेद्यं वस्तु चानन्यचेत्तसः ।

प्रविशन्ति परेशास्य ब्रह्म ब्रह्मपरायणाः ॥४०॥

यास्ते वैतरणी नाम नदी त्रैलोक्यविश्रुता ।

साऽवतीर्णं गयाक्षेत्रे पितृणां तारणाय वै ।

स्नातो गोदो वैतरण्या चिः सप्तकुलमुद्धरेत् ॥४१॥

तथाऽक्षयवटं गत्वा विप्रान्सन्तोषयिष्यति ।

ब्रह्मकल्पितान्विप्रान्द्रव्यकव्यादिनाऽर्चयेत् ।

- तैस्तुष्टंस्तोपिता सर्वा पितृभिः सह देवताः ॥४२॥

गयायां न हि तत्स्थानं यत्र तीर्थं न विद्यते ।

सान्निध्यं सर्वं तीर्थानां गयातीर्थं ततो वरम् ॥४३॥

मीने मेघे स्थिते सूर्ये कन्यायां कामुके घटे ।

दुर्लभं त्रिषु लोकेषु गयायां पिडपातनम् ॥४४॥

नकरे वर्तमाने च ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।

दुर्लभं त्रिषु लोकेषु गयाश्राद्धं सुदुर्लभम् ॥४५॥

गयाया पिडदानेन यत्फल लभते नर ।

न तच्छ्रवणं मया वक्तुं कल्पकोटिशतैरपि ॥४६॥

अन्य स्थानों में आवाहन किए हुए ही पितृगण श्राद्ध करने वाले के समीप आया करते हैं किन्तु तीर्थों में तो ये सर्वदा ही निवाम किया करते हैं अतएव वहा इनका आवाहन नहीं किया जाता है ॥३६॥ तीर्थों में श्राद्ध देने वाले पुरुष जो फल की आकांक्षा रखते हैं उनको काम-त्रोध और लोभ का त्याग करके ही निरन्तर श्राद्ध की क्रिया करनी चाहिए ॥३७॥ ब्रह्मचारी-एक बार भोजन करने वाला-भूमि पर शयन करने वाला-सत्यवत्ता-पवित्र तथा ममस्त प्राणियों के हित में रति रखने वाला पुरुष तीर्थों के फल को प्राप्त किया करता है ॥३८॥ तीर्थों का अनुसरण करने वाले वीर पुरुष को चलन के पहले ही से पापण्ड का त्याग करना चाहिए । जो कामना की भावना से किया जाता है वही पापण्ड समझना चाहिए ॥३९॥ जो पुरुष परम धीर होकर वहा तीर्थों में पहुँच कर अपना तीर्थोचित कर्म किया करते हैं जिस तरह ब्रह्म के ज्ञाता योग प्रमन्य चित्त होते हुए जानने के योग्य वस्तु में ब्रह्म में जो कि परिधास्य है, ब्रह्म परायण होकर प्रवेश किया करते हैं उमी भाँति तीर्थों के सेवो को भी करना चाहिए ॥४०॥ जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध वैतरणी नदी है वह गया के क्षेत्र में पितरो के तारने के लिए भवतीरुण हो जाती है । गौड अर्थात् गौ का दान करने वाला वैतरणी में स्नान करके अपने इक्कीस कुलों का उद्धार कर देता है ॥४१॥ उसी भाँति मक्षद पर जाकर विप्रों को सन्तोष देना चाहिए । ब्रह्म कल्पित विप्रों को हव्य कन्यादि से अर्चन करे । मुष्ट हुए उनके द्वारा ममस्त देवगण पितरो के साथ तोषित हो जाया करते हैं ॥४२॥ गया में ऐसा कोई भी स्थान नहीं है जहा कोई तीर्थ न विराजमान हो । वहा गया में तो सभी तीर्थों का सान्निध्य होता है अतएव वह परम श्रेष्ठ तीर्थ है ॥४३॥ भोजन-मेघ-कन्या-धन और कुम्भ पर सूर्य के स्थित होने पर गया में जाकर पिण्ड का पातन करना तीनों लोकों में दुर्लभ कार्य होता है ॥४४॥ मकर के वसन्तमान होने पर तथा चन्द्र एव सूर्य के ग्रहण के समय में गया में श्राद्ध करना तीनों लोकों में परम दुर्लभ कार्य है ॥४५॥ गया में पिड दान करने से जिन फल की

प्राप्ति मानव किया करता है उसको मैं बल्ब कोटि शत के समय में भी बर्णन नहीं कर सकता हूँ ॥४६॥

यज्ञञ्चक्रे गयो राजा बह्वन्ने बहुदक्षिणम् ।  
 यत्र द्रव्य समूहाना सख्या वतुं न शक्यते ॥४७  
 प्रशसन्ति द्विजास्तप्ता देशे देशे सुपूजिता ।  
 गय विष्णवाद्यस्तुष्टा वर ब्रूहीति चाब्रुवन् ॥४८  
 गयस्तान्प्रार्थयामास ह्याभिशप्ताश्च ये पुरा ।  
 ब्रह्मणा ते द्विजा पूता भवन्तु क्रतुपूजिता ॥४९  
 गयापुरीति मन्नाम्ना ख्याता ब्रह्मपुरी यथा ।  
 एवमस्तु वर दत्त्वा चान्तर्दधु सुरा ॥५०

सन्त्कुमार जी बोले—नारदजी ! किसी समय राजा गय ने बहुत धन और बड़ी-बड़ी दक्षिणाओं वाले इतने यज्ञ किये कि उनमें रुच होने वाले द्रव्य की सख्या की गणना कर सकना सम्भव नहीं ॥४७॥ देश-देश के ब्राह्मण भली प्रकार पूजे जाकर और पूण वृत्त होकर वहाँ से गये और सर्वत्र राजा गय की प्रशंसा करते रहे । राजा क इस महान् पुण्य कार्य से सन्तुष्ट होकर विष्णु आदि देवगणों ने राजा से वर माँगने को कहा ॥४८॥ राजा ने उनसे प्रार्थना की कि यदि आप वर देना चाहते हैं तो गया के जिन ब्राह्मणों को प्राचीन काल में ब्रह्माजी ने शाप दिया था उन्हें उन्ने मुक्त कर दीजिये और वे यज्ञों में पूजित होकर पवित्र हो जायें ॥४९॥ यह गया पुरी मेरे नाम पर ब्रह्मपुरी की तरह पवित्र और विख्यात हो जाय । देवगण 'ऐसा ही' कहकर उनकी प्रार्थनाओं को स्वीकार करके अन्तर्धान होगये ॥५०॥

यत्र तत्र स्थितो देवा ऋपयाऽपि जितेन्द्रियाः ।  
 आद्य गदाधर घ्यायञ्छ्राद्धपिण्डादिदानत ॥५१  
 कुलाना शतमुद्धृत्य ब्रह्मलोक नयेत् पितृन् ।  
 गया गयो गया दित्यो गायत्री च गदाधर ॥५२  
 गया गयामुरश्चैव पठेते मुक्तिदायका ।  
 गयाख्यानमिद पुण्य य पठेत्सतत नरः ॥५३

शृणुयाच्छ्रद्धया यस्तु स याति परमा गतिम् ।  
 पाठयेद्वा गयाख्यान विप्रेभ्य पुण्यकृत्नर ॥५४  
 गयाश्राद्ध कृत तेन कृत तेन मुनिश्चितम् ।  
 गयाया महिमानश्च ह्यभ्यसेद्य समाहित ॥५५  
 तेनेष्ट राजसूयेन अश्वमेधेन नारद ।  
 लिखेद्वा लेखयेद्वापि पूजयेद्वापि पुस्तकम् ।  
 तस्य मेहे स्थिरा लक्ष्मी सुप्रसन्ना भविष्यति ॥५६

इस पुरी में स्थान-स्थान पर द्यताओं के अनिर्दिष्ट जितेन्द्रिय ऋषि भी  
 विराजमान हैं। यदि गदाधर देव का ध्यान करके यहाँ श्राद्ध और पिण्डदान  
 करने वाला सौ पीढ़ियों का उद्धार करके उनको स्वर्ग का अधिकारी बना देता  
 है। गयागय, गयादित्य गायत्री, गदाधर, गया और गसामुर—ये छह 'गया'  
 में मुक्ति प्रदान करने वाले हैं। इस पुण्यदायक गयाख्यान को जो व्यक्ति सदा  
 पढ़ना रहता है ॥५१-५२ ५३॥ अथवा जो पुण्यशाली इसे श्रद्धापूर्वक मुनता  
 है और ब्राह्मणों से इसका पाठ कराता है वह निश्चिन्त रूप में गया श्राद्ध  
 करता है। जो मनुष्य अन्तःकरण से महतीर्थ गया की महिमा का चिन्तन  
 करता है हे नारद, वह मानो राजसूय और अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान ही कर  
 लेता है। जो गयाख्यान की पुस्तक का स्वयं लिखता है अथवा दूसरे से लिखाना  
 है या पुस्तक की पूजा करता है। उसके घर में लक्ष्मी जो स्थिर और प्रसन्न  
 रहती है ॥५४ ५५-५६॥

“वायुपुराण का चतुर्थं चरण (उपसंहार) में गयामाहात्म्य समाप्त”

। वायु पुराण समाप्त ॥